अर्चना पथ

अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर

परम पूज्य सन्त शिरोमणि
आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज

पूर्व नाम	:	ब्र. सर्वेश जी
पिता-माता	:	श्री वीरेन्द्रकुमार जी जैन, श्रीमती सरितादेवी जैन
जन्म	:	13.09.1975, भाद्रपद शुक्ल अष्टमी
जन्म स्थान	:	भोगाँव, जिला-मैनपुरी (उ.प्र.)
शिक्षा	:	बी. एस. सी. (अंग्रेजी माध्यम)
भाई	:	सचिन जैन
बहिन	:	सपना जैन
गृहत्याग	:	09.08.1994
क्षुल्लक दीक्षा	:	09.08.1997, नेमावर
ऐलक दीक्षा	:	05.01.1998, नेमावर
मुनि दीक्षा	:	11.02.1998, माघसुदी 15, बुधवार, मुक्तागिरिजी
दीक्षा गुरु	:	संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में टीका ग्रन्थ

1. लिङ्गपाहुड़ (नन्दिनी टीका)
2. शील पाहुड़ (नन्दिनी टीका)
3. समाधि तन्त्र (आर्हतभाष्य)
4. चैतन्य चन्द्रोदय (चन्द्रिका टीका)
5. बारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)
6. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)
7. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (मंगला टीका)
8. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ('नीति-पथ')
9. तत्त्वार्थ सूत्र (तत्त्व संदीपिनी टीका, संस्कृत-प्राकृत)
10. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ

1. सत्सकर्म पंजिका
2. दश भक्ति टीका
3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका)
4. कथा कोश
5. सत्य शासन परीक्षा
6. युक्त्यनुशासन
7. नाममाला (भाष्य)
8. सत्संख्यादि अनुयोगद्वार
9. पात्रकेसरी स्तोत्र
10. अद्याष्टक स्तोत्र
11. संन्यास एषोस्तु किमात्मघातः
12. चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति (आ. माघनन्दि)
13. नियमसार
14. समयसार
15. परीक्षामुख
16. प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

पद्यानुवाद

1. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय
2. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका
3. तत्त्वार्थ सूत्र
4. पात्र केसरी स्तोत्र
5. कल्याणमन्दिर स्तोत्र
6. श्री वर्धमान स्तोत्र
7. मंगलाष्टक
8. माघनन्दी कृत अभिषेक पाठ
9. उपयोग शतक

प्रवचन ग्रंथ

1. बारसाणुवेक्खा
2. नई छहढाला प्रवचन
3. परमात्म योग (समाधि तन्त्र)
4. जीव विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय - 2)
5. मनोविज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-6)
6. लोक विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-3, 4)
7. व्रत विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-7)
8. अध्यात्म योग (इष्टोपदेश)
9. प्रवचनसार का सार (गाथा 1-26)
10. प्रवचनसार का सार(गाथा 27-60)
11. प्रवचनसार का सार (गाथा 61-101)
12. प्रवचनसार का सार (गाथा 102-136)
13. प्रवचनसार का सार (गाथा 137-175)
14. कर्म बंध विज्ञान
15. धर्म का मर्म (अपने को समझें)
16. राम कथा
17. पञ्च लब्धि
18. स्त्री को मोक्ष क्यों नहीं
19. मेरी भावना को अपनी भावना बनाएँ
20. तत्त्व विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-१)
21. जीव विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-२)
22. सिद्ध भक्ति
23. नीतिवाक्यामृत Part 1 - आदर्श जीवन की नीतियां

अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ

1. स्तुति पथ
2. श्रायस पथ
3. सिद्धोदयाष्टकम्
4. श्री वर्धमान स्तोत्र
5. अनासक्त महायोगी (आचार्य श्री का जीवनवृत)
6. उपयोग शतकम्
7. अर्हं अष्टाङ्ग योग शतकम्
8. आ. श्री शान्तिसागर स्तुति शतकम्
9. श्री शान्तिनाथ स्तोत्र (शतकम्)
10. महामह नन्दीश्वर विधान
11. गोवैभवशतकम् (आयुर्वेद सम्बन्धी)
12. चतुर्विंशति-जिनस्त्रोत्रम् (पूजा एवं विधान)
13. मुनिसुव्रत भगवान आराधना

प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रन्थ

1. तित्थयर भावणा (सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ)
2. दार्शनिक प्रतिक्रमण
3. अष्टपाहुड़ (प्राकृत टीका 16)
4. धम्मपह
5. प्राकृत रचना भास्कर
6. प्राकृत शिक्षा भाग 1-2-3-4
7. गोम्मटेस पडिमा भत्ति

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगद्रष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास)
2. जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य
3. खोजो मत पाओ (लाइफ मैनेजमेंट)
4. आलेख पथ (20 सैद्धान्तिक आलेख)
5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन?
6. अन्तर्गून्ज (भजन एवं हायकू)
7. लहर पर लहर (कविता संग्रह)
8. बेटा! (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ)
9. नई छहढाला
10. लक्ष्य (जीवंधर चरित्र)
11. मुनिसुव्रतनाथ विधान
12. अर्हं दोहावली
13. अर्हं ध्यान योग
14. जिंदगी क्या है? (प्रवचन ग्रन्थ)

संकलन

1. संवाद (आचार्य श्री और बाबा रामदेव की चर्चा)
2. A Talk (संवाद का अंग्रेजी अनुवाद)
3. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन

अंग्रेजी भाषा में

1. Fact of Fate (Article)
2. Twelve Contemplation
3. I Love You My Soul

अर्चना पथ

।। णमोकार मंत्र।।

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

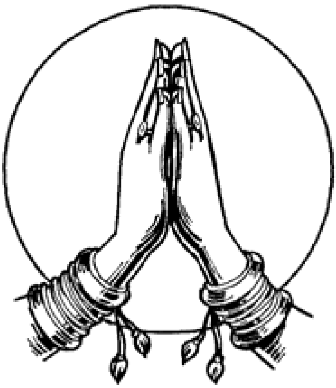

कृति : **अर्चना पथ**

आशीर्वाद : संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज
परम पूज्य आचार्य श्री १०८ समयसागर जी महाराज

प्रेरणा : अर्हं ध्यान योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर जी

पुण्यार्जक : व्रती डी. सी. जैन, श्रीमती शकुन जैन (जयपुर)
श्री महक जैन, श्रीमती निधि जैन, एरिश जैन, एरा जैन (गुड़गाँव)

संस्करण : जुलाई 2024

प्रतियाँ : 1000

आईएसबीएन : 978-81-964881-1-6

मूल्य : 200/- मात्र (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्रकाशक : आर्हत विद्या समिति
मोबाइल: 9425837476

प्राप्ति स्थान : आर्हत विद्या समिति, गोटेगाँव,
मोबाइलः 9425837476
आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालाय समिति
109, शिवाजी पार्क, देवास रोड, उज्जैन
मोबाइलः 9425092483

- विषय सूची -

क्र सं	विवरण	पृष्ठ सं
	(पूजा एवं विधान)	
1-	अभिषेक विधि	1
2-	अभिषेक प्रारम्भ करने हेतु मंत्रोच्चार विधि	4
3-	अभिषेक क्रिया विधि (आ० माघनंदी कृत)	5
4-	शान्ति धारा	10
5-	मंगलपाठ	12
6-	स्वस्ति पाठ	12
7-	नित्य नियम पूजा प्रारम्भ (विनय पाठ)	14
8-	पूजा पीठिका	16
9-	नवदेवता पूजन	20
10-	श्री आदिनाथ जिन पूजा	24
11-	श्री पार्श्वनाथ जिनपूजन	27
12-	कल्याण मंदिर स्तोत्र विधान	31
13-	समुच्चय महाअर्घ्यं	50
14-	शान्ति पाठ	51
15-	विसर्जन पाठ	52
16-	श्री वासुपूज्य पूजन	53
17-	श्री अनन्तनाथ जिन पूजा	57
18-	श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनपूजन विधान	61
19-	श्री वर्धमान जिनपूजा	74
20-	श्री वर्धमान स्तोत्र विधान	77
21-	समुच्चय चौबीसी पूजा	100
22-	दशलक्षण पूजन (संस्कृत)	104
23-	दशलक्षण धर्म (अंग पूजन)	106
24-	विन्ध्यावली पार्श्वनाथ जिन पूजन	112
25-	आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज पूजन	117
26-	पंचमेरु पूजा	120
27-	रत्नत्रय पूजा	123
28-	सम्यग्दर्शन पूजा	125
29-	सम्यग्ज्ञान पूजा	126
30-	सम्यक्-चारित्र पूजा	128
31-	सरस्वती पूजा	131

क्र सं	विवरण	पृष्ठ सं
32-	नन्दीश्वर पूजा	134
33-	सोलहकारण पूजा एवं विधान	138
	1. दर्शन विशुद्धि भावना	140
	2. विनय सम्पन्नता भावना	142
	3. शीलव्रतेष्वनतिचार भावना	144
	4. ज्ञान भावना	146
	5. संवेग भावना	147
	6. तपो भावना	149
	7. प्रासुक परित्याग भावना	151
	8. साधु समाधि भावना	152
	9. वैयावृत्यकरण भावना	155
	10. अरिहन्त भक्ति भावना	156
	11. आचार्य भक्ति भावना	158
	12. बहुश्रुत भक्ति भावना	160
	13. प्रवचन भक्ति भावना	162
	14. आवश्यकापरिहाणी भावना	164
	15. मार्ग प्रभावना	166
	16. प्रवचन वत्सलत्व भावना	167
34-	चारित्र शुद्धि व्रत पूजा	170
35-	तत्त्वार्थ सूत्र पूजन	175
36-	अथप्रत्येकाध्याय अर्घ्यावली	177
37-	तत्त्वार्थ सूत्र विधान	180
	प्रथम अध्याय	180
	द्वितीय अध्याय	186
	तृतीय अध्याय	197
	चतुर्थ अध्याय	205
	पंचम अध्याय	213
	षष्ठ अध्याय	222
	सप्तम अध्याय	230
	अष्टम अध्याय	240
	नवम अध्याय	248
	दशम अध्याय	261
38-	श्रुतपंचमी पूजा	266

क्र सं	विवरण	पृष्ठ सं
39-	दीपावली सांयकालीन पूजा विधि	269
40-	दोहा स्तुति (कूटों के अर्घ)	277
	(संस्कृत स्तोत्र एवं पाठ)	
41-	श्रीजिनसस्रनाम-स्तोत्रम्	283
42-	जिनसहस्रनाम मंत्र	296
43-	भक्तामर-स्तोत्रम् (संस्कृत)	314
44-	एकीभाव-स्तोत्रम्	321
45-	भावना द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)	324
46-	इष्टोपदेश	327
47-	द्रव्य संग्रह	331
48-	तत्त्वार्थ सूत्रम्	335
49-	सिद्धोदयाष्टक	345
50-	स्तुति विद्या	348
51-	प्रार्थना (मुनि प्रणम्य सागर कृत)	358
52-	वीराष्टकम् (")	359
53-	भरताष्टकम् (")	360
54-	शारादाष्टकम् (")	361
55-	कुन्कुन्दाष्टकम् (")	362
56-	समन्तभद्राष्टकम् (")	363
57-	शान्त्यष्टकम् (")	363
58-	ज्ञानाष्टकम् (")	364
59-	विद्याष्टकम् (")	366
60-	मौनाष्टकम् (")	367
61-	निजबोधाष्टकम् (")	368
62-	आचार्य श्रीज्ञानप्रशस्तिम् (")	369
63-	स्वयंभू-स्तोत्रम् (आचार्य समन्तभद्र स्वामी)	372
64-	सिद्धिश्रेयसमुदय-स्तोत्रम्	384
65-	मन्दालसा-स्तोत्रम्	388
	(प्राकृत भक्ति / स्तोत्र)	
66-	गोम्मटेस पडिमा भत्ती (मुनि प्रणम्य सागर कृत)	398
67-	सिद्ध भक्ति (आचार्य पूज्यपाद महाराज)	400
68-	नंदीश्वर भक्ति (”)	402
69-	पंचमहागुरु भक्ति (”)	406

क्र सं	विवरण		पृष्ठ सं
70-	चैत्य भक्ति	(”)	408
71-	श्रुत भक्ति	(”)	412
72-	निर्वाण भक्ति	(”)	415
73-	आचार्य भक्ति	(”)	419
74-	चारित्र भक्ति	(”)	421
75-	योगि भक्ति	(”)	423
76-	शांति भक्ति	(”)	425
77-	समाधि भक्ति	(”)	428
78-	वीयराय भक्ति	(मुनि प्रणम्य सागर कृत)	430
79-	गोम्मटेस थुदि	(आचार्य श्री नेमिचन्द्र)	431
80-	पंच महागुरु भक्ति	(आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कृत)	432
81-	पागद धजगीद	(मुनि प्रणम्य सागर कृत)	432
82-	जिणवाणी थुदि	('')	433
83-	चउवीस जिणभत्ति	('')	433
84-	भजन	('')	434
85-	वड्ढमाण सामि	('')	435
86-	णवदेवदा थुदि	('')	436
87-	बारह भावणा	('')	437
88-	सुयपंचमी थुदि	('')	442
	भजन (अन्तर्गूंज)		
89-	सिद्ध स्तुति		457
90-	गुरु स्तुति		457
91-	हम इन्ही के		458
92-	हे प्रभु कब मैं....		459
93-	श्रद्धा की आँखों से देखो		459
94-	अस्त हो रहे		460
95-	जिंदगी कहाँ है		461
96-	अरिहन्तों की प्रतिमाओं का....		461
97-	मैं हूँ वो नहीं		462
98-	अरिहंत भजन कर प्यारे		463
99-	बनते बनते		464
100-	मेरा मन समर्थ हो		465
101-	समकित सावन		466

क्र सं	विवरण	पृष्ठ सं
102-	जब से घर में टी.वी. आई	466
103-	वृक्षों सा लहराना सीखो	467
104-	मेरे भगवन्	468
105-	केशलुंचन स्तुति	469
106-	कुछ हो या न हो	470
107-	मन तू भ्रम में काहे भ्रमावे	471
108-	दुनिया में तरक्की	472
109-	यहाँ आया न	473
110-	क्यों गम में है....	474
111-	भगवन् से जाकर मिलेंगे	475
112-	तो कोई बात बने	475
113-	डूब जाती है क्यों कश्ती	476
114-	आओ बच्चों तुम्हे सिखायें	477
115-	रोशनी का वही	477
116-	उस वर्ष न जाने क्या होगा?	478
117-	शुद्ध चिद्रूपोहं	479
118-	गुरू के नाम का कर ले	480
119-	जो स्वयं मोक्ष पथ पर	481
120-	ओ छाये हुए मेघो	482
121-	मुझे अब किसी की जरूरत नही	482
122-	विद्यासागर इस धरती पर	483
123-	सब मिल आओ खुशियाँ मनाओ	484
124-	संत शिरोमणी का स्वर्णिम संयम उत्सव	485
125-	जो हो सो हो, जो है सो है	485
126-	क्षमा प्रार्थना	486
127-	वीर शासन जयंती	487
128-	ॐ अर्हं बोल	487
129-	अर्हं योग करना है	488
130-	मेरे मन में तेरे मन में (अर्हं प्रार्थना)	489
131-	णमोकार मय सारा जीवन बना लो (अर्हं प्रार्थना)	490
132-	हाइकू (मुनि प्रणम्य सागर कृत)	491

क्र सं	विवरण	पृष्ठ सं
	(हिन्दी स्तुति पाठ, चालीसा एवं आरती)	
133-	नई छहढाला	443
134-	चौदह गुणस्थान	454
135-	समाधि भावना	501
136-	बारह भावना	501
137-	मेरी भावना	503
138-	आलोचना पाठ	505
139-	वैराग्य भावना	507
140-	बारह भावना	510
	(चालीसा)	
141-	अजितनाथ चालीसा	515
142-	श्री मुनि सुव्रतनाथ चालीसा	516
143-	बिजौलिया तपोदय तीर्थक्षेत्र चालीसा	518
144-	श्री १००८ अजितनाथ भगवान आरती	520
	(प्रतिक्रमण एवं विविध)	
145-	दार्शनिक प्रतिक्रमण (अवर्ती श्रावकों के लिए)	521
146-	श्री सिद्ध भक्ति (लघु)	539
147-	श्री श्रुत भक्ति (लघु)	540
148-	श्री आचार्य भक्ति (लघु)	541
149-	व्रती श्रावक प्रतिक्रमण (हिन्दी)	543
150-	श्रावक प्रतिक्रमण	561
151-	वर्षायोग धारण-समापन-क्रिया विधि	389
152-	शिखर पर १० ध्वजाओं के मन्त्र	576

(अभिषेक विधि)

आ. माघनन्दि कृत

मंगलाष्टक - स्तोत्र

(हिन्दी अनुवाद - मुनि श्री प्रणम्यसागर जी)

श्री मनम्र सुरा - सुरेन्द्र मुकुट - प्रद्योत - रत्नप्रभा,
भास्वत् पाद - नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिनसिद्ध - सूर्यनुगतास् ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पंच गुरवः कुर्वन्तु ते मंगलं॥1॥

जिनके चरण कमल के नख सब, शशि सम उज्ज्वल चमक रहे,
देव असुर मुकुटों की मणियों, से शोभित हो विलस रहे।
वे अरिहन्त सिद्ध आचारज, पाठक मुनि अविकारी हो,
पंच परम परमेष्ठी प्रतिदिन, हमको मंगलकारी हों॥1 ॥

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति-श्री-नगराधिनाथ-जिनपत् - युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्ति-सुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्त ते मंगलं॥2॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण, निर्मल रत्नत्रय पावन है,
मोक्षप्रदायी यही धर्म है, मुक्तिपुरी का साधन है।
जिनआगम जिनप्रतिमा जिनवर, के आलय अघकारी हों,
पंच परम परमेष्ठी प्रतिदिन, हमको मंगलकारी हों॥2 ॥

नाभेयादिजिनाः प्रशस्त-वदनाः ख्याताश्चतुर्विंशतिः।,
श्रीमन्तो भरतेश्वर-प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लांगलधराः सप्तोत्तरा विंशतिस्,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रि-षष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलं॥3॥

ऋषभदेव से महावीर तक, तीर्थंकर चौबीस महा,
बारह चक्री नौ नारायण, प्रतिनारायण नवक रहा।
नौ बलभद्र जगत् विख्यात, पुरुष शलाका इन्हें कहो,
त्रेसठ ये सब महापुरुष भी, हमको मंगलकारी हो॥3 ॥

ये सर्वौषधि-ऋद्धयः सुतपसां, वृद्धिंगताः पंच ये,
ये चाष्टांग महानिमित्त कुशलाश् चाष्टौ वियच्चारिणः।
पंच ज्ञानधरास् त्रयोऽपि बलिनो, ये बुद्धिऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु ते मंगलं॥4॥

सर्वौंषधि ऋद्धिधारी मुनि, तप ऋद्धि के भी धारक,
क्रिया विक्रिया चारण ऋद्धि, बुद्धि ऋद्धि के भी साधक।
तप ऋद्धि भी बल ऋद्धि भी, रस ऋद्धि शिवकारी हो,
सप्त ऋद्धियों से शोभित मुनि, हमको मंगलकारी हो॥4॥

ज्योतिर्व्यन्तर भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बू शाल्मलि-चैत्य-शाखिषु तथा वक्षार रूप्याद्रिषु।
इष्वाकार-गिरौ च कुण्डल-नगे द्वीपे च नंदीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिन-गृहाः कुर्वन्तु ते मंगलं॥5॥

ज्योतिष व्यन्तर भवनवासियों, वैमानिक आवासों में,
मेरु कुलाचल चैत्य वृक्ष औ, वक्षारों रूप्याचल में।
इष्वाकार मानुषोत्तर हो, तेरह अठ गिरिधारी हो,
अकृत्रिम सब चैत्यालय भी, हमको मंगलकारी हो॥5 ॥

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य-सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वर - स्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मंगलं॥6॥

अष्टापद से ऋषभदेव जी, महावीर पावापुर से,
गिरनारी से नेमिप्रभु जी, वासुपूज्य चम्पापुर से।
शेष बीस तीर्थंकर श्रीजी, गिरि सम्मेद विहारी हो,
मोक्षभूमियाँ चौबीसों की, हमको मंगलकारी हो॥6 ॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्प-दामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्न - मनसः, किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मंगलं॥7॥

सर्प हार बन जाये माला, असि विष अमृत है बनता,
शत्रु मित्र सा प्रेमी बनता, देव स्वयं वश है होता।
बहुत कहें क्या रत्न वृष्टि भी, नभ से नित सुखकारी हो,
जैन धर्म का है प्रभाव वह, हमको मंगलकारी हो॥7 ॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक् ।
यः कैवल्यपुर - प्रवेश - महिमा सम्पादितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु ते मंगलं॥8॥

कल्याणक जो गर्भ समय पर, जन्म समय तीर्थंकर के,
दीक्षा ज्ञान महा कल्याणक, सुर नर पूजित पद जिनके।
देवों द्वारा मोक्ष समय की, पूजा विस्मयकारी हो,
पाँचों कल्यणाक श्री जिन के, हमको मंगलकारी हो॥8॥

इत्थं श्री-जिन-मंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-सम्पत्करं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस् तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनै-धर्मार्थ-कामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय-रहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि॥9 ॥

इस प्रकार सौभाग्य प्रदायी, मंगल अष्टक जो पढ़ता,
कल्याणक पूजा विधान के, अवसर पर भी है पढ़ता।
अरु प्रभात में सुनता भी जो, धर्म अर्थ कामान्वित हो,
मोक्षपुरी को गमन करे वह, सबको मंगलकारी हो॥9 ॥

॥इति श्री मंगलाष्टक स्तोत्रं समाप्तम्॥

निर्ग्रन्थोनिरतात्मसौख्य-निलयो, मुक्त्यातुरस्तारकस्।
तीर्थोद्धारक! वीतकामकलहो, विज्ञोऽपि गोरक्षकः॥
सन्मार्गं हृदि शान्तितो नयति यो, भव्यांश्च मुक्तिश्रिये।
विद्यासागर-पूज्यपाद-कमलं, संस्थाप्य संपूजये॥

॥पुष्पांजलिं क्षिपामि॥

अभिषेक प्रारम्भ करने हेतु मंत्रोच्चार विधि

(जल शुद्धि)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्म महापद्म तिगिञ्छ केसरि पुण्डरीक महा पुण्डरीक गंगा सिन्धु रोहिद्रो-हितास्या हरिद्धरिकान्ता सीता सीतोदा नारी नरकान्ता सुवर्णकूला रूप्यकूला रक्ता रक्तोदा क्षीराम्भोनिधि शुद्ध जलं सुवर्ण घटं प्रक्षालित परिपूरितं नवरत्न गंधाक्षत पुष्पार्चित ममोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झ्रौं झ्रौं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः स्वाहा।

(हस्त प्रक्षालन)

ॐ ह्रीं असुजर सुजर भव स्वाहा हस्त प्रक्षालनं करोमि।

(अमृत स्नान)

(अंजुली में जल लेकर शरीर पर छिड़कें)

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं सं झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

(तिलक मन्त्र)

(**नव तिलक करें-** शिखा, मस्तक, ग्रीवा, हृदय, दोनों भुजायें, पीठ, कान, नाभि, हाथ)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः (मम/यजमानस्य) सर्वांगशुद्धि हेतवः नव तिलकं करोम्यहम्।

अभिषेक क्रिया विधि

(हिन्दी अनुवाद - मुनि श्री प्रणम्यसागर जी)

श्रीमन् - नता - मर - शिरस्तट - रत्नदीप्ति-
तोयाव - भासि - चरणाम्बुज - युग्म - मीशम् ।
अर्हन्त - मुन्नत - पद - प्रद - माभि - नम्य,
तन्मूर्ति - षूद्य - दभिषेक - विधिं - करिष्ये॥1॥

नित्य नम्र सुर सिर मुकुटों की, रत्न दीप्ति से दीपित हैं,
जिनके चरण कमल जल जैसे , तरल प्रकाशित पूजित हैं।
शिवपददायी अरिहन्तों को, याद करूँ जिनरूप वरूँ,
उनकी ही जिन प्रतिमाओं का मंगल श्री अभिषेक करूँ॥1॥

(प्रातःकालीन देव वन्दना में पूर्व आचार्यों के अनुक्रम से समस्त कर्मों के क्षय के लिए भाव पूजा, स्तवन, वन्दना सहित श्री पंच महागुरु भक्ति का मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

(एक कायोत्सर्ग अर्थात् नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

(अभिषेक प्रतिज्ञा)

याः कृत्रिमास् तदितराः प्रतिमा जिनस्य,
संस्नापयन्ति पुरुहूत - मुखा - दयस्ताः।
सद्भाव लब्धि-समयादि-निमित्त योगात्,
तत्रैव-मुज्जवल-धिया कुसुमं क्षिपामि॥2॥
जन्मोत्सवादि समयेषु यदीय कीर्तिं,
सेन्द्राः सुराप्त-मदवा-रणगाः स्तुवन्ति।
तस्याग्रतो जिनपतेः परया विशुद्ध्या,
पुष्पाञ्जलि मलय-जात-मुपाक्षिपेऽहम्॥3॥

कृत्रिम अकृत्रिम जिन प्रतिमा, जिनवर की है जहाँ कहीं,
मुख्य इन्द्र से उनकी होती, नितप्रति ही अभिषेक विधि।
अहो परम सौभाग्य हमारा, काल लब्धि वश से आया,
पुष्पांजलि क्षेपण करने को, जिनवर निकट चला आया॥3॥

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

(श्रीकार लेखन)

श्रीपीठ - क्लृप्ते - विशदाक्ष - तौघैः,
श्रीप्रस्तरे पूर्ण - शशांककल्पे।
श्रीवर्तके चन्द्र मसीति वार्तां,
सत्यापयन्तीं श्रियमा-लिखामि॥4॥

तीन जगत् में पावन पर्वत, जो सुमेरु हैं शाश्वत हैं,
उसके पाण्डुक वन में देखो, रखी शिला भी पाण्डुक है।
अक्षत सी वह शशि सम शोभे, जिनवर कारण श्रीयुत जो,
उस पर श्री लिखकर के मन में, करूँ प्रतिज्ञा विधि युत हो॥4॥

ऊँ ह्रीं श्रीकार लेखनं करोमि।

(पीठ स्थापना)

कनकादि-निभं कम्रं, पावनं पुण्य-कारणम्।
स्थापयामि परं पीठं, जिन-स्नपनाय भक्तितः॥5॥

स्वर्ण रजत उत्तम धातु का जो पावन सिंहासन है,
अधर विराजे श्रीजिन फिर भी, नाम धरे सिंहासन है।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, थाप रहा उस आसन पे,
श्री जिनवर प्रतिमा जी को मैं, लाऊँगा सिर आसन मे॥5॥

ऊँ ह्रीं श्रीपीठ स्थापनं करोमि।

(अभिषेक हेतु प्रतिमा स्थापना)

भृंगार - चामर - सुदर्पण - पीठ - कुम्भ
ताल ध्वजा - तप - निवारक - भूषिताग्रे।
वर्धस्व- नन्द- जय- पाठ- पदा- वलीभिः,
सिंहासने जिन-भवन्त - महं श्रयामि॥6॥
वृषभादि सुवीरान्तान् जन्माप्तौ जिष्णु चर्चितान्।
स्थापयाम्य-भिषेकाय भक्त्या पीठे महोत्सवम्॥

चामर दर्पण आसन कलशा, झारी मंगल द्रव्य रहे,
ध्वजा वीजना तथा छत्र भी, आसन आगे शोभ रहे।
जयवन्तों जिनदेव सदा ही, जय-जयकार करो उर धार,
सिंहासन पर आप पधारो, पाप कर्म का कम हो भार॥6॥

ॐ ह्रीं श्री धर्म तीर्थादिनाथ भगवन्निह पाण्डुक शिला पीठे सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

(कलश स्थापना)

श्रीतीर्थ- कृत्स्न-पन -वर्य - विधौ सुरेन्द्रः,
क्षीराब्धि- वारिभि - रपूरय- दुद्ध कुम्भान्।
तांस्ता - दृशा - निव विभाव्य यथार्हणीयान्,
संस्थापये कुसुम-चन्दन-भूषि-ताग्रान्॥7॥

शात-कुम्भीय-कुम्भौघान् क्षीराब्धेस् तोय-पूरितान्।
स्थापयामि जिन - स्नान - चन्दनादि - सुचर्चितान्॥8॥

श्री जिन के जन्माभिषेक की , विधि हुई जो देवों से,
वैसी ही प्रतिमाभिषेक विधि, वैभव भक्ति भावों से।
स्वर्ण कलश में क्षीरोदधि का, प्रासुक जल लेकर आया,
चन्दन केसर कुसुम विभूषित, चार कलश में भर लाया॥7-8॥

ॐ ह्रीं अर्हं चतुः कोणेषु चतुः कलश स्थापनं करोमि।

(अर्घ्यं)

आनन्द - निर्भर - सुर - प्रमदादि - गानै-
र्वादित्र - पूर - जयशब्द कल - प्रशस्तैः॥
उद्गीय - मान - जगतीपति -कीर्ति-मेनां,
पीठस्थलीं वसु-विधार्चन-योल्लसामि॥9॥

तीन जगत् आनन्दित हो सुर खचरी भी वनिता करतीं मंगलगान,
वादित्रों जय-जय तालों से, सब करते जिनवर सम्मान।
पुण्यफला अरिहन्ता की यह, पुण्य कीर्ति का महाप्रभाव,
वसु-विधि अर्घ्य समर्पित जिनवर, बना रहे पूजन का भाव॥9॥

ॐ ह्रीं स्नपनपीठ स्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(अभिषेक)

कर्म-प्रबन्ध-निगडै-रपि हीन - ताप्तं,
ज्ञात्वापि भक्ति-वशतः परमादि-देवम्।
त्वां स्वीय-कल्मष-गणोन्मथ-नाय देव।
शुद्धोदकै-रभि-नयामि महा-भिषेकम्॥10॥

कर्म बन्ध से रहित आप हो, परम शुद्ध बाहर भीतर,
जान रहा हूँ फिर भी प्रभुवर, भक्ति भाव से होकर तर।
अपने मन का कालुष धोने, आप्त देव का न्हवन करूँ,
भाव शुद्धि से शुद्ध उदक से, निज-उर जिनवर छवि धरूँ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मंहं हं सं तं तं पं पं वं वं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्र-तर-जलेन जिन-मभिषेचयामीति स्वाहा।

तीर्थोत्तम- भवैः नीरैः, क्षीर- वारिधि- रूपकैः।
स्नपयामि सुजन्माप्तान् जिनान् सर्वार्थसिद्धिदान्॥11॥

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए सभी लोग अभिषेक करें)

ॐ ह्रीं श्रीं वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामि स्वाहा।

(अभिषेक पश्चात् अर्घ्य)

पानीय - चन्दन सदक्षत-पुष्प-पुंज
नैवेद्य - दीपक - सुधूप - फल - व्रजेन ।
कर्माष्टक-क्रथन-वीर - मनन्त-शक्तिं,
सम्पूजयामि महसा महसां निधानम्॥12॥

जल चन्दन अक्षत पुष्पों का, चरुवर दीप धूप फल ले,
आठों का इक अर्घ्य बनाकर, जिनवर सम्मुख कर-कर ले।
अष्ट कर्म से रहित बनूं मैं, और बनूँ तुम सम भगवान्,
यही भाव से अर्घ्य चढ़ाता, शीघ्र मिले जिनगुण की खान॥12॥

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादि महावीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(जिनबिम्ब परिमार्जन)

हे तीर्थपा निज - यशो - धवली- कृताशाः,
सिद्धौषधाश्च भव - दुःख महा - गदानाम्।
सद् -भव्य-हृज्जनित-पंक--कबन्ध-कल्पा,
यूयं जिनाः सतत शान्तिकरा भवन्तु॥13॥

नत्वा मुहु - र्निज-करै - रमृतोप - मेयैः,
स्वच्छै - र्जिनेन्द्र तव चन्द्रकरावदातैः।
शुद्धां - शुकेन विमलेन नितान्त - रम्ये,

देहे स्थितान् जल-कणान् परिमार्जयामि॥14॥

(दोहा)

जिन बिम्बों का वस्त्र से, परिमार्जन आनन्द।
कौन कह सके धरा पर,कितनापुण्य प्रबन्ध॥
जिन प्रतिमा जिन सारखी, करो नित्य तुम ध्यान।
हुआ होएगा इसी से, आतम का कल्याण॥13-14॥

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिन-बिम्ब परिमार्जनं करोमि।

(अभिषेक स्तुति)

हमने प्रभु जी के चरण पखारे॥टेक॥

जनम जनम के संचित पातक, तत्क्षण ही निरवारे॥ हमने.....
प्रासुक जल के कलश श्रीजिन, प्रतिमा ऊपर ढारे॥ हमने.....
वीतराग अरहंत देव के, गूंजे जय जयकारे॥ हमने.....
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही, छाये हर्ष अपारे॥ हमने.....
पावन तन मन नयन भये सब, दूर भये अँधियारे॥ हमने.....

(पुनः जिनबिम्ब यथास्थान विराजमान करना)

स्नानं विधाय भवतोष्टष्टसहस्र, नाम्ना-
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।
जिघृक्षु - रिष्टि - मिन तेऽष्टतयीं विधातुं
सिंहासने विधिवदत्र निवेशयामि॥ 1 5 ॥

धन्य हुआ मैं आज जिनेश्वर, करके पावन श्री अभिषेक,
एक हजार आठ नामों से, उच्चारण करता सविशेष।
मन वच तन की शुद्धि संभाले, अठ विधि पूजा करने आज,
सिंहासन पर पुनः आपको, संस्थापित करता जिनराज॥15॥

ॐ ह्रीं श्रीसिंहासन पीठे जिन-बिम्ब स्थापयामि।

(जिनबिम्ब स्थापना का अर्घ्य)

जल गंधाक्षतैः पुष्पैश, चरुदीपसुधूपकैः ।
फलैरर्धै-र्जिनमर्चेज्, जन्म दुःखापहानये॥16॥

जलचन्दन अक्षत तथा पुष्प चरु औ दीप।

धूप फलों के अर्घ्य से, श्री जिन चरण समीप॥16॥

ॐ ह्रीं श्री पीठ स्थित जिनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नत्वा परीत्य निज-नेत्र-ललाटयोश्च ।
व्याप्तु क्षणेन हरता, दघ संचयं मे॥
शुद्धोदकं जिनपते तव पाद योगाद् ।
भूयाद् भवा तपहरं, धृतमादरेण॥17॥

मुक्ति श्री वनिता करोदकमिदं, पुण्याङ्कुरोत्पादकं ।
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्रचक्रपदवी,राज्याभिषेकोदकम्॥
सम्यग्ज्ञान चरित्र - दर्शन - लतासंवृद्धिसम्पादकं।
कीर्ति श्री जय साधकं तव जिन-स्नानस्य गन्धोदकम्॥18॥

अति सुगन्ध जिन देह से, संस्पर्शित जल जान।
जिन गंधोदक सिर धरूं, धन्य बना दिन-मान॥18॥

ॐ ह्रीं श्री जिन गन्धोदकं स्व नेत्र ललाटे धारयामि।

इमे नेत्रे जाते, सुकृतजलसिक्तेसफलिते ।
ममेदं मानुष्यं कृतिजनगणादेयमभवत्॥
मदीयाद् भल्लाटादशुभतरकर्माटनमभूत् ।
सदेदृक् पुण्यार्हन् मम, भवतु ते पूजनविधौ॥19॥

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

शांतिधारा

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः। श्री वीतरागाय नमः । श्री जिनशासनाय नमः। श्री अनेकान्त धर्माय नमः। अरिहंता मंगलं भवतु सिद्धा मंगलं भवतु साहू मंगलं भवतु आर्हतधर्मो मंगलं भवतु।

ॐ ह्रीं अनादि मूलमन्त्रेभ्यो नमः सर्वशान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरू कुरू। ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोष-कल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्यु-विनाशनाय सर्व-परकृतक्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्वक्षामडामर-

विनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्वशान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरू कुरू।

ॐ अ ह्रां सि ह्रीं आ ह्रूं उ ह्रौं सा ह्रः जगदापद् - विनाशनाय ह्रीं शान्तिनाथाय नमः सर्व शान्ति कुरू कुरू।

ॐ नमोर्हते भगवते श्रीमते श्री (मंदिर के मूलनायक भगवान का नाम) ऋषभनाथतीर्थकराय, समवशरणशोभिताय, द्वादशगण-परिवेष्टिताय, परमौदारिकशरीरपवित्राय अनन्तचतुष्टय शुद्धज्ञान-चेतनाय, ऋषि-आर्यिका-श्रावक-श्राविका प्रमुखचतुः संघोपसर्ग हराय श्री शान्तिनाथाय घातिकर्म रहिताय अघातिकर्मरहिताय, अपवादभयं अपहर-अपहर, अकालमृत्युं अपहर-अपहर, अतिकामं अपहर-अपहर, क्रोधादिकषायं अपहर-अपहर, अग्निवायुभयं अपहर-अपहर, देव-मनुष्य-तिर्यक् कृतोपसर्गं अपहर-अपहर, प्रकृतिकोपसर्गं अपहर-अपहर, सर्व दुष्टभयं अपहर-अपहर, सर्व क्रूर रोगं अपहर-अपहर, सर्व शूलरोगं अपहर-अपहर, सर्व कुष्ठरोगं अपहर-अपहर, प्रकृतिकोपसर्ग अपहर-अपहर, सर्व वृक्षपुष्परोगं अपहर-अपहर, भूकम्पभयं अपहर-अपहर सर्वदुर्भिक्षभयं अपहर-अपहर,अतिवृष्टिभयं अपहर-अपहर, अनावृष्टिभयं अपहर-अपहर, सर्वदुर्भिक्षभयं अपहर-अपहर, सर्वोदरमस्तकव्याधि अपहर-अपहर, सर्वांगव्याधि अपहर- अपहर, व्यन्तरादिबाधां अपहर-अपहर, सर्वासातावेदनीयं अपहर- अपहर, सर्वकर्मरोगं अपहर-अपहर।

हे पार्श्व तीर्थनाथ! सर्वेषां (शांतिधारा कर्ता का नाम) शांतिं कुरू-कुरू सर्व जनानन्दनं कुरू-कुरू, सर्व भव्यानन्दनं कुरू-कुरू, सर्व गोकुलानन्दनं कुरू-कुरू, सर्व लोकानन्दनं कुरु-कुरू। श्री वर्धमान भगवन्! सर्वेषां स्वस्तिरस्तु, कल्याणमस्तु, जयोस्तु, दीर्घायुरस्तु, वीरवंशवृद्धिरस्तु, ऐश्वर्याभिवृद्धिरस्तु।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने श्री ऋषभ-अजित-चन्द्रप्रभु-वासुपूज्य -शांतिनाथ - मुनिसुव्रतनाथ - नेमिनाथ - पार्श्वनाथ - वर्धमान - स्वामिने चतुः षष्टिऋद्धिसमन्वितमुनये अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य जिनचैत्यालय नवदेवताभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं एं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहत विद्यायै णमो अरहंताणं ह्रौं सर्वविघ्न शान्तिं जिनशासन प्रभावनां कुरू कुरू ।

(9 बार मंत्र पढ़ें)

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञःकरोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥

मंगलपाठ

श्रीमज्जिनेन्द्रा हतमोहतन्द्रा सुरेन्द्रसम्पादितदिव्यपूजाः।
फणीन्द्र-योगीन्द्र-नुतप्रभावाः स्वागत्य ते सन्निहिता भवन्तु॥1॥
लब्धात्मलाभा निजसौख्यसिद्धा ये शुद्धबुद्धाः सुनयादिसिद्धाः।
सिद्धाः-समृद्धाः-सुगुणैरनन्तैः-स्वागत्य ते सन्निहिता भवन्तु॥2॥
ये पञ्चभेदाञ्चितपुण्यचर्या-माचारयन्ति स्वयमाचरन्तः ।
आचारवर्याश्च परान् पदार्थाः स्वागत्य ते सन्निहिता भवन्तु॥3॥
येऽध्यापयन्ति स्वमतप्रसिद्धं विशुद्धशास्त्रं विनयाद्विनेयान्।
सर्वेप्युपाध्याय-पदं प्रपन्नाः स्वागत्य ते सन्निहिता भवन्तु॥4॥
सर्वंसहा वर्जितसर्वसङ्गाः ये सर्वदा ध्यानकृतावधानाः।
सर्वर्द्धर्यः सर्वगुणाश्च सार्वाः स्वागत्य ते सन्निहिता भवन्तु॥5॥
ये मंगलत्वेन मताश्चतुर्धा लोगोत्तमा ये च चतुः प्रभेदाः।
शरण्यभूताश्च चतुर्विधा ये स्वागत्य ते सन्निहिता भवन्तु॥6॥
लोकत्रयापादितसत्सपर्याः पर्यन्तयाताप्रतिमप्रभावाः।
भावाधिरूढा नव देवतायाः स्वागत्य ते सन्निहिता भवन्तु॥7॥

स्वस्ति पाठ

स्वस्त्यस्तु नः श्री वृषभादिनाथः स्वस्त्यस्तु मोहादिजितो जितार्हन्।
स्वस्त्यस्तु नः शम्भवसम्भवेशः स्वस्त्यस्तु चानन्द्यभिनन्दनोऽर्हन्॥1॥
स्वस्त्यस्तु नः श्री सुमतिर्मतर्द्धिः स्वस्त्यस्तु पद्माभजिनः सपद्मः।
स्वस्त्यस्तु सत्पार्श्वसुपार्श्वदेवः स्वस्त्यस्तु चन्द्राभजिनेन्द्रचन्द्रः॥2॥
स्वस्त्यस्तु पुष्पायुधपुष्पदन्तः स्वस्त्यस्तु नः शीतलशीतलार्हन्।
श्रेयान् जिनः स्वस्ति जनाय भूयात्स्वस्तीन्द्रपूज्यः क्रमवासुपूज्यः॥३॥

स्वस्त्यस्तु नः श्रीविमलोऽमलात्मा स्वस्त्यस्तु वै नित्यमनन्तनाथः।
स्वस्त्यस्तु धर्मावह-धर्मनाथः स्वस्त्यस्तु शान्तिर्भवदुःखशान्तिः॥4॥
स्वस्त्यस्तु सोनन्दतु कुन्थुनाथः स्वस्त्यस्तु नः शश्वदरोऽमरार्च्यः।
स्वस्त्यस्तु नः सल्लघुमल्लिनाथः स्वस्त्यस्तु नः श्रीमुनिसुव्रतेशः॥5॥
स्वस्त्यस्तु नः श्री नमिनाथदेवः स्वस्त्यस्तु नः स्पष्टमरिष्टनेमिः।
स्वस्त्यस्तु नः पार्श्वगतेन्द्रपार्श्वः स्वस्त्यस्तु धीवर्धनवर्धमानः॥6॥
श्रीपञ्चकल्याणमहार्घणार्थं द्रागात्तभाग्यातिशयै - रुपेताः।
तीर्थंकरा केवलिनश्च शेषाः स्वस्तिक्रिया नो भृशमावहन्तु॥7॥
ये शुद्धमूलोत्तरसद्‌गुणाना - माधारभावादनगारसंज्ञाः।
निर्ग्रन्थवर्या निरवद्यचर्याः स्वस्तिक्रियासु - र्जगतेहितानाः॥8॥
ये चाणिमाद्यष्टसविक्रियाढ्यास्तथाक्षयावासमहानसाश्च ।
राजर्षयस्ते - सुरराजपूज्याः स्वस्तिक्रियासु-र्जगते हितानाः॥9॥
ये कोष्ठबुद्धयादिचतुविधर्द्धि - रवापुरामर्ष - महौषधर्द्धिः ।
ब्रह्मर्षयो ब्रह्मणि तत्परास्ते स्वस्तिक्रियासु-र्जगते हितानाः॥10॥
जलादिनानाविधचारणा ये ये चारणाग्न्यांबर-चारणाश्च ।
देवर्षयस्ते नतदेववृन्दाः स्वस्तिक्रियासु-र्जगते हितानाः॥11॥
सालोकलोकोज्ज्वलनैकतानं प्राप्ता परज्योतिरनन्तबोधम्।
सर्वर्षिवृन्दाः परमर्षयस्ते स्वस्तिक्रियासु-जगते हितानाः॥12॥
श्रेणीद्वयारोहण-सावधानाः कोपोपशान्त्यै क्षपणप्रवीणाः।
ये ते समस्ता मुनयो महान्तः स्वस्तिक्रियासु-र्जगते हितानाः॥13॥
समग्रमध्यक्षमिताख्य दूशः प्रत्यक्षमत्यक्षसुखानुरक्ताः।
मुनीश्वरास्ते जगदेकमान्याः स्वस्तिक्रियासु-र्जगते हितानाः॥14॥
उग्रं च दीप्तं च तपोऽभितप्तं महच्च घोरं च तपश्न्चरन्तः ।
तपोधना निर्वृतिसाधनोक्ताः स्वस्तिक्रियासु-र्जगते हितानाः॥15॥
मनोवचः कायबलप्रकृष्टाः स्पष्टीकृताष्टांगमहानिमित्ताः ।
क्षीरामृतस्राविमुखा मुनीन्द्राः स्वस्तिक्रियासु-र्जगते हितानाः॥16॥
प्रत्येकबुद्धाः प्रमुखा मुनीन्द्राः शेषाश्च ये ये विविधर्द्धियुक्ताः।
सर्वेऽपि ते सर्वजनीनवृत्ताः स्वस्तिक्रियासु-र्जगते हितानाः॥17॥

•••

(नित्य नियम पूजा प्रारम्भ)

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़े जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ॥1॥
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज।
मुक्तिवधु के कंत तुम, तीन भुवन के राज॥2॥
तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार॥3॥
हरता अघ अँधियार के, करता धर्म -प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो, धरता निजगुण रास॥4॥
धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँ-जग-भूप॥5॥
मैं वन्दौं जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव।
कर्म-बन्ध के छेदने, और न कछु उपाव॥6॥
भविजन को भव-कूप तैं, तुम ही काढ़नहार ।
दीन-दयाल अनाथपति, आतम गुण भण्डार॥7॥
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म-रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव-गैल॥8॥
तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय॥९॥
चक्री खगधर इन्द्र पद, मिलैं आपतैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप॥10॥
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥11॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे प्रभु , जय जय जय जिनदेव॥12॥
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव॥13॥
राग सहित जग में रूल्यो, मिले सरागी देव।

वीतराग भेंट्यो अबै, मेटो राग कुटेव॥14॥
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान॥15॥
तुमको पूजे सुरपति, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव॥16॥
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव सिन्धु में, खेव लगाओ पार॥17॥
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान्।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजे आप समान॥18॥
तुम्हरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत हैं पार।
हा! हा! डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार॥19॥
जो मैं कहहूँ और सो, तो न मिटैं उरझार।
मेरी तो तोसों बनी, यातें करौं पुकार॥20॥
वन्दों पाँचों परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास।
विघ्नहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश॥21॥
चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यों पाठ सुखदाय॥22॥

मंगल पाठ

मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान्॥23॥
मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अरहंत देव ।
मंगलकारी सिद्धपद, सो वन्दों स्वयमेव॥24॥
मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दों मन-वच-काय॥25॥
मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म ।
मंगलमय मंगलकरो, हरो असाता कर्म॥26॥
या विधि मंगल करनतें, जग में मंगल होत।
मंगल 'नाथूराम' यह, भवसागर दृढ़ पोत॥27॥

परिपुष्पांजलि क्षिपेत्।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

पूजा पीठिका

ऊँ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

ऊँ ह्रीं अनादि मूल मन्त्रेभ्यो नमः। (पुष्पांजलिं झिपेत्)

चत्तारि मंगलं, अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं,
केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंत सरणं पव्वज्जामि,
सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि पण्णत्तो धम्मोसरणं पवज्जामि।

ऊँ नमोऽर्हते स्वाहा। (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्-पंचनमस्कारं, सर्व-पापैः प्रमुच्यते॥1॥
अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः॥2॥
अपराजित-मन्त्रोऽयं सर्व-विघ्न विनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः॥3॥
एसो पंच णमोयारो, सव्व-पावप्प-णासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलम्॥4॥
अर्ह-मित्यक्षरं बह्म, वाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्ध चक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम्॥5॥
कर्माष्टक -विनिर्मुक्तं, मोक्ष लक्ष्मीनिकेतनं ।
सम्यक्त्वादि गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥ 6 ॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥7॥

॥पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

पंचकल्याणक अर्घ्य

उदक चंदन तंडुल पुष्पकैश्, चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्य कैः।
धवलमंगलगान रवाकुले , जिनगृहे कल्याण महं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री भगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाण पंचकल्याणकेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचपरमेष्ठी अर्घ्य

उदक चंदन तंडुल पुष्पकैश्, चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्य कैः।
धवल मंगल गान रवाकुले, जिन गृहे जिन इष्ट (नाथ) महं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधू पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

उदक चंदन तंडुल पुष्पकैश्, चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्य कैः।
धवल मंगल गान रवाकुले , जिन गृहे जिननाम महं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिन अष्टोत्तर सहस्र नामेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वार्थ सूत्र जी अर्घ्य

उदक चंदन तंडुल पुष्पकैश्, चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्य कैः।
धवल मंगल गान रवाकुले, जिन गृहे जिन सूत्र महं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री उमास्वामीजी विरचित तत्त्वार्थसूत्रं अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भक्तामर स्तोत्र एवं अन्य समस्त स्तोत्र अर्घ्य

उदक चंदन तंडुल पुष्पकैश्, चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्य कैः।
धवल मंगल गान रवाकुले, जिन गृहे जिन स्तोत्र महं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री मानतुङ्गाचार्य जी विरचित भक्तामर स्तोत्रं एवं समस्तजिनस्तोत्रं अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्र- मभिवंद्य जगत्-त्रयेशं,
स्याद्वाद-नायक-मनन्त-चतुष्टयार्हम्।

श्री मूलसंघ सुदृशां सुकृतैक हेतुः
जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि॥1॥

(आगे प्रत्येक स्वस्ति उच्चारण के साथ पुष्प क्षेपण करें)

स्वस्ति त्रिलोक-गुरुवे जिन-पुंगवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाशसहजोर्ज्जित-दृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्-भुत-वैभवाय॥2॥
स्वस्त्युच्छल-द्विमल-बोध-सुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव -परभाव-विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोक-विततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय॥3॥
द्रव्यस्य शुद्धि-मधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धि-मधिकामधि-गंतुकामः।
आलंबनानि विविधान्य-वलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थयज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्॥4॥
अर्हत्पुराण-पुरुषोत्तम-पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्य यमेक एव।
अस्मिज्ज्वलविमल-केवल-बोध वह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि॥5॥

ॐ ह्रीं विधियज्ञ प्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

स्वस्ति मंगल-पाठ

(आगे प्रत्येक स्वस्ति उच्चारण के साथ पुष्प क्षेपण करें)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्रीशम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः।
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः।
श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः ।
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।

श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः ।
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः।
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः ।

॥पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

परमर्षि स्वस्ति मंगल-पाठ

(आगे प्रत्येक स्वस्ति उच्चारण के साथ पुष्प क्षेपण करें)

नित्या-प्रकंपाद्-भुत केवलौघाः, स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥1॥
कोष्ठस्थ धान्योप-ममेक बीजं, संभिन्न संश्रोतृपदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥2॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा, दास्वाद-नघ्राण विलोकनानि ।
दिव्यान् मतिज्ञानबलाद्वहन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥3॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येकबुद्धाः दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टांग निमित्तविज्ञाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥4॥
जंघानल श्रेणि-फलांबुतंतु, प्रसूनबीजांकुरचारणाह्वाः ।
नभोंऽगणस्वैरविहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥5॥
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि,लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥6॥
सकाम रूपित्व वशित्वमैश्य, प्राकाम्यमन्तर्द्धि मथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघात गुण प्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥7॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणं चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥8॥
आमर्ष-सर्वोषधयस्तथाशी-विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च ।
सखिल्ल विड्जल्ल मलौषधीशाः,स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥९॥
क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो, मधु स्रवंतो ऽप्यमृतं स्रवंतः।
अक्षीणसंवास महान साश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥10॥

॥इति परमर्षिस्वस्ति मंगल विधानं परिपुष्पांजलिं क्षिपामि॥

नवदेवता पूजन
(आर्यिका पूर्णमति माता जी)
गीता छंद

अरि चार घाति विनाश कर, अरहंत पद को पा लिया।
पुरूषार्थ प्रबल किया प्रभो, मुक्तीरमा को वर लिया॥
अरहंत पथ पर चल रहे, आचार्य पद वंदन करूँ।
उवज्झाय साधु श्रेष्ठ पद का, भक्ति से अर्चन करूँ॥1॥
जिन धर्म आगम चैत्य चैत्यालय शरण को पा लिया।
भव-सिंधु पार उतारने, नौका सहारा ले लिया॥
यह भावना मेरी प्रभो, मम ज्ञान महल पधारिये।
निज सम बना लीजे मुझे, जिनराज पदवी दीजिये॥2॥

- : दोहा :-

सुख दाता नव देवता, तिष्ठो हृदय मंझार ।
भावों से आह्वान करूँ, करो भवदधि पार॥3॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागम जिनचैत्य-चैत्यालयसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागम जिनचैत्य-चैत्यालयसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागम जिनचैत्य-चैत्यालयसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्सन्निधिकरणम्।

द्रव्यार्पण

जिनको अपना माना, उनसे ही दुख पाया
फिर भी क्यों राग किया, यह समझ नहीं आया॥
यह राग की आग मिटे, ऐसा जल दो स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥1॥

ॐ ह्रीं श्रीअर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागम जिनचैत्य चैत्यालयभ्यो! जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रभो! काल अनादि से भव का संताप सहा।
अब सहा नहीं जाता, यह मेटो द्वेष महा॥
इस द्वेष की ज्वाला को, अब शांत करो स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥२॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

जिसको मैने चाहा, सब नश्वर है माया।
जिस तन में हूँ रहता, क्षणभंगुर वह काया॥
क्षत-विक्षत जग सारा, अब जाऊँ कहाँ स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥३॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

इस काम लुटेरे ने, आतम धन लूट लिया।
मैं मौन खड़ा निर्बल, बस तेरा शरण लिया॥
विश्वास मुझे तुम पर, आतम बल दो स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥४॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

इस क्षुधा रोग से मैं, प्रभुवर लाचार रहा।
व्यंजन की औषध खा, ना कुछ उपचार हुआ॥
प्रभु तू ही सहारा है, यह रोग नशे स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥५॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पर तत्त्व प्रशंसा में, महिमा पर की आयी।
नर तन में रहकर भी, निज की ना सुध आयी॥
अब ज्ञान ज्योति प्रगटे, आशीष मिले स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥६॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की आँधी में, चेतन गृह बिखर गया।
आया अब दर तेरे, निज आतम निखर गया॥
शुभ ध्यान अनल में ही, वसु कर्म जले स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥७॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

पापों का बीज बोया, कैसे शिव फल पाऊँ।
तप धारूँ कर्म नशे, तब सिद्धालय पाऊँ॥
मुझे पास बुला लेना, यह अरज सुनो स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥८॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

वसु कर्मों ने मिलकर, दिन-रात जलाया है।
गुरूदेव कृपा पाकर, यह अर्घ्य बनाया है॥
यह पद अनर्घ्य अनमोल, हो प्राप्त मुझे स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥९॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

-:जाप्यः-

(ॐ ह्रीं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो नमः)

जयमाला

-:दोहा:-

नव देवों की भक्ति से, सब अरिष्ट नश जाय
आत्मसिद्धि को प्राप्त कर, अष्टम वसुधा पाय॥१॥

(चौपाई)

जय अरहंत देव जिनराई, तीन लोक में महिमा छाई।
घाति कर्मचउनाश किये हैं,भव्य जनों में वास किये हैं॥२॥
दोष अठारह दूर किये हैं, छयालीस गुण पूर्ण हुये हैं।
समवसरण के बीच विराजे, तीर्थंकर पद महिमा राजे॥३॥
क्षणभंगुर सारा जग जाना, जड़ चेतन को भिन्न पिछाना।
कल्याणक सब पंच मनाये, देव इन्द्र हर्षित गुण गाये॥४॥
प्रभो! अपने प्रभुता पायी, दो हमको समता सुखदायी।
दुष्ट करम ने मुझको घेरा, निज स्वभाव से मुख को फेरा॥५॥
प्रभो! आप सिद्धालय वासी, दर-दर भटका मैं जगवासी।

अब निज भूल समझ में आई, सिद्धदशा ही मन में भाई॥६॥
करो नमन स्वीकार हमारा, भवसागर से करो किनारा।
कर्म भंवर में मेरी नैया, गुरूवर तुम बिन कौन खिवैया॥७॥
गुण छत्तीस मुनीश्वर धारे, इस कलयुग में आप सहारे।
दीक्षा देकर राह दिखाते, खुद चलते चलना सिखलाते॥८॥
उपाध्याय पद है तम नाशे, गुण पच्चीस ज्ञान परकासे।
अट्ठाईस गुणों के धारी, साधू पद की महिमा भारी॥९॥
श्री जिनधर्म अहिंसा प्यारा, गूंज उठा है जग में नारा।
आगम आतमबोध कराता, फिर चेतनका शोधकराता॥१०॥
जिनने आगम को अपनाया, अहो भाग्य तुम सा पद पाया।
अनेकांत मय धर्म सहारा, द्वादशांग को नमन हमारा॥११॥
कर्म निकांचित् निधत्ति विनाशे, बिम्ब जिनेश्वर आत्म प्रकाशे।
निज स्वरूप का बोध कराती, जिन सम निजमूरत कहलाती॥१२॥
जो जन नित जिन मंदिर जावें, पाप नशें औ पुण्य बढ़ावें।
परमातम का ध्यान लगावें, शुद्ध होय मुक्तीपुर जावें॥१३॥
नव देवों को शीश झुकाऊँ, गुण गाऊँ और ध्यान लगाऊँ।
रहूँ सदा मैं प्रभुवर चरणा, भव-भव मिले आपकी शरणा॥१४॥

-:दोहा:-

पूर्व पुण्य से हो रहा, नव देवों का दर्श।
अल्प बुद्धि कैसे लहे, अनंत गुण का स्पर्श॥१५॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

-:घत्ता:-

प्रभुवर को पूजें, शिवपथ सूझे, भव-भव का संताप हरो।
नित पूज रचाऊँ, ध्यान लगाऊँ, विद्यासागर पूर्ण करो॥

॥इत्याशीर्वाद॥

॥पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

श्री आदिनाथ पूजन्

रचयिता - मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

(वसन्त तिलका छन्द)

श्री आदिनाथ जग में हितकारी देव,
चक्रेश वा सुरनरेन्द्र करे सुसेव।
मैं आज आप चरणां करने सुभक्ति,
आया अतः हृदय थापन देउ शक्ति।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर!-२ संवौषट्! आह्वानानम्।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ! तिष्ठ! ठः! ठः! इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्! सन्निधिकरणम्।

सम्यक्त्व मुख्य गुण निर्मल धारते हो,
जो पूजते जगत में भव वारते हो।
मिथ्यात्व मूल मल नाशन नीर लाया,
सौभाग्य ही मम रहा चरणों चढ़ाया।।1।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।१।

कैवल्य बोध गुण से सब जानते हो,
दुष्कृत्य मोह ममता पहचानते हो।
दुर्गन्ध निन्दित-अतीत किसे सुनाऊँ,
सौगन्ध्य चन्दन अतः चरणां चढ़ाऊँ।।2।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र भवाताप-विनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।२।

त्रैलोक्य ईश जगदीश निजात्मदर्शी,
है आपकी सुखमयी विशदार्थ दृष्टि।
ऐसा अखण्ड पद अक्षत चेतना का,
पाऊँ अतः चरण अक्षत मैं चढ़ाता।।3।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र अक्षय पद-प्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।३।

मैं तो अनन्त मन में धरताभिलाषा,
यों आत्म शक्ति सब ही नशती नशाता।
हे आदिदेव तुम उत्तम वीर्यधारी,
हो कामबाण अति पीड़न के निवारी।।4।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।४।

अत्यन्त उन्नत बलिष्ठ सुदेह संग,
थे कर्म बादर सभी करके विभंग।
अत्यन्त सूक्ष्म निज चेतन को बनाया,
नैवेद्य ये गद क्षुधा हरने चढ़ाया।।5।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।५।

शुद्धात्म का गुण बड़ा अवगाहना है,
जो आयुकर्म बिन चेतन में बना है।
मैं दीप लेकर वही गुण ढूंढता हूँ,
अज्ञान नाश करने पद पूजता हूँ।।6।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।६।

हे नाभिराय मरुदेविज अग्र पुत्र,
ना हो गुरू न लघु हो कितने पवित्र।
मैं उच्च नीच सब गोत्र नशावने को,
खेता सुधूप तुमसा पद पावने को।।7।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।७।

है आपका सुख अनन्त अबाध रूप,
हैं पूजते सुर गणेश सुधीश भूप।
चैतन्य शान्त अनिवार्य सुसौख्य पाऊँ,
मैं इष्ट मिष्ट फ़ल ये पद में चढ़ाऊँ।।8।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।८।

सम्यक्त्व आदि गुण आठ बने सुठाठ,
जो शोभते कर रहे हम तो सुपाठ।
पानीय चन्दन सभी मिल द्रव्य अर्घ,
चाहूँ चढ़ा चरण में पद जो अनर्घ।।9।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।९।

जयमाला

(दोहा)

आदिनाथ मम देव हैं, प्रथम तीर्थंकर आप।
गाऊँ गुणमाला अतः, तजने भव संताप।।

(ज्ञानोदय छन्द)

आर्यखण्ड में भोगभूमि में श्री जिनवर का जन्म हुआ,
मरुदेवी के उदर पधारे नाभिराय मन हरष हुआ।
गर्भ जन्म कल्याणक आए देव सुरेन्द्र नरेन्द्र सभी,
मिलजुल कर उत्सव में गाए नाचे झूमे मिले तभी।
कर्मभूमि का ज्ञान दिया जब आप विवाहन योग्य हुए,
तीन ज्ञानधारी तब पद में सब जन नित्य प्रणाम किए।
नन्दा और सुनन्दा ललना आप विवाहित हो पाए,
भरतेश्वर चक्री जैसे सुत ज्येष्ठ आप घर में आए।
बाहुबली से कामदेव भी पुत्र आपके भाग्य घने,
ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्री सबके ही सौभाग्य बने।
आप अयोध्या के राजा थे सारी वसुधा के स्वामी,
आप पुण्य से सभी प्रजाजन बने सुखी मंगलकामी।
सुर नटनी का नृत्य देखकर इक दिन आप विरक्त हुए,
आयु गवाईं विषयभोग में हा हा मन धिक्कार किए।
दीक्षा कल्याणक सुरगण ने लौकान्तिक सब देवों ने,
किया तभी छह मास काल का योग धरा अचरज वन में।
मुनिपन में आहार करन को घूमे योग नहीं पाया,
छह महीने पश्चात् आपका तब नियोग नृप ने पाया।

एक हजार वर्ष तप करके केवलज्ञान प्रकाश जगा,
देव मनुज पशु समवसरण में दिव्य धुनी पा बोध जगा।
अष्टापद से मोक्ष पधारे सिद्धलोक में गमन हुआ,
आप तीर्थ से ही इस जग में धर्म कर्म संज्ञान हुआ।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्री जिनवर पूजन यहाँ, करे पढ़े जो जीव।
वो प्रभु से गुण पाय के, पाए सौख्य सदीव।।

।।इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

श्री पार्श्वनाथ जिनपूजन

(मुनि श्री प्रणम्यसागर जी कृत)

स्थापना – (ज्ञानोदय छन्द)

सिद्ध शिला पर आप विराजे, मैं चउगति में भटक रहा,
शुद्ध आप प्रभु शुद्ध गुणों से पर परिणति मैं अटक रहा।
भक्ति डोर से बाँध आपको, आज बुलाता पारसनाथ।
मेरी हृदय वेदिका पर आ, तिष्ठ-तिष्ठ कर मुझे सनाथ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

तन तृष्णा को तनिक मिटाता, नीर बुझाता प्यास नहीं,
मन तृष्णा भव पीर बढ़ाती, मुझे किसी की आस नहीं।
खास आपका दास बना हूँ, जब से तब से दाह मिटी,
इसीलिए जल चरणों में मैं, छोड़ रहा शिवराह मिली॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

वामानन्दन तव पूजन का, जगा आज मन संस्पन्दन,
भव बन्धन से मुक्तातम में, निज गुण का ही अभिनन्दन।

सुनकर अनघ वचन नय गर्भित,मिली हृदय जो शीतलता,
वो चन्दन से कहाँ मिलेगी, तव पद में उसको तजता॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

है अखण्ड परिणमन आपका, शुद्ध द्रव्य सा स्वाभाविक,
खण्ड-खण्ड मम चेतन धारा, मोह राग से वैभाविक।
हो अक्षत सा उज्ज्वल आतम, उज्ज्वल गुण पर्याय मिले,
तन्दुल धवल समर्पित करता, शम दम के सुख भाव खिले॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

श्रुत परिचित अनुभूति रही है, काम भोग की बन्ध कथा,
सुख लिप्सा में कुसुम गंध में, मरता आया भ्रमर यथा।
यौवन वन में काम बढ़ाते, फूल लता गृह मालाएँ,
तव चरणन में अतः समर्पित, विषयन की सुख शालाएँ।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय काम बाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

चार अंगुल की रसना इन्द्रिय, चार गति में भटकाती,
मधुर सरस व्यंजन अभिलाषा, देह राग में अटकाती।
कर्म असाता वेदनीय से, क्षुधा वेदना भारी रोग,
अतः समर्पित षट्-रस मय चरु, चारुचरण का अनुपम योग॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

दीपक की ज्योति सम मेरा, चित् स्वभाव टिमटिम करता,
आप ज्ञान में हे पारस प्रभु!, तीन लोक झिलमिल करता।
तुच्छ दीप की भेंट चढ़ाता, केवल भानु महा प्रकटे,
तव चरणों में दृष्टि रहे नित, भव-दुख हेतू मोह घटे॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय महा मोहान्धकार विनाशकाय दीपं निर्व. स्वाहा।

अहिच्छत्र पावन भूमि पर, चार घातिया कर्म जला,
पंच सहस्र धनुष ऊपर जो, आप विराजे इन्द्र हिला।
पुनः अघाति कर्म भस्म कर, ध्यानाग्नि से शुद्ध हुए,
शुद्धातम का मैं भी पा रस, पारस पाने धूप लिए॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

तन वैरागी मन एकाकी, वचनों से नित मौन रहे,
तब तक ज्ञायक एक अखण्डित, फल सम अनुभव नहीं कहे।
पूर्ण मोक्ष फल की अभिलाषा, पूजन से ही प्रकट हुई,
इसीलिए पुद्गल जड़ फल ले, मति तव पद के निकट गई॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

अलग-अलग जल चन्दन अक्षत, पुष्प चारु चरु हाथ लिए,
दीप धूप फल आठों को ही, मिश्रित कर सब साथ लिए।
निज आतम में मेरी परिणति, इसी तरह एकत्वमयी,
हो जावे बस यही भावना, शीघ्र मिले वह मोक्ष मही॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

पार्श्वनाथ भगवान का, गर्भ महोत्सव आज।
कृष्ण पक्ष वैशाख की, दूजी तिथि सुख काज॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयां गर्भमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी, जन्म महोत्सव जान।
इन्द्रों ने पूजा करी, मेरु न्हवन महान॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां जन्ममंगल मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री प्रभु पारसनाथ को, गृह से विरति आय।
पौष कृष्ण एकादशी, बारह भावना भाय॥

ॐ ही पौषकृष्ण एकादश्यां तपो मंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अविचल तप कर ध्यान से, पाया केवल ज्ञान।
चैत्र कृष्ण की चौथ को, बन अरिहंत महान॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचर्तुर्थ्यां केवलज्ञान मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्मेदाचल पर गए स्वर्ण भद्र सुख कूट।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, भव बंधन से छूट॥

ॐ ह्रीं श्रावण-शुक्ल-सप्तम्यां मोक्ष मंगल मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वैशाख की वह दौज कृष्णा, देवी शिवा के गर्भ में।
अवतरण प्रभु का हुआ उत्सव, ज्ञान त्रय ले गर्भ में॥१॥
जन्म कल्याणक महोत्सव, पौष कृष्ण एकादशी।
नृप विश्वसेन महान् के घर, रत्न वृष्टि हुई घनी॥२॥
पर्वत सुमेरु पर प्रभु का, इन्द्र जन्मोत्सव किया।
काशी पुरी ने ज्ञान का, आनन्द का प्याला पिया॥३॥
जब वर्ष तीस हुए पूरण, भायी बारह भावना।
लौकान्तिकों ने तभी आकर, करी प्रभु की सराहना॥४॥
रख मौन व्रत दैगम्बरी, दीक्षा समय प्रकटा स्वयं ।
वह ज्ञान चौथा भाव संयम, ऋद्धियाँ अनुपम परम॥५॥
अहिच्छत्र थी तपस्थली, कपटी कमठ का आगमन।
दश भवों पहले बैर का, पापी पुनः करता वमन॥६॥
आक्रोश से तीर्थेश पर, उपसर्ग कर उस दैत्य ने।
प्रभु को डिगाने का किया, सब कुछ प्रयास उस देव ने॥७॥
धरणेन्द्र वो नागेन्द्र आये, आदेश पाकर इन्द्र का।
वे भी विफल तब हो गए, वश ना चला नागेन्द्र का॥८॥
तब ही सहज तत्क्षण प्रभु को, शुक्ल ध्यान वितान से।
कैवल्य का आलोक प्रकटा, संकट हटा निज ज्ञान से॥९॥
तत्क्षण प्रभु बारह सभा के, मध्य अतिशय शोभना।
पापी कमठ मिथ्यात्व तज के, प्रभु चरण में रोवना॥१०॥
दिव्योपदेश समान सबको, धर्म तीर्थ प्रवर्तना।
करते हुए फिर आ गए, सम्मेद पर्वत पावना॥११॥
सप्तमी श्रावण सुदी को , देह मुक्ति पा लिए।

हम धन्य ऐसे प्रभु की, गुणमाल थोड़ी गा लिए॥१२॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इति आशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपामि।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र

पद्यानुवाद -मुनि प्रणम्य सागर जी

(विधान प्रारम्भ)

प्रथम वलय प्रारम्भ

अभय प्रदायी स्तुति

कल्याणमन्दिर- मुदार- मवद्य- भेदि-
भीताभय प्रद-मनिन्दितमङ्घ्रि-पद्मम् ।
संसार-सागर-निमज्ज-दशेष-जन्तु –
पोतायमान मभिनम्य जिनेश्वरस्य॥१॥

कल्याणों के मन्दिर दाता अभय प्रदाता हैं निर्दोष
श्री जिनवर के चरण कमल ही जगत् पूज्य हर लेते दोष।
भव-सागर में डूबे जन को तव पद ही प्रभु एक जहाज
भक्ति भाव से अभिवन्दन है शुरू करूँ स्तुति का काज॥१॥

ॐ ह्रीं भव-समुद्रपतज्जन्तुतारणाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धिदायक स्तुति

यस्य स्वयं सुरगुरु-र्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृत-मतिर्न विभुर्विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय-धूमकेतो-
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये॥२॥

सुरगुरु सम विस्तृति मति वाले करने को जिनका गुणगान
सदा रहे असमर्थ सदा से उन प्रभु का मैं करता गान।

दुष्ट कमठ के मान कर्म की भस्म बनाने अनल स्वरूप
तीर्थेश्वर श्री पार्श्व प्रभु की गरिमा सम ना दूजा रूप॥२॥

ॐ ह्रीं अनन्त गुणाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शक्ति प्रदायी स्तुति

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशाः कथमधीश! भवन्त्यधीशाः।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः॥३॥

रवि प्रकाश के उदय समय में उल्लू हो जाता है अन्ध
अन्ध बना फिर कैसे रवि का रूप बताये वह मतिमन्द
त्यों प्रभु धीठ हुए हम जैसे कैसे तेरे गुण गाने
लायक हो सकते वर्णन को जो थोड़ा भी ना जाने॥३॥

ॐ ह्रीं चिद्रूपाय क्लीं महाबीजाक्षर-साहित्य श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अतिगहन आत्म गुणों की प्राप्तिदायक स्तुति

मोह-क्षया-दनुभवन्नपि नाथ! मर्त्यो
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मान्-
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः॥४॥

नाश हुआ हो मोह कर्म का प्रकट हुआ हो आतम ज्ञान
फिर भी गुण रत्नाकर के गुण गिनने में है किसकी शान।
प्रलय पवन ने जिस समुद्र का जल फेंका हो दूर बहुत
उस समुद्र के रत्नों को भी क्या गिन सकता मानव मुग्ध॥४॥

ॐ ह्रीं गहन-गुणाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्कृष्ट पद प्रदायी स्तुति

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लस-दसंख्य-गुणाकरस्य ।

बालोऽपि किं न निज-बाहु-युगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः॥५॥

आप असंख्य गुणों से शोभित मैं जड़ बुद्धि निरा अभिमान
फिर भी मैं तैयार हुआ हूँ संस्तुति करने को नादान।
शक्ति न रहने पर भी बालक बिना विचारे निज मति से
क्या समुद्र को नहीं नापता दोनों कर फैला रति से॥५॥

ॐ ह्रीं परमानन्तगुणाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असाध्य कार्य साधक गुण स्तुति

ये योगिना-मपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः।
जाता तदेव- मसमीक्षित- कारितेयं
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि॥६॥

जो प्रत्यक्ष ध्यान से भगवन् करते निज आतम अनुभव
वे योगी भी हे परमेश्वर! कह न सके तव गुण वैभव।
उन्हीं गुणों के कहने का यह बिना विचारा मेरा कार्य
ज्यों पक्षी अपनी कूँ-कूँ से व्यक्त करें अपना अभिप्राय॥६॥

ॐ ह्रीं अगम्य-गुणाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवतारक-तवनाम स्तुति

आस्ता-मचिन्त्य-महिमा जिन! संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहत- पान्थ- जनान्निदाघे
प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि॥७॥

जो अचिन्त्य महिमा मण्डित है दूर रहे वह तव गुणगान
किन्तु आपका नाम मात्र ही भवदधि से दे देता त्राण।
ग्रीष्मकाल के तीव्र ताप से तप्त पथिक को भी सन्तोष
पद्म सरः की शिशिर पवन से क्या तन में ना आता जोश?।७॥

ॐ ह्रीं स्तवनार्हाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं

निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मबंध विनाशक स्तुति

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली- भवन्ति
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्म-बन्धाः।
सद्यो भुजंगममया इव मध्य-भाग-
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य॥८॥

कर्म शत्रु के सघन बन्ध भी शिथिल हुए डर-डर जाते
जिस प्राणी के हृदय कमल में पार्श्व प्रभु क्षण भर आते।
चन्दन तरु का आलिंगन कर लिपटे रहते जो विष नाग
वन मयूर के आने पर ज्यों इधर-उधर जाते हैं भाग॥८॥

ॐ ह्रीं कर्मबन्ध विनाशकाय क्लीं महाबीजाक्षार-साहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रथम वलय महाअर्घ्य

उदक चंदन तंदुल पुष्पकैश, चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्यकैः।
धवल मंगल गान रवाकुले, जिनगृहे जिननाथमहं यजे॥

ॐ ह्रीं क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथाय प्रथम वलयाय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वितीय वलय प्रारम्भ

(उपद्रव निवारक स्तुति)

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र!
रौद्रैरुपद्रव-शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि।
गो-स्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः॥९॥

हे जिनेन्द्र! तव दर्शन से ही रौद्र उपद्रव बाधाएँ
सहसा कहाँ चली जाती हैं कोई समझ नहीं पाएं ।
गोरक्षक मालिक को लख कर गाय चुराने वाले चोर
जैसे सहसा तितर-बितर हो भग जाते ना पाते छोर॥९॥

ॐ ह्रीं दुष्टापवर्ग-विनाशकाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महाप्रभावक स्तुति)

त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून-
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः॥१०॥

हे जिन! आप भव्य जीवों के तारक कैसे हो सकते?
आप रूप को मन में रख के स्वयं भवोदधि वो तिरते।
जल-तल में जो मसक तैरती क्या जल उसे तिराता है?
भीतर भरी पवन ही कारण अजब अनोखा नाता है॥१०॥

ॐ ह्रीं सुध्येयाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(मिथ्या अन्धकार को दूर करने की सामर्थ्य)

यस्मिन्हर-प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः।
सोऽपि त्वया रति-पतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥११॥

किये पराजित कामदेव ने हरि-हर महादेव जैसे
वही आपसे हुआ पराजित क्षण में परम पुरुष कैसे
जिस जल से अग्नी की लपटें बुझ जाती हैं आपों आप
उस जल को क्या बड़वानल की लपटें आग न करतीं आप॥११॥

ॐ ह्रीं अनंगमथनाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महा आश्चर्यकारी स्तुति)

स्वामिन्न-नल्प-गरिमाण-मपि प्रपन्ना-
स्त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यति लाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः॥१२॥

अहो बड़ा विस्मयकारी यह आप महा गौरवधारी
फिर भी हृदय विराजित जिनके उनका मन लाघवकारी।

हलका होकर भक्त आपका शीघ्र तरे भवसागर को
कौन सोच सकता है सम्यक् आप प्रभाव विशारद को ?।१२॥

ॐ ह्रीं अतिशय-गुरुवे क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(कोध विनाशक स्तुति)

क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म-चौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ।१३॥

हे स्वामिन्! यदि क्रोध आपने पहले ही कर दिया विनाश
कर्मचोर फिर बिना क्रोध के कैसे पाये सत्यानाश?
शीतल शिशिर काल का पाला हरे भरे तरुवर वन को
मुरझा देता और जलाता इसमें क्या संशय मन को ?॥१३॥

ॐ ह्रीं जितक्रोधाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(कामविकार नाशक स्तुति)

त्वां योगिनो जिन! सदा परात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज-कोष-देशे।
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

हे जिनेन्द्र! योगीजन नित ही हृदय कमल में नित्य नितान्त,
आप रूप परमात्म रूप का ध्यान लगाकर बनते शान्त।
कमल कर्णिका में ही होता कमल बीज का ज्यों स्थान
हृदय कर्णिका छोड़ कहाँ हो त्यों शुद्धातम का स्थान?॥१४॥

ॐ ह्रीं महन्मृग्याय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(विशुद्धि वर्धक जिन स्तुति)

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपल-भाव-मपास्य लोके
चामीकरत्व-मचिरादिव धातु-भेदाः॥१५॥

जो भविजन तव ध्यान लगाते ज्ञान रूप परमातम का
वे क्षणभर में देह छोड़कर पद पाते परमातम का।
ज्यों पत्थर मय हुई धातुएँ पाकर तीव्र अनल का योग
शुद्ध स्वर्णमय बनीं दमकती यह निमित्त का क्रीड़ा योग॥१५॥

ॐ ह्रीं कर्मकिट्ट दहनाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(खोई हुई वस्तु प्रदायक स्तुति)

अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्।
एतत्स्वरूप-मथ मध्य-विवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः॥१६॥

जिस शरीर के भीतर हे जिन! भक्त आपको ध्याते हैं
उस शरीर से रहित हुए नित शुद्ध चिदातम पाते हैं।
जो मध्यस्थ सदा रहते हैं राग-द्वेष से दूर सदा
महापुरुष वे ही दुष्टों को जीतें समता ही सुखदा॥१६॥

ॐ ह्रीं देह-देहि-कलह निवारकाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(विष विकारनाशक स्तुति)

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेद – बुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत्प्रभावः।
पानीयमप्यमृत – मित्यनु – चिन्त्यमानं
किं नाम नो विष-विकार-मपाकरोति॥१७॥

जैसा शुद्ध सदा निर्मल है पार्श्व प्रभु का शुद्धातम
तैसा ही प्रभु जो ध्याता है बन जाता तव सम आतम।

पानी भी जब अमृत बनता मन्त्र निरन्तर मन्थन से
प्राणी परमातम बन जाए क्या विस्मय यदि चिन्तन से?॥१७॥

ॐ ह्रीं विष-सुधोपमाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(मिथ्या अभिप्राय नाशक स्तुति)

त्वामेव वीत-तमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो! हरि-हरादि-धिया प्रपन्नाः।
किं काच-कामलिभिरीश सितोऽपि शंखो
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण ॥१८ ॥

हरि-हर-ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर मान आपको सब पूजें
निर्मल ज्योति परम परमेश्वर जान अन्यमति सब बूझें।
क्या न देखते शुक्ल शंख को पीले आदिक रंगों में
जिन्हें पीलियादिक रोगों ने घेर लिया हो अंगों में॥१८॥

ॐ ह्रीं सर्वजनवन्द्याय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(अशोकवृक्ष प्रातिहार्य)

धर्मोपदेश समये सविधानुभावा-
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोध-मुपयाति न जीव-लोकः॥१९॥

धर्मामृत उपदेश समय पर प्रभु प्रभाव की सन्निधि हो
अरु अशोक तरु शोक रहित हो क्या विस्मय प्राणी भी हो।
दिनपति उदयागत होने पर तरुवर फूल खिलें जैसे
जिनपति के सम्मुख होने पर विकसित ना हो मन कैसे?॥१९॥

ॐ ह्रीं अशोक-वृक्ष-विराजिताय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य)

चित्रं विभो कथमवाङ्मुख-वृन्तमेव
विष्वक्पतत्य-विरला सुर-पुष्प-वृष्टिः।

त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश!
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥

देवों द्वारा कुसुम वृष्टि हो नित्य निरन्तर चारों ओर
पर डंठल नीचे मुख ऊपर करके क्यों पुष्पों का दौर।
मानों वे संकेत दे रहे आप निकटता से जगदीश
विधि बन्धन ऊपर मुख करके नष्ट हो रहे स्वयं मुनीश॥२०॥

ॐ ह्रीं सुर-पुष्प-वृष्टि-शोभिताय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दिव्यध्वनि प्रातिहार्य)

स्थाने गभीर हृदयोदधि सम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परम-सम्मद-संग-भाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम्॥२१॥

अति अगाध हृदयोदधि से जो निकल रही तव दिव्य ध्वनि
उसको सब जन अमृत कहते उचित बात यह बहुत बनी।
क्योंकि कर्णांजुलि से पीकर अमृतमय जिनवाणी को
परम भोग को भोग भविकजन पा जाते शिवरानी को?॥२१॥

ॐ ह्रीं दिव्य-ध्वनि विराजिताय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(चामर प्रातिहार्य)

स्वामिन् सुदूर-मवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुंगवाय
ते नून-मूर्ध्व-गतयः खलु शुद्ध-भावाः॥२२॥

स्वामिन्! समवसरण में सुरगण चंवर ढोरते दोनों ओर
नीचे झुककर ऊपर जाते मानो वह कहते कुछ और।
जो अरिहन्त परम जिनवर को बार-बार झुक नमन करें
शुद्ध भाव से सिद्ध गति को पाने ऊपर गमन करें॥२२॥

ॐ ह्रीं सुर-चामर-विराजमानाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ

जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सिंहासन प्रातिहार्य)

श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न-
सिंहासनस्थ-मिह भव्य-शिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैः
चामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥

कनक रत्न मणिमय सिंहासन उस पर श्यामल ललित सुदेह
ऐसे शोभे ज्यों मेरु की चोटी पर नव काले मेह।
हो आनन्द विभोर भव्यजन लखें आपको ज्यों वन मोर
वर्षा ऋतु में मेघों को लख नाचें किलकारी कर शोर॥२३॥

ॐ ह्रीं पीठ-त्रय-नायकाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(भामण्डल प्रातिहार्य)

उद्गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन
लुप्तच्छदच्छविरशोक – तरुर्बभूव।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥२४॥

नील वर्ण की प्रभा पुंज से दीप्त सभा का नीला रंग
तरु अशोक के पत्तों की भी रक्ताभा करता नीरंग।
वीतराग तव सन्निधि से यदि राग रहित तरु हो जाता
कौन सचेतन पुरुष बचेगा वीतराग ना हो जाता॥२४॥

ॐ ह्रीं भाममण्डल-मण्डिताय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(द्वितीय वलय महाऽर्घ्य)

उदक चंदन तंदुल पुष्पकैश, चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्यकैः।
धवल मंगल गानरवाकुले, जिनगृहे जिननाथ महं यजे॥

ॐ ह्रीं क्लीं बीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय द्वितीय वलयाय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(तृतीय वलय प्रारम्भ)

(देवदुन्दुभि प्रातिहार्य स्तुति)

भोः भोः प्रमाद-मवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृति-पुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन्निवेदयति देव! जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभः सुर-दुन्दुभिस्ते॥२५॥

देव दुन्दुभि देवों द्वारा नभ मण्डल में बज कर घोर
मानो बुला रही हो सबको कर सचेत नित चारों ओर।
मुक्तिपुरी ले जाने वाले सौदागर यह पार्श्व प्रभु
तज प्रमाद आओ-आओ जी सेवा करो गूंजती भू॥२५॥

ॐ ह्रीं देव-दुन्दुभि-नादाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छत्रत्रय प्रातिहार्य स्तुति)

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ता कलाप-कलितोल्ल सितातपत्र-
व्याजात्त्रिधा धृत-तनुर्ध्रुव-मभ्युपेतः॥२६॥

तीन लोक जब हुए प्रकाशित हे प्रभु! तव चेतन तन में
यही देखकर मानो हतप्रभ हुआ चन्द्र तब ही क्षण में।
डरकर तत्क्षण तीन छत्र के छल से मानो तीन शरीर
धारण कर आया तव शरणा शोभित करता आप शरीर॥२६॥

ॐ ह्रीं छत्र-त्रय-महिताय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(कान्ति-प्रताप यश प्रदायी स्तुति)

स्वेन प्रपूरित-जगत्त्रय-पिण्डितेन
कान्ति-प्रताप-यशसा-मिव संचयेन।
माणिक्य – हेम – रजत – प्रविनिर्मितेन
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि॥२७॥

माणिक स्वर्ण रजत निर्मित हैं समवसरण के त्रय प्राकार
तीन लोक की सकल सम्पदा मानो मिल लेती आकार।
प्रभु की कान्ति प्रताप कीर्ति के मुझ को तीन समूह लगे
जिनके मध्य सुशोभित श्री जिन अद्भुत आभावान लगे॥२७॥

ॐ ह्रीं शालत्रयाधिपतये क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पदाश्रयदायी स्तुति)

दिव्य-स्रजो जिन! नमत्त्रिदशाधिपाना-
मृत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वाऽपरत्र
त्वत्संगमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

पारस परमेश्वर के पद में इन्द्रादिक जब प्रणत हुए
उनकी रत्न मुकुट मालाएँ मुकुट छोड़ पद शरण लिए।
इसमें क्या आश्चर्य प्रभु की संगति सब ज्ञानी चाहें
रमण करें तव युगल चरण में नहीं कहीं जाना चाहें॥२८॥

ॐ ह्रीं भक्त-जनानवन-पतिराय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(भव्यतारकजिन स्तुति)

त्वं नाथ! जन्म-जलधेर्विपराङ्मुखोऽपि
यत्तारयस्यसुमतो निज-पृष्ठ-लग्नान्।
युक्तं हि पार्थिव-नृपस्य सतस्तवैव
चित्रं विभो! यदसि कर्म-विपाक-शून्यः॥२९॥

जन्म-मरण के भवोदधि से आप विमुख होकर के भी
भक्तजनों को पार लगाते कर्म शून्य होकर के भी।
अग्निपाक युत मृतिका घट को बाँध पीठ जब जन तिरते
कर्म पाक से रहित आपको हृदय धार सब जन तिरते॥२९॥

ॐ ह्रीं निजपृष्टलग्नभय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(ज्ञान विकासक स्तुति)

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक! दुर्गतस्त्वं
किं वाक्षर-प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश।
अज्ञान-वत्यपि सदैव कथंचिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास हेतुः॥३०॥

विश्वेश्वर होकर जन पालक दुर्गत तुम दुष्प्राप हुए
अविनाशी अक्षर होकर भी लेख रहित निर्लेप हुए।
अज्ञ प्राणियों के संरक्षक! हे ईश्वर! तव आतम में
तीन लोक दिखलाने वाला ज्ञान प्रकाशित नित जग में॥३०॥

ॐ ह्रीं विस्मयनीयमूर्तये क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दुष्टजन अप्रभाविजिन स्तुति)

प्राग्भार-सम्भृत-नभांसि-रजांसि रोषाद्
उत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ! हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा॥३१॥

क्रोधित होकर क्रूर कमठ ने नभ मण्डल छूने वाली
धूलि उड़ायी तूफानों से तहस-नहस करने वाली।
दूर रहे प्रभु देह आपकी छाया को भी छू न सकी
मलिन हुआ वह स्वयं कर्म से नभ में थूँके ज्यों सनकी॥३१॥

ॐ ह्रीं कमठोत्थापित धूलि-उपद्रव-जिताय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दुस्तरवारि निवारक स्तुति)

यद्गर्जदूर्जित – घनौघमदभ्र – भीम-
भ्रश्यत्तडिन्मुसल – मांसल – घोर – धारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर-वारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन! दुस्तर-वारि कृत्यम्॥३२ ॥

फिर उस दैत्य कमठ ने बादल गरज-गरज करके आवाज
काली रात अंधेरी करके कड़-कड़ करती डाली गाज।

मूसल सम मोटी जल बूंदें पटकी मानों हो तलवार
स्वयं कमठ ने अपने ऊपर मानो कीने दुस्तर वार ॥३२॥

ॐ ह्रीं कमठ-कृत-जलधारा-उपसर्ग निवारकाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(भय निवारक स्तुति)

ध्वस्तोर्ध्व – केश – विकृताकृति – मर्त्य -मुण्ड-
प्रालम्ब – भृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भव-दुःख-हेतुः ॥३३ ॥

नरमुण्डों की अति डरावनी लम्बी-लम्बी मालाएँ
बिखरे केश देखकर जिनके डर जाती हों अबलाएँ।
मुख से लाल अगनि की लपटें भूत प्रेत का डर दिखला
भव-दुख कारण हेतु कमठ ने जहर स्वयं पर ही उगला॥३३॥

ॐ ह्रीं कमठ-कृत-पैशाचिक-उपद्रव जितशीलाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(त्रिसंध्या भक्तिकरी स्तुति)

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्य-कृत्याः।
भक्त्योल्लसत्पुलक- पक्ष्मल- देह- देशाः
पाद-द्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः ॥३४॥

हे भुवनाधिप! तीन भुवन में धन्य हुए हैं वे ही लोग
तीनों सन्ध्याओं में तुमको हृदय धार कर करते योग।
कृत्य सभी जो संसृति कारण तजकर भक्ति भाव उर धार
रोमांचित हो तन से मन से आराधक करते भवपार॥३४॥

ॐ ह्रीं धार्मिक वन्दिताय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पवित्र जिन नाम श्रवण स्तुति)

अस्मिन्नपार-भव-वारिनिधौ मुनीश!
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि।

आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे।
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति॥३५॥

इस अपार भव-वारिधि में प्रभु जन्म लिये अनगिनत यहाँ
किन्तु आपका नाम कभी भी सुना कान से कभी कहाँ? ।
यदि तव नाम मंत्र सुन लेता एक बार भी भावों से
विपदाओं की नागिन मुझको कैसे डसती दावों से?॥३५॥

ॐ ह्रीं पवित्र नाम ध्येयाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पूजा महिमा स्तुति)

जन्मान्तरेपि तव पाद युगं न देव!
मन्ये मया महितमीहित -दान-दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम्॥३६॥

ऐसा लगता है पारस प्रभु! मुझ पापी ने आप चरण
मनवांछित फलदायक तेरे पूजे नहीं कभी इक क्षण।
इस कारण इस जन्म में मेरे मन की सारी आशाएँ
कभी पूर्ण हो सकी न भगवन् बढ़ती और निराशाएँ॥३६॥

ॐ ह्रीं पूतपादाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दुर्लभदर्शनकरी स्तुति)

नूनं न मोह तिमिरावृत-लोचनेन
पूर्वं विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ॥३७ ॥

मोह अन्ध से अन्धा होकर नेत्र सहित होकर भी ईश,
देख सका ना कभी आपको पहले कभी कहीं जगदीश।
इसीलिए तो हृदय विदारक अति दुर्वार हमारे पाप,
बहु अनर्थ करते हैं प्रभुवर! और सताते आपों आप॥३७॥

ॐ ह्रीं दर्शनीयाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(भगवान् बनाने वाली स्तुति)

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जन-बान्धव! दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः॥३८॥

हे जनबान्धव! मैंने तुमको हो सकता है खूब लखा।
नाम सुना हो और लिया हो पूजा की हो दिखा-दिखा।
फिर भी भक्ति भाव से मैंने कभी नहीं चित में धारा
यही वजह है दुःखी रहा हूँ भाव शून्य सब बेकारा॥३८॥

ॐ ह्रीं भक्तिहीन-जन-बान्धवाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दुःखीजनों के रक्षक श्री जिन)

त्वं नाथ! दुःखि-जन-वत्सल! हे शरण्य!
कारुण्य-पुण्य-वसते! वशिनां वरेण्य।
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय
दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि॥३९॥

शरणागत प्रतिपालक ईश्वर दुःखीजनों प्रति करुणाधाम
नाथ आप ही हो योगीश्वर और महेश्वर दया निधान।
भक्त आपका सहज भक्ति से स्वयं रुचि से तव पद लीन
मेरे दुख दलने में अब तो जल्दी दया करो लो चीन॥३९॥

ॐ ह्रीं भक्तजन वत्सलाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पदकमलराग वर्धक स्तुति)

निःसंख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादित-रिपु-प्रथितावदानम्।
त्वत्पाद-पंकजमपि प्रणिधान-वन्ध्यो
वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवन-पावन! हा हतोऽस्मि॥४०॥

हे त्रिभुवन पावन! प्रभु रक्षक आश्रय दाता आप अनूप
शरणागत प्रतिपालक सबके कर्म विनाशक कीर्ति स्वरूप।
पाकर आप चरण कमलों का कर न सका जो नित-प्रति ध्यान
ऐसा भाग्यहीन नर मैं ही बना अभागा निपट अजान॥४०॥

ॐ ह्रीं सौभाग्यदायक पद-कमल युगाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(कष्टोद्धारक स्तुति)

देवेन्द्र-वन्द्य! विदिताखिल-वस्तुसार!
संसार-तारक! विभो! भुवनाधिनाथ!।
त्रायस्व देव! करुणा-हृद ! मां पुनीहि
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बुराशेः ॥४१ ॥

देवेन्द्रों से वन्दनीय हो सकल तत्त्व के जाननहार
जगतारक त्रिभुवनपति तुम हो प्रभो दया सागर आधार।
दुःख सागर में डूब रहा हूँ देव! बचाओ दया करो
आज शरण आए बालक पे दृष्टि डाल मन पूत करो॥४१॥

ॐ ह्रीं सर्वपदार्थवेदिने क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(अचिन्त्य फल प्रदायक स्तुति)

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रि-सरोरुहाणां
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-संचितायाः।
तन्मे त्वदेक-शरणस्य शरण्य! भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥

नाथ आप ही एक मात्र हो मुझ पापी के आज शरण
तव चरणों की भक्ति से यदि संचित हुआ पुण्य का कण।
तो उसका फल यही चाहता आप चरण ही रहें शरण
हे शरण्य! पर भव में भी तुम नाथ बने रहना हरक्षण॥४२॥

ॐ ह्रीं पुण्य-बहुजन-सेव्याय क्लीं महाबीजाक्षर -सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(अमंगल-अनिष्ट निवारक स्तुति)

इत्थं समाहित-धियो विधिवज्जिनेन्द्र!
सान्द्रोल्लसत्पुलक - कंचुकितांग - भागाः।
त्वद्बिम्ब - निर्मल - मुखाम्बुज - बद्धलक्ष्या
ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्याः॥४३॥

ध्यान लगाकर इस प्रकार जो हे जिनेन्द्र! विधिवत् गुणगान
तव निर्मल मुख कमल लक्ष्य कर अपलक लखता भव्य महान्।
अरु रोमांचित तन मन होकर संस्तुति करने को तैयार
रहता है वह भव्य जीव ही पा जाता संसृति का पार॥४३॥

ॐ ह्रीं जन्म-मृत्यु निवारकाय क्लीं महाबीजाक्षर -सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(क्रमशः मोक्षफल प्रदायी स्तुति)

जन-नयन 'कुमुदचन्द्र प्रभास्वराःस्वर्ग सम्पदो भुक्त्वा।
ते विगलित-मल-निचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते॥४४॥

और कहूँ क्या संस्तुति का फल हे पारस! प्रभु हे दातार!
तुमको लख विकसित होते हैं नयन कुमुद जिन चन्द्र अपार।
भक्त आपके निश्चित पाते स्वर्ग सुखों का वैभव योग
अष्ट-कर्म बल नष्ट करने से शीघ्र मुक्ति का मिलता योग॥४॥

ॐ ह्रीं कुमुदचन्द्र-यतिसेवित-पादाय क्लीं महाबीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(तृतीय वलय महाअर्घ्य)

उदक चंदन तंदुल पुष्पकैश्, चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्य कैः।
धवल मंगल गान रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ महं यजे॥

ॐ ह्रीं क्लीं बीजाक्षर-सहिताय श्री पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय तृतीय वलयाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

कल्याणों के मन्दिर जय हो, कमठ मान भस्मासुर जय।
रवि प्रकाश सम उज्ज्वल जय हो, गुण रत्नाकर की हो जय॥१॥

गुण असंख्य धारी की जय हो, योगिगम्य जिनवर जय हो।
जय हो महिमा मण्डित जिनवर, जय-जय कर्म शत्रु प्रभुवर ॥२॥
रौद्र उपदव बाधा नाशी, भव्य जीव तारक काशी।
काम पराजित आतम की जय, गौरवधारी प्रभु की जय॥३॥
क्रोध विनाशी जिनवर जय हो, ध्येय रूप प्रभु की जय हो।
ध्यान रूप परमातम की जय, शुद्ध चिदातम धारी जय॥४॥
आप रूप करने वाले जिन, हरिहर नहीं कोई तुम बिन।
धर्मामृत उपदेशक जय हो, कुसुम वृष्टि शोभित जय हो॥५॥
दिव्यध्वनि दायक की जय हो, चँवर सुशोभित जिनवर जय हो।
सिंहासन राजित जिन जय हो, तरु अशोक विलसित की जय॥६॥
देव दुन्दुभि धारक जय हो, तीन छत्र धारी जय हो।
जय जय हो नित समवसरण की, इन्द्रप्रणुत चरणन की जय॥७॥
भविजन तारक नित जयवन्तों, विश्वेश्वर जन पालक की जय हो
जय हो दुष्ट कमठ विजयी की, दैत्य कमठ विजयी की जय॥८॥
भूत-प्रेत निर्भय जिन जय हो, धन्य भक्त जिन की जय हो।
नाम मन्त्र जिनका उनकी जय, मनवांछित दायक की जय॥९॥
मोह विनाशी जिनवर जय हो, हे जनबान्धव! जय जय हो।
शरणागत प्रतिपालक जय हो, त्रिभुवन पावन की जय हो॥१०॥
देवेन्द्रों से वन्दनीय जय, हे शरण जग में जय जय।
सौम्य कमलमुख जिनवर की जय, नित 'प्रणम्य' पारस की जय॥११॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यं पद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(श्री निर्वाण क्षेत्र का अर्घ्य)

जल गंध अक्षत पुष्प चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत करो निरभय जगत सौं,जोरकर विनती करौं॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरी कैलाश कों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि निवास कों॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय महाअर्घ

मैं देव श्री अरहन्त पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों॥
अर्हन्त भाषित बैन पूजूँ, द्वादशांग रची गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरु चरण शिव, हेत सब आशा हनी॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दश-विधि, दयामय पूजूँ सदा।
जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम, चैत्य चैत्यालय जजूँ।
पंचमेरु नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ॥
कैलाश श्री सम्मेद गिरी, गिरनार गिर मैं पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ सर्वदा॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस-वसु जय, होय पति शिवगेह के॥
दोहा- जल गंधाक्षत पुष्प चरू, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय॥

ॐ ह्रीं भावपूजा भाववन्दना त्रिकालपूजा त्रिकालवन्दना करै करावै भावना भावै श्रीअरहन्त जी, सिद्ध जी, आचार्य जी, उपाध्याय जी, सर्व साधु जी नमः। पंच-परमेष्ठिभ्यो नमः। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शन विशुद्धयादि षोडश कारणेभ्यो नमः। उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्रेभ्यो नमः। जल के विषै, थल के विषै, आकाश के विषै, गुफा के विषै, पहाड़ के विषै, नगर नगरी विषै, उर्ध्वलोक, मध्यलोक, पाताल लोक विषै, पाँच भरत, पाँच ऐरावत दश क्षेत्र संबंधी तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनबिम्बेभ्यो नमः। नंदीश्वरद्वीप संबंधी बावन जिन-चैत्यालयेभ्यो नमः। पंचमेरु संबंधी अस्सी जिन चैत्यालयेभ्यो नमः। श्री सम्मेद शिखर, कैलाश, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार, सोनागिरि, तारंगा, मथुरा आदि सिद्ध क्षेत्रेभ्यो नमः। जैनबद्री, मूडबदी, देवगढ़, चन्देरी, पपौरा, हस्तिनापुर, अयोध्या, राजगृही, तारंगा, चमत्कार, महावीर जी, पद्मपुरी, तिजारा, अंतरिक्ष पारसनाथ, बगासपुर,

मक्सी आदि अतिशय क्षेत्रेभ्यो नमः। श्री चारण ऋद्धिधारी सप्त परमर्षिभ्यो नमः । श्रीजिन सहस्रनामेभ्यो नमः। (अपने नगर का नाम) नगर में स्थित समस्त जिनमन्दिर, जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो नमः अनर्घ्य-पद प्राप्तये सम्पूर्ण अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिपाठ

शान्तिनाथ मुख शशि उनहारी, शील गुण-व्रत संयम-धारी।
लखन एक सौ आठ विराजै, निरखत नयन कमल-दल लाजै॥
पंचम चक्रवर्ति पद-धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र-नरेन्द्र पूज्य जिन नायक, नमो शान्ति-हित शान्ति विधायक॥
दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी॥
शान्ति जिनेश शान्ति सुखदाई, जगत् पूज्य पूजों सिरनाई।
परम शान्ति दीजै हम सबको, पढ़े तिन्हें पुनि चार संघ को॥

पूजें जिन्हें मुकुट-हार किरीट लाके ,
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।
सो शान्तिनाथ वर वंश जगत् प्रदीप ,
मेरे लिये करहिं शान्ति सदा अनूप॥

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों औ यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले, कीजे सुखी हे जिन! शान्ति को दे॥
होवै सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समय पै, तिलभर न रहे व्याधियों का अन्देशा॥
होवै चोरी न जारी, सुसमय वरतै हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारै, जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी॥

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शान्ति करो सब जगत् में, वृषभादिक जिनराज॥

(अब हाथ जोड़कर भगवान् से प्रार्थना करें)

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सद्वृतों का सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का॥
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।

तोलों सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जो लों न पाऊँ॥
तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तबलौं लीन रहूँ प्रभु, जबलौं न पाया मुक्ति पद मैंने।
अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कुछु कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणा करि पुनि छुड़ाहु भव दुःख से॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर! पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी॥

पुष्पांजलिं क्षिपामि (कायोत्सर्ग करें)

विसर्जन पाठ

बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरण होय॥१॥
पूजन विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करो भगवान्॥२॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव॥३॥
आये जो-जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमाण।
ते अब जावहुँ कृपाकर, अपने-अपने थान॥४॥
श्री जिनवर की आशिका, लीजे शीश चढ़ाय।
भव-भव के पातक कटें, दुःख दूर हो जाय॥

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप करें)

परिक्रमा विनती (जिनस्तुति)

मैं तुम चरण-कमल गुणगाय, बहु विधि भक्ति करी मन लाय।
जनम जनम प्रभु पाऊँ तोहि, यह सेवाफल दीजे मोहि॥
कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन मरण मिटावो मोहि।
बार-बार मैं विनती करूँ, तुम सेवा भवसागर तरूँ।
नाम लेत सब दुःख मिट जाय, तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय।
तुम हो प्रभु देवन के देव, मैं तो करूँ चरण तव सेव॥
मैं आयो पूजन के काज, मेरो जनम सफल भयो आज।
पूजा करके नवाऊँ मैं शीश, मुझ अपराध क्षमहू जगदीश॥

(दोहा)

सुख देना दुःख मेटना यही आपकी बान।
मो गरीब की वीनती, सुन लीज्ये भगवान्॥
पूजन करते देव की, आदि मध्य अवसान।
सुरगन के सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान॥
जैसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय।
सूरज में जो जोति है, नहिं तारागण होय॥
नाथ तिहारे नाम तैं, अघ छिन मांहि पलाय।
ज्यों दिनकर प्रकाश तें, अंधकार विनशाय॥
बहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु बहुत अज्ञान।
पूजाविधि जानूँ नहीं, शरण राखि भगवान्॥

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप करें)

श्री वासुपूज्य पूजन

(रुपकवित्त छन्द)

श्रीमतवासुपूज्य जिनवरपद, पूजन हेत हिये उमगाय।
थापों मनवचतन शुचि करके, जिनकी पाटलदेव्या माय॥
महिष चिह्न पद लसे मनोहर, लाल वरन तन समतादाय।
सो करूनानिधि कृपादृष्टिकरि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठ इहँ आय॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्!

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सान्निधिकरणम्।

अष्टक (छंद जोगीरासा आंचलीवंध)

गंगाजल भरि कनककुंभ में, प्रासुक गंध मिलाई।
करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरू मलयागिरचंदन, केशर संग घसाई।
भवआताप विनाशन-कारन, पूजों पद चितलाई॥वा.२॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

देवजीर सुखदास शुद्धवर, सुवरन थार भराई।
पुंजधरत तुम चरनन आगै, तुरित अखय पद पाई ॥वा.३॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजात संतान कल्पतरू-जनित सुमन बहु लाई।
मीन केतु मद भंजनकारन, तुम पदपद्म चढ़ाई॥वा.४॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्रायकामबाणविध्वसंनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नव्य-गव्य-आदिक-रसपूरित, नेवज तुरत उपाई।
क्षुधारोग निरवारन कारन, तुम्हें जजों सिरनाई॥वा.५॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक जोत-उदोत होत वर, दशदिश में छवि छाई।
तिमिर-मोह-नाशक तुमको लखि, जजों चरन हरषाई॥वा.६॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशविध गंधमनोहर लेकर, वातहोत्र में डाई।
अष्ट कर्म ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सु धूम उड़ाई॥वा.७॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस सुपक्क सुपावन फल लै, कंचन थार भराई।
मोक्ष महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरों गुनगाई॥वा.८॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई।
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपद-प्राप्तये अर्घ्यंम् निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

छंद पाईता मात्रा १४

कलि छट्ठ आषाढ़ सुहायौ, गरभागम मंगल पायौ।
दशमें दिवितें इत आये, शतइन्द्र जजे सिर नाये॥१॥

ॐ ह्रीं आषाढकृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

कलि चौदस फागुन जानो, जनमें जगदीश महानो।
हरि मेरू जजे तब जाई, हम पूजत हैं चितलाई॥२॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिथि चौदस फागुन श्यामा, धरियो तप श्री अभिरामा।
नृप सुन्दर के पय पायो, हम पूजन अति सुख थायो॥३॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुदि-माघ दोइज सोहै, लहि केवल आतम जो है।
अनंत गुनाकर स्वामी, नित वंदो त्रिभुवन नामी॥४॥

ॐ ह्रीं श्री माघशुक्लद्वितीयायां केवलज्ञानमण्डिताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित भादव चौदस लीनो, निरवान सुथान प्रवीनो।
पुर चंपा-थानक सेती, हम पूजत निज हित हेती॥५॥

ॐ ह्रीं श्री भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

चंपापुर में पंचवर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय॥१॥

छंद मोतियादास (वर्ण १२)

महासुखसागर आगर ज्ञान, अनंत सुखामृतमुक्त महान।
महाबलमंडित खंडितकाम, रमाशिवसंग सदा विसराम॥२॥
सुरिंद फनिंद खगिंद नरिंद, मुनिंद जजें नित पादारविंद।
प्रभु तुम जब अंतरभाव विराग,सुबालहितैं व्रतशील सों-राग॥३॥
कियो नहिं राज उदास सरूप, सुभावन भावत आतम रूप।
अनित्य शरीर प्रपंच समस्त, चिदातम नित्यसुखाश्रित वस्त।४॥
अशर्न नहीं कोउ शर्न सहाय, जहाँ जिय भोगत कर्मविपाय।
निजातम को परमेसुर शर्न, नहीं इनके बिन आपद हर्न॥५॥
जगत्त जथा जलबुदबुद येव, सदा जिय एक लहै फलमेव।
अनेक प्रकार धरी यह देह, भ्रमें भवकानन आन न नेह॥६॥
अपावन सात कुधात भरीय, चिदातम शुद्ध सुभाव धरीय।
धरे इनसों जब नेह तबेव, सुआवत कर्म तबै वसुभेव॥७॥
जबै तन-भोग-जगत्त-उदास, धरें तब संवर निर्जरआस।
करे जब कर्मकलंक विनाश, लहे तब मोक्षमहा-सुख-राश॥८॥
तथा यह लोक नराकृत नित्त, विलोकियते षट् द्रव्यविचित्त।
सुआतमजानन बोध विहीन, धरे किन तत्वप्रतीत प्रवीन॥१॥
जिनागम ज्ञान रू संजम भाव, सबै निजज्ञान बिना विरसाव।
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्रसुकाल, सुभाव सबे जिहतें शिवहाल॥१०॥
लयो सब जोग सुपुन्य वशाय, कहो किमि दीजिय ताहि ग़ॅंवाय।
विचारत यों लौकान्तिक आय, नमें पदपंकज पुष्पचढ़ाय॥११॥
कह्यो प्रभुधन्यकियो सुविचार, प्रबोधि सुयेमकियो जुविहार।
तबै सौधर्म तनोहरि आय, रच्यौ शिविका चढ़िआय जिनाय।१२।
धरे तप पाय सुकेवलबोध, दियो उपदेश सुभव्य संबोध।
लियो फिर मोक्ष महासुखराश, नमैं नितभक्त सोईसुखआश॥१३॥

धत्तानंद

नित वासव वंदत, पापनिकंदत, वासपूज्य व्रत ब्रह्मपती ।
भवसंकलखंडित, आनंदमडिंत, जै जै जै जैवंत जती॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सोरठा छंद

वासुपूजपद सार, जजौं दरबविधि भावसों।
सो पावै सुखकार, भुक्ति-मुक्ति जो जो परम॥१५॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

श्री अनन्तनाथ जिन पूजा

छन्द कवित

पुष्पोत्तर तजि नगर अयुध्या, जनम लियो सूर्या उर आय।
सिंघसेन नृप के नन्दन, आनन्द अशेष भरे जगराय॥
गुन अनंत भगवंत धरे, भवदंद हरे तुम हे जिनराय।
थापुत हों त्रय बार उचरिकै, कृपा सिन्धु तिष्ठहु इत आय॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्। (आह्वाननम्)
ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः। (स्थापनम्)
ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

(छन्द गीता तथा हरिगीता)

शुचि नीर निरमल गंग को ले, कनक भंग भराइया,
मल करम धोवन हेत मन, वच काय धार ढराइया।
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनों।
शिव कंत वंत महंत ध्यावों, भंत वंत नशावनों॥१॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचन्द कदली नंद कुंकुम, दंदताप निकंद है।
सब पापरुज संताप भंजन, आपको लखि चंद है॥ज०॥२॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

कनशाल दुति उजियाल हीर, हिमाल गुलक नितें घनी।
तसु पुंज तुम पदतर धरत, पद लहत स्वच्छ सुहावनी॥ज०॥३॥

ॐ ही श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्कर अमरतर जनित वर, अथवा अवर कर लाइया।
तुम चरन पुष्करतर धरत, सरशूल सकल नशाइया॥ज०॥४॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नैना घ्रान रसना, को प्रमोद सुदाय हैं।
सो ल्याय चरन चढ़ाय रोग, छुधाय नाश कराय हैं॥ज०॥५॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

तम मोह भानन जानि आनन्द, आनि सरन गही अबै ।
वर दीप धारों वारि तुम ढिंग, स्वपर ज्ञान जु द्यो सबै। ।ज०॥६॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

यह गंध चूरि दशांग सुन्दर, धूम्र ध्वज में खेय हों।
वसु कर्म भर्म जराय तुम ढिंग, निज सुधातम बेय हों।ज०॥७॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम् नि. स्वाहा।

रस थक्क पक्क सुभक्क चक्क, सुहावनें मृदु पावनें।
फलसार वृन्द अमंद ऐसो, ल्याय पूज रचावनें॥ज०॥८॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् नि. स्वाहा।

शुचि नीर चन्दन शालि शंदन, सुमन चरू दीवा धरों।
अरु धूप फल जुत अरघ करि, कर जोर जुग विनती करों ।ज०।९॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

छंद सुन्दरी तथा दुतविलंबित

असित कार्तिक एकम भावनो, गरभ को दिन सो गिन पावनों।
किय सची तित चर्चन चाव सों, हम जजें इत आनंदभाव सों।१।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णप्रतिपदायां गर्भमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम जेठवदी तिथि द्वादशी, सकल मंगल लोक विषैं लशी।
हरि जजे गिरिराज समाजतैं, हम जजैं इत आतम काजतैं ॥२॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भव शरीर विनश्वर भाइयो, असित जेठ दुवादशि गाइयो।
सकल इंद्र जजे तित आइकैं, हम जजैं इत मंगल गाइकैं॥३॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चैत अमावस को सही, परम केवलज्ञान जग्यो कही।
लही समोसृत धर्म धुरंधरो, हम समर्चत विघ्न सबै हरो॥४॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चैत अमावस गाइयौ, अघत घाति हने शिव पाइयौ।
गिरी समेद जजे हरि आय कें, हम जजें पद प्रीति लगाइकै॥५॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छन्द दोहा

तुम गुण वरनन येम जिम, खंविहाय करमान।
तथा मेदिनी पदनि करी, कीनों चहत प्रमान॥१॥

जय अनन्त रवि भव्य मन, जलज वृन्द विहँसाय।
सुमति कोकतिय थोक सुख, वृद्ध कियो जिनराय॥२॥

छंद नयमालनी, चंडी तथा तामरस

जै अनन्त गुनवंत नमस्ते, शुद्ध ध्येय नित सन्त नमस्ते ।
लोकालोक विलोक नमस्ते, चिन्मूरत गुनथोक नमस्ते ॥३॥
रत्नत्रयधर धीर नमस्ते, करम शत्रुकरि कीर नमस्ते ।
चार अनंत महन्त नमस्ते, जय-जय शिवतिय कंत नमस्ते॥४॥
पंचाचार विचार नमस्ते, पंच कर्ण मद हार नमस्ते ।
पंच परारव्रत-चूर नमस्ते, पंचमगति सुख पूर नमस्ते ॥५॥
पंचलब्धि-धरनेश नमस्ते, पंच-भाव- सिद्धेश नमस्ते ।
छहों दरब गुन जान नमस्ते, छहों काल पहिचान नमस्ते॥६॥
छहों काय रच्छेश नमस्ते, छह सम्यक् उपेदश नमस्ते ।
सप्त व्यसन वन वह्नि नमस्ते,जय केवल अपरह्नि नमस्ते।७।
सप्त तत्त्व गुन भनन नमस्ते, सप्त शुभ्र गति हनन नमस्ते।
सप्तभंग के ईश नमस्ते, सातों नय कथनीश नमस्ते ॥४॥
अष्टम करम मल दल्ल नमस्ते, अष्ट जोग निरशल्ल नमस्ते।
अष्टम धराधिराज नमस्ते, अष्ट गुननि सिरताज नमस्ते॥१॥
जय नव केवल प्राप्त-नमस्ते, नव पदार्थ थिति आप्त नमस्ते।
दशों धरम धरतार नमस्ते, दशों बंध परिहार नमस्ते॥१०॥
विघ्न महीधर विज्जु नमस्ते, जय ऊरध गति रिज्जु नमस्ते।
तन करकंदुति पूर नमस्ते, इक्ष्वाकु वंश कजसूर नमस्ते ॥११॥
धनु पचास तन उच्च नमस्ते, कृपा सिंधु गुन शुच्च नमस्ते।
सेही अंक निशंक नमस्ते, चित चकोर मृग अंक नमस्ते॥१२॥
राग दोष मद टार नमस्ते , निज विचार दुख हार नमस्ते।
सुर-सुरेश-गन-वृन्द नमस्ते, 'वृन्द' करो सुख कंद नमस्ते॥१३॥

छंद घत्तानंद

जय-जय जिनदेवं, सुर कृत सेवं, नित कृत चित्त हुल्लासधरं।
आपद उद्धारं, समतागारं, वीतराग विज्ञान भरं॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्व. स्वाहा।

(छन्द मदावलिप्तकपोल तथा रोड़क)

जो जन मन वच काय लाय, जिन जजै नेह धर,
वा अनुमोदन करै , करावै पढ़ें पाठ वर।
ताके नित नव होय, सुमंगल आनन्द दाई,
अनुक्रमतैं निरवान, लहै सामग्री पाई॥१५॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनपूजन विधान

(मुनि श्री प्रणम्य सागर जी)

मुनिसुव्रत भगवान के, गुण अनन्त उर धार।
आह्वानन थापन करूँ, घटे कर्म मल भार॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठःस्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण।

जिह्वा इन्द्रिय वशीभूत हो, शीतल मधुर सुपान किया।
तृष्णा दाह बढ़ाई तन की, नहीं आत्म गुण गान किया।
जन्म जरा मृति नाशक हेतु, प्रासुक जल भरकर लाया।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन खसखस शीतल मिश्रण, ले कर्पूर मिलाया है।
मन की दाह मिटे प्रभु मेरी, मन में भाव ये आया है।
भव संताप विनाशन हेतू, चन्दन चरणन अब लाया।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय संसार ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पुनः उगे ना धान्य भूमि में, ऐसा गुण तन्दुल में है।
छिलका हटता हरे लालिमा, शुद्ध धवल गुण उसमें है।
शुद्ध धवल मम आतम होवे, चरणन द्वय अक्षत लाया।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय अक्षय-पद-प्राप्तये अक्षातान् निर्वपामीति स्वाहा।

वेद भाव के उदय समय में , काम कषाय बढ़े मन में।
तब चरणन की पूजन से ही, चित्त विकार घटे मन में।।
मेरा मन तव सम हो निर्मल, चरणन पुष्प अतः लाया।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय काम-बाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तरह-तरह के इष्ट मिष्ट सब, व्यंजन मैंने खाये हैं ।
भक्ष्य अभक्ष्य विचार रहा ना, तन की क्षुधा बढ़ाये हैं।
क्षुधा असाता मिटे वेदना, चरणन चारू चरू लाया।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह महा अज्ञान बढ़ा है, ज्ञान हमारा भ्रम में है।
रत्न ज्योति सी निर्मल ज्योति, मेरे आतम घन में है।

मोह तिमिर वारो प्रभु मेरा, चरणन दीपक मैं लाया।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय महा-मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चहुँदिश में जो महा सुगन्धित, धूप यहाँ पर फैली है।
वह भी मन को मोहित करती, रही चेतना मैली है।
अष्ट कर्म की धूप उड़े अब, धूप चढ़ाने मैं लाया।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लौंग सुपारी बादामें औ, पिस्ता गोला मेवाएँ।
काम नहीं आई कुछ मेरे, सब पुद्गल की भ्रमणाएँ।
मोक्ष महा शाश्वत फल पाऊँ, चरणन फल को मैं लाया।।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फलं प्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्पों को, ले नैवेद्य दीप संग में।
धूप तथा फल सभी मिलाके, अर्घ बनाकर के कर में।
पद अनर्घ पाने को प्रभुवर, अर्घ चढ़ाने हूँ लाया।
स्वीकारो भक्ति प्रभु मेरी, तव चरणों में हूँ आया।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्य-पद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मुनियों के व्रत जान आपने, मुनिव्रत पाप रहित पाले।
मुनिसुव्रत यह नाम आपका, सार्थक नाम सभी गाले।।
समवसरण में सभा लगी जब, मुनियों में अद्भुत शोभा।

नील वर्ण की देह आपकी, नहीं कहीं ऐसी शोभा।।
नील देह में श्वेत रक्त की, महिमा कौन बखान करे।
गुणरत्नाकर के गुण गा ले, किसकी ऐसी शान अरे।।
लक्षण अष्ट सहस्र धारती, देह आपकी निर्मल है।
गुण अनन्त आतम में विलसें, मोह रहित चित् बिन मल है।।
चार घातिया कर्म नष्ट कर, शक्ति ज्ञान सुख प्राप्त किए।
आत्म गुणों की नन्त शक्तियाँ, नन्त रूप में धार लिए।।
तत्त्वों का उपदेश दिया अरु, भव्यों का कल्याण किया।
बिना स्वार्थ उपकार किया फिर, सिद्ध वधू का वरण किया।।
जो भविजन तव पूजन करता, दर्शन करता भावों से।
सब अनिष्ट उसके टल जाते, बचता पाप विकारों से।।
मिथ्या पथ पर भटक रहे जो, उनको मार्ग बताया है।
मुझको सम्यक् पथ दिखलाओ, मन में यही समाया है।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिसुव्रत जगनाथ जिन, जग बन्धु हितकार।
पूजन का फल बस मिले, चेतन हो अविकार।।

इति पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

विधान के अर्घ

प्रथम वलय

आत्म वस्तु की शक्तियाँ, प्रकट प्रभू में नन्त।
प्रथम कही जीवत्व है, जीवे कालअनन्त॥१॥

ॐ ह्रीं जीवत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीव नहीं जड़ रूप हो, चेतन रूप सदैव।
चिति शक्ति प्रकटित भयी, जिनमें वह ही देव॥२॥

ॐ ह्रीं चितिशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस शक्ति के कारणे, सर्व ज्ञेय सामान्य।
युगपत् श्री जिन देखते, दृशि शक्ति वह मान्य॥३॥

ॐ ह्रीं दृशि शक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस शक्ति के कारणे, ज्ञेय विशेष सुधर्म।
युगपत् श्रीजिन जानते, ज्ञानशक्ति का मर्म॥४॥

ॐ ह्रीं ज्ञानशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आकुलता से शून्य जो, परमानन्द स्वभाव।
नित्य अनाकुल लक्षणा, सुखशक्ति सद् भाव।।५।।

ॐ ह्रीं सुखशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है सामर्थ्य निजात्म की, रचना सहज स्वरूप।
ज्यों की त्यों गुण धारती, वीर्य शक्ति है भूप।।६।।

ॐ ह्रीं वीर्यशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो स्वतन्त्र राजा महा, एक छत्र निज राज्य।
वह प्रभुत्व शक्ति प्रभो, आप राज साम्राज्य॥७॥

ॐ ह्रीं प्रभुत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सभी पदार्थों में रहे, व्यापक भाव स्वरूप।
वह विभुत्व शक्ति महा, तव चेतन प्रारूप॥८॥

ॐ ह्रीं विभुत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(प्रथम वलय का अर्घ)

हरिवंशे मुनिसुव्रतनाथा, जिन चरणो में नित नत माथा।
जो तव मुख दर्शन पा जाता, हरे असाता नित हो साता॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय अनन्त-शक्ति-समन्विताय प्रथमवलये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वितीय वलय

सर्वभाव निज शक्ति से, नित्य देखते आप।
सर्वदर्शि उस शक्ति का, भव्य करें निज जाप॥९॥

ॐ ह्रीं सर्वदर्शित्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सह विशेष सब भाव को, नित्य जानते आप।
सर्व ज्ञत्व उस शक्ति का, भव्य करें निज जाप॥१०॥

ॐ ह्रीं सर्वज्ञत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

झलकें लोकालोक सब, चित् प्रदेश नीरूप।
वह शक्ति स्वच्छत्व है, नानाकृति प्रारूप।।११।।

ॐ ह्रीं स्वच्छत्व-शक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वसंवेदन विशद हो, स्वयं प्रकाशित आत्म।
वह प्रकाश शक्ति महा, अनुभवते परमात्म॥१२॥

ॐ ह्रीं प्रकाश-शक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षेत्रकाल बन्धन रहित, चिद् विलास उल्लास।
शक्ति आत्म प्रकटित भई, बिन संकोच विकास॥१३॥

ॐ ह्रीं असंकुचितविकाशत्व शक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नहीं अन्य का कार्य है, नहीं अन्य का हेतु।
अकार्यकारण शक्ति है, वस्तु स्वभाव सुसेतु॥१४॥

ॐ ह्रीं अकार्यकारणत्व शक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पर ज्ञेयों को जानता, निज को भी जनवाय ।
पर परिणामक शक्ति सह, निज परिणम्य सुहाय॥१५॥

ॐ ह्रीं परिणामकत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पर ग्राहण कर ना बढ़े, अन ग्रहणे ना न्यून।
शक्तिमहा निज आत्म की, त्याग ग्रहण से शून॥१६॥

ॐ ह्रीं त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बनी प्रतिष्ठा वस्तु की, षट्गुण वृद्धि हानि।
अगुरुलघू की शक्ति से, गुण विशेष की खानि॥१७॥

ॐ ह्रीं अगुरुलघुत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रमवर्ती वर्तें सदा, अक्रमवर्ति तथापि।
विगम उपज ध्रुव युक्त हो, ना अन्यथा कदापि॥१८॥

ॐ ह्रीं उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विगम उपज ध्रुव कारणें, नित समान असमान।
एकरूप अस्तित्व हो, शक्ति नाम परिणाम॥१९॥

ॐ ह्रीं परिणामशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मबन्ध के नाश से, व्यक्त सहज जो भाव।
फासादिक से शून्य वह, प्रकट अमूर्त स्वभाव॥२०॥

ॐ ह्रीं अमूर्तत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञातापन को छोड़कर, अन्य कर्मकृत भाव।
दूर हुए उनसे प्रभो, शक्ति अकर्ता पाव॥२१॥

ॐ ह्रीं अकर्तृत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञातापन को छोड़कर, अन्य कर्म कृत भाव।
अनुभव से प्रभु दूर हैं, शक्ति अभोक्ता पाव॥२२॥

ॐ ह्रीं अभोक्तृत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सकल कर्म से शून्य हो, आत्मदेश निष्पन्द।
निष्क्रियत्व की शक्ति से, प्रभु में परमानन्द।।२३।।

ॐ ह्रीं निष्क्रियत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धदशा में नित्य ही, असंख्यात परदेश।
नियत प्रदेशी शक्ति से, आत्म ऊन तन लेश॥२४||

ॐ ह्रीं नियतप्रदेशत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(द्वितीय वलय का अर्घं)

राम हनू जिन तीरथ जन्मे, भव्य अनेकों हुए अजन्मे ।
ऐसे मुनिसुव्रत प्रभु ध्यायूँ, नित पद कमलन शीश नमाऊं।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय अनन्त-शक्ति-समन्विताय द्वितीयवलये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तृतीय वलय

तन अनन्त धारे तदपि, व्यापक सबमें एक ।
वह स्वधर्म व्यापक कही, शक्ति अनोखी एक।।२५॥

ॐ ह्रीं स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निजपर में सामान्य हैं, वा असमान द्वयी।
कही समानेतर द्वयी, शक्ति निजात्म मयी॥२६॥

ॐ ह्रीं साधारण - असाधारण - साधारणासाधरणधर्मत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म अनन्ते धारती, एक अनोखी शक्ति।
वह अनन्तधर्मत्व है,नाना गुण अभिव्यक्ति॥२७॥

ॐ ह्रीं अनन्तधर्मत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिमुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

युगपत धर्म विरूद्ध भी, रहते चित में आप।
है विरूद्ध धर्मत्व की, शक्ति सदा निष्पाप।।२८।।

ॐ ह्रीं विरूद्धधर्मत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिमुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भावात्मक जो शक्ति है, वह होती तद्रूप।
तत्व शक्ति इसको कहा, जो विधेय गुण रूप।।२९।।

ॐ ह्रीं तत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो अभावगत शक्ति है, अतद्रूप वह होय।
वह अतत्त्वशक्ति कही,पर निषेध गुण जोय॥३०॥

ॐ ह्रीं अतत्त्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिमुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक द्रव्यमय होय के, पर्यायों में जाय।
एकपना ना छोड़ता, शक्त्यैकत्व कहाय॥३१॥

ॐ ह्रीं एकत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक द्रव्य व्यापी बहू, पर्यायों की जान।
अनेकत्व शक्ति महा, प्रकट आप कहलात॥३२॥

ॐ ह्रीं अनेकत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नम: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो है उस ही रूप है, भाव शक्ति का नाम।
आप अनुभवें आप को, अनुभव दूजा नाम॥३३॥

ॐ ह्रीं भावशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शून्य अवस्था रूप जो, शक्ति अभावी जान।
पर को पर ही अनुभवें, इससे ही हो भान।।३४।।

ॐ ह्रीं अभावशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो होती पर्याय है, वह व्यय रूप भी होय।
भावाभावी शक्ति से, उभय रूप यह होय॥३५॥

ॐ ह्रीं भावाभावशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो होती पर्याय ना, उदय रूप वह होय।
अभावभावी शक्ति से, उभय रूप यह होय॥३६॥

ॐ ह्रीं अभावभावशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो होती पर्याय है, वह ही होने रूप।
भावभावशक्ति बड़ी, जिनवर देखें रूप॥३७॥

ॐ ह्रीं भावभावशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो होती पर्याय ना, वह ना होने रूप।
अभावभावशक्ति महा, अद्‌भुत वस्तु स्वरूप॥३८॥

ॐ ह्रीं अभावाभावशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कारक के अनुसार जो, होते थे परिणाम।
उनसे प्रभु निष्क्रान्त हैं, भाव शक्ति का धाम॥३९॥

ॐ ह्रीं भावशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कारक के अनुसार जो, होता है परिणाम।
उससे भी प्रभु परिणमें, क्रियाशक्ति का काम॥४०॥

ॐ ह्रीं क्रियाशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राप्त रूप जो हो रहा, सिद्ध रूपमय भाव।
कर्मशक्ति उसको कहा, होता प्राप्त स्वभाव॥४१॥

ॐ ह्रीं कर्मशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

होना ही बस मात्र है, सिद्ध रूप में भाव।
उसी भाव को कर रहे,कर्ता शक्ति स्वभाव॥४२॥

ॐ ह्रीं कर्तृत्वशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्तमान के भाव के, होने में जो हेतु।
करण शक्ति महती रही, निज स्वभाव में सेतु॥४३॥

ॐ ह्रीं करणशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अपने द्वारा आप में, दिया जा रहा भाव।
सम्प्रदान की शक्ति से,प्राप्त कर रहा भाव॥४४॥

ॐ ह्रीं सम्प्रदानशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विगम उदय के नाश से, भाव हानि ना होय।
अपादान की शक्ति से, ध्रौव्यभाव मय होय।।४५॥

ॐ ह्रीं अपादानशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो भी होता भाव है, वह निज के आधार
अधिकरणा की शक्ति से, आप स्वयं साभार।।४६।।

ॐ ह्रीं अधिकरणशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज में निज का भाव ही, स्वामी है स्वयमेव
संबंधी शक्ति महा, शोभित है निज देव।।४७॥

ॐ ह्रीं सम्बन्धशक्तिधारकाय श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय नम: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्षा की बूंदें प्रभो, क्या कोई गिन पाय।
तवगुण गण की नन्तता, क्या कोई समझाय॥४८॥

ॐ ह्रीं अनन्तगुणशक्तिधारकाय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(तृतीय वलय का अर्घ)

आत्मवस्तु या अन्य वस्तु हो, अनेकान्तमय आप लखें।
जो भविजन तव वाणी सुनते, अनेकान्तमय दृष्टि रखें।
वस्तु रीति ही जिननीति है, नहीं आप कुछ अन्य कहें।
जैसा है वैसा प्रभु देखें, वही कहें निज मगन रहें।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ-जिनेन्द्राय अनेकान्त-रीतिप्रकाशकाय तृतीयवलये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिसुव्रत जिनदेव की, महिमा अपरम्पार।
मैं 'प्रणम्य' जिनपद नमूं, वन्दूं बारम्बार।।
कृष्णाषाढी पंचमी, शुभ दिन मंगलवार।
लिखा लालमंदिर जहाँ, पार्श्वप्रभू आधार॥
वीर गये निर्वाण की, पच्चीस सौ चवालीस।
दिल्ली में ही मिल रहा, मुझको गुरु आशीष।।

इति आशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

वर्धमान जिन पूजन

(मुनि श्री प्रणम्य सागर जी विरचित)

स्थापना

हे प्रभु तेरे चरण कमल की, पूजा करने मैं आया
संस्थापित करके निज चित में आज बहुत मैं हर्षाया।
आह्वानन करता हूँ स्वामिन्, अन्तिम तीर्थंकर महावीर।
तिष्ठ तिष्ठ मम हृदय विराजो सन्मति वर्धमान अतिवीर॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेय! वर्धमान जिनेन्द्राय जिन अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेय! वर्धमान जिनेन्द्राय जिन अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेय! वर्धमान जिनेन्द्राय जिनअत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

जल तो तन की शुद्धि करता तन की तृषा मिटाता है
भक्ति का जल बहे हृदय तो मन की शान्ति बढ़ाता है।
हो विशुद्ध मेरा मन भगवन मन की तृष्णा शान्त करो
यह विशुद्ध प्रासुक जल निर्मल अर्पित करता ताप हरो॥१॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

बाह्य वस्तु को देख जगत में उसको पाने की इच्छा
मन का लोभ बढ़ाती प्रतिपल आज मिली सम्यक् शिक्षा।
लोभ कषाय मिटाने भगवन मन शीतलता पा जाने
चरणन चन्दन ले कर आया तव पदरज शीतल पाने॥२॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय संसार ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

खण्ड-खण्ड है ज्ञान हमारा ज्ञेयों के आकर्षण से
कर्म आवरण मैला करता राग-द्वेष स्पर्शन से।
अक्षत सम है धवल अखण्डित मेरा ज्ञान स्वभाव घना
अतः आपके चरणन अर्पित अक्षत करने भाव बना॥३॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय अक्षय-पद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

विविध-विविध पुष्पों के रसमय इत्र सुगन्ध लगाये हैं
नासा से मन सूंघ-सूघंकर काम विभाव बढ़ाये हैं।
इसी वासना के कारण से देख सका ना तेरा रूप
पुष्प सुगंधित अर्पित करता मुझे दिखे मम आत्म स्वरूप॥४॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय काम-बाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रसना इन्द्रिय की लोलुपता जड़ में राग बढ़ाती है
मिष्ट इष्ट व्यंजन अति खाकर तन का ममत जगाती है।
मैं चेतन होकर भी भगवन् करता जड़ से राग रहा
चारु-चारु चरु चरण चढ़ाकर चेतन अब कुछ जाग रहा॥५॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तनघट पनघट गृह घट-घट भटक-भटक मैने देखा
सरपट-सरपट दौड़-दौड़ कर चमक जगत विद्युत रेखा।
दौड़ मिटे अज्ञानमयी यह निज घट दीपक ज्योति जले
तब चरणन जड़ दीपक बाती केवल ज्योति प्रकाश मिले॥६॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय महा-मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कभी जला है कभी गला है रोंदा कूटा कटा मिटा
इन अनन्त जन्मों में भगवन् तन संग आतम खूब पिटा।
राग द्वेष से कर्मबन्ध फिर कर्म फलों से देह मिली
अष्ट कर्म के बन्ध जलाने धूप चढ़ाता बोधि मिली॥७॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

यह हो जाय वह हो जाये अगणित जन्मों में पहले
इसी कामना से चरणन में खूब चढ़ाये रस फल ले।
अविनश्वर फल कभी न चाहा पूजन का फल भी नश्वर
किन्तु आज फल तव पद अर्पित कर चाहूँ फल अविनश्वर॥८॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय मोक्ष फलं प्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

क्या पाऊँ क्या खोऊँ प्रभुवर समझ नहीं आता मुझको
इन्द्रिय सुख मन की इच्छाएँ पागलपन लगतीं खुद को।
जल चन्दन अक्षत पुष्पों को चरु दीपक धूपन फल ले
मिश्रित करके अर्घ चढ़ाता तव पद पाऊँ मुक्ति मिलें॥९॥

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय अनर्घ्य-पद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वर्धमान जिनदेव की जय त्रिशला नन्दन वीर की जय
ज्ञान चेतना में केलि कर शुद्धातम महावीर की जय।
निज चेतन की परिणत में रत ज्ञानानन्द स्वाभाव रहा
सामायिक में ध्यान समय में जिनको चेतन भाव रहा।
राग रोग के हरने वाले काम क्रोध मद नाशन हारे
भव सागर से पार लगाते सन्मति दायी वीर की जय।
सब जीवों पर करुणा धरते शत्रु पर भी समता रखते
उग्र परिषह विजयी मुनिवर महावीर भगवान की जय।
बारह वर्ष तपे तप प्रतिदिन केवलज्ञान स्वभाव लिया
पीर हरी चन्दबाला की उपकारी जिनवर की जय।
गौतम गणधर लख के जिनको सुध-बुध खुद की भूल गए
शिष्य बन गए यतिवर सबही वर्धमान भगवान की जय।
जिनकी पूजा भाव लिए चल मेंढक देव महान बना
श्रेणिक, प्रीतिंकर लाखों जन ज्ञान लिए जिनराज की जय।
ऋजुकूला नदी के तट पर ग्राम जृभिका में उपजा
केवलज्ञान प्रकाशित जग में श्रमण प्रमुख जिनराज की जय।
पावापुर निर्वाण भूमि पे तुमने सिद्ध प्रयाण किया
जन्म मरण तारक जिनवर वर्धमान भगवान की जय।

ॐ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ श्री विद्यासागर गुरवे नमः॥

श्री वर्धमान स्तोत्र

(मुनि श्री १०८ प्रणम्यसागर जी महाराज)

श्रीवर्धमान - जिनदेव - पदारविन्द,
युग्म - स्थितांगुलिनखांशु - समूहभासि।
प्रद्योततेऽखिल - सुरेन्द्रकिरीट - कोटि-
भक्त्या 'प्रणम्य' जिनदेव - पदं स्तवीमि॥१॥

वर्धमान जिनदेव युगलपद, लालकमल से शोभित हैं,
जिनके अँगुली की नख आभा से सबका मन मोहित है।
देवों के मुकुटों की मणियाँ, नख आभा मे चमक रही
उन चरणों की भक्ति से मम, मति थुति करने मचल रही॥१॥

ॐ ह्रीं सर्वातिशय समन्वित चरण कमलाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाहंकृतेऽहमिति नात्र चमत्कृतेऽपि,
बुद्धेः प्रकर्षवशतो न च दीनतोऽहम्।
श्रीवीरदेव- गुण- पर्यय- चेतनायां
संलीन-मानस वशः स्तुतिमातनोमि॥२॥

नहीं अहंकृत होकर के मैं, नहीं चमत्कृत होकर के
बुद्धि की उत्कटता से ना, नहीं दीनता मन रख के।
वीर प्रभू की गुण-पर्यायों, से युत नित चेतनता में
लीन हुआ है मेरा मन यह, अत: संस्तवन करता मैं॥२॥

ॐ ह्रीं शुद्धगुणपर्यायचैतन्याय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

उच्चैः कुल-प्रभवता सुखसाधनानि
सौन्दर्य- देह- सुभग- द्रविण- प्रभूतम्।
मन्ये न मोक्ष-पथ-पुण्यफलं प्रशस्तं
यावन्न भक्तिकरणाय मनः प्रयासः॥३॥

उच्च कुलों में पैदा होना, सुख साधन सब पा लेना,
सुन्दर देह भाग्य भी उत्तम, धन वैभव भी पा लेना।
मोक्षमार्ग के लायक ये सब, पुण्य फलों को ना मानूँ,
भक्ति करन का मन यदि होता, पुण्य फल रहा मैं जानूँ॥३॥

ॐ ह्रीं लौकिकालौकिक पुण्यफलप्रदाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तस्मादहं शिवदसाधनसाधनाय,
भक्तेरवश्य-करणाय समुद्यतोऽस्मि।
नो चिन्तयामि निज- बुद्धि- कला- स्वशक्तिं,
तुक् निस्त्रपो भवति मातरि वा समक्षे॥४॥

इसीलिए अब मोक्ष प्रदायी, साधन को मैं साध रहा,
मैं अवश्य भक्ति करने को, अब मन से तैयार हुआ।
मुझमें बुद्धि छन्द कला वा, शक्ति है या नहीं पता,
माँ समक्ष ज्यों बालक करता, तज लज्जा मैं करूँ कथा॥४॥

ॐ ह्रीं बुद्धि कलात्मशक्तिवर्धनाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सामायिके श्रुतविचारण - पाठकाले,
यः सन्मतिं स्मरति नित्यरतिं दधानः।
तस्यैव हस्तगत- पुण्य- समस्त- लक्ष्मीं,
दृष्ट्वा न कोऽपि कुरुतेऽत्र बुधस्तथैव॥५॥

सामायिक में नित चिन्तन में, शास्त्रपाठ के क्षण में भी,
जो सन्मति को याद कर रहा, नित्य हृदय रति धर के ही।
सकल पुण्य की लक्ष्मी उसके, हाथ स्वयं आ जाती है,
ऐसा लख फिर किस ज्ञानी को, प्रभु भक्ति ना भाती है॥५॥

ॐ ह्रीं हस्तगतलक्ष्मीकराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूते च यो जिनकुले स हि वीरवंशो,
वीरं विहाय मनुतेऽन्यकुलाधिदेवम्।

आलोकमाप्य जगतीह रवेः प्रचण्डं
जात्यन्धवद् भ्रमति वा किल कौशिकः सः॥६॥

जो उत्पन्न हुआ जिन कुल में, वीरवंश का वह है पूत,
वीर प्रभु को छोड़ अन्य को, मान रहा क्यों तू रे भूत।
सूरज का फैला नहिं दिखता, धरती पर चहुँ ओर प्रकाश,
जन्म समय से अंध बने वे, या फिर उल्लू सा आभास॥६॥

ॐ ह्रीं वीरवंशोत्पत्तिकराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादिदोष- युत- मानस- देवतानां,
सेवा किमप्यतिशयं न ददाति कस्य।
सेवां करोतु जिनकल्पतरोः सदैव,
सेवा किमल्पफलदाऽप्यफलाऽपि तस्य॥७॥

राग द्वेष से सहित रहे जो, ऐसे देवों की सेवा,
क्या अतिशय फल दे सकती है, सेवा शिवसुख की मेवा।
श्रीजिनवर हैं कल्पवृक्ष सम, उनकी सेवा सदा करो,
कल्पवृक्ष की सेवा भी क्या, अल्पफला या निष्फल हो? ॥७॥

ॐ ह्रीं कल्पवृक्षसमफलप्रदाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ये व्यन्तरादिसुर- भावन- देव- वृन्दाः
कृत्वा तु यस्य नमनं सुखमाप्नुवन्ति।
देवाधि- देव- शुभ- नाम- पवित्र- मन्त्रो
व्याहन्त्यनिष्टमखिलं किमु विस्मयन्ति॥८॥

भवनवासि व्यन्तर देवों के, सुर समूह से वन्दित हैं
जिनवर के चरणों में झुक वे, सुख पाते आनन्दित हैं।
देवों के भी देव प्रभू का नाम, मंत्र है पूजित है,
सब अनिष्ट यदि दूर हो गये, बड़ी बात क्यों विस्मित है?॥८॥

ॐ ह्रीं सर्वानिष्टविनाशकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(द्वितीय वलय)

आस्तां सुदुःषम-कला-कलिकाल-कालस्
त्वन्नाम-दर्श-मननं प्रतिमाप्यलं स्यात्।
हस्तंगते गरुड- मन्त्र- विधान- सिद्धेः
कालादि-सर्प-कृतयोग-भयेन किं स्यात्॥९॥

भले बना हो कलीकाल का , प्रभाव सब पर दुखदायी
दर्शन, मनन, सुनाम आपका, बिम्ब मात्र भी सुखदायी।
सिद्ध किया ही गरुड़ मन्त्र ही, जिसके हाथ पहुँच जाये
काल सर्प के योग भयों से, फिर किसका मन डर पाये ? ॥९॥

ॐ ह्रीं सर्वानिष्टयोगभयनिवारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादि-रोग-हरणाय न कोऽत्र वैद्यः,
कर्माष्ट बन्ध-विघटाय रसायनं न।
यो यन्त्र वेत्ति स न तत्र मतं प्रमाणं,
वैद्यस्त्वमेव तव वाक्च रसायनं तत्॥१०॥

राग रोग का नाश करूँ मैं, दिखता वैद्य नहीं कोई ,
अष्ट कर्म बन्धन मिट जाए, नहीं रसायन है कोई।
जो जिस विद्या नहीं जानता, नहीं प्रमाणिक वह ज्ञानी,
वैद्य आप हो अत: बन गई महा रसायन तव वाणी॥१०॥

ॐ ह्रीं दुर्निवाररोगविनाशाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शस्त्रास्त्रभ्रूविकृतिलोहित- नेत्रवन्तं
क्रोड़ीकृताघ- ममतार्त- विरूपरौद्रम्।
देवं मनन्ति जगति प्रविजृम्भितेऽपि,
चिद्बोधतेजसि सतीह किमन्धता वा॥११॥

शस्त्र अस्त्र से सहित हुए जो, भ्रकुटि चढ़ रही लाल नयन,
ममता पाप दुःख ले बैठे, देह विरूप क्रूर है मन।
लोग इन्हें भी प्रभू मानते, जिस जग में प्रभु आप रहें,
चेतन ज्ञान प्रकाश दिखे ना, और अन्धता किसे कहें?॥११॥

ॐ ह्रीं मिथ्याग्रहापहरणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्योदयेन तव तीर्थकराख्यकर्म-
माहात्म्यतः कलिलघातिविधिप्रणाशात्।
तीर्थोदयोऽभवदिहात्म- हिताय वीर!
पुण्यद्विषैर्नु महिमा कथमभ्युपेतः॥१२॥

तीर्थंकर शुभ नाम कर्म के , पुण्य उदय की महिमा से,
चार घातिया पाप नाश से, तीर्थोदय की गरिमा से।
पुण्य उदय से उदित तीर्थ ही, वीर! आत्महित का कारण,
बने पुण्य के द्वेषी उनको, हो तब महिमा क्यों धारण? ॥१२॥

ॐ ह्रीं पुण्यतीर्थोदयाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गर्भोत्सवे प्रतिदिनं पृथुरत्नवृष्टि-
र्जन्मोत्सवे सकल-लोक-सुशान्त-वृत्तिः।
सर्वातिशायनगुणा दश जन्मनस्ते,
सूक्ष्मेण को गणयितुं गुणतां तु शक्तः॥१३॥

गर्भ समय के कल्याणक में, प्रतिदिन रत्नों की वर्षा,
जन्म समय के कल्याणक में, सकल लोक में सुख हर्षा ।
सूक्ष्म रूप से तव गुण गण को, गिनने में हो कौन समर्थ?
दश अतिशय जो मूर्त रूप हैं, समझो उनमें कितना अर्थ॥१३॥

ॐ ह्रीं सर्वसमृद्धिवर्धकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निःस्वेदताऽस्ति वपुषो मलशून्यता ते,
स्वाद्याकृतिः परमसंहननं सुरूपम्।
सौलक्ष्य- सौरभ- मपार- समर्थता च,
सप्रीतिभाषण-मथा-सम-दुग्धरक्तम्॥१४॥

स्वेद रहित है निर्मल है तनु, परमौदारिक सुन्दर रूप,
प्रथम संहनन पहली आकृति, शुभलक्षणयुत सौरभ कूप।

अतुलनीय है शक्ति आपकी, हित-मित- प्रिय वचनामृत हैं,
दुग्धरंग सम रक्त देह का, दश अतिशय परमामृत हैं॥१४॥

ॐ ह्रीं दश जन्मातिशयधारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोशं चतुःशतमिलाफलके सुभिक्षः
शून्यश्च जीववधभुक्त्युपसर्गतायाः।
विद्येश्वरः खगमनं नख-केश-वृद्धि-
छाया-विहीन-मनिमेष-मुखं चतुष्कम्॥१५॥

कोस चार सौ तक सुभिक्ष है, प्राणी वध उपसर्ग रहित
बिन भोजन नित गगन गमन है, नख केशों की वृद्धि रहित।
बिन छाया तनु चार मुखों से, निर्निमेष लोचन टिमकार,
सब विद्याओं के ईश्वर हो, दश केवल अतिशय सुखकार॥१५॥

ॐ ह्रीं दशकेवलज्ञानातिशयधारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्मक्षणे प्रथित-पर्वत-मन्दराख्ये
सौधर्म- देव- विहितस्नपनोपचारे।
आनन्दनिर्भररसेन सुविस्मितः सन्,
' वीरं' चकार तव नाम सुरेन्द्रमुख्यः॥१६॥

जन्म समय पर मन्दर मेरु, पर्वत जो विख्यात रहा,
जिस पर ही सौधर्म इंद्र ने, प्रभु का कर अभिषेक कहा।
'वीरं' आपका नाम यही शुभ, धरती पर विख्यात रहे,
हो आनन्दित विस्मित होकर, देवों के भी इंद्र कहे॥१६॥

ॐ ह्रीं सर्वानन्दकराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रीडाक्षणे सुरतुकैः सह शैशवेऽपि,
आयात एव भुवि संगमनामदेवः।
नागस्य रूपमवधार्य भयाय रौद्रं,
निर्भीरभू-' र्महतिवीर' इति प्रसिद्धिः॥१७॥

शैशव वय में क्रीड़ा करते, देव बालकों के संग आप,
संगम देव तभी आ पहुँचा, देने को प्रभु को संताप।
नाग रूप धर महा भयंकर, लखकर वीर न भीत हुए,
'महावीर' यह नाम रखा तब, देव स्वयं सब मीत हुए॥१७ ॥

ॐ ह्रीं सर्पादिजन्तुभयनिवारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शङ्कां निधाय हृदि तौ गगनं चरन्तौ
ऋद्धीश्वरौ विजय-संजयनामधेयौ।
त्वामीश! वीक्ष्य लघु दूरत एव हर्षात्
प्रोच्चार्य 'सन्मति' सुनाम गतौ विशङ्कौ ॥१८॥

शास्त्र विषय संदेह धारकर, चले जा रहे दो मुनिराज,
संजय विजय नाम हैं जिनके, गगन ऋद्धि ही बना जहाज।
देख दूर से हर्षित होकर, लख कर ही निःशंक हुए,
धन्य-धन्य है इनकी मति भी, 'सन्मति' कहकर दंग हुए॥१८॥

ॐ ह्रीं बुद्धिसंदेहवारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थेश्वरा विगतकाल-चतुर्थकेऽस्मिन्
संदीक्षिता बहुलसंख्यक-भूमिनाथैः।
जानन्नपि त्वमगमो न हि खेदमेको
वाचंयमो द्विदशवर्षमभी-र्विहृत्य॥१९॥

इस चतुर्थ काल में जितने, पहले जो तीर्थेश हुए,
कई कई राजाओ के संग, दीक्षित हो तपत्याग किए।
आप जानते थे यह भगवन, फिर भी आप न खेद किए,
मौन धारकर एकाकी हो, बारह वर्ष विहार किए॥१९॥

ॐ ह्रीं जिनदीक्षाधारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राप्त -क्षयोपशममात्रकषायतुर्यो,
मत्तेऽपि वृद्धि-मुपयाति परं चरित्रम्।

त्वं' वर्धमान' इति नाम भुवि प्रपन्नो
न्यासे प्रभाव इह नामनि भावमुख्यात्॥२०॥

चौथी कषाय मात्र का जिनको, क्षयोपशम गत भाव रहा
हो प्रमत्त यदि बीच-बीच में, वर्धमान चारित्र रहा।
इसीलिए तो नाम आपका, ' वर्धमान ' भी ख्यात हुआ
नाम न्यास में भी भावों से, न्यास बना यह ज्ञात हुआ॥२०॥

ॐ ह्रीं सामायिकचारित्रवृद्धिकरांय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीक्षोत्सवे तपसि लीनमना बभूव,
चैको भवान् प्रविजहार सहिष्णुयोगी।
उज्जैनके पितृवने समधात् समाधि-
मुग्रैरुपद्रवसहेऽप्यतिवीर' संज्ञा॥२१॥

तप कल्याणक होने पर प्रभु, तप में ही संलीन हुए,
एकाकी बन कर विहार कर, सहनशील योगी जु हुए।
उज्जैनी के मरघट पर जब, आप ध्यान में लीन हुए,
उग्र उपद्रव सहकर के ही, नाम लिया अतिवीर' हुए॥२१॥

ॐ ह्रीं उग्रोपद्रवनाशकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

या बंधनैश्च विविधैः किल संनिबद्धा,
संपीडिता विलपिता समयेन नीता।
भक्त्योल्लसेन विभुतां प्रविलोकमाना,
सा चन्दना गतभया तव लोकनेन॥२२॥

नाना विध बंधन ताडन पा, जो पर घर में बंधी पड़ी,
पीड़ित होकर रोती रहती, कष्ट सहे हर घड़ी-घड़ी।
वीर प्रभू का दर्शन पाऊँ, भक्ति और उल्लास भरी,
दर्शन पाकर वही चन्दना, भय-बन्धन से तब उभरी॥२२॥

ॐ ह्रीं अनिष्टबंधनविनाशाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानोत्सवेऽशुभदतीव सभा पृथिव्या,
गत्वोपरीह जिन! पञ्चसहस्र-दण्डान्।
मिथ्यादृशां न भवतो मुख-दर्श-पुण्य-
मुच्छ्राय एव भगवन्! सुविराजमानः॥२३॥

ज्ञानोत्सव होने पर प्रभु की, समवसरण सी सभा लगी
पाँच हजार धनुष ऊपर जा, चेतनता जब पूर्ण जगी।
मिथ्यादृष्टि जीवों को तव, मुख दर्शन का पुण्य कहाँ ?
इसीलिए इतने ऊपर जा, शोभित होते बैठ वहाँ ॥२३॥

ॐ ह्रीं उत्कृष्टपदविराजमानाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री वर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मानोद्धतः सकलवेदपुराणविद् यो
मानादिभूस्थजिन-बिम्बमथेन्द्र-भूतेः ।
मानो गतो विलयतामवलोक्य तेऽस्य
सामर्थ्यमन्यपुरुषेषुन दृश्यते तत्॥२४॥

हुआ मान से उद्धत है जो, सकल पुराण शास्त्र ज्ञाता,
मानस्तम्भ बने जिन-बिम्बों, को लख इंद्रभूति भ्राता।
मान रहित हो खड़े रहे ज्यों, भूल गये हों सब कुछ ही,
छोड़ आपको अन्य पुरुष में, यह प्रभाव क्या होय कभी? ||२४॥

ॐ ह्रीं मिथ्यामदविनाशाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

साक्षाद् विलोक्य सचराचरविश्वमन्तः
कैवल्य-बोधवदनन्तसुखस्य भोक्ता।
यैर्मन्यते जिन! सदा परमात्मरूप-
मित्थं कथं वद भवेयु-रिहार्तयुक्ताः॥२५॥

अन्तरंग में निज आतम से, विश्व चराचर देख रहे,
केवल ज्ञान साथ जो होता, वह अनन्त सुख भोग रहे।
हे जिन! तव परमात्म रूप को, मान रहे जो इसी प्रकार,
अहो! बताओ कैसे फिर वे, दुःखी रहेंगे किसी प्रकार ॥२५॥

ॐ ह्रीं अनन्तज्ञानसुखसहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अभ्यन्तरे बहिरपीश! विभासमानो,
विश्व तिरस्कृतमहोऽत्र चिदर्चिषैतत्।
हे ज्ञातृवंश-कुल-दीपक ! चेतनायां
यत् सद् विभाति यदसन्न विभाति तत्र॥२६॥

बाहर भीतर ईश! आप तो, पूर्ण रूप से भासित हो
तव चेतन के महा तेज से, तेज समूह पराजित हो।
ज्ञातृवंश के हे कुल दीपक ! ज्ञातापन चेतनता में,
जो है वह प्रतिभासित होता, जो ना दिखता ना उसमें॥२६॥

ॐ ह्रीं चैतन्यपूर्ण-तेजः सहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्वं चित्क्रमाक्रमविवर्तविशुद्धि-युक्तः
स्वात्मानमात्मनि विभाव्य विभावमुक्तः।
वैभाविकं वपुरिदं जिन ! पश्यसि स्वं
सम्यक्त्वकारणमहो व्यभवत् परेषाम्॥२७॥

चेतन की गुण-पर्यायों में, तुम विशुद्धि युत होकर के,
आतम में आतम को पाकर, सब विभाव को तज कर के।
निज शरीर को भी हे जिनवर! वैभाविक ही देख रहे
दूजों को वह ही तन देखो! सम्यगदर्शन हेतु लहे॥२७॥

ॐ ह्रीं सर्वगुणपर्यायज्ञाताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छत्रत्रयं वदति ते त्रिजगत्प्रभुत्वं,
शास्ति स्वयं न मुखतो मदगर्वशून्यः।
सत्यं सतां विधिरयं हि पराक्रमाणां,
वीरो जितेन्द्रियमना भगवानसि त्वम्॥२८॥

तीन लोक में प्रभुता तेरी, तीन छत्र कह देते हैं
मद घमण्ड से रहित हुए जो, कैसे कुछ कह सकते हैं।

महा पराक्रम धारी सज्जन, इसी रीति से रहते हैं
इसीलिए तो वीर जितेन्द्रिय , भगवन तुमको कहते हैं। ।२८॥

ॐ ह्रीं छत्रत्रयधारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिंहासनोपरि विराजितुमत्र लोभा
वाञ्छन्त्युपायशतकैर्भुवि चित्तलोभात्।
लाभेऽपि तस्य चतुरङ्गुलमूर्ध्वमेति
निर्लोभता वद भवत्तुलिता क्व चान्यैः॥२९॥

देखा जाता है लोभी जन, सिंहासन पर बैठन को
करें उपाय सैकड़ों जग में, मन में लोभ की ऐंठन हो।
सिंहासन का लाभ हुआ पर, आप चार अंगुल ऊपर
कहो आप सा निर्लोभी क्या, और कहीं हो इस भूपर ॥२९॥

ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्यसहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊर्ध्वं मुहुर्गदति याति च निम्नवृत्तिं,
मायाविनां तु मनसा सम वक्रवृत्तिम्।
तेभ्यस्तनुस्तव विभाति सुचामरौघो
मायातिशून्यहृदयो भवदन्यना न॥३०॥

ऊपर जाकर बार-बार फिर, फिर नीचे आते चामर,
मायावी जन कुटिल मना ज्यों, मानो वक्रवृति रखकर।
चमरों से शोभित प्रभु तन ये, सबसे मानो कहता है,
अन्य किसी का हृदय यहाँ पर, बिन माया ना रहता है॥३०॥

ॐ ह्रीं सुरचामरशोभिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अस्मिन्भवे भविनि रोषविभावभाजि,
चैतन्यवत्यपि मुखं न बिभर्ति तेजः।
भामण्डलं हि परितो तव भासमानं,
यद् वीर! वक्ति भविसप्त-भवानुगाथाम्॥३१॥

क्रोध विभाव भाव वाले जो, भव्य जीव संसृति में हैं,
चेतन होकर के भी उनके, मुख पर तेज नहीं कुछ है।
वीर प्रभु तव मुख मण्डल का, तेज बताता भामण्डल,
भव्य जनों के सप्त भवों की, गाथा गाता है प्रतिपल॥३१॥

ऊँ ह्रीं भामण्डलप्रातिहार्यसहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चित्रं विभो! त्रिभुवनेश! जिनेश! वीर!
न्यूने त्वयि द्रुतविहास्य-रतेन देव!
दिव्यध्वनिं तदपि कर्णयितुं तु भव्या
आयान्ति ते रतिवशादनुयन्ति हास्यम्॥३२॥

तीन लोक के हो ईश्वर तुम, तुम जिनेश तुम वीर विभू
हास्य नहीं है रती नहीं है, तव चेतन में अहो प्रभू।
फिर भी दिव्यध्वनि को सुनकर, भव्य जीव रति भाव धरें
तत्त्व ज्ञान पी-पीकर मानो, हो प्रसन्न मन हास्य करें॥३२॥

ऊँ ह्रीं दिव्यध्वनिप्रातिहार्ययुक्ताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सामीप्यतोऽप्यरतिशोकमतिं विहाय
वैडूर्यपत्र- हरिताभ- मणिप्रशाखः।
सम्प्राप्य नाम लभते विटपोऽप्यशोकः
शोभां नरोऽपि यदि किं तव भक्तितोऽतः॥३३॥

नाना विध वैडूर्य मणी की, हरित मणिमयी शाखायें
तव समीपता से ही तज दी, अरति शोक की बाधायें।
मानो इसीलिए उस तरु का नाम अशोक कहा जाता
क्या आश्चर्य आप भक्ति से, यदि मनुष्य शोभा पाता॥३३॥

ऊँ ह्रीं अशोकवृक्षप्रातिहार्यसहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

यान्ति क्व भो! भविजना भयभीतवश्यात्
कुर्वन्ति किं निजहतिं च जुगुप्सया वा।

संप्राप्नुवन्त्वभयता- मभय- प्रसिद्ध-
पाद-द्वयं वदति वादितदुन्दुभिस्ते॥३४॥

अरे-अरे ओ भविजन क्यों तुम, क्यों इतने भयभीत हुए
आत्मग्लानि से आत्मघात को, करने क्यों तैयार हुए।
अभय प्रदायी चरण कमल को, प्राप्त करो अरु अभय रहो,
देव दुन्दुभी बजती-बजती, यही कह रही वीर प्रभो॥३४॥

ऊँ ह्रीं देवदुन्दुभिप्रातिहार्य शोभिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पुष्पाणि सन्ति सकलानि नपुंसकानि
हर्षन्ति तानि वनिता-नर-संगयोगात्।
कामस्त्रिवेदसहितः पततीह कामं
देवेन्द्रपुष्पपतनाच्छलतोऽभिमन्ये ॥३५॥

पुष्प रूप में खिले जीव सब, भाव नपुंसक वेद धरें
तभी कभी नर से हर्षित हों, नारी संग भी हर्ष धरें।
देवेन्द्रों की पुष्प वृष्टि जो, प्रभु सम्मुख नित गिरती है
तीन वेद से सहित काम यह, गिरता है यह कहती है॥३५॥

ऊँ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टिशोभिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थंकर- प्रकृतिपुण्य- वशेनभूमि-
र्दृष्टाऽतिकान्त- मणिकाभरणैक- कान्ता।
स्वच्छा च भावनसुरैर्विहितोपकारा
धान्यादि-पुष्पविभवै-हंसतीव नारी॥३६॥

पुण्य प्रकृति तीर्थंकर से ही, भूमि रत्नमय स्वयं हुई,
भवनवासि देवों के द्वारा, स्वच्छ दिख रही साफ हुई।
पुष्प फलों से भरी दिख रही, धान्यादिक से पूर्ण तथा,
तीर्थंकर का गमन देखकर, भूनारी यह हँसे यथा॥३६॥

ऊँ ह्रीं देवातिशयपवित्राय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वायुः प्रभोः पथविहारदिशानुसारी
वायुः सुगन्धघन-मिश्रित-सौख्यकारी।
वायुः सुगन्ध-जल-वर्षण-चित्तहारी
वायुः सुरस्त्रिदशराज-निदेश-धारी॥३७॥

जिधर दिशा में गमन आपका, उसी दिशा में वायु बहे
अति सुगन्धमय पवन सूंधकर, अचरज करता विश्व रहे।
मन्द-मन्द अति जल वर्षा में, भी सुगन्ध सी आती है
वायु कुमार देव से सेवा, इंद्राज्ञा करवाती है॥३७॥

ॐ ह्रीं चतुर्णिकायदेवपूजिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

न्यासो हि यत्र चरणस्य विनिर्मितानि
पद्मानि सौरभमयानि सुवर्णकानि।
देवैर्नभांसि विहृतौ कुसुमार्पितानि
ध्यानान् मनांसि यदि मेऽपि किमद्भुतानि॥३८॥

देवों द्वारा पद विहार में, नभ में कमल रचे जाते
वही कमल फिर स्वर्णमयी हों, अरु सुगन्ध से भर जाते
आप चरण के न्यास मात्र से, कुसुम इस तरह होते हैं
अद्भुत क्या यदि आप ध्यान से,मन: कमल मम खिलते हैं॥३८॥

ॐ ह्रीं पादन्यासकमलरचिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिव्यध्वनि-र्वहति यस्तु मुखारविन्दा-
दर्धं च तस्य खलु मागधजातिदेवाः।
दूरं तु वीर! सहजेन विसर्पयन्ति,
मैत्रीं मिथः सदसि भूरि विभावयन्ति॥३९॥

आप मुख कमल से हे भगवन ! दिव्य ध्वनि जो खिरती है,
मागध जाति देव से आधी, वही दूर तक जाती है।
इसीलिए वह अर्ध मागधी, कहलाती सुखकर भाती,
तथा परस्पर में मैत्री भी, जीवों में देखी जाती॥३९॥

ॐ ह्रीं मैत्रीप्रसारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नैर्मल्यभाव-मभितो धरतीशमाप्तं,
दिग् राजिका दश विभो! गगनं विधूल्यः।
सर्वर्तु- पुष्प- फल- पूरित- भूरुहाश्च,
व्याह्वान-मर्पित-सुरौघ इतः करोति॥४०॥

अरु विहार के समय गगन भी, निर्मल भाव यहाँ धरता,
दशों दिशायें धूलि बिना ही, नभ चहुँ ओर सदा करता।
सभी ऋतु के पुष्प फलों से, वृक्ष लधे इक संग दिखते,
आओ-आओ इधर आप सब, देव बुलावा भी करते॥४०॥

ॐ ह्रीं सर्वदिक् तमोहराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाशीर्वचः प्रहसनं प्रविलोकवार्ता,
तीर्थप्रवर्तनपरो जगतोऽधिनाथः।
पश्यन्तु तस्य ककुभन्तर-भासमानं,
तेजोऽधिकाग्र-गमनं पृथुधर्मचक्रम्॥४१॥

नहीं कोई आशीष वचन हैं, हँसे देख कर बात नहीं,
फिर भी तीर्थ प्रवर्तन होता, तीन जगत के नाथ यही।
देखो-देखो यही दिखाने, धर्म चक्र आगे चलता,
अति प्रकाश चहुँ ओर फैलता, सभी दिशा जगमग करता॥४१॥

ॐ ह्रीं धर्मचक्रप्रवर्तकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चित्तं मदीयमिह लीनमुत त्वयि स्यात्,
त्वद्रूपभा मयि मनः-परमाणु-देशे।
जानामि नो किमिति संघटते समेति,
किं वाम्रबीज-गणनेन रसं बुभुक्षोः॥४२॥

मेरा चित्त आप में हे प्रभु! लीन हुआ क्या पता नहीं,
या फिर आप रूप की आभा, मन में आती पता नहीं।

कैसा क्या यह घटित हो रहा, नहीं पता कुछ मुझको देव!
आम गुठलियों को क्या गिनना रस चखने की इच्छा एव॥४२॥

ॐ ह्रीं अतितृप्ति कराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भक्तिश्च सा स्मर-रुषाग्नि-घनौघवर्षा,
मुक्तिश्च सा स्तवनतः स्वयमेति हर्षात्।
शक्तिश्च तृप्यतितरां गुणपूर्णतायां,
ज्ञप्तिश्च विंदति भृशं तव चेतनाभाम्॥४३॥

भक्ति वही जो काम क्रोध की, अग्नि बुझाने वर्षा हो,
मुक्ति वही जो संस्तुति करते, स्वयं आ रही हर्षित हो।
आप गुणों की पूर्ण प्राप्ति में, तुष्ट करे जो शक्ति वही,
आप चेतना की आभा का, अनुभव करता ज्ञान वही॥४३॥

ॐ ह्रीं आत्मगुणवर्धकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भृत्योऽपि भूपतिमरं तु सदाश्रयामि,
प्रोत्थाय मस्तक-मतीव-मदेन याति।
त्रैलोक्यनाथ- पद- पंकज- भक्ति- भक्तो,
निश्चिन्तितां यदि दधाति तु विस्मयः किम्॥४४॥

मैं राजा के निकट रह रहा, यही सोचकर नौकर भी,
अपना मस्तक ऊँचा करके, गर्व धारकर चले तभी।
तीन लोक के नाथ आपके, चरण कमल भक्ती वाला,
भक्त यहाँ निश्चिन्त बना यदि,क्या विस्मय प्रभु रखवाला।४४॥

ॐ ह्रीं भक्तचिन्तापहरणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सत्यं त्वया सुविहिताऽत्र मुनेरहिंसा,
बाह्यान्तरङ्ग-यम-माप्य समाचरत् ताम्।
अन्तः प्रभाव इति केवलबोध-सूति-
र्यज्ञार्थ-हिंसन-निवृत्ति-बहि-र्विभूतिः॥४५॥

सत्य कहा है आप वीर ने, मुनि का एक अहिंसा धर्म,
भीतर बाहर संयम पाकर, आप बढ़ाये उसका मर्म,
उसी धर्म से अन्तरंग में, केवलज्ञान प्रकाश हुआ,
यज्ञों की हिंसा रुक जाना, बाहर धर्म प्रभाव हुआ॥४५॥

ॐ ह्रीं अहिंसा-स्वभावाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानस्य वा सुखगुणस्य च कस्यचिच्च,
पर्यायमात्रकलिकामह- माप्तुकामः।
अन्तस्त्वयि स्वगुण-पर्यय-भासमाने-
प्यस्मादृशः कथमहो नु भवेत् सतृष्णः॥४६॥

सुख गुण की या ज्ञान गुणों की, किसी गुणों की भी पर्याय,
एक समय की कणी मात्र ही, तव गुण की मुझमें आ जाय।
अपनी ही गुण-पर्यायों से, भीतर आप प्रकाशित हो,
फिर भी मुझ जैसा कैसे यूं, तृष्णा पीड़ित रहे अहो॥४६॥

ॐ ह्रीं सर्वमनोरथपूर्तिकराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अत्यन्त-पूत-चरणं तव सर्व-वन्द्यं,
चित्ते निधाय यदहं स्वमुखं विपश्यन्।
उल्लासयामि मुखदर्पण-दर्शनात्ते,
सीदामि साम्यविकलात् स्वमुखेऽतिवीर॥४७॥

अति पवित्र जो चरण कमल हैं, वन्दनीय नित सदा रहे,
उनको चित में धारणा करके, अपना मुख हम देख रहे।
अति उल्लासित मम मन होता, किन्तु आप मुख दर्पण देख,
आप सरीखा साम्य हमारे, मुख पर नहीं देख कर खेद ॥४७॥

ॐ ह्रीं साम्यमुखाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्-द्रव्यसंयम-पथे प्रथमं प्रयुज्य,
स्वं भावसंयमनिधौ तदनुव्यधायि।

नोल्लंघयन् क्रमविधिं क्रमविद् विधिज्ञो,
मार्तण्डवच्चरति वै महतां स्वभावः॥४८॥

पहले आप द्रव्य संयम के, पथ पर खुद को चला दिए,
तभी भाव संयम की निधि भी, आप स्वयं ही प्राप्त किए।
जो क्रम जाने विधि को जाने, क्या उल्लंघन कर सकता,
महापुरुष का यह स्वभाव है, सूरज सम पथ पर चलता॥४८॥

ॐ ह्रीं द्रव्यभावसंयमनिधिप्राप्ताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सापेक्षतोऽपि निरपेक्षगतोऽसि नूनं,
बद्धोपि मुक्त इव मुक्तिरतोऽसि बद्धः।
एकोऽप्यनन्त इति भासि न ते विरोधः,
स्वात्मानुशासनयुते जिनशासनेऽपि॥४९॥

होकर के सापेक्ष आप प्रभु, सबसे ही निरपेक्ष हुए,
कर्म बन्ध से बद्धमुक्त से, मुक्ती में रत बद्ध हुए।
होकर एक अनन्त भासते, इसमें कोई विरोध नहीं,
आतम अनुशासन से युत हो, जिनशासन से युक्त वहीं॥४९॥

ॐ ह्रीं परस्पर-विरुद्ध-धर्मसहिताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दृष्टोऽपि नो श्रुतिगतो न कदापि पूर्वं
स्पृष्टो मया न महिमानमहं न वेद्मि।
देवेश! भक्तिरसनिर्भर-मानसेऽस्मिन्,
प्रत्यक्षतोऽप्यधिकरागमतिः परोक्षे॥५०॥

पहले नहीं आपको देखा, नहीं सुना है कभी कहीं,
नहीं छुआ है कभी आपको, जानी महिमा कभी नहीं।
भक्ति सुरस से भरे हुये इस, मेरे मन में आप मुनीश,
नहीं हुए प्रत्यक्ष तथापि, मति में राग अधिक क्यों ईश॥५०॥

ॐ ह्रीं आश्चर्यकरमहिमासहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अद्यापि ते प्रवचनाम्बुमनःपिपासा,
पीत्वाऽपि तृष्यति विलोक्य पुन-र्दिद्दक्षा।
एतन्मनोरथयुगस्य यदा हि पूर्तिः
साक्षाद् भवेन्मम विमुक्तिकथा तदाऽलम्॥५१॥

तेरे वचन नीर को पीने, की इच्छा पी-पी कर भी,
तृप्त नहीं होता मेरा मन, पुनः देखना लख कर भी।
दो ही मेरी मनोकामना, जब पूरण होंगी साक्षात्,
मुक्ति कथा भी मेरी पूरी, हो जाएगी मेरी बात॥५१॥

ॐ ह्रीं साक्षात् दर्शनकराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्यं त्वयोदित-तपोयम-पालनेन,
भक्त्योर्जितेन भविनां शिवसाधनं ते।
पुण्यं निदानसहितं सुरसौख्यकामं,
बन्धप्रदं न हि नयं समवैति जैनः॥५२॥

कहा आपने जैसा जिनवर, मान उसे तप व्रत धरता,
भव्यजनों की भक्ति का वह, पुण्य मोक्ष साधन बनता।
सुर सुख को जो चाह रहा हो, कर निदान यदि करता पुण्य,
वही बन्ध का कारण है नय, नहीं जानते जैनी पुण्य॥५२॥

ॐ ह्रीं सकलनय विलसिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्री वर्धमान - महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्त्वमेव जिनदेव तवैव भक्ति-
र्ज्ञानं तदेव चरितं व्यवहारमित्थम्।
तावत् करोतु भविकस्त्वदभेदबुद्ध्या,
मुक्त्यंगना-रमणतात्म-सुखं न यावत्॥५३॥

हे जिन! भक्ति आपकी नित ही, सम्यग्दर्शन कही गई,
वही ज्ञान है वही चरित है, यह व्यवहारी बुद्धि रही।
रख अभेद बुद्धि से जिन में, तब तक यह व्यवहार करो,
मुक्ति वधू का रमण आत्मसुख,जब तक ना तुम प्राप्त करो।५३।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयपूर्णाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय श्री वर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रूपेण मुह्यसि जनं त्वममोह इष्टो,
लोभं विवर्धयसि भूरि निशाम्य वाचम्।
तत्राप्युशन्ति सुजनं सुजना भवन्तं,
दोषा गुणाय ननु चन्द्रकरैर्निदाघे॥५४॥

मोहित करते आप रूप से, सभी जनों को हे निर्मोह!
सुन कर वचन और सुनने का, लोभ बढ़ाते हे निर्लोभ!
फिर भी श्रेष्ठ पुरुष हैं कहते, श्रेष्ठ पुरुष केवल हैं आप,
दोष गुणों के लिए हरे ज्यों, निशा चन्द्रमा से संताप॥५४॥

ॐ ह्रीं श्रीगणधरमुनिसेविताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्री वर्धमान - महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुभ्यं ददामि कथयन् प्रददाति कश्चिन्,
मौनेन दित्सति भवानति-गुप्तरूपात्।
सार्वाय वा रविरिहैव निरीह-बन्धु-
र्भव्याय तेन भुवने परमोऽसि दाता॥५५॥

तुमको देता हूँ यह कहता, तब कोई कुछ देता है,
किन्तु आप दें गुप्त रूप से, मौन धार यह देखा है।
ज्यों रवि सबका हित करता है, बिन इच्छा के बन्धु बना,
उसी तरह भव्यों के हित में, तुम सम दाता कोई ना॥५५॥

ॐ ह्रीं सार्वाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय श्री वर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दित्सा प्रभो! त्वयि यदि प्रविदातुमस्ति
दातव्य एव मम वै मनसि स्थितार्थः।
दाता समो न तव मत्सम-याचको न,
कांक्षाम्यहं किमपि नो भवतो भवन्तम्॥५६॥

फिर भी यदि तुम इच्छा करते, देने की मुझको कुछ भी,
दे ही देना आप प्रभू जी, जो मेरे मन में कुछ भी।

दाता तुम सम और नहीं है, और नहीं याचक मुझ सा,
चाह नहीं कुछ तुमसे चाहूँ, तुमको या बनना तुम सा॥५६॥

ॐ ह्रीं अयाचकवृत्तये क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एवं चतुर्दशतिथा-वपहृत्य योगान्,
ध्यानात् तुरीयशुभशुक्ल-वशात् प्रमुक्तः।
पावापुर- प्रमद- पद्म- सरोवरस्थो,
निर्वाण-माप्य भुवनस्य शिरः प्रतस्थे॥५७॥

योगों को संकोचित करके, इस विधि चौदस की तिथि को,
चौथे शुक्ल ध्यान को ध्याकर, आप विमुक्त किए खुद को।
पावापुर के पद्म सरोवर, पर संस्थित प्रभु होकर के,
आप महा निर्वाण प्राप्त कर, ठहरे लोक शिखर जा के॥५७॥

ॐ ह्रीं पावापुरपद्मसरोवरस्थितनिर्वाणप्राप्ताय क्लींमहाबीजाक्षर-सहिताय श्री वर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नष्टाष्टकर्मरिपुबाधक! ते नमोऽस्तु,
स्वर्गापवर्ग-सुखदायक! ते नमोऽस्तु।
विश्वैक-कीर्ति-गुण नायक! ते नमोऽस्तु,
विघ्नान्तराय-विधि-वारक ! ते नमोऽस्तु॥५८॥

अष्ट कर्म रिपु बाधक नाशक, हे प्रभु तुमको नमन करूँ,
स्वर्ग मोक्ष सुख के हो दायक, हे प्रभु तुमको नमन करूँ।
आप कीर्ति गुण नायक जग में, हे प्रभु तुमको नमन करूँ,
अन्तराय विघ्नों के वारक, हे प्रभु तुमको नमन करूँ॥५८॥

ॐ ह्रीं अनन्तचतुष्टयसहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जेता त्वमेव समनः सकलेन्द्रियाणां
नेता त्वमेव गुणकांक्षि-तपोधनानाम्।
भेत्ता त्वमेव घनकर्ममहीधराणां,
ज्ञाता त्वमेव भगवन्! सचराचराणाम्॥५९॥

मन से सहित सकल इन्द्रिय के, तुम ही एक विजेता हो,
जो गुण चाहें ऐसे मुनि के, एक मात्र तुम नेता हो।
घनी भूत जो कर्म शैल थे, उनको तुमने तोड़ दिया,
सकल चराचर के ज्ञाता हो, निज में निज को जोड़ लिया॥५९॥

ॐ ह्रीं लोकालोकज्ञायकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे वीर! सिद्ध-गतिभूषण! वीतकाम!,
तुभ्यं नमोऽन्त्य-जिन-तीर्थंकर! प्रमाण!।
सर्वज्ञदेव! सकलार्तविनाशकाय,
तुभ्यं नमो नतमुनीन्द्र-गणेशिताय॥६०॥

सिद्धगति के भूषण तुम हो, काम रहित हो तुम हो वीर,
हे अन्तिम जिन तीर्थंकर प्रभु, तुम प्रमाण मम हर लो पीर।
सभी दुखों के नाशक तुमको, देव हमारे तुम्हें नमन,
गणधर और मुनीश्वर नमते, हे परमेश्वर तुम्हें नमन॥६०॥

ॐ ह्रीं वीतराग सर्वज्ञदेवाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ते तीर्थपुण्यजलमज्जनशुद्धभूता,
भव्याः पुरा समभवन् कलिपापपूताः।
नाना-नयोपनय-सप्त -विभङ्ग-भङ्गे,
तीर्थे निमज्जनविधेः किमु वञ्चितः-स्याम्॥६१॥

आप तीर्थ के पुण्य नीर में, डूब डूब कर शुद्ध हुए,
भव्य हुए जितने भी पहले, धो कलि पाप विशुद्ध हुए।
नाना नय उपनय अरु जिसमें, सप्त भंग की लहरें हों,
ऐसे तीरथ में डुबकी हम, लेने में क्यों वंचित हों? ॥६१॥

ॐ ह्रीं धर्म-तिर्थाधिपतये क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बालेऽपि पालक इति प्रतिभासते यो,
यो यौवनेऽपि मदकाम-भटाभिमर्दी।

संसार-सागर-तट-स्थित-पुण्यभाजां,
सिद्धिं प्रपित्सुरभवत् तमहं नमामि॥६२॥

बाल्य अवस्था में भी पालक, से प्रतिभासित होते आप,
भर यौवन में भी मदमाते, काम सुभट को जीते आप।
पुण्यवान जो खड़े हुए हैं, संसृति सागर के तट पर,
उन्हें सिद्धि में पहुँचाते थे, नमन आप को कर शिर धर ॥६२॥

ॐ ह्रीं श्री भवभयनिमज्जनतारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोकोत्तमोऽसि जगदेकशरण्यभूतः,
श्रेयान् त्वमेव भवतारकमुख्यपोतः।
ध्यानेऽपि चिन्तनमतौ सुकथा-प्रसङ्गे
त्वां संस्मरामि विनमामि च चर्चयामि॥६३॥

तीन लोक में उत्तम तुम हो, पूर्ण जगत में एक शरण,
भव तरने को इक जहाज हो, श्रेष्ठ तुम्ही हो करूँ वरण।
चिन्तन में भी ध्यान समय भी, और कथा के करने में,
तुमको याद करूँ मैं प्रणमूँ, चर्चा करूँ सदा ही मैं॥६३॥

ॐ ह्रीं श्री लोकोत्तमशरणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यः संस्तवं प्रकुरुते भुवि भावभक्त्या,
संस्थाप्य चित्त-कमले श्रुणुतेऽत्र चैतम्।
विघ्नं विहत्य सफलीभवतीष्टकार्ये,
ज्ञानं सुखं स लभते क्षण वर्धमानम्॥६४॥

भाव भक्ति से इस प्रकार जो, वीर प्रभू का यह संस्तव,
हृदय कमल में धार आपको, करता सुनता तव वैभव।
विघ्नों को वह नष्ट करे अरु, इष्ट कार्य में रहे सफल ,
हर क्षण बढ़ते ज्ञान सुखों का,पाओ तुम 'प्रणम्य' शिवफल॥६४॥

ॐ ह्रीं श्री प्रतिक्षणवर्धमान-ज्ञानसुखादिगुणाय क्लींमहाबीजाक्षर-सहिताय श्री वर्धमान-महावीर-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वर्धमान जिनदेव की जय त्रिशला नन्दन वीर की जय
ज्ञान चेतना में केलि कर शुद्धातम महावीर की जय।
निज चेतन की परिणत में रत ज्ञानानन्द स्वभाव रहा
सामायिक में ध्यान समय में जिनको चेतन भाव रहा।
राग रोग के हरने वाले काम क्रोध मद नाशन हारे
भव सागर से पार लगाते सन्मति दायी वीर की जय।
सब जीवों पर करूणा धरते शत्रु पर भी समता रखते
उग्र परिषह विजयी मुनिवर महावीर भगवान की जय।
बारह वर्ष तपे तप प्रतिदिन केवलज्ञान स्वभाव लिया
पीर हरी चन्दबाला की उपकारी जिनवर की जय।
गौतम गणधर लख के जिनको सुध-बुध खुद की भूल गए
शिष्य बन गए यतिवर सबही वर्धमान भगवान की जय।
जिनकी पूजा भाव लिए चल मेंढक देव महान बना
श्रेणिक, प्रीतिंकर लाखों जन ज्ञान लिए जिनराज की जय।
ऋजुकूला नदी के तट पर ग्राम जृंभिका में उपजा
केवलज्ञान प्रकाशित जग में श्रमण प्रमुख जिनराज की जय।
पावापुर निर्वाण भूमि पे तुमने सिद्ध प्रयाण किया
जन्म मरण तारक जिनवर वर्धमान भगवान की जय।

ऊँ ह्रीं श्री वीरसन्मति वर्धमानातिवीर महावीर पंचनामधेयाय वर्धमान जिनेन्द्राय नम: अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय चौबीसी पूजा

(छन्द चौबोला)

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय।
चंद पुहुप शीतल श्रेयांस-जिन, वासुपूज्य पूजित-सुरराय ।।
विमल अनंत धरम जस-उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्वप्रभु, वर्द्धमान पद-पुष्प चढ़ाय ।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति-जिनसमूह! अत्र अवतर! अवतर! संवौषट्! आह्वानानम्।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति-जिनसमूह! अत्र तिष्ठ! तिष्ठ! ठ:! ठ:! स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति-जिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्! सन्निधिकरणम्।

मुनिमन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा ।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।
पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।१।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी ।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।
पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः भवाताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।२।

तंदुल सित सोम-समान, सुन्दर अनियारे ।
मुक्ताफल की उनमान, पुञ्ज धरूं प्यारे ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।
पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।३।

वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे ।
जिन-अग्र धरूं गुणमंड, काम-कलंक हरे ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।

पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।४।

मनमोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने ।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।
पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।५।

तमखंडन दीप जगाय, धारूं तुम आगे ।
सब तिमिर-मोह क्षय जाय, ज्ञान-कला जागे ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।
पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।६।

दशगंध हुताशन-माँहि, हे प्रभु खेवत हूँ ।
मिस धूम करम जरि जाँहि, तुम पद सेवत हूँ ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।
पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।७।

शुचि-पक्व-सरस-फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग-मन को प्यार, पूजत सुख पायो ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।
पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति

स्वाहा।८।

जल-फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करूं ।
तुमको अरपूं भवतार, भव तरि मोक्ष वरूं ।।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनंद-कंद सही ।
पद-जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-वीरांतेभ्यः अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।९।

जयमाला

(दोहा)

श्रीमत तीरथनाथ पद, माथ नाय हित-हेत ।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ।।

(त्रिभंगी छन्द)

जय भवतम-भंजन जन-मन-कंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छकरा।
शिवमग-परकाशक, अरिगण-नाशक, चौबीसों जिनराजवरा।।

(छन्द पद्धरि)

जय ऋषभदेव ऋषिगन नमंत, जय अजित जीत वसु-अरि तुरंत।
जय संभव भव-भय करत चूर, जय अभिनंदन आनंदपूर ।।१।।
जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्मद्युति तनरसाल।
जय-जय सुपार्श्व भव-पास नाश, जय चंद्र चंद्र-तन-द्युति प्रकाश।।२।।
जय पुष्पदंत द्युति-दंत सेत, जय शीतल शीतल गुन-निकेत ।
जय श्रेयनाथ नुत-सहसभुज्ज, जय वासवपूजित वासुपुज्ज।।३।।
जय विमल विमल-पद देनहार, जय जय अनंत गुन-गन अपार ।
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शांति शांति-पुष्टी करेत ।।४।।
जय कुंथु कुंथु-आदिक रखेय, जय अरजिन वसु-अरि क्षय करेय।

जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल।।५।।
जय नमि नित वासव-नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र-नेम ।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्द्धमान शिव-नगर साथ।।६।।

(त्रिभंगी छन्द)

चौबीस जिनंदा आनंद-कंदा, पाप-निकंदा सुखकारी ।
तिन पद-जुग-चंदा उदय अमंदा, वासव-वंदा हितकारी ।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि-चतुर्विंशतिजिनेभ्यो जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा छन्द)

भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर ।
तिन-पद मन-वच-धार, जो पूजे सो शिव लहे॥

।।इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

दशलक्षण पूजन

(भुजंग प्रयात छन्द)

(संस्कृत)

(मुनि प्रणम्य सागर जी महाराज)

त्रिलोकस्य दुःखातिपीडातिकष्टैः
महापीड्यमानाश्च जीवा विचित्रैः
समाराध्य धर्मं लभन्तेऽत्र सौख्यं
तमेवं क्षमाद्यं सदा पूजयामि॥

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्म अवतर-अवतर।
ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्म तिष्ठ तिष्ठ।
ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्म ठः ठः स्थापनम्।

सुवस्त्रैःसुपूतैः सुनीरैः सुशुद्धैः
सुझारीभृतैः प्रासुकैः धारया च।

त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्मं यजेऽहम्।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हिमैश्चन्दनैश्चन्द्रशीतैःकरैश्च
न शैत्यं कदापीह चित्ते समाप्तम्।
त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्मं यजेऽहम्।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अखण्डै र्बृहत्तण्डुलौघैः सितैश्च
र्विशिष्टै र्विभिन्नै र्विरूपै र्विचित्रैः।
त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्म यजेऽहम्।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रमत्तालियुक्तैः सुगन्धैः सुपुष्पैः
सदा वर्धिता काम तृष्णा हि स्वान्ते।
त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्मं यजेऽहम्।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधावेदनाजातदुःखस्य पूर्तिः
कदाप्यन्न-पानैर्न कस्यापि जाता।
त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्म यजेऽहम्।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रदीप प्रकाशेन मूर्ता हि दृष्टा
पदार्था अमूर्तास्तु कैवल्यगम्याः॥
त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्मं यजेऽहम्।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

न वह्नैः:प्रदत्तेऽत्र धूपेन लोके
कदा कर्ममुक्ताश्च जाता न तेन।
त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्म यजेऽहम् ।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लवङ्गैः फलैः मौक्तिकै- र्नारिकेलैः
प्रपूजा जनानां कृता मुक्तिदायी
त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्म यजेऽहम्।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलैश्चन्दनैरक्षतैः सर्वपुष्पैः
चरूभिः सुदीपैः सुधूपैः फलैश्च।
त्रिलोकोदरस्थासुकल्याणहेतुं क्षमालक्षणाद्यं सुधर्म यजेऽहम्।

ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण-धर्म

(अंग पूजन)

(बसन्ततिलका)

1. उत्तम क्षमा धर्म

मासोपवासकरणं शिखरे निवासं
आतापनादितपनं विदधातु मौनम्
संश्रुत्य दुष्टवचनानि करोति रोषं
सर्व वशिष्ठ इव निष्फलमेव विद्धि॥१॥
यः कातरोऽस्ति वितनोति रुषं विचिन्त्य
तस्यास्तु युक्तमथ कारणतो न तुभ्यम्।
कर्मैव कारणमतो विजिताय भेषं
साधोर्धरामि किमु कोपवशेन मे स्यात्॥२॥

(दुतविलम्बित)

प्रतिपलं प्रतिकूलमुपेत्य भो मनसि संज्वलतीह रुषानलम्।
निजकृतं मयि कर्म मुधार्जितं शमदमक्षमया वशमानये॥३॥
सुनिजबोधसमुत्थ – सुशीतलां खलु पिबामि महारसनामिमाम्।
जिनपवाक्यनयैर्मधुरां परां शमसुधारसमिश्रिततोर्जिताम्॥४॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमा धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

2. उत्तम मार्दव धर्म

हीनेषु रूपकुलवित्ततपस्सु बुद्धौ
मानी करोति सुजनेषु विधाय गर्वम्।
हीनाधिकत्वमवनौ खलु कर्मयोगात्
ज्ञानी कुतः सजति भङ्गुरतात्मकेषु॥५॥
यः प्राक् करोति मदमन्तरिहानु तप्तः
चित्ते वृथा भरतचक्रिसमोऽपि लोके।
ज्येष्ठो न तिष्ठति सदा सममेकरूपं
व्यर्थोऽतिगर्व इति मार्दवतामुपैमि॥६॥

(दुतविलम्बित)

यदि कृते मयि तिष्ठति मानता जगति कोऽत्र विभुर्मम कथ्यताम्।
न हि तु मार्दव-धर्ममुपासतां जिनवरैः कथितं च हितङ्करम्॥७॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दव धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

3. उत्तम आर्जव धर्म

मायानुबद्धहृदयो जगतः समक्षे
धर्मी महाव्रत – धरोऽस्मि महातपस्वी।
इत्यादिकांक्षितमना कुरुते स सर्वं
त्रैलोक्यवञ्चनपरो नु निजात्मघाती॥८॥
मायी न चिन्तयति वै परमार्थ-तत्त्वं
नो वा तदर्थमिह तप्यति सौख्यमेति।

किन्त्वादिशेदपरमात्म- विबोधशून्यः
मिथ्यात्व भूमिपरिणामगतःकुधीःस्यात्॥९॥

(दुतविलम्बित)

निकृतिशल्यधरा मनुजाः सदा परभवे वनिता-भवधारकाः।
पशुगतौ बहुदुःखमुपेत्य ते प्रतिभवं निकृति – प्रकृतिव्यथा॥१०॥

ॐ ह्रीं उत्तमआर्जव धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

4. उत्तम शौच धर्म

आहारमैथुनपरिग्रह- लालसाभिः
किं वा भविष्यति परत्र तथेहभीत्या।
कांक्षा-विभीतहृदये नहि चित्तशुद्धिः
तस्मान्निहन्मि भयकामयुगाप्रशस्ताम्॥११॥
लक्ष्यं विधाय परमार्थसुखस्य कांक्षा-
मन्यां भवाङ्गरतिभोगभुवां विनश्य।
संसारसागर- निमज्जन- भीतिभीतः
छिन्दन्भयानि खलु सप्त स शौचधर्मः॥१२॥

(दुतविलम्बित)

सकललोभकषायनिराकृते – विंमलबोधकलाप्रविजृम्भिते।
प्रकटतीह निजात्मशुचिप्रभा विधुतकामभया शशिसन्निभा॥१३॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौच धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

5. उत्तम सत्य धर्म

सत्यं मितं सुवचनं श्रुतसार्थकारि
यो भाषते न हि करोति निजात्मशंसाम्।
निन्दात्मकं निगदितं न हि दत्तशापं
तस्यैव सत्यवचनं हृदि सत्य-धर्मात्॥१४॥
सत्यं सदा विजयते वितथान्धकारे
देवेषु चार्हत इवान्यमतेऽधिकारे।

पञ्चास्तिकायजगतस् त्रिविधिं हि लक्ष्म
स्वात्मा तथा जगति सत्यमिति प्रतीतिः॥१५॥

(दुतविलम्बित)

विगतमोहमना इह संसृतौ ऋतमहो प्रविलोकति शाश्वतम्।
खलु मतं हि ऋतुं च विभाषणं इति वृषं हृदये वचने धरेत्॥१६॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्य धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

6. उत्तम संयम धर्म

पञ्चाक्षनिग्रहपरो यमधारको यः
प्राणीन्द्रियेषु सुयतो हि कषायजेता।
सामायिके च निरतश्चभवादिजेषु
धर्मी महान् स सुधरामि च विष्टपेषु॥१७॥
सोष्णं जलं पिबति कालषडार्धकेषु
शीतोष्णभोजनकरे समशीलचित्तः।
पक्वं समत्ति सुफलानि सदाग्निना यो
धीरः स संयमवृषी वहति प्रवृत्तम्॥१८॥

(दुतविलम्बित)

करसुपादशरीरसुमुण्डनं वचनचित्तविकल्प – निवर्हणम्।
परमदुष्कर-मिन्द्रियरोधनं दश करोति यमं खलु संयमी॥१९॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयम धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

7. उत्तम तप धर्म

कायोपतापसहनादि- तपस्क्रियायां
प्रत्युद्य-तोऽस्तु सहसा ननु वा न वा स्यात्।
प्रत्यागते विधिकृते प्रविदत्तबाधे
सह्यं प्रशान्तमनसा सुमतं तपस्तत्॥२०॥
इच्छानिरोधकरणं तपसोऽस्ति चिन्हं
प्रायः शरीरमनसोः सहनीय इष्टम्।

यत्संयमेन सहितं परमार्थजुष्टं
तच्चेव शास्त्रविहितं सुतपः प्रशस्यम्॥२१॥

(दुतविलम्बित)

सरसि पङ्कहरस्तपनो तथा कनक-शुद्धिकरो ज्वलनं यथा।
तरुफलप्रदकारि सुतापनं चिति सुशुद्धिकरं सुतपस्तथा॥२२॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपो धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

8. उत्तम त्याग धर्म

दानात् समार्जितधनस्य जिनालयांश्च
श्रीजैनबिम्बशिखरध्वज- साधुवासान्।
निर्मापयन्ति सुधियो भुवि धर्मवृद्धया
श्लाघ्या मता बुधजनैः किल ते गृहस्थाः॥२३॥
त्यागाद् धनस्य जिनधर्मविभावनास्या
दाहारदानकरणाद् मुनिसंस्थितिश्च।
संविद्यते शिवपथो हि तयैव धर्मस्या
त्यागो महानिति मतो गृहिणां मुनीनाम्॥२४॥

(दुतविलम्बित)

पतति शुक्तिभुजंगमुखं गतं विमलदानमिहैकजलं द्विधा।
करगतं खलु पात्रकुपात्रयो-रमृतकूटविषात्तफलं तथा॥२५॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्याग धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

9. उत्तम आकिंचन्य धर्म

स्वेच्छाविहारमशनं वनहस्तिनो वा
कुर्वन्ति येऽत्र मुनयोऽवशिनो हि सङ्गात्।
रागादिभावमपि नात्महिताय यावत्
संमन्वते न खलु दुःखलवोऽपि तावत्॥२६॥
आकिञ्चनस्य महिमा महती मुनेश्च
स्वास्वादनेन भुवने गुरुतानुभूतिः ।

यस्या बलेन लघुतात्मनि निष्कलङ्का
संवीतपङ्कखगपक्ष इवैति खे सः॥२७॥

(दुतविलम्बित)

निजधनं निजता समता मता परधनं परता ममता व्यथा।
इति विहाय परं विधिजं विधिं कुरु रतिं किल धर्मम-किञ्चनम्।२८।

ॐ ह्रीं उत्तमआकिंञ्चन्य धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

10. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

मांसास्थिपूतिकुणिपै-र्निभृतं शरीरं
चर्मावृतेन तनुना प्रविभाति काम्यम्।
मोहादनादिजकुबोधबलाद्धि मोही
चैतन्यधातुमचलं स हि ब्रह्मचारी॥२९॥
दृष्ट्वा तनुं च कमनीयनितम्बिनीनां नो
द्रष्टुमिच्छति पुनस्तदनङ्गवेगात्।
ब्रह्मात्मनीह दृशिबोधविभासमानं
नित्यं हि तस्य रमते परमः स धर्मः ॥३०॥

(दुतविलम्बित)

शमितकाम -कषाय-रिपुर्यति-र्यदि विलोकति ता मनुते त्रिधा।
स्वसृसुताजननीसदृशाः सदा चरण-धूलिरतस्तु पुनातु मे॥३१॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्य धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला (चौपाई)

क्रोधकषायमहारिपुहननं क्षमाधर्ममवधारय नित्यम्।
मानकषाय विनाशन हेतुं, मार्दवधर्ममहो त्वं साधय॥
मायामहातिमिरिमति गाढं, धर्ममहार्जव-भानुसमानम्।
लोभकषायभवार्णव-धारी, संतोषामृतशोषणकारी॥
सत्यधर्ममविरूद्धस्वभावं, संयमपोतभवोदधिपारं।
तपस्त्यागधर्मं त्वं पालय, धर्ममकिंचनमहो विचारय॥

ब्रह्मचर्यमथ निर्मलकारि, स्वात्मधर्ममेवं सुखकारि।
धर्मं दश सुखसाधनहेतुं, भव्यजीव! भज भज शिवसेतुम्॥

ॐ ह्रीं दशलक्षण धर्मांगाय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनपूजन

(मुनि श्री प्रणम्य सागर जी)

पार्श्वनाथ की तपो भूमि का, दर्शन कर हर्षाया हूँ
केवलज्ञान जहाँ उपजा वह, तीर्थ पूजने आया हूँ।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की, महिमा बड़ी निराली है
आह्वानन थापन करता हूँ, पूजन की शुभ थाली है॥

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

नदी रेवती में जल बहता, मन में भक्ति जल बहता
कल-कल करता जल है कहता प्रभु चरणों में मैं चढ़ता।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
भाव बनें जल से अति निर्मल, अर्पित जल की प्याली है॥

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भीमा वन में चन्दन तरु का, महका करता चन्दन है
मानो वह कहता है सब से, प्रभु चरणों में वंदन है।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
चन्दन सम शीतल मन होवे, अर्पित चन्दन लाली है॥

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन आश्रित है मन आश्रित है, जग के जितने भी पद हैं
मोह महामद देने वाले, क्षत-विक्षत सब दुख प्रद हैं।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
तव सम अक्षय पद पा जाऊँ, अर्पित अक्षत थाली है॥

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुसुम सुगंधित मन मोहित कर, मन में मदन बढ़ाता है
जिससे तन में राग सहित हो, मन पर में भरमाता है।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
मदन दर्प नश जाये मेरा, अर्पित कुसुम प्रणाली है।

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय काम-बाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

चारु सुगंधित नैवेद्यों से भूख बढ़ायी तन मन की
चारों गति में भटक-भटक कर, सुध ना पाई चेतन की।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
चारु चरण में चरु चढ़ाऊँ, मिलती सुख हरियाली है॥

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह महा अज्ञान बढ़ाता, पर में खुशी मनाता है
आत्म बोध से रहित जीव यह, आत्म प्रकाश न पाता है।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
दीप चढ़ा के आत्म बोध से, आतम मिली खुशाली है॥

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टांगी यह धूप द्रव्य प्रभु, कितने कर्म जलाएगी।
कर्मों का ईंधन असीम है, ध्यान अग्नि ही वारेगी।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
धूप चढ़ा के कर्म नशा के, निज गुण महिमा पाली है॥

ऊँ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

गोला लौंग सुपारी एला, मेवा पिस्ता बादामें
मोक्ष महाफल की तुलना में तुच्छ वस्तु को क्या थामें।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
सौख्य महा फल पाने को यह, पूजा शिव की आली है॥

ऊँ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत कर में, पुष्प दीप चरु रख मन में
धूल फलों को वचनों में ले, मिला-मिला वच तन मन में।
विन्ध्यावलि के पार्श्वनाथ की महिमा बड़ी निराली है
पद अनर्घ्य की इच्छा करके, दुख बाधाएँ नशा ली है॥

ऊँ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्र अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

पार्श्वनाथ भगवान का, गर्भ महोत्सव आज।
कृष्ण पक्ष वैशाख की, दूजी तिथि सुख काज॥

ऊँ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी, जन्म महोत्सव जान।
इन्द्रों ने पूजा करी, मेरु न्हवन महान॥

ऊँ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां जन्ममंगल मंडिताय श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री प्रभु पारसनाथ को, गृह से विरति आय।
पौष कृष्ण एकादशी, बारह भावना भाय॥

ऊँ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां तपो मंगलमंडिताय श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ

जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अविचल तप कर ध्यान से, पाया केवल ज्ञान।
चैत्र कृष्ण की चौथ को, बन अरिहंत महान॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचर्तुथ्यां केवलज्ञान मंडिताय श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्मेदाचल पर गए स्वर्ण भद्र सुख कूट।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, भव बंधन से छूट॥

ॐ ह्रीं श्रावण-शुक्ल-सप्तम्यां मोक्ष मंगल मंडिताय श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(तर्ज : ओ सदलगा के सन्त)

श्री पार्श्व जिनेश्वर की महिमा महान है
सौधर्म भी न कर सकें गुणों का गान है॥१॥
प्राणत विमान स्वर्ग से वामा के गर्भ में
आए ये प्रभु तीन ज्ञान धार गर्भ में॥२॥
इन्द्रादि ने जन्माभिषेक मेरु पे किया
आश्चर्य तीन लोक में हर्ष छा गया॥३॥
जब तीस वर्ष के हुए पारस कुमार जी
गृह त्याग के दीक्षा जिनं आप धार ली॥४॥
मन चाहा आत्म हेतु तप त्याग था किया
कर के विहार आर्य खण्ड धन्य कर दिया॥५॥
उस आर्य खाण्ड में प्रांत राजस्थान है।
भीमाटवी में विन्ध्यावलि रम्य ठाण है॥६॥
मुनि पार्श्वनाथ यहाँ आ विराज गए थे
तब देव कमठ जीव ने उपसर्ग किए थे॥७॥
ओले गिरे बिजली गिरी अग्नि भी बरसाई
नर मुण्ड चण्ड वात लिए डाकिनी आई॥८॥
चट्टान शिलाएँ भी बड़ी-बड़ी गिराई

पर आपके मन तनिक भी न खिन्नता आई॥९॥
धरणेन्द्र ने उपसर्ग देखा छत्र विताना
तब घाति कर्म घात के कैवल्य का पाना॥१०॥
तत्क्षण समोशरण लगा अरु देशना हुई
सब की अनादि मोहनींद दूर भग गई॥११॥
फिर कर विहार आपने सम्मेद शैल पर
निर्वाण पा लिया वहीं पे शुक्ल ध्यान धर॥१२॥
तब से ये भूमि पावनी तीर्थ बन गई
अहिच्छेत्र इसी क्षेत्र की, भूमि कही गई॥१३॥
फिर वर्धमान तीर्थ में एक सेठ हुआ था
लोलार्क नाम का बडा यशस्वी भक्त था॥१४॥
धरणेन्द्र ने उसको यहाँ था जब स्वप्न दिया
तब पार्श्वनाथ का महा मन्दिर बना दिया॥१५॥
उत्तुंग जिनालय के साथ सप्त जिनालय
फैली जगत में कीर्ति हुई पार्श्व प्रभु जय॥१६॥
अब तो यहाँ पे शोभते हैं, पाँच जिनालय
मन्दिर है गणधरों का चौबीसी जिनालय॥१७॥
जो समवशरण के दरश करेगा हो निहाल
इक और बन रहा है, मन्दिर यहाँ विशाल॥१८॥
इस पुण्य भूमि के यहाँ हम दर्श कर लिए
मानो जनम जनम के लिए पुण्य भर लिए॥१९॥

ॐ ह्रीं श्री विन्ध्यावलि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पार्श्वनाथ तप ज्ञान की, भू बिजौलिया धाम।
ऋद्धि सिद्धि मंगल करी, सबको दे सुख धाम॥

॥ पुष्पांजलि क्षिपामि॥

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज पूजन

(संस्कृत)

मुनि श्री प्रणम्य सागर कृत

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

(स्थापना)

निर्ग्रन्थो निरतात्मसौख्य-निलयो, मुक्त्यातुरस्तारकस्।
तीर्थोद्धारक! वीतकामकलहो, विज्ञोऽपि गोरक्षकः।
सन्मार्गं हृदि शान्तितो नयति यो, भव्यांश्च मुक्तिश्रिये
विद्यासागार-पूज्यपाद-कमलं, संस्थाप्य संपूजये॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्! अत्र तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

जन्मान्तकापन्नभयातिभीता, जवञ्जवे जन्तव आर्तनीता ।
विद्यागुरोऽर्चन्ति हरोपविद्या, भवन्तमद्भिश्चरणं हि सर्वाः॥१॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशाय जलं नि.स्वाहा।

कृतं मया चन्दनपूतलेप्यं, न शीतमाप्तं मनसाऽपि किञ्चित्।
ततोऽघ-सन्तप्तमनोविशान्त्यै, तवाऽच्-र्यते मङ्गलपादपद्मम्॥२॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि स्वाहा।

ज्ञेयप्रभावेन हि खण्डितो य-, दखण्डितज्ञानविमण्डनाय।
विधौतविद्योतनतण्डुलौघैः, पादाम्बुजं वै सुगुरोऽर्च्यते ते ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् नि स्वाहा।

लोके तु सत्वाःकुसमास्त्रदोषै, र्भ्रमन्ति नित्यं भवभूमिमध्ये।
कामाष्टकं शर्तुममर्त्य-शत्रुं, पुष्पैस्त्वदीयं चरणं यजेऽहम्॥४॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय कामबाण-विनाशनाय पुष्पं निस्वाहा।

वरं विशुद्धं रुचिरं मयेदं, भुक्तं मुहुर्मोहवशेन सर्वम्।
क्षुद्रोगशान्त्यै भुवि नात्र वैद्यो, नैवेद्यमानीय पदे यजेऽहम्॥५॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम नि.स्वाहा।

उन्मत्तवन्मोह-तमःप्रसारान्, निधाय दुःखं भवभार ऊढः ।
अलब्धभूतिं चरणं विलब्धुं, मयाऽर्च्यते दीपकरोचिषा ते॥६॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय मोहान्धकार विनाशाय दीपं निस्वाहा।

एकं निमित्तं भवरोगसूते, देहात्ममध्ये विपरीतबुद्धिः।
भक्त्यानले कल्मषमोहधूपं, क्षिप्त्वा पवित्रं शरणं दधेऽहम् ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं नि.स्वाहा।

वातादमक्षोटमनूनमैलां, प्रस्थाप्य शुद्धं तपनीयपात्रे।
अमूल्य-निर्वाण-फलं समाप्तुं, पदानुरागी तव पूजयेऽहम्॥८॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

विद्याम्बुधे ! ते हिम-चन्दनं वाः, सुतण्डुलं वा कुसुमं प्रदीपम्।
धूपं फलं चारुचरुं मिलित्वा, प्रपूज्यते प्राप्तुमनर्घधाम॥१॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अनर्घपद-प्राप्तये अर्घ्यम् नि. स्वाहा।

जयमाला

(छन्द – चौपाई)

गुरुगुणधामगुरो! भुवि भक्तः, को गातुं गुणगानं शक्तः।
नामालापोऽपि यतः पापं, हन्ति ततोऽहं ब्रुवे प्रतापम्॥१॥
दक्षिणभागे भारतदेशे, रम्ये कर्नाटक – प्रदेशे।
ग्रामे सदलगि सत्कुलगेहे, बहुलक्षणयुत जननी-देहे॥२॥
शरत्रियामावसिते दिव्यः, शिशुरजनि हि शशिकान्ति र्भव्यः।
पितुर्मलप्पासीत्सुनाम, सुश्रीमती च मातुर्नाम॥३॥
रूप्यसमं रूपं ते रुचितं, सकलजनानामङ्के ललितम्।
नासया हि जितचम्पकपुष्पं, रागाकीर्णकपोलं रक्तं ॥४॥

(दोहा)

कंठे नो रेखात्रयं किन्तु रत्नमयधाम।
विद्याधर! भूमौ ततो विश्रुतनामाभाणि॥५॥

(चौपाई)

सुखतो विगते सति शिशुकाले, किं सत्यं किं हेयमिहाले।
इत्यूहापोहं मम चित्तं, तुदते किं करणीयं युक्तम्॥६॥

सह कालेन हि जातं वित्तं, क्षययुतमघखानिर्वै चित्तम्।
काले कलौ कलिः प्रतिपादं, कालो व्यर्थमेति संवादे॥७॥
कारागारं वनितापत्यं, भोगं भंगुर – मखिलमसत्यम्।
गृहतो मनसि मराले मत्वा, पुरमजमेरं प्रति लघु गत्वा॥८॥
भवता देशव्रतं गृहीतं, देशभूषणाद्यतेः समीपम्।
रुचितो यजतः पठतो वीतं, वर्षं मुक्त्वा तत् सामीप्यम्॥९॥

(दोहा)

नमो ज्ञानसागरचिदे, विगतमोहरतिमान!
शान्तचित्त ! निःस्पृहबुधे, निखिलगुणौघनिधान! ॥११॥

(चौपाई)

सम्प्राप्यारं पदं प्रशीतं, हृष्टस्तृषातुरैर्वाः पीतम्।
शुभलक्षणलाञ्छनयुत-गात्रं, दृष्ट्वाभूदुपकारकपात्रम्॥१२॥
शिष्टमधुरमितनम्रैर्वाक्यै, र्भक्त्याचरण-सपर्याकार्यैः।
लब्ध्वा हृदये परां प्रसत्तिं, संप्रवर्ध्य गुरूवचनसुभक्तिम्॥१३॥
कामाक्रोशारीन्विदित्वा, बाह्यान्तरसङ्गाङ्गं हित्वा।
तत्पादे मुनिदीक्षावाप्ता, सर्वसिद्धिदा जिनरूपाप्ता॥१४॥
यथाजातदैगम्बररूपं, भवता हितं ततं चिद्रूपम्।
चेतनसूतसुधां सुपातुं त्रासितसर्वजनानवपातुम्॥१५॥
अवतरितो भुवि भुवन-हितार्थं, यथा कौमुदी जलेरुहार्थम्।
कल्याणाभिनिवेशकचक्षुः शिथिलाचरणविनाशकभिक्षुः॥१६॥

(दोहा)

महाव्रताभूषित -वपु -र्विद्याब्धस्त्वन्नाम।
सत्यवचोगुण-धारको देहि शान्तिसुखधाम॥१७॥

(चौपाई)

धर्मध्याने तत्त्वे सारे, संवेगे चिन्मयसंसारे।
यस्य मनो लगति श्रुत-पाठे, परहितसम्पादनकरणार्थे ॥१८॥
ज्ञानगुरूणां प्रथमः शिष्यः, त्वं सुशोभितः पट्टे यस्य।
सम्प्रति त्वमन्तरमतियोगी, मनो जनानामक्ष-विभोगी॥१९॥
संस्कृतपद्ये कृतमनवद्यं, षट्शतकं बहु-हिन्दी-पद्यम्।

'मूकमाटी' कृतिरद्‌भुतपात्री, पराध्यात्म-जिनदर्शनदात्री॥२०॥
क्षुद्रैकान्तगिरामयिभेत्ता, जन्मजरारीणामतिहर्ता।
जय जय जय जिनशासन भक्त,जय जय निर्मम चानासक्त॥२१॥
देहि देहि रत्नत्रय -भूतिं, भवतु भवतु मम तवानुभूतिः।
नय नय नय मा श्री प्रासादं, भव भव भव हर्षाय सदा त्वम्॥२२॥
कलिकाले भो! महद् -विचित्रं दर्शनमेतादृशमाचार्यम्।
बहूक्तेन किं धन्यमन्यः, शमभावाय हि पुनः 'प्रणम्य' ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजार्हं पूजा कृता गुणपुंजं प्रणमामि।
पूजातः पूज्यस्य यत् पूज्योऽहं विभवामि॥२४॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

पंचमेरु पूजा

(कविवर द्यानतराय जी)

(गीता छन्द)

तीर्थंकरों के न्हवन-जलतें भये तीरथ शर्मदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुन की सदा।
दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुख भाजहीं॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह! अत्रावतरावतर संवौषट् अह्वानम्।

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

चौपाई आंचलीबद्ध

शीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करों प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीसुदर्शन-विजय-अचल-मन्दर-विद्युन्मालि-पञ्चमेरु-सम्बन्धि-जिनचैत्यालस्थ-जिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपमीति स्वाहा॥१॥

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों०॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा॥२॥

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों०॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अक्षतान्-निर्वपामीति स्वाहा॥३॥

वरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों०॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥४॥

मनवांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों०॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि- जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥५॥

तम-हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों०॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥६॥

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों ॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥७॥

सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा॥८॥

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥९॥

जयमाला

सोरठा

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंच मेरु जग में प्रगट॥

केसरी छन्द

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥१॥
ऊपर पंच- शतकपर सौहै, नंदन-वन देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥२॥
साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥३॥
ऊँचा जोजन सहस-छतीसं, पाण्डुक-वन सौहै गिरि-सींस।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥४॥
चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुँ जाने।

चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥५॥
ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥६॥
साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सोमनस चार बहुरंगा
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥७॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥८॥
सुर नर चारन वंदन आवै, सो शोभा हम किह मुख गावें।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥९॥

दोहा

पंच मेरु की आरती, पढ़े सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धि - जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामित स्वाहा।

रत्नत्रय पूजा

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दुख-पावक-जल-धार।
शिव – सुख – सुधा – सरोवरी, सम्यकत्रयी निहार॥

ॐ ह्रीं सम्यक्-रत्नत्रयधर्म! अत्र अवतर-अवतर संवौष्ट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं सम्यक्-रत्नत्रयधर्म! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं सम्यक्-रत्नत्रयधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अष्टक (सोरठा छन्द)

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥१॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन-केसर गारि, परिमल- महा-सुगंध-मय।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥२॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय भवतापविनाशनाय चंदनम् निर्व. स्वाहा।

तंदुल अमल चितार, वासमती –सुखदास के।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥३॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

महकैं फूल अपार, अलि गुंजै ज्यों थुति करैं
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥४॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्व. स्वाहा।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगन्ध युत।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥५॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्व. स्वाहा।

दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥६॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्व. स्वाहा।

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूर की।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥७॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

फल शोभा अधिकार लोंग छुहारे जायफल।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भनूँ॥८॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्व. स्वाहा।

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥१॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सम्यक् दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग-तीनों मयी।
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रत सहित॥१०॥

ॐ श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन पूजा

दोहा

सिद्धअष्ट-गुणमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान।
ज्ञान चरित जिहँ बिन अफल,सम्यक्दर्श-प्रधान॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥१॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥२॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥३॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥४॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा ॥५॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तमहार, घट पट परकाशै महा।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा॥६॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा॥७॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा॥८॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत फूल चरू, दीप धूप फल लेय।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौ सदा॥१॥

ॐ श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप- आप निहचै लखै, तत्त्व-प्रीति व्यौहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार॥
सम्यक् दर्शन-रत्न गहीजै, जिन-वच में संदेह ना कीजै।
इह भवविभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहै मत प्रानी॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
पर-दोष ढकिये, धरम डिगते को सुथिर कर, हरखिये॥
चहुँ संघ को वात्सल्य कीजै, धरम की परभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकै, इहाँ फेर ने आवना॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सहित पंचविंशति दोष रहित सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान पूजा

दोहा

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान।
मोह-तपन-हर चन्द्रमा, सोई सम्यकज्ञान॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥१॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥२॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥३॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥४॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥५॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय नैवद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तमहार, घट पट परकाशै महा।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥६॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥७॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥८॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत फूल चरू, दीप धूप फल लेय।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥९॥

ॐ श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप- आप जानै नियत, ग्रन्थ पठन व्यौहार।
संशय विभ्रम मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार ॥
सम्यक् ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अक्षर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अरथ उभय सँग जानो॥
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।
तप रीति गहि बहु मौन देकै, विनय गुण चित लाइये॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना।
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पटपेखना॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् – चारित्र पूजा

दोहा

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार।
तीर्थंकर जाको धरै सम्यक्-चारित सार॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्र! अत्र अवतर-अवतर संवौष्ट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥१॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥२॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥३॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥४॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै ।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥५॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय नैवद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तमहार, घट पट परकाशै महा।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥६॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥७॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥८॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गंधाक्षत चाक, दीप धूप फल फूल लेय।
सम्यक्-चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥१॥

ॐ श्री त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप-आप थिर नियत नय, तप संजम व्यौहार।
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार॥

(चौपाई मिश्रित गीताछन्द)

सम्यक्-चारित रतन सँभालो, पाँच पाप तजिके व्रत पालौ।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजै, नरभव सफलकरहु तनछीजै॥
छीजै सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिये।
बहुरुल्यो नरक-निगोद माहीं, विष-कषायनि टालिये॥
शुभ करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

दोहा

सम्यक् दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुकति न होय।
अन्ध पंगु अरू आलसी,जुदे जलैं दव -लोय॥१॥

चौपाई /१६ मात्रा

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करम-बंध कट जावै।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक रत्नत्रय ध्यावै॥
ताको चहुँ गति के दुख नाह्रीं, सो न परै भवसागर माहीं।
जनम-जरा-मृत दोष मिटावै, जो सम्यक्-रत्नत्रय ध्यावै॥
सोई दश लच्छन को साधै, सो सोलह कारण आराधै।

सो परमातम पद उपजावै, जो सम्यक रत्नत्रय ध्यावै॥
सोई शक्र-चक्री पद लेई, तीन लोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक्-रत्नत्रय ध्यावै॥
सोई लोकालोक निहारै, परमानंद दशा विसतारै।
आप तिरै औरन तिरवावै, जो सम्यक्-रत्नत्रय ध्यावै॥

दोहा

एक स्वरूप-प्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब द्यानत' को सुखदाय॥७॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्-चारित्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस्वती पूजा

दोहा

जनम -जरा-मृतु क्षय करै, हरै कुनय जड़रीति।
भव-सागर सों ले तिरै, पूजै जिन वच प्रीति॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वती वाग्वादिनी ! अत्र अवतर-अवतर संवौष्ट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वती वाग्वादिनी! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वती वाग्वादिनी ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

त्रिभंगी छंद

क्षीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा।
भरि कंचनझारि, धार निकारी, तृषा निवारी हित चंगा॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुख दानी, त्रिभुवन-मानी पूज्य भई॥

ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी।
शारद-पद वंदों, मन अभिनंदों, पाप निकंदो दाह हरी ॥तीर्थं०॥
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो चंदन निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं, धारक मोदं अति अनुमोदं चंद समं ।
बहु भक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं ॥तीर्थं०॥
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनंद रासं लाय धरे ।
मम काम मिटायो,शील बढायो,सुख उपजायो दोष हरे॥तीर्थं०॥
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया मिष्ठ महा।
पूजूँ थुति गाऊँ, प्रीति बढ़ाऊँ, क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा॥तीर्थं०॥
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो नैवद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर दीपक-जोतं, तम क्षय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढै।
तुम हो परकाशक,भरम-विनाशक,हम घट भासक ज्ञान बढै।तीर्थं०।
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुभगंध दशों कर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सब पाप जलावें, पुण्य कमावे, दास कहावे सेवत हैं॥तीर्थं०॥
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारे, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं।
मनवांछित, दाता मेट असाता, तुम गुन माता ध्यावत हैं।तीर्थं०।
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नयनन सुखकारी, मृदु गुनधारी, उज्ज्वल भारी मोल धरैं।
शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं।तीर्थं०।
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन अक्षत फूल चरु अरु, दीप धूप अति फल लावै।
पूजा को ठानत,जो तुम जानत,सो नर 'द्यानत' सुख पावै। तीर्थं०।
ॐ श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा

ओंकार ध्वनिसार, द्वादशांग वाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥
पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥
तीजो ठाना अंग सुजानं, सहस बयालिस पद सरधानं।
चौथो समवायांग निहारं, चौसठ सहस लाख इक धारम्॥
पंचम व्याख्याप्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठो ज्ञातृकथा विस्तारं, पांच लाख छप्पन हज्जारं ॥
सप्तम उपासकाध्ययनांगं, सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अंतकृतं दस ईसं, सहस अठाइस लाख तेईसं॥
नवम अनुत्तर दश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्नव्याकरण विचारं, लाख तिरानवे सोल हजारं ॥
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं॥
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इकसौ आठ कोड़ि पर वेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं॥
इक सौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने ॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं।
साढ़े इकीस श्लोक बताये, एक एक पद के ये गाये॥

जा बानी के ज्ञान ते, सूझे लोक अलोक।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हूँ धोक॥

ऊँ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वतीभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्व. स्वाहा।

नन्दीश्वर पूजा

(श्री प्रणम्य सागर कृत)

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, वसुविध द्रव्य संभार।
वसु दिन वासव पूजते पूजें मुनि सागार॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ -जिनप्रतिमा समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आव्हाननम्

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ -जिनप्रतिमा समूह अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपेद्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमा समूह अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्म सन्निधिकरणम्

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
जलधारा जिनचरण में विधिमल का क्या काम॥१॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यः जन्मजरामृत्यु विनशालय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
चन्दन अर्चित चरण से, चित शीतल आराम॥२॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
धवल धवल अक्षत चढ़े, मति हो धवल ललाम॥३॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यः अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
दिव्य पुष्प अर्चा महा, सिद्ध मनोरथ काम॥४॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
दिव्य दिव्य नैवेद्य ले, क्षुधा नशे दुख घाम॥५॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यः क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
मोह तिमिर का काम क्या केवल रवि का नाम॥६॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यःमोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
धूप उड़े पहुँचे वहाँ जहाँ सिद्ध सुखधाम॥७॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यः अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
समकित बढ़ता फल मिले फल शाश्वत बिन दाम॥८॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यः मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर वसुद्वीप में, बावन जिनवर धाम।
निज पद निश्चल निरापद पद अनर्घ्य विश्राम॥९॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

नन्दीश्वर द्वीप भक्ति

(दोहा)

श्री जिनेन्द्र महिमा महा, महाज्ञान की हेतु।
श्रद्धा श्री जिनदेव की, भव तारक इक सेतु॥१॥

नन्दीश्वर के द्वीप में, अष्टाह्निक मुख पर्व।
देव मनाते भक्ति से, पूजें हम मिल सर्व॥२॥

नन्दीश्वर है द्वीप आठवाँ, तीन भुवन में ख्यात रहा,
नन्दीश्वर सागर ने घेरा, महिमा अनुपम धार रहा।
इक सौ त्रेसठ कोटि चौरासी, लख योजन विस्तार महा,
द्वीप मण्डलाकार चहूँदिश, फैला जिनवर ज्ञान कहा॥३॥
पूर्व दिशा में मध्य भाग में, अंजन गिरिवर पर्वत है,
इन्द्रनील मणिमय अति सोहे, नील कांति का आकर है।
सहस चौरासी योजन ऊँचा इतना ही विस्तृत सब ओर,
एक सहसयोजन गहरा है,गोल-गोल है चारों ओर॥४॥
अंजन गिरि की चार दिशाएँ, चार द्रहों से शोभित हैं,
एक लाख योजन विस्तृत वे, चतुष्कोण मन मोहित हैं।
कमल-कुवलयों-कुमुदवनों से,अति सुगन्ध नित फैल रही,
एक सहस योजन गहराई, जिसमें जलचर जीव नहीं॥५॥
नन्दा नन्दवती वापी हैं, नन्दोत्तरा नन्दिघोषा,
पूर्वादिक दिशि में ये संस्थित, वनखण्डों ने भी पोषा।
वन अशोक सप्तच्छद चम्पक, आम्रवनों से चार दिशा,
चैत्य वृक्ष भी शोभित इनमें,अहो-अहो अति मन हर्षा ॥६।
इन वापी में मध्य भाग में, दधि सम उत्तम धवल महा,
दस हजार योजन वह ऊँचा, दधिमुख पर्वत शोभ रहा।
इतना ही विस्तार लिए है, एक सहस योजन गहरा,
गोल-गोल चहुँ ओर अनोखा, तट पर वन वेदी पहरा॥७॥
वापी के दो बाह्य कोण में, रतिकर दो पर्वत सोहें,
एक सहस योजन ऊँचे वे, इतने ही विस्तृत वो हैं।
योजन ढाई सौ अवगाहें, कनक कांतिमय आभा है,
चउवापी के अठरतिकर गिरि, पूर्वदिशागत शोभा है॥८॥
इस विध इक अंजन गिरि घेरे, चउदधिमुख अठरतिकर हैं,
जिनके शिखरों पर रत्नों के, इक-इक जिनवर मन्दिर हैं।
चार गोपुरों से शोभित हैं, मणि निर्मित सब कोट रहे,
प्रति जिनभवनों को घेरे ये, अनुपम शोभा धार रहे॥९॥

मानस्तम्भ बने प्रति वीथी, एक-एक नव-नव स्तूप,
वीथी पहले अंतराल वन, फिर ध्वजभूमि चैत्य स्वरूप।
एक शताष्ट गर्भगृह शोभे, तथा स्वर्णमय मण्डप एक,
प्रतिमण्डप में रत्नमयी फिर,सुस्तम्भों से युत भूदेख॥१०॥
गर्भगृहों के मध्य सुशोभित, सिंहासन आदिक के साथ,
नीले केश वज्रमयदन्त, लक्षणभृत पगतल अरु हाथ।
मूँगा सारिख लाल ओंठ से, मानो बोल रहे भगवान,
धनुष पाँच सौ सभी विराजे, कनकरत्नमय सब श्रीमान॥११॥
नागकुमार देव बत्तीस, इतने ही हैं यक्ष युगल,
जिन प्रतिमा पर चमर ढोरते, एक पंक्तिमय अलग-अलग।
झारी कलशा दर्पण पंखा, ध्वज ठोना अरु छत्र चमर,
मंगल द्रव्य सभी इक-इक हैं, एक शताष्ट वेदिका पर॥१२॥
जल चन्दन तंदुल कुसुमों से, वर चरु दीप धूप फल ले,
अर्घ बनाकर विविध-विविध सुर, हर्षाते संस्तुति करते।
ज्योतिर्व्यन्तर भवनवासिनी, कल्पवासिनी देवी भी,
भक्ति भाव से नृत्य गान में, रमती रहती खोई सी॥१३॥
भेरी घण्टा दिव्य नगाड़े, वाद्य बजाते उत्तम देव,
रात दिवस का भेद नहीं कुछ, जिनवर की महिमा का टेव।
इसी तरह से दक्षिण अंजन-गिरि की चार वापिकाएँ,
अरजा,विरजा,तथा अशोका, नाम वीतशोका गाएँ॥१४॥
पश्चिम अंजन गिरि के चहुँदिश, विजया और वैजयन्ती,
तथा जयन्ती तीजी चौथी, अपराजिता नामवन्ती।
उत्तर अंजनगिरि के चहुँ दिश, रम्या रमणीया भाती,
नाम सुप्रभा सर्वतोभद्रा ध्वजा वनों में लहराती॥१५॥
चार दिशा के चौंसठ वन में, एक-एक प्रासाद महा,
विविध भेद युत व्यन्तर देवों, परिवारों से विलस रहा।
मास आषाढ़ और कार्तिक में, फाल्गुन में भी सुर हर साल,
इसी द्वीप में आकर रहते, उत्सव करते बहुत विशाल॥१६॥

नानाविध वाहन पर चढ़कर, फूल माल फल हाथ लिए,
चार निकाय स्वर्ग सोलह के, देव सभी वाचाल हुए।
पूर्व दिशा में कल्पवासि सुर, दक्षिण में भावनसुर वे,
व्यन्तर पश्चिम दिशि में ठाड़े,ज्योतिषसुर उत्तर दिशि में॥१७॥
पूर्वाह्निक अपराण्ह समय में, पूर्व रात पश्चिम रात्रि,
छह-छह घण्टे क्रमशः पूजें करें प्रदिक्षण सब साथी।
पूजा रचकर आठ दिनों तक, पंच मेरु सब सुर जाते,
मन वच तन की चेष्टाओं से, भर-भर पुण्य सभी लाते॥१८॥

दोहा

नन्दीश्वर वर भक्ति को, जो जन पढ़े त्रिकाल।
केवलज्ञानी होय के, होते सिद्ध निहाल॥१९॥
वीर प्रभु निर्वाण की, पच्चीस सौ चवालीस।
कार्तिक अष्टाह्निक लिखी, भक्ति महा जिनईश॥२०॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यां जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलहकारण पूजा एवं विधान

(मुनि प्रणम्यसागर कृत)

सोलह कारण भावना भाय भए शिवराज।
जो भी भाता चाव सों पाए मोक्ष सुराज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावना अत्र अवतर अवतर संवौषट् आव्हानम्।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावना अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावना अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

सोलह कारण भावना भाय भए शिवराज।
जल से पूजूँ नित्य ही निर्मल मन के काज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना भाय भए शिवराज।
भावन ते शीतल हृदय चन्दन का क्या काज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना भाय भए शिवराज।
अक्षय पद के कारणे अक्षत बनें जहाज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना भाय भए शिवराज ।
काम भाव के नाशने पुष्प चढ़ाऊँ आज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना भाय भए शिवराज।
चरू चढ़ाऊँ चरण में क्षुधा वेदना लाज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना भाय भए शिवराज।
स्वपर प्रकाशक दीप सा पाऊँ केवल राज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै मोहअधंकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना भाय भए शिवराज।
धूप सुगन्धित भाव से तिहुँ जग के हित काज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै मोहअंधकार विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना, भाय भए शिवराज।
जग में तीर्थ प्रभावना, फल पाए जिनराज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै मोक्षफल प्राप्ताए फलं निर्वापामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना, भाय भए जिनराज।
अनर्घ्य पद पाऊँ महा, ना राजी नाराज॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि भावनायै अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

जयमाला

दरश सम्यक विशुद्धि से गुणी जन प्रति विनय आना।
शीलवत दोष बिन पाले सतत निज ज्ञान मन लाना।
डरे संसार दुःखों से त्याग तप हो यथा शक्ति
विघ्न बाधा करो दूर समाधि साधु की भक्ति॥
बिना हिंसा हो दुख मुक्ति, वैयावृत्ति सही मानी
बहुत अनुराग अर्हंत में, सूरि बहुश्रुत व जिनवाणी।
षडावश्यक पलें रोज धर्म महिमा सु दिखलाना
सहज साधर्मी प्रति नेह तीर्थंकर भाव मन भाना॥

दोहा

सोलह कारण भाय के, भए तीर्थंकर नैक।
भव्य जीव के भाव की, महिमा अद्भुत देख॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि षोडशकारणेभ्यो जयमाला अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

1. दर्शन-विशुद्धि-भावना

ज्ञानोदय छन्द

तीर्थंकर केवलि भगवन को, हाथ जोड़कर झुककर के
मन से, तन से और वचन से, भाव शुद्धि को रख कर के।
मैं प्रणाम करता हूँ नित ही, और उन्हीं को ध्याता हूँ
आत्म विशुद्धि बढ़े हमारी, भाव यही मन लाता हूँ॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं आत्मविशुद्धिवृद्धिकराय दर्शनविशुद्धिभावनाकारणाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दरश विशुद्धि आदि सोलह का, आतम में रखना सद्भाव
तीर्थंकर से महा पुण्य का, बन्ध कराते हैं यह भाव।
सम दृष्टि वह साधु पुरुष ही, पुण्य कर्मका बन्ध करे
स्वयं तिरे अनगिन जन तारे, तीन लोक में क्षोभ करे॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं तीर्थंकरमहापुण्यकराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थंकर नामक इस विधि का, बन्ध यहाँ हो या ना हो
हमको आतम शुद्धि करना, इसी लक्ष्य को ठाना हो।
कर्म निर्जरा भव्य जीव को, इस विधि निश्चित होती है
यही निर्जरा धीरे-धीरे, बीज मोक्ष का बोती है॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं मोक्षबीजनिर्जराकराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थंकर भगवान पुरुष के, चौंतीस अतिशय होते हैं
प्रातिहार्य आठों ही जिनके, दर्शक के मन खोते हैं।
तथा चतुष्टय आतम के जब, विषय ध्यान के बनते हैं
आत्म विशुद्धि के कारण ये, दरशन शुद्धि करते हैं॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं चतुस्त्रिंशदतिशयाष्टप्रातिहार्यसहितजिनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिनेन्द्र की जिन प्रतिमाएं, शुद्ध सदा हैं जिनवर सी
सौम्य रूप हैं निर्विकार हैं, वस्त्र रहित हैं मुनिवर सी
भव्य जीव तुम नित ही इनका, पूजन, वन्दन ध्यान करो
समकित भाव विशुद्ध बनाके, आत्मशुद्धि का भान करो॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं सौम्यरूपजिनबिम्बेभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जहाँ-जहाँ से सिद्ध हुए हैं, तीर्थंकर केवली भगवान्
उन सब स्थानों को नित मैं, वन्दन करके करता ध्यान।
सम्मेदाचल पर्वत हो या, उर्जयन्त के शिखर महान
हैं सम्यक्त्व विशुद्धि हेतू, आत्म शुद्धि की जो पहिचान॥६॥

ऊँ ह्रीं अर्हं सम्मेदाचलादिसर्वसिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो विहार में मिलते जाएं, सिद्ध क्षेत्र तीरथ लघुग्राम
जिनालयों में सदा विराजे, बिम्ब अपूर्व सदा अभिराम।
उन सबकी भक्ति से नित ही, संस्तुति पूजन वन्दन हो
यही विशुद्धि हेतु बने हैं, सद्दर्शन के भाव अहो!॥७॥

ऊँ ह्रीं अर्हं सर्वसिद्धक्षेत्रातिशयक्षेत्र-विराजमान-जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन वचनों को धारण करने, की बुद्धि भी हेतु है
युक्ति से श्रुत को समझाना, भी शुद्धि का सेतु है।
श्रुत, सिद्धान्त पठन-पाठन से, सम-दर्शन दृढ़ होता है
भक्तिभाव से रुचि बढ़ने से, मन आतम में खोता है॥८॥

ऊँ ह्रीं अर्हं जिनधर्म-जिनागमदेवाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वभावना में रुचि रखता, निःशंकादि गुणों में लीन
सम्यग्दर्शन के दोषों को, तजने में जो बहुत प्रवीण।
शम, संवेग, दया अरु श्रद्धा, निकट भव्य के चिन्ह रहे
सम दर्शन की शुद्धि हेतु, गुण-दोषों का ज्ञान रहे॥९॥

ऊँ ह्रीं अर्हं सम्यग्दर्शनगुणप्राप्ताय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊँ ह्रीं अर्हं दर्शनविशुद्धि-भावना ममाऽस्तु।

2. विनय-सम्पन्नता-भावना

मोक्ष मार्ग का नेता वह ही, बनता जिसमें विनय रही
सम्यग्दृष्टि जन का लक्षण, सबसेपहले विनय कही।
दर्शन ज्ञान-चरित्र मयी जो, शिव पथ में रुचि रखता हो
शिवपथगामी जन से कैसे, भला अरुचि रख सकता वो?॥१॥

ऊँ ह्रीं अर्हं शिवपथगामिनी विनयसम्पन्नता भावनाकारणाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो रत्नत्रय धारण करके, नित उसका पालन करते
वही धर्म है जिसको धरके, धार्मिक सब जन हैं कहते।
जग में रहकर भी जो जग से, नहीं अपेक्षा कुछ रखते
उनके चरण कमल में दृष्टि, लगी सहज वो मद हरते॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं रत्नत्रयविनयविभूषिताय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय आतम का गुण है, आतम का ही धर्म कहा
अन्य द्रव्य में भला कहीं यह पाया जाता कहो ? अहा!
धर्म , गुणों को धारण करते, वे धार्मिक जन कहलाते
उनकी भक्ति में जो लगते, वे सम्यक् सुख पा जाते॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं रत्नत्रयगुणधारकधर्मिजनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्ष मार्ग में लगे हुए की, दर्प युक्त होकर के जो
विनय चाहता, भक्ति चाहता, मान कषाय बढ़ाकर जो।
स्वयं बना अभिमानी है जो, स्वयं कषायी होकर आप
विनय योग्य वह कहो कहाँ से, हो सकता जब ना निष्पाप॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं मानकषायरहिताय जिनसाधवे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो जन विनय नही करता है, कैसे ऋजुता धर्म धरे
ऋजुता बिन मन भारी रहता, कैसे मन को सौख्य अरे!
इस जीवन में सुखी नहीं जो, कैसे आगे सुख पाए
बीज नहीं बोया तो मानव, कैसे तरुवर फल खाए?॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं मृदुहृदयकराय जिनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थंकर, गणधर देवों ने, दो प्रकार तप बतलाए
विनय कहा अभ्यन्तर तप है, इसमें साधक मन लाए।
निर्मद मन ही हलका होकर, आतम में गोते खाता
डूब-डूब कर डुबकी लेता, करम मैल धोता जाता॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं अभ्यन्तरतपःसाधकाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उच्च कुलीन महाजन हो या, सुन्दर हो चौखा हो रूप
ज्ञान प्रशंसा भी हो जग में, वैभव सहित बना हो भूप।
फिर भी आत्म प्रशंसा करके, नहीं गर्व जो मन धारे
पूज्य पुरुष लख नयन झुकाता, विनयपूर्ण वच-तन सारे॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं अष्टविधमदहराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नहीं ज्ञान का, पूजा का मद, ना जाति ना कुल का मद
बल, ऋद्धि का तप तपने का, ना शरीर का जिसको मद।
ऐसे मृदुतम भावों वाला, साधक अठ मद नाश रहा
उछल-उछल कर आत्म शक्ति से,शिव-सुख करता वास अहा।८।

ॐ ह्रीं अर्हं अष्टविधमृदुतमभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं विनयसम्पन्नता भावना ममाऽस्तु।

3. शीलव्रतेष्वनतिचार भावना

धर्म देशना के अवसर पर, यत्र तत्र विचरण करते
अणुव्रत और महाव्रत का ही, वीर प्रभु वर्णन करते।
बिन अतिचार इसी संयम का, भाव सहित नित पालन कर
तथा भावना के पौरुष से, भाग्यवाद का वारण कर॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं शीलव्रतेषुनिरतिचार भावनाकारणाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो समकित समदर्शी प्राणी, जिनवर कथित व्रतादिक को
रुचि से गहता भाग्य समझता, संयम,व्रत तप पालन को।
ग्रहण करूँ कब कठिन व्रतों को, इस विधि भाव जगाता है
शील-व्रतों की करे भावना, भाव फलों को पाता है॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं संयमव्रततपःपालकाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ग्रहण किए हैं व्रत आदिक जो, उनके पालन में रमता
सावधान हो कायादिक से, प्राणिदया मन में रखता।

लोभादिक को जीत लिया तो, विकथा का क्या कारण हो
निरतिचार व्रत-शीलादिक को, पाल रहा साधारण हो॥३॥
ॐ ह्रीं अर्हं प्राणीन्द्रियसंयमधारकाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हो अनन्यमन एकमना वो, परमारथ रथ पर चढ़ता
स्वयं सारथी योद्धा भी हो, मन विकल्प रिपु से लड़ता।
पुण्य फलों से मिले भोग की, नाम, दाम की चाह बिना
बना विजेता मोक्षमार्ग का, व्रती वही निर्दोष बना॥४॥
ॐ ह्रीं अर्हं मोक्षमार्गव्रतधारकाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच व्रतों की रक्षा कारण, शील व्रतोंका अपनाना
बाड़ लगाकर बढ़ी फसल की, रक्षा करना ज्यों माना।
नित्य भावना उत्साहित हो, करे व्रती व्रत-शीलों की
लेखा-जोखा साफ-साफ, तो बहे धार गुण झीलों की॥५॥
ॐ ह्रीं अर्हं व्रतशीलोत्साहकरणाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाह्य जगत के कार्य-क्रमों में, निर्विकल्प जो बना हुआ
मन उलझन के भावों को तज, क्षोभ रहित हो तना हुआ।
इष्ट-अनिष्ट विकल्प मूर्खता, रही ज्ञानिता समता में
ऐसा मति में अवधारण कर, व्रती बढ़ रहा क्षमता में॥६॥
ॐ ह्रीं अर्हं इष्टानिष्टविकल्परहितकराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील महासागर लहराता, क्षमाभाव से अति गंभीर
नित उत्ताल तरंगों से जो, दोष फेंकता बाहर धीर।
आतम रत्नाकर गुण-वैभव, पर संयोग दोष का धाम
यह विचार कर शील व्रतों में, निरतिचार करता आराम॥७॥
ॐ ह्रीं अर्हं शीलमहार्णववैभवाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ग्रहण नहीं व्रत किये हैं मैने, किन्तु मुझे हैं प्राण मिले
व्रत मेरा आतम स्वरूप है, व्रत सेवन से त्राण मिले।

व्रत संयम में दोष लगाना, निज प्राणों की पीड़ा है
यह विचारता उसी व्रती का, दोष रहित व्रत बीड़ा है॥८॥
ॐ ह्रीं अर्हं व्रतरुपात्मस्वरुपाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं शीलव्रतेषुअनति-चार-भावना ममाऽस्तु ।

4. ज्ञान-भावना

संवर तत्त्व समादर करता, नित्य निर्जरा को चाहे
आतम का वह रसिक बना है, आत्म भावना को भाए।
जिसको लगन लगी आतम की, शिवपथ को जो चाह रहा
ज्ञान भावना लीन यती वह, ज्ञानामृत रस पाग रहा॥१॥
ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानभावनाधारकाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान सुगुण से भरा हुआ है, आतम पूरा चारों ओर
निज स्वभाव को यूँ विचारकर, अन्य विषय पर ना है गौर ।
इष्ट-अनिष्ट विषय को जो नित, ज्ञेय मात्र ही जान रहा
वह विरक्त साधू ही जग में, ज्ञान भावनावान रहा॥२॥
ॐ ह्रीं अर्हं इष्टानिष्टज्ञेयमातृज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्दर्शन और चरित में, सम्यग्ज्ञान प्रमुख माना
यही संभाले दोनों गुण को, इसीलिए नायक माना।
सम्यग्दर्शन की सेवा हो, या हो सम्यक्चारित की
ज्ञान निरन्तर जान रहा है, ज्ञानी के मन भावन की॥३॥
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्दर्शनचरित्रनायकसम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित पालन करता, नित रक्षण में भी दे ध्यान
सम्यग्दृष्टि वह अवश्य ही, भाता रहता ज्ञान प्रमाण।
शुद्ध आत्म परमार्थ भावना, के वश जो भी करता है
वह अभीक्षण ज्ञानी माना है, भवि जन मन को हरता है॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं शुद्धात्मपरमार्थभावनारूपाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वैसे तो सिद्धान्त शास्त्र में, पाँच ज्ञान गाये जाते
मति श्रुत अवधि मनःपर्यय, औ केवलज्ञान नाम पाते।
किन्तु ज्ञान श्रुत भाव रूप से, परिणत होता मात्र यही
इसी भाव में परिणत ज्ञानी, निजानुभूति का पात्र सही॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं भावश्रुतज्ञानपरिणतनिजानुभूतये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कुछ हमें दिखाई देता, वह पदार्थ मम रुप नहीं
मैं शरीर ना वचन रूप ना, कर्म रुप मन रूप नहीं।
मैं आतम हूँ ज्ञान मात्र हूँ, नित्य भावना में लवलीन
ज्ञान मात्र उपयोग मात्र रस, ज्ञानी पी पी होता पीन॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानमात्रोपयोगपानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञेय विश्व इस ज्ञानातम के, दर्पण में आ स्वयं गिरे
विश्व ज्ञेय से बड़ा ज्ञान है, इसमें क्या आश्चर्य अरे।
ज्ञान मात्र का आश्रय लेकर, भाव कलुषता न्यून करे
ज्ञान योग-उपयोग लगाकर, ज्ञानी ज्ञान स्वभाव भरे॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानमात्रोपयोगरूपज्ञानस्वभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञान-भावना ममाऽस्तु।

5. संवेग-भावना

श्री जिनधर्म अतिविशुद्ध है, कर्म नाश का कारण है
पुण्य फलों को देने वाला, निःश्रेयस सुख धारण है।
इसका सेवन करने से जो, भवि जन मन में हर्ष धरे
निश्चित ही संवेग भावना, जीवन में निर्वेग भरे॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं निःश्रेयससुखकारणस्वरुपसंवेगाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

काल अनादि से यह आतम, कर्म बन्ध से सहित रहा
नहीं हुआ उत्पन्न किसी से, इस भव वन में घूम रहा।
नित्य निगोद वास ही सबका, इस विधि जो चिंतन करता
वह भव-वन के भ्रमण दुखों से, डर संवेग भार भरता॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं भवभ्रमणदुःखभीतिकराय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जन्म मरण परिवर्तन के ये, दुःख जीव बहु भोगा है
दो इन्द्रिय आदिक भव पाके, पंचेन्द्रिय संयोगा है।
थावर जंगम सब जीवों के, दुःखों का चिन्तन करना
नित्य नयें संवेग भाव का, इसी तरह वर्धन करना॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं नित्यनवसंवेगवर्धकाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जो मनुष्य तिर्यंच गति के, गर्भ वास में वास किए
जन्म प्राप्त कर संयोगों से, अरु वियोग से व्यथित हुए।
बड़े हुए तो रोग-बुढ़ापा, पीड़ाओं ने घेर लिया
इसी तरह के चिन्तन से मन, संवेगित सन्नीर पिया॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं तिर्यग्गतिदुःखसंवेगितचित्ताय नमः अर्घ्यं निर्व.
स्वाहा।

महापुण्य के महाफलों से, महा-महा वैभवशाली
देव-इन्द्र, चक्री राजा का, दुख से होता मन खाली।
ऐसे महापुण्यवन्तों को, जग में यदि दुख होता है
तो सुख किसको होगा सोचो, क्यों विषयों में खोता है॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं संवेगसुखप्राप्तये नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

प्रथम, करण अरु चरण,द्रव्य से, चतु अनुयोग शास्त्र आधार
इन शास्त्रों के पढ़ने से ही, होता है संवेग अपार ।
धर्म कार्य से हो मन हर्षित, भाव विराग बढ़े उर धार
नए-नए संवेग भाव की, बढ़ती होवे तो जग पार॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं चतुरनुयोगशास्त्राधारसंवेगाय नमः अर्घ्यं निर्व.
स्वाहा।

पर कार्यों में उत्कण्ठित जो, तीव्रतमा आवेग कहा
तीव्रतरी फिर वही लालसा, ध्यानी का उद्वेग रहा।
मन्द-मन्द आकांक्षा रहना, उत्सुकता का होना है
शान्त ध्यान निर्वेग भाव से, मन संवेग सलोना है॥७॥

ऊँ ह्रीं अर्हं शान्तध्यानमयनिर्वेगभावाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

चारों गति से त्रस्त हुआ जो, जिन स्वरूप में लीन हुआ
श्री जिनवर के कथित धर्म में, हर्षित होकर शुद्ध रहा।
जिसका चित्त विमुक्त हुआ है, सांसारिक अभिलाषा से
नया-नया संवेग भाव वह, अनुभव करे शिवाशा से॥८॥

ऊँ ह्रीं अर्हं नवनवसंवेगभावाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

ऊँ ह्रीं अर्हं संवेग-भावना ममाऽस्तु।

6. तपो-भावना

तीर्थंकर भगवन्त सभी ने, एक मार्ग दिखलाया है
अष्ट कर्म के नाश करन का, तप उपाय बतलाया है।
अनशन अवमोदर भेदों से, छह प्रकार तप बाह्य रहा
अन्तरङ्ग तप विनय आदि भी, छह प्रकार से सदा कहा॥१॥

ऊँ ह्रीं अर्हं बाह्याभ्यन्तरतपोभेदभावाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

अन्तरंग तप की वृद्धि का, कारण बाहर का तप है
जिस तप से संक्लेश न होवे, वह अन्तर का साधक है।
यथाशक्ति तप करना तपसी, शक्ति छिपाना धर्म नहीं
उस तप से क्या अर्थ रहा यदि, तपो भावना पुनः नहीं॥२॥

ऊँ ह्रीं अर्हं अनिगूहितशक्ति तपोभावाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जीव कर्म का ज्यों अनादि से, बन्ध रहा त्यों तन का भी
तन में आतम रमता भ्रमता, मोह बढ़ाता ममता भी।
इसी मोह का क्षय कर देना, तप का काम अनूठा है
किए बिना तप मोक्ष दिखाए, सच मानो वह झूठा है॥३॥

ऊँ ह्रीं अर्हं मोहक्षयकराय तपोभावाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

बड़े-बड़े उपवासादिक यदि, करने की सामर्थ्य न हो
तो भी समकित की शुद्धि से, अल्प तपस्या बहुत अहो।
यदि तप फल से चाह रहा तू, कीर्ति कामिनी पूजा को
तो तप तेरा वह निष्फल ज्यों, कृषक चाहता भूसा को॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं कीर्तिकामिनीप्रभृतिकांक्षारहिततपोभावाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सभी जगह पर सभी मतों में, अनशन आदिक तप देखे
सुलभ दीखते सभी जनों को, आत्म ज्ञान से अनदेखे।
जीवदया सह इन्द्रिय संयम, वा शिवपथ की अभिलाषा
समीचीन संयम सह तपना, दुर्लभ ना हो जग आशा॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं निरभिलाषतपोभावाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

तप करते-करते साधक के, भाव विकारी नशते हैं
क्रोध, मान इच्छाएँ तम हैं, तप रति लख सब भगते हैं।
जैसे -जैसे बढ़ती जाएं, तपो भावना मुनि मन में
तैसे -तैसे बढ़ती जाए, निज रुचि-समता आतम में॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं तपःसहनिजरुचिवर्धकभावाय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जो अनादि से मोहजनित है, भ्रम तन में ही आतम का
वो अनादि भ्रम विगलित होवे, रूप दिखे परमातम का।
वह तप से ही होता देखा, चतु गति भ्रमण मिटा देना
तपो भावना निरत मनीषी, सुख दुख से फिर क्या लेना?॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं सुःखदुःखरहिततपोभावनानिरताय नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

तप तपने का मुख्य कार्य है, पाप हानि अठविध विधि की
आत्म भावना देती सबको, मोह हानि फिर चिर अघ की।
तपो भावना ज्ञान भावना, दोनों का संयोग बने
आत्म शुद्धि हो निज स्वभाव की, उपलब्धि का योग बने॥८॥

ॐ ह्रीं अर्हं निजस्वभावोपलब्धिकरतपसे नमः अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं तपो-भावना ममाऽस्तु।

7. प्रासुक-परित्याग-भावना

दान मिला है महाजनों से, तीर्थंकर का ज्ञान मिला
इस अपार संसार सुखाने, जिन-वाणी रस पान पिला।
दिव्यपुरुष के दिव्य वचन ही, दिव्य दान हैं ग्रहण करो
पर पीड़ा-हिंसा बिन प्रासुक, त्याग वचन का श्रवण करो॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं दिव्यवचनप्रदानभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो साधु प्रासुक खाता है, जिह्वा वश में रखता है
जो प्रासुक पथ पर चलता है, दया हृदय में रखता है।
उस साधु के वचनामृत ही, मोह महा विष शमन करें
ज्ञानामृत देने वाला ही, प्रासुक त्यागी नमन करें॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानामृतप्रदायिप्रासुकत्यागिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सभी त्याग में महा त्याग है, रत्नत्रय का त्याग कहा
रत्नत्रय ही आत्मधर्म है, धर्मदान बड़भाग कहा।
बड़भागी जो साधु बना है, उसका ही यह कार्य रहा
प्रासुक का वह ही परित्यागी, श्रमण बना है आर्य महा॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं प्रासुकरत्नत्रयधर्मप्रदायिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वह उपदेश ही प्रासुक माना, जिसमें जीव दया का ज्ञान
संयम पथ पर बढ़ने की रूचि, बढ़ता जाए सम्यग् ज्ञान।
हेय रहा क्या उपादेय क्या, यह विवेक विज्ञान बने
भेदज्ञान का बढ़ता जाए, शिवपथ का सम्मान बने॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं भेदज्ञानतत्परप्रासुकोपदेशकाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस धर्मोपदेश में ना हो, सम्यग्दर्शन अरु वैराग्य
जिसमें फूहड़ हास्यपना हो, लोग लुभाना समझे भाग्य।

वह उपदेशक प्रासुक त्यागी, नही कहा है जिनमत में
तीर्थंकर पद बन्ध प्रबन्धन, भाव नहीं उस आतम में॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं तीर्थंकरपदबन्धकरप्रासुकभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावक को यह त्याग भावना, यथाविधी फल देती है
उचित पात्र को दान चतुर्विध, बीज सौख्य का बोती है।
श्रमण संघ को जो भी देना, प्रासुक दो शक्ति अनुसार
प्रासुक परित्याग भावना फल, देती निज भाव विचार॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं प्रासुकपरित्यागभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिसके मन में नहीं निवसती, हिंसा और मोह की खान
नहीं रहे मात्सर्य भाव भी, नहीं कलुषता औ अज्ञान।
उस साधु के वचन कहे हैं, ज्ञान दान शिव का आधार
वही रहा प्रासुक परित्यागी, पर निरपेक्ष दया आधार॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं निरपेक्षप्रासुकधर्मपरित्यागिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान दान का मुख्य धर्म तो, श्रमणराज के योग्य कहा
पर गृहस्थ भी इसी धर्म को, गौण रूप से पाल रहा।
दान-त्याग का मुख्य प्रयोजन, ममता मोह विनाशन हैं
पात्र और दाता का संगम, धर्म विवर्धन कारण है॥८॥

ॐ ह्रीं अर्हं पात्रदातृधर्मविवर्धन-कारणाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं प्रासुकपरित्याग-भावना ममाऽस्तु।

8. साधु-समाधि-भावना

जिसके चित्त विशुद्धि रहती, क्लेश रहित जीवन जीता
धर्मध्यान औ शुक्लध्यान से, आतम अनुभव रस पीता
आतम में ये भाव निराले, विरले जन में हैं मिलते

साधु समाधि भावना वाले, मुनियों के मन-मुख खिलते॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं धर्मशुक्लध्यानधारक साधुसमाधये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनो योग औ वचन योग से, काय योग से सहित हुआ
तीनों योग सहित श्रमणों का, सावधान उपयोग हुआ।
योग और उपयोग बने जब, निश्चल एक लक्ष्य संधान
एसा साधु सतत भा रहा, साधु समाधि भावना जान॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं उपयोगयोगनिश्चलसमाधिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

किसी साधु के लिए कभी भी, नहीं सोचता वक्र सदोष
नहीं कभी भी अप्रिय बोले, वचन काय से मृदु निर्दोष।
छोटे-बड़े सभी सहधर्मी, सबके सुख की चाह करे
उस साधक के हृदय कमल में, साधु समाधि सुभाव भरे॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं सहधार्मिकजनशुभचिन्तकभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वयं दुखी जो हो जाता है, देख दूसरों का अपमान
और देखना चाहे नित जो, निज-पर का हितकर सम्मान।
आत्म रूप में रुचि रखता है, करा रहा रुचि आतम में
साधु समाधि भावना उसके, प्रतिपल पलती आतम में॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं निजपरहितकरसाधुसमाधि-भावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्त समय में मरण समाधि, धार रहा उत्साहित हो
क्षपक मोह क्षय करने वाला, देख रहा उसका भी हो।
जो उनकी परिचर्या में नित, तत्पर हो उपयोग लगा
साधु समाधि भावना धारक, तीर्थंकर पद बन्ध पगा॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं समाधिकरणोत्साहितसाधुसमाधये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुत को पढ़-पढ़ तप को तपकर, जो तप-श्रुत में निष्ठावान
वह साधक आराधक माना, दश धर्मों का निश्चय जान।
जो श्रद्धा से निज आतम को, आराधन में दृढ़ करता
साधु-समाधि भावना उर में, रात दिवस साधक धरता॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं तपःश्रुतनिष्ठायुक्तसाधुसमाधिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मन चंचल है जिस साधक का, विचलित होता रहता जो
निजमति बल से मृदुवचनों से, उसको संबल देता जो।
मानो पवन वेग से दीपक, बचा रहा देकर कर ओट
साधु समाधि भावना भाता, देकर के आवश्यक चोट॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं संबोधनसंबलप्रदवचनलाभाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सबका चित्त रहे अपने में, जो विचारता रखे विचार
यह मानुष तन अस्थिर सबका, आपस की सब कलह सुधार।
अपने व्रत का ध्यान धारकर, निज हित को जो करे विचार
साधु समाधि भावना उसको, कर देती है भव से पार॥८॥

ॐ ह्रीं अर्हं निजव्रतरक्षासहसाधुसमाधिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सदा रखे शुभ भाव हृदय में, जो प्रमाद से मुक्त सदा
चित्त ध्यान में तृप्ति आत्म में, पर तृष्णा से मुक्त सदा।
वह साधु ही नित समाधि की, रहे भावना में तल्लीन
जग मे रह कर मुक्त रहा है, वह ही जग में है परवीन॥९॥

ॐ ह्रीं अर्हं ध्यानतृप्तिकरशुभभावधारकसाधु-समाधि-भावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं साधु-समाधि-भावना ममाऽस्तु।

9. वैयावृत्यकरण-भावना

यह शरीर तो रहा अचेतन, दुर्गन्धित है अशुचि निधान
चर्म मात्र से शोभ रहा है, भीतर रुधिर-मांस-मल खान
यदि नितान्त एकान्त रूप से, ऐसा तन तू मान रहा
फिर तू वैयावृत्य करे क्यों, क्या चेतन पहचान रहा?॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं वैयावृत्यकरणकारणज्ञाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूल रहा तू जो मुनि जन हैं, रत्नत्रय से नित्य पवित्र
तपोधनों का तन चेतन संग, पूज्य बना ज्यों पट संग इत्र ।
रत्नत्रय के दिव्य लाभ की, हो इच्छा यदि तुमको मित्र
तो तुम मुनितन सेवा करना, पा लोगे जिनदेव चरित्र॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं रत्नत्रयदिव्यलाभाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे साधो! केवल चेतन ना, तन का भी अवबोध रखो
क्या तन में है रोग देह का, क्या स्वभाव त्रय दोष लखो।
यदि निदान तुम नहीं जानते, देह रोग का ऋतु अनुसार
तो साधु का मरण समाधि, कैसे हो आराधन सार॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं देहरोगदूरकरणज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इस पंचम कलि काल में देखो, तन आश्रित हैं मन परिणाम
मृत्यु समय पर इसीलिए ही, तन सेवा चेतन की जान।
जीवन भर जो धर्म आराधन, किया निरालम्बन सुख से
उस साधक को अन्त समय में,यदि आलम्बन मृति सुख से॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं मरणान्तालम्बन-प्रदाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कौन करे इसकी तन सेवा, ऐसा सोच तजे यदि साधु
तो वह आत्म धर्म ही तजता, कहते हैं साधक तप साधु।
धर्म अकेला कहाँ रहेगा धार्मिक जन बिन मुझे बता
धर्मी सेवा धर्म बनी है, धर्मी ही है धर्म पता॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं धर्मीसेवाधारणाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वैयावृत्य महागुणकारी, तप है पूज्य बनाता है
चित्त विशुद्ध करे तपसी का, निज-पर का हितदाता है।
नारायण श्रीकृष्ण गृही ने, औषधि देकर कर सेवा
तीर्थंकर पद बन्ध किया है, तीन लोक को सुख-देवा॥६॥

ऊँ ह्रीं अर्हं तीर्थंकरपदबन्धकारणाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भावचित्त में जो आते हैं, देहाश्रित ही दिखते हैं
क्लेश, विशुद्धि, सुख,दुख, समता, पर आश्रित फल रखते हैं।
तन सेवा से हो प्रसन्न मन, शल्य छोड़ बनता है शान्त
इसीलिए यह वैयावृत्ति, क्षपक चित्त करता निर्भ्रान्त॥७॥

ऊँ ह्रीं अर्हं निर्भ्रान्तचित्तकरणाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करो भावना सेवा की तुम, साधु का यह मुख्य धरमें
धर्म मार्ग को प्रकट दिखाता, नष्ट करे अघ अष्ट करम।
श्री जिनवर वाणी सिखलाती, निश्चय अरु व्यवहार धरम
उभय धरम का ध्यान रखो तो, कभी नहीं हो मन विभ्रम॥८॥

ऊँ ह्रीं अर्हं निश्चयव्यवहारतपःसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊँ ह्रीं अर्हं वैयावृत्यकरण-भावना ममाऽस्तु ।

10. अरिहन्त-भक्ति-भावना

भूत काल में जो नर मुक्ति, गये, जा रहे, जाएंगे
वे अरिहन्त चरण की भक्ति, का फल पाए पाएँगे।
जिनकी भक्ति करते करते, परिणति सम्यक् हो जाती
ऐसी अर्हंद् भक्ति करने, क्यों तव मति ना लग जाती॥१॥

ऊँ ह्रीं अर्हं शिवसुखकारणार्हद्भक्तिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह महा विष आतम भीतर, पग-पग मूर्छित करता है
वह विषनाशक जिनवर भक्ति, जिससे आतम जगता है।
मन में भरे मदन को मद को, आलस को जो दूर करे

उन जिन वर पदकमल भक्ति कर,पुण्य फलों को पूर अरे॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं मोहमहाविषहरणसमर्थार्हद्भक्तिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दूर रहे अरिहन्त देव की, भक्ति का माहात्म्य यहाँ
उनकी प्रतिमा की भक्ति भी, भव वृद्धि की रोक यहाँ।
ज्यों विषनाशक मन्त्र शक्ति से, विष तन का हो दूर अवश्य
त्यों श्रद्धा से श्री जिनेन्द्र की, मोह महाविष हरे अवश्य॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रद्धावर्धकार्हद्भक्तिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हुए सुशोभित समवशरण में, तीस चार अतिशय वाले
अष्ट प्रातिहार्यों की शोभा, देख सभी हों मतवाले।
उन अरिहंत परम जिनवर की, भक्ति महा अतिशयकारी
बिना मूल्य बहुमूल्य पदों को, सहज दिलाती सुखकारी॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं बहुमूल्यपदप्रदायार्हद्भक्तिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैने दीक्षा धारण कर ली, श्री जिनवर का रुप मिला
रहा प्रयोजन क्या भक्ति से, संयम का उपहार मिला।
जो विचारता ऐसा साधु, वह संयम की बाधाएँ
कैसे नाश करेगा फिर वह, कर्मों की आबाधाएँ॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं संयमबाधादूरकराय अर्हद्भक्त्यै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिनवर की भक्ति बिना, तो सम्यग्दर्शन नहीं रहे
रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं तो, कहो समाधि कहाँ रहे?
बोधि समाधि बिना वह दीक्षित, नग्न मात्र हो क्या पाए?
चतुर्गति का दुःख निवारण कैसे भिक्षु कर पाए? ॥ ६॥

ॐ ह्रीं अर्हं बोधिसमाधिप्रदार्हद्भक्तिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भव्य जीव जो जिन भक्ति में, सहज रुचि को रखता है
और अन्य को उसी भक्ति में, रूचि करा हर्षाता है।
ऐसा पुण्यवान ही प्राणी, तीन लोक में कीरत पा
क्या-क्या सुफल नहीं देती है, भक्तों को जिनदेव कृपा॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं जिनदेवकृपाकराय अर्हद्भक्त्यै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देह-आत्म के भेद ज्ञान की, शक्ति मिले जिन भक्ति से
निज इन्द्रिय को वश में रखकर, कर्म हने निज शक्ति से।
कर्मों की जो शक्ति निकाचित, औ निधत्ति भी विनश रही
सब जप-तप से बढ़कर भक्ति, अचरज रखकर विलस रही॥८॥

ॐ ह्रीं अर्हं निधत्तिनिकाचित्तबन्धहराय अर्हद्भक्तिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं अरिहंत भक्ति-भावना ममाऽस्तु ।

11. आचार्य-भक्ति-भावना

निज आतम उद्धार हेतु जो, साधु बने हैं भावों से
साथ-साथ जग का कल्याणक, बने सूरि सद्भावों से।
स्वयं पुण्य से बने, पुण्य से, लाभ मिले आचारज का
भव वैतरणी पार करन को, नाव मिली फिर अचरज क्या॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं भववैतरणीतरणाय आचार्यपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्म-जन्म के पुण्य भविक जन, जब संचित कर लेते हैं
गुण-गण भरे देह सूरी की, दिव्य मूर्ति तब लखते हैं।
सर्व लोक में जिनकी महिमा, जैन धर्म को बता रही
उन आचार्य देव की जग में, धर्म ध्वजा पथ बता रही।२॥

ॐ ह्रीं अर्हं धर्मध्वजनायकाय आचार्यपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनकी जग में निर्मल कीर्ति, दिगंतरों में छाती है

जैसे चन्द्र चाँदनी नभ में, उजली-उजली भाती है।
चन्द्र तुल्य जिनका मुख मण्डल, दर्शन शीतलता देता
रहें सदा जयवन्त जगत में, सूरि दर्श अघ हर लेता॥३॥

ऊँ ह्रीं अर्हं चन्द्रतुल्यमुखमण्डलधारकाय आचार्यपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दो नय की आँखों से सबको, गुरुवर पथ दिखलाते हैं
बिना लोभ के ज्यों स्वभाव से, दीप प्रकाश दिखाते हैं।
वत-समिती-गुप्ति से पूरण, पंचाचार परायण हैं
जयवन्तें आचार्य देव जो, नर होकर नारायण हैं॥४॥

ऊँ ह्रीं अर्हं पंचाचारपराणाय आचार्यपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थंकर की दिव्य ध्वनी का, अति अथाह वच पान किया
अपनी मति अंजुलि से जिनने, पिया स्वयं फिर पिला दिया।
जो पाया वह बाँट रहे हैं, निज-पर उपकारक आचार्य
रहें सदा जयवन्त जगत में, परमेष्ठी पद धारक आर्य॥५॥

ऊँ ह्रीं अर्हं निजपरोपकारकाचार्यपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मत एकान्त समर्थन करने, वालों से ना घुले मिले
ख्याति लाभ की इच्छा से ना, मान दिलाते मान मिले
नहीं प्रतिष्ठापन, ईर्यादिक, समिति गुप्ति का नाश करें
वह आचार्य परम परमेष्ठी, जयवन्ते भवि पाप हरें॥६॥

ऊँ ह्रीं अर्हं ख्यातिलाभरहितसमितिपालकाय आचार्यपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्ग भ्रष्ट जो जीव रहे हैं, उनको सम्बोधन देकर
सम्यक् चारित ग्रहण कराते, शिव सुख का लालच देकर।
फिर उस शिष्य की रक्षा करते, विषय मोह से पापों से
सो जयवन्त रहें आचारज, पितु सम पाले प्राणों से॥७॥

ऊँ ह्रीं अर्हं सम्यक्चारित्रप्रदाय आचार्यपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाव्रतों का भार धारते, निज आतम में बन अति नम्र
और शिष्य समुदाय पालते, महाबली जो पूरी उम्र।
भव दुख रोग विनाशन हेतू, दिव्य वैद्य बनकर आए
उनसे भक्ति प्रार्थना करके, बोधि-निरोग-शक्ति पाए॥८॥

ऊँ ह्रीं अर्हं भवरोगविनाशकवैद्याय आचार्यपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊँ ह्रीं अर्हं आचार्य-भक्ति-भावना ममाऽस्तु।

12. बहुश्रुत-भक्ति-भावना

जो सिद्धांत महाशास्त्रों का, पार पा लिए सरलमना
फिर भी आत्म प्रशंसा बिन हैं, श्रुत भक्ति से शुद्धमना।
कर्म निर्जरा कारण पढ़ते, और पढ़ाते भविजन को
बहुश्रुतधारक पाठक मुनि को, वन्दन है मतिवर्धन हो॥१॥ऊँ ह्रीं अर्हं बहुश्रुतपाठकमुनये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शास्त्र ज्ञान के भाव ज्ञान से, शीतल जल से नहा रहे
स्वयं धो रहे विधि-अघ रज को, पाप कलुषता बहा रहे।
देह आत्म का विभ्रमनाशी तत्त्व दिखाकर भविकों को
स्वयं स्वस्थ हैं स्वस्थ बनाते नमूँ-नमूँ श्रुत श्रमिकों को॥२॥

ऊँ ह्रीं अर्हं श्रुतश्रमिकश्रमणपाठकाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्म जरा मृति वर्धन कारक, दुःखों की नित ही भरमार
अन्धकार में रखने वाले, कुमति प्रदायक तीर्थ अपार।
अनेकान्त से खण्डित करके, मण्डित करते जिनमत को
जिनवर भाषित श्रुत को नमता, सर्वसमर्थ बना श्रुत जो॥३॥

ऊँ ह्रीं अर्हं अनेकान्तज्ञानधारकपाठकपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महामुनीश्वर जिनने सीखा, गुरु पद निकट शास्त्र का ज्ञान
विनय भरी निज हृदय वेदि पर, किया मनन चिंतन संधान।
रत्नत्रय संयुक्त ऋषिवर, श्रुतज्ञानी जिनमत आधार
उनकी पदरज से मम मस्तक, शोभित होवे हर्ष अपार॥४॥

ऊँ ह्रीं अर्हं जिनमताधारपाठकपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हीन काल यम के मुख से जो, बचे हुए हैं शास्त्र महा
न्याय, पुराण और अध्यातम, जीवकाण्ड सिद्धान्त अहा।
उन सबको जो जान रहे हैं, बहुश्रुत मुनिजन कहलाते
उनके चरण कमल की भक्ति, मन हरती है सुख पाते॥५॥

ऊँ ह्रीं अर्हं षट्खण्डागमसमयसार-ज्ञानधराय उपाध्यायपरमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धवल आदि सिद्धांत ग्रन्थ के, जो रहस्य को जान रहे
वे ही समयसार को पढ़कर, निज आतम को जान रहे।
कर विश्वास निजातम पर जो, शुद्धातम को ध्याते हैं
उन पाठक साधु के चरणन, नित हम शीश झुकाते हैं॥६॥

ऊँ ह्रीं अर्हं सिद्धान्तन्यायाध्यात्मज्ञानपूरकाय उपाध्याय-परमेष्ठिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय और व्यवहार नयों से, निर्विरोध सब अर्थ यहाँ
हर पहलू से वस्तु समझते, ऐसे साधु विरल यहाँ।
सदा दे रहे धर्म देशना, दोनों नय से भक्ति से
बहुश्रुतवन्त महामुनिवर को, नमन कर रहा निज मति से॥७॥

ऊँ ह्रीं अर्हं बहुश्रुतपाठकमुनये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शब्द,अर्थ, पद की महिमा से, विपुल भार श्रुत द्रव्य रहा
उसको तज निज ज्ञान सुधा से, चित् चिन्मय को जान रहा।
निर्विकल्प हो ज्ञान मात्र ही, निज आतम अनुभव करते
बहुश्रुत समतारत साधक के, पद रज की संस्तुति करते॥८॥

ऊँ ह्रीं अर्हं निर्विकल्पनिजात्मानुभव-धारकाय पाठकमुनये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊँ ह्रीं अर्हं बहुश्रुतभक्ति-भावना ममाऽस्तु ।

13. प्रवचन-भक्ति-भावना

नव पदार्थ पंचास्किाय है सात तत्त्व छह द्रव्य यहाँ
लोक-अलोक का ज्ञान तथा जा विस्तृत ढंग से बता रहा।
वह ही प्रवचन कहलाता है, जिसको जिनवर कहते हैं
जिनवर को भी नमन हमारा, जिनवाणी को नमते हैं॥१॥

ऊँ ह्रीं अर्हं प्रवचनभक्तिभावनाभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन प्रवचन के बिना कभी भी, ज्ञान पा सके तीर्थंकर
चरम शरीरी ज्ञानी जन भी, जिस बिन नहीं लहें शिववर।
उच्च नीच का भाव छोड़कर, सबके लिए समान रहे
उन प्रवचन को मन में रखकर, मन ही मन हम विलस रहे॥२॥

ऊँ ह्रीं अर्हं चरमशरीरिकराय प्रवचनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वृक्ष बीज से, बीज वृक्ष से, होता आया सदा सदा
यह अनादि की संतति भी है, और सादि भी यदा कदा।
जन्म-मरण की परम्परा को, जिससे भविजन नष्ट करें
वह उपकारी जिनप्रवचन हैं, सदा उसी को नमन करें॥३॥

ऊँ ह्रीं अर्हं उपकारिजिनप्रवचनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनाशन के साधक कारण, चार कहे जिन-आगम में
द्वादशांग का ज्ञान प्रथम है, दूजा भक्ति जिनागम में।
तथा तीसरा करण भाव ही, कारण तीजा कहलाता
समुद्घात श्री जिन केवलि का, चौथा कारण मन भाता॥४॥

ऊँ ह्रीं अर्हं भवनाशनकारणजिनप्रवचनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिन के प्रवचन में डूबा, ज्ञान उसी का सम्यग्ज्ञान
वही श्रमण एकाग्रमना है, प्रवचन भक्ति-भाव में ध्यान।
ज्ञान-ध्यान का मुख्य हेतु है, श्री जिनवाणी का नित पान
श्रमण बना पर शास्त्र बिना तो, द्रव्य श्रमण वह है नादान॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानध्यानहेतुजिनप्रवचनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आतम का स्वरूप कैसा है, कैसा है परमातम रूप
चतुर्गति में दुख सुख कितना, क्या सुख बना मही का भूप।
क्या शरीर है,क्या स्वभाव है, भोग सुखों में दुख का मूल
श्री जिनवाणी प्रकट दिखाती,शिव सुख का भी सम्यक् कूल।६॥

ॐ ह्रीं अर्हं शिवसुखकूलजिनप्रवचनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धातम ही निज स्वभाव है, राग-विभाव बना दुखकार
भेदज्ञान के बल से भासे पृथक-पृथक सब का आकार।
मनुज जन्म का सार मुक्ति है, मुक्ति सुखो को पाने हेतु
नमन करूँ मैं जिनवाणी को, मुक्ति का जो है नित सेतु॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं शुद्धात्मस्वभावकराय जिनप्रवचनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनका हृदय पवित्र हुआ है, जिन प्रवचन की भक्ति से
जिनवर-कथित-वचन को देते, शिष्यों को निज शक्ति से।
श्री सिद्धान्तशास्त्र गुरु मुख से, भविजन धारण करते हैं
पूज्य बने हैं, पूज्य बनाते, प्रवचन मुनि मन हरते हैं॥८॥

ॐ ह्रीं अर्हं जिनवरकथितप्रवचनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं प्रवचनभक्ति-भावना-ममाऽस्तु।

14. आवश्यकापरिहाणी-भावना

श्रमण वही जो षट् आवश्यक, पाल रहा है निज रुचि से
धर्म क्रिया के वशीभूत है, मन-वच-तन त्रय की शुचि से।
आवश्यक में हानी करना, धर्म हानि जो जान रहा
उसके द्वारा ही आवश्यक, पूर्ण हुए श्रुतगान रहा॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं आवश्यक-अपरिहाणिभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आवश्यक हैं छह प्रकार के, परम श्रमण इनको साधे
रत्नत्रय के पालनहारे, रत्नत्रय को आराधो।
शिक्षा, दीक्षा आदि काल जो, साथ-साथ में साध रहा
श्रमण वही निज चरित धर्म को, पाल रहा निर्बाध रहा॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रमणधर्मपालकभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आवश्यक पालन ना करता, श्रमण नहीं वह जिनमत में
जिनवर की आज्ञा ना माने, सदा भटकता भव वन में।
स्वयं रहित वह समदर्शन से, आत्म प्रशंसा में रमता
मन के इस मिथ्या सुख से वह,कितना भ्रम खुद में रखता?।३।

ॐ ह्रीं अर्हं मिथ्यासुखरहितभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सामायिक, वन्दन आदिक जो, श्रमण नहीं नित करता है
उसको भेष मात्र से लख यदि, श्रावक पूजा करता है।
धर्म रहित का पूजक जन भी, धर्म रहित हो जाता है
भाव रहित, अज्ञानी जन वो, भव वन में खो जाता है।४॥

ॐ ह्रीं अर्हं निर्ग्रन्थभेषयोग्यावश्यकभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्वचित् कदाचित् यदि वह साधू, अन्य कार्य में लग जाता
अप्रमत्त वह सावधान हो, उन्हें छोड़ निज में जाता।

नहीं शीघ्रता आवश्यक के, पूरण में वह कभी करे
या विलम्ब भी यथाकाल का, उल्लंघन कर नहीं करे॥५॥
ॐ ह्रीं अर्हं निजपरकल्याणतत्परभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस विधि से जिस समय पे करना, कह गया जिनवाणी में
उस विधि से उस समय पे करता, नहीं रमें मनमानी में।
जीवन भर जिन आज्ञा का जो, भार धार भी हल्का है
आवश्यक परिपूर्ण यती को, नहीं भरोसा पल का है॥६॥
ॐ ह्रीं अर्हं आजीवितं जिनाज्ञाधारकभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रतिदिन प्रति रजनी में रहता, श्रमण जागता खेद बिना
आवश्यक की हानि उसे तो, नहीं सहन निर्वेद बना।
ढोता नहीं कर्म रज धोता, नव विशुद्धि से मन भरपूर
उसके ही षट् आवश्यक का,योग बना है संयम पूर॥७॥
ॐ ह्रीं अर्हं विशुद्धिसहितावश्यकभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रतिक्रमण आदिक आवश्यक, शब्द बोल जो करता है
आवश्यक व्यवहार कहे हैं, उनसे भी मन भरता है।
मन भरकर फिर वचन बिना जो,मौन ध्यान के आश्रय से
निश्चय को पा लेता मुनि जो, पूर्ण हुआ आवश्यक से।८।
ॐ ह्रीं अर्हं व्यवहारनिश्चयावश्यकभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनरंजन का ध्यान छोड़कर, नित्य निरंजन आतम में
मन वच तन के द्वारा रमता, साधू षट् आवश्यक में।
ज्यों विशिष्ट विद्या का अर्थी, पूर्ण अंक की चाह रखे
त्योंही श्रमण सभी आवश्यक, पूर्ण करन की चाह रखें।९।
ॐ ह्रीं अर्हं सर्वावश्यकपूर्णकरभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं आवश्यकापरिहाणी-भावना ममाऽस्तु।

15. मार्ग-प्रभावना

रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है, मारग अन्तर आतम का
इसको प्राप्त करे जो रुचि से, तिमिर भगाए आतम का।
भव्य वही जो इस मारग पर, हो आरूढ़, वही राही
उसी भरोसे मोक्षमार्ग की, नित होती है बड़वाही॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं रत्नत्रयमोक्षमार्गभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरण को, जो नित ध्याता ध्यानी है
औरों को उपदेश दे रहा, वो भविजन ही ज्ञानी है
दुर्लभ से दुर्लभतम मारग, जिनवर का सब को हो ज्ञात
शिव मारग रत वही सन्त ही, स्वयं जगत में हो विख्यात॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं दुर्लभतममार्गप्रभावनाभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहले जिसने दूर किया है निज आतम का मिथ्या मल
वही दूसरों में भर सकता मारग पर चलने का बल।
दोष छिपाकर गुण प्रशंसकर, सम्बल देकर बढ़ा रहा
सन्मारग की प्रभावना का, पाठ मौन रह पढ़ा रहा॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं मौनरुपसन्मार्गप्रभावनाकराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी के पोषण हेतू, नव श्रुत रचना श्रुत अनुरूप
तथा जीर्ण श्रुत की रक्षा भी, नव प्रकाश का भी प्रारूप।
किन्तु सूत्र,पद, अर्थ, भाव को, नहीं बदलता एक प्रवाह
धर्म बढ़ाता प्रभावना भी, उसकी जग में होती वाह॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं जीर्णश्रुतरक्षाप्रभावनाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनशासन आज्ञा का बन्धन, गुरु आज्ञा का भी बन्धन
संयम पालन का भी बन्धन, बन्धन माने भाग्य सघन।
बन्धन ही निर्बन्ध मुक्ति का, बीज रहा ज्यों तरु एरण्ड

प्रभावना हो जैन धर्म की, भाव यही है शुद्ध प्रचण्ड॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं जिनशासनमार्गप्रभावनाभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विकथा वचन नहीं जो करता, आगम के अनुरूप वचन
बिना गिने सामायिक करता, मन रहता निरपेक्ष चमन ।
साम्य भाव है धर्म हमारा, वह ही आतम का सुखकन्द
निरत रह जो इसी भाव में, उसी श्रमण को है आनन्द॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं साम्यभावरुपधर्मप्रभावनाकराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म ग्रहण कर प्रभावना के, हेतु छोड़ता जो निज धर्म
वो मूरख जग-वैद्य बना है, रुग्ण कह रहा औषध मर्म।
ज्ञानी जन को हास्य पात्र जो, मरण समाधि रहित मुआ
अन्त नहीं खुद का यदि संभला, क्या प्रभावना अर्थ हुआ?॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं समाधिमरणरूपधर्भप्रभावनाकराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्माचरण निरत भविजन को, नेह भाव से लखता है
उनकी संगति की भी इच्छा, वत्सल भाव झलकता है।
धर्माचरण विमुख जग जन से, करुणा की बुद्धि धारे
श्री जिनवाणी उन्हें सुनाकर, उपकृत करता जन सारे॥८॥

ॐ ह्रीं अर्हं जिनवाणीमाध्यमेन धर्मप्रभावनाकराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं मार्ग-प्रभावना-भावना ममाऽस्तु।

16. प्रवचन-वत्सलत्व-भावना

सम्यग्दर्शन ज्ञान-चरण में, जो भविजन रत रहते हैं
वे भविजन प्रवचन कहलाते, उनमें वत्सल धरते हैं।

निश्छल वत्सल भाव कहाता, ख्याति लाभ ना पूजा चाह
प्रवचन वत्सलता का धारक, श्रमण चले तीर्थंकर राह॥१॥
ॐ ह्रीं अर्हं प्रवचनवत्सलभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दश प्रकार के धर्म भाव में, विनय भाव से रमता है
सद्वृष्टि श्रावक साधु की, योग्य विनय भी करता है।
विनय भाव वात्सल्य भाव है, जो साधक यह जान रहा
प्रवचन वत्सल धारक साधक, तीर्थंकर पथ मान रहा॥२॥
ॐ ह्रीं अर्हं विनयवात्सल्यभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब जीवों में करुण हृदय है, दया भाव से सिंचित है
तन नो-कर्म राग से हटकर, कर्म राग से वंचित है।
शुद्धातम की छटा निरखता, प्रवचन वत्सल धारक है
तीर्थंकर पद पाने हेतु, भाव यही शुभ कारक है॥३॥
ॐ ह्रीं अर्हं शुद्धात्मभावनाभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहधर्मी स्नेह सलिल से, चित्त कलुषता को धोता
अन्तरमन से कोमल इतना, सुमन श्रमण का मन होता।
जिसके मन में प्रेमभाव है, क्षमाभाव है सुन्दर है,
सहधर्मी वात्सल्य भाव ही, प्रवचन का नित आदर है॥४॥
ॐ ह्रीं अर्हं सहधर्मिवात्सल्यभावधराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कोई भी ना अपना जग में, कोई नहीं पराया है
सभी अचेतन चेतन पन में, समता भाव सुहाया है।
जो सब का सुख चाह रहा है, राग, द्वेष से दूर रहे
उसके मन में सहधर्मी से, वत्सलता का पूर बहे॥५॥
ॐ ह्रीं अर्हं समतारूपप्रवचनवत्सलत्व-भावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विनय और वात्सल्य भाव दो, गुण हैं पर सापेक्षित हैं
जहाँ एक है वहीं दूसरा, नयन मार्ग सम ऐच्छिक हैं।

दोनों में से एक भाव भी, जिसमें उसमें दूजा भी
प्रवचन वत्सलता में रहते, प्रेमभाव गुण पूजा भी॥६॥
ॐ ह्रीं अर्हं सापेक्षगुणसहित प्रवचनवत्सलताभावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिरस्कार सहधर्मी का जो, करता है, वह मानी है
ऐसा कर निज धर्म घट रहा, ना जाने अज्ञानी है।
ईर्ष्या दाह कलुषता रखकर, शिव मारग का शत्रु बना
क्लेश भाव से शिवपथ चलना, गिर-गिर पंगु गिरि चढ़ना॥७॥
ॐ ह्रीं अर्हं विशुद्धिसहितशिवपथगमन-भावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो विशुद्ध समकित भावों से, समता सुख में डूब रहा
प्रेम भाव सब आतम पर रख, शुभ भावों में खूब रहा।
इसी भाव से आतम बांधे, तीन लोक सुखकारक कर्म
जिसके उदय फलों में होता, जग जीवों को अनुपम शर्म॥८॥
ॐ ह्रीं अर्हं तीर्थंकरकर्मबन्धकर-भावाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इस प्रकार तीर्थंकर भावन, श्रुतभक्ति से ग्रन्थ रचा
मुनि प्रणम्यसागर ने नित जो, गुरु भक्ति में रचा पचा।
ध्यान लगाकर भाव भक्ति से, जो जन इसे त्रिकाल पढ़े
वह अनन्त मुक्ति सुख पाकर, अक्षय पद में रहें खड़े॥९॥
ॐ ह्रीं अर्हं षोडशकारणभावनाफलाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अर्हं प्रवचन-वत्सलत्व-भावना ममाऽस्तु।

चारित्र शुद्धि व्रत पूजा

(मुनि प्रणम्यसागर जी)

शुद्ध सुगुण छ्यालिस युत, समोशरण के ईश।
निज आतम उद्धार हित, नमत चरण में शीश।।1।।
आत्म-शुद्धि के अर्थ हम, जिनवर पूज रचाय।
रत्नत्रय की प्राप्ति हित, श्री जिनेन्द्र गुण गाय॥2॥
करूं त्रिविधि शुधियोग से, आह्वानन् विधि सार।
आबहुं तिष्ठहु हृदय में, नाथ त्रिलोक आधार॥3॥

सोरठा

व्रत चरित्र महान, इस बिन मुक्ति न पावहीं।
चारित्र शुद्धि विधान, इसीलिए अर्चन करूं।।

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहित अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहित अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहित अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।।

।।परिपुष्पांजलि क्षिपेत।।

(अष्टक)

गंगादिक निर्मल नीर, कंचन कलश भरूं।
प्रभु वेग हरो भव पीर, चरणन धार करूं॥
बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन सार, केशर रंग भरी।
प्रभु भव आताप निवार, यह विनती हमरी॥
बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

ले चन्द्र किरण समशुद्ध, अक्षत शुचि सारे।
तसु पुंज धरूं अवरुद्ध, तुम पग तल धारे॥
बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी। ॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरु के सुमन समेत, अलि गुंजार करें।
मैं जजूं चरण, निज हेतु, मद गद व्याध हरे॥
बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

नानाविधि के पकवान, कंचन थाल भरूं।
मैं जजूं चरण ढिंग आन, भूख व्यथा जुहंरू।
बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

तम खण्डन दीप अनूप, तुम पद निकट धरूं।
मम मोह हरो शिव भूप, यातें पूज करूं।॥
बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

दसविधि की धूप बनाय, पावक में खेऊो।
मम दुष्ट करम जल जाय, तुम पद नित खेंऊ॥
बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी।।

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम सुपारी लाय, केला फल प्यारे।
तुम शिव फल देहु दयाल, तुम पद फल धारे॥
बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी।॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल वसु कंचन थाल, आठौ द्रव्य धरूं।
"छोटे" नित नावत भाल, तुम पद अर्घ धरूं।

बारह सौ चौंतिससार, प्रोषध सुख कारी।
मैं पूजों विविध प्रकार, आतम हितकारी॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट् चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

चाल योगीरासा

मंगल अर्घ बनाय गाय गुण, कंचन थाली भरिये।
अर्घ देत जिनराज-चरण में, महा हर्ष उर धरिये॥
चारित शुद्धि व्रत के हित मैं, जिन पद पूज रचाऊं।
आतम हित के हेतु जिनेश्वर, पद में शीश नवाऊं॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट्चत्वारिंशद् गुण सहिताय बारह सौ चौंतीस शुद्ध चारित्र व्रत मंडिताय अर्हन्त परमेष्ठिन महार्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

जिसकी शुद्धि के बिना, जिनवर सीझे नाहिं।
उसकी शुद्धि के लिए, जिनवर पूज रचाहिँ॥
व्रत चारित को शुद्ध कर, पहुँचे अविचल थान।
उन्हीं के पद कमल का, धरूँ हृदय में ध्यान॥2॥

(पद्धडी-छन्द)

जय जय जय जिनवर देव भूप, जय जय जय शिव वल्लभ अनूप।
जय जगत पति जय जगन्नाथ, जय मंगलमय हम नमत माथा॥3॥
जय शिवशंकर जय विष्णु देव, जय ब्रह्मा जय मंगल विशेष।
जय कमलासन कृत कर्म ईश, इन्द्रादि चरण नित नमत शीश॥4॥
अष्टा दश दोष विमुक्त धीर, जय मंगल भव हरत पीर।
जय अन्तरिक्ष राजत जिनेश, जय चतुर्गती काटत कलेश॥5॥

जय इन्द्रियजय, जय धर्म वीर, जय कर्म दतन भट अति गंभीर।
जय जगत शिरोमणि गुण निधान, जय शत्रु मित्र जानत समान॥6॥
जय व्रत चारित धारी करण्ड, जय शुद्ध बिहारी आत्म पिण्ड।
जय सत् चित् धन आनन्द रूप,जय शुद्ध चिदानन्द सत् स्वरूपा॥7॥
जय पंच महाव्रत धरन धीर, जय पंच समिति पालक सुवीर।
जय तीन गुप्ति के रथ सार, यह तेरह विधि चारित्र धार॥8॥
जय चरित शुद्ध धर व्रत दयाल, इक क्षण में तोड़े कर्म जाल।
ऐसे विशुद्ध वर व्रत प्रधान, ऐसे व्रत को पूजत सुजान॥9 ॥
यह व्रत है सब जग में प्रसिद्ध, है नित्य अनादि स्वयं सिद्धा
इसके बिन मुक्ति नहीं होय, यह व्रत है तारण सिन्धु तोय॥10॥
हे व्रताधीश हे व्रत दिनेश, हे शिव वल्लभ काटो क्लेश।
अब तेरा शरण महा सुआन, छोटे चाहत निज आत्म ज्ञान॥11॥

सोरठा

दत चारित्र प्रमाण चारित पाले वीर दर।
ते पावे निर्वाण आगे कर्म नशाय के।।

ॐ ही अष्टादश रहिताय षट् चत्वारिंशत गुण सहिताय बारह सौ चौतीस चारित्र गुण मडिताय श्री अर्हन्त परमेष्टिने पूर्णार्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा।

जो विशुद्ध मन से सदा चारित पाले धीर।
ते वसु कर्म नशाय के, पहुँचे भव के तीर।।

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्।

मंत्र - ॐ ह्रीं असिआउसा चारित्रशुद्धि व्रतेभ्यो नमः।

तत्त्वार्थ सूत्र पूजन

(मुनि प्रणम्यसागर जी)

(ब्रह्मचारी अवस्था में)

(स्थापना)

जिनमुख निर्गत तत्त्वज्ञान पा, उमास्वामि आचार्य महान
लिखे सूत्र संस्कृत भाषा में, आद्य ग्रन्थ जो बना प्रधान।
जिन दर्शन तत्त्वार्थसूत्र में, देखो पूर्ण समाया है
दशाध्याय की पूजन करने, मन मेरा ललचाया है॥

इति तत्त्वार्थ सूत्र स्थापनार्थं पुष्पांजलिं क्षिपामि।

मोक्ष सभी मानें कहते हैं, किन्तु मार्ग ना जानें लोग
मार्ग बताते उपकारी गुरु, रत्नत्रय का धारो योग।
तत्त्वज्ञान ही कर्म मलों को, आत्मदेश से विलग करे
इसीलिए मैं पूजन करता, शुद्ध दृष्टि का लक्ष्य धरे॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थ सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन की शीतलता से क्या हो, मन यदि शीतल नहीं बने
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित ही, भव-भव के संताप हने।
तत्त्वज्ञान ही....

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव – उमास्वामिविरचित - तत्त्वार्थ-सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरपद जनपद अरु चक्रीपद, राज समाज पदापद हैं
निरुपधि निज पर सम्पद मानो, अक्षय और निरापद हैं।
तत्त्वज्ञान ही....

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव – उमास्वामिविरचित - तत्त्वार्थ-सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो अक्षत पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

काम भोग अरु ज्ञानयोग का, है विपरीत सदा ही मेल
सर्प नेवले की संगति सा, नहीं कदाचित संग हो खेल।

तत्त्वज्ञान ही....

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव – उमास्वामिविरचित - तत्त्वार्थ-सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कुछ भी रसना को भाया, खूब खिलाया जी भर के
फिर भी कुछ भी हाथ न आया, मन खाली खा पी करके।
तत्त्वज्ञान ही....

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थ सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह, राग का विभ्रम छाया, तिमिर यही है सघन यहाँ
ज्ञान ज्ञानमय ज्ञान अनुभवै, ऐसा दीपक मिले कहाँ ?
तत्त्वज्ञान ही....

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव – उमास्वामिविरचित - तत्त्वार्थ-सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कालगुरु की धूप अग्नि में, नासा को सुख पहुँचाती
कर्म नाश हों तप अग्नि से, ऐसी लौ ना जल पाती।
तत्त्वज्ञान ही....

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थ-सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

हरे भरे या सूखे साखे, सब फल नश्वर कहलाते
फल प्रमाण का ही अविनश्वर, बुध प्रमाण से हैं पाते।
तत्त्वज्ञान ही....

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थ-सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल चन्दन भोजन दीपन, धूपन चावल कुसुमन ले
जिनपति मुख निर्गत जिनवाणी, पूजन अर्घ्यं न वसु विध ले।
तत्त्वज्ञान ही...

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव- उमास्वामिविरचित- तत्त्वार्थ- सूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ प्रत्येकाऽध्याय अर्घ्यावली

१. **सम्यग्दर्शन पंच ज्ञान अरु सप्त नयों का सम्यग्ज्ञान**
यह अध्याय प्रथम कहता है क्या सम्यक् क्या मिथ्याज्ञान।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥१॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थ-सूत्रे प्रथमाऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. **औपशमिक आदिक भावों का, संसारी-मुक्तिगत जीव**
वेद जन्मत्रय योनि सभी का, बोध दिया अध्याय द्वितीय।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥२॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थ-सूत्रे द्वितीयाऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. **अधोलोक के नरकबिलों की, द्वीप समुदों की संख्या**
परिवर्तन तन कालचक्र का, तिर्यग् जग की भी संज्ञा।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥३॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थ-सूत्रे तृतीयाऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. **रहे चार विध देवसमूह, उनकी संख्या आयुवास**
सुखइन्द्रिय अवधिज्ञान यदि, चौथा पाठ रहा मन पास।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥४॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थ-सूत्रे चतुर्थाऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।.

५. **पुद्गल धर्म अधर्माकाश काल द्रव्य का वर्णन भी**
द्रव्य गुणों पर्यायों के संग पाठ पाँचवां सुनें सभी।

जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥५॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थ सूत्रे पंचमोऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

६. मन वच कायों के त्रययोग, प्रति विशिष्ट विधि का हो आव
अशुभ और शुभ भावों का, यह खेल छठा अध्याय दिखाव।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥६॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थ सूत्रे षष्ठाऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

७. शुभ उपयोग व्रतों से होता, पुण्यबंध अघ निर्जर भी
कैसे होवे निरतिचार मन, पाठ सिखाए सप्तम ही।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥७॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थ सूत्रे सप्तमाऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८. अष्टकर्म के बन्धन की विधि, इस अध्याय में बतलाई
बन्ध तत्त्व का ज्ञान किया तो, बन्ध तत्त्व से बच भाई ।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥८॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थ सूत्रे अष्टमाऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

९. व्रत समिति गुप्ति पालन से, संवर निर्जर होता है
धर्म शुक्ल ध्यानों का फल ही, नौवा पाठ संजोता है।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥९॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थ सूत्रे नवमाऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१०. केवलज्ञानी होकर आतम, सिद्ध मोक्ष पद पाता है
यह अध्याय बताता दसवां, शिव सुख अनुपम लाता है।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रूचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थ-सूत्रे दशमऽध्यायेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

किया महा उपकार गुरु ने, सूत्र बनाए प्रामाणिक
बड़े-बड़े आचार्यों ने भी, टीका लिखी बड़ी तात्विक।
एक-एक सूत्रों में कैसा, गहरा अर्थ समाया है
पूज्यपाद अकलंकदेव ने, इनका हार्द बताया है॥१॥
तथा आर्य विद्यानन्दि ने, पर प्रवादि मति वाणों से
सूत्रों की रक्षा की भारी, सश्लोक और वार्तिक से।
रहे अभेद्य सूत्र हर एक, बौद्ध सांख्य नैयायिक से
भव तरने की नाव मिली है, उमास्वामि गुरु नाविक से॥२॥
तत्त्व और छह द्रव्यों का सब, वर्णन यह लोकोत्तर है
तर्क कुतर्क सभी प्रश्नों का, इसमें मिलता उत्तर है।
जयवन्तों सर्वज्ञ देव श्री, वीर प्रभु हित उपदेशी
जयवन्तों गणधर परमेष्ठी, जग हितकारी जिनभेषी॥३॥
ज्यों दर्पण में सब दर्शन पा नैनवन्त हर्षाये हैं
त्यों ही ये तत्त्वार्थसूत्रजी, भव्यनि मोक्ष कराये हैं।
जीव अजीव बन्ध अरु आस्रव संवर और निर्जरा मोक्ष
सप्त तत्त्व का इसमें वर्णन, जीवों को दे सम्यक् बोध॥४॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थ सूत्रे दशमाऽध्यायेभ्यो जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

॥ पुष्पांजलिं॥

तत्त्वार्थ सूत्र विधान

मुनि प्रणम्य सागर कृत

अर्घ्यावलि

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः॥१॥

(दोहा)

लक्ष्य ज्ञात यदि हो गया, मारग को पहिचान।
सम्यक दृग ज्ञानाचरण, सच्चा मारग जान॥१॥

ॐ ह्रीं भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं मोक्षमार्ग-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वार्थ- श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्॥२॥

मात्र तत्त्व या अर्थ पे, श्रद्धा से ना होय।
तत्त्वारथ श्रद्धान से, सम्यक दर्शन होय॥२॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं सम्यग्दर्शन-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्-निसर्गा-दधिगमाद्-वा॥३॥

पर से या पर ज्ञान बिन, उपजे सम्यकदर्श।
भेद अधिगमज निसर्गज, देते सबको हर्ष॥३॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं भेदद्वयसहितसम्यक्त्व-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवा-जीवास्रव-बन्धसंवर-निर्जरा-मोक्षास्-तत्त्वम्॥४॥

जीवाजीवास्रव तथा, बन्ध तत्त्व बतलाय।
संवर निर्जर मुक्ति सह, तत्त्व सप्त कहलाय॥४॥

ॐ ह्रीं विशेषव्यवहारनयेन सूत्रमिदं सप्ततत्त्व-श्रद्धान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाम-स्थापना-द्रव्य भावतस्-तन् -न्यासः॥५॥

चौ निक्षेपो से बने, सही वस्तु व्यवहार ।

नामा थापन द्रव्य जुत, भाव दूर व्यभिचार॥५॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं निक्षेपज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रमाण-नयै-रधिगमः॥६॥

नय प्रमाण के ज्ञान से, होत यथारथ ज्ञान।

नैना नय के नैक हैं, द्वय विध हो परिमाण॥६॥

ॐ ह्रीं ज्ञाननयेन सूत्रमिदं सम्यग्ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्देश-स्वामित्व-साधनाधि-करण-स्थिति-विधानतः॥७॥

स्वामी साधन थिति तथा, अधिकरणा निरदेश।

भेद सहित ये भेद छह, देते ज्ञान विशेष॥७॥

ॐ ह्रीं सामान्यनयेन सूत्रमिदं निर्देशादिज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सत्-संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्प- बहुत्वैश्च॥८॥

सत् संख्या संस्पर्श से, अल्पबहुत वा काल।

क्षेत्र भाव अन्तर कहे, अठ अनुयोग विशाल॥८॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं अनुयोगद्वारज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानि-ज्ञानम्॥९॥

आतम में गुण ज्ञान के, सम्यक पाँच विधान।

मति श्रुत अवधी वा मनः, -पर्यय केवलज्ञान॥९॥

ॐ ह्रीं उपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं पञ्चज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत् प्रमाणे॥१०॥

सम्यक तो वि-ज्ञान है, मिथ्याज्ञान कु-ज्ञान।

पंच भेद को ही कहा, सच्चा ज्ञान महान॥१०॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं प्रमाण-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आद्ये-परोक्षम्॥११॥

पंच भेद जो हैं कहे, उनमें दोय परोक्ष।
मति श्रुत इनके नाम हैं, होता इनसे मोक्ष॥११॥

ॐ ह्रीं इन्द्रिय-उपाधि-सापेक्ष-अशुद्ध-द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं परोक्षप्रमाण-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्यक्ष-मन्यत्॥१२॥

आतम में ही उपजते, ज्ञान अन्त के तीन ।
विकल-सकल के भेद को, पाकर हो स्वधीन॥१२॥

ॐ ह्रीं इन्द्रिय निरपेक्ष-शुद्ध द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं प्रत्यक्षप्रमाण-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मतिःस्मृतिः संज्ञा –चिन्ताभिनिबोध इत्य नर्थान्तरम्॥१३॥

मति स्मृति संज्ञा तथा, चिन्ता अभिनिबोध।
अन्य नाम मतिज्ञान के, करो न्याय से शोध॥१३॥

ॐ ह्रीं शब्दनयेन सूत्रमिदं पूर्णमतिज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तदिन्द्रिया-निन्द्रिय-निमित्तम्॥१४॥

पंचेन्द्रिय मन द्वार छह, के द्वारा जो ज्ञान।
मती ज्ञान होता सभी, विधि-बन्धों के जान॥१४॥

ॐ ह्रीं उपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं निमित्तज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अवग्रहे-हावाय-धारणाः॥१५॥

अवाय ईहा धारणा, और अवग्रह भेद।
मतिज्ञान के हैं सभी, कहें विश्व विद्वेद॥१५॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं मतिज्ञानपूर्णक्षयोपशम-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु-बहुविध-क्षिप्रा-निःसृता-नुक्त-ध्रुवाणाम् सेतराणाम्॥१६॥

बहु बहुविध क्षिप्रज तथा, ध्रुव, उभरा, बिन उक्त।
उलट भेद मिल कर बने,बारह विध संयुक्त॥१६॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं सर्वभेदज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थस्य॥१७॥

बहु बहुविध आदिक रहे, अर्थ विशेषण जान।
निराकरण मत अन्य के, कारण किया मिलान॥१७॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं पदार्थविज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

व्यञ्जनस्याव-ग्रहः॥१८॥

अर्थ अवग्रह के बनें, चार भेद मतिज्ञान।
व्यंजन वस्तु का बने, एक अवग्रह ज्ञान॥१८॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं अस्पष्टज्ञानावबोध-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

न चक्षु-रनिन्द्रियाभ्याम्॥१९॥

आँख तथा मन के बिना, चौ इन्द्रिय से होय।
व्यंजन सारी वस्तु का, भान जरा सा होय॥१९॥

ॐ ह्रीं नास्तिनयेन सूत्रमिदं अस्पष्टज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुतं मति-पूर्वं द्वयनेक-द्वादश-भेदम्॥२०॥

दो अनेक बारह तथा, भेद प्रभेद बतात।
मतिज्ञान पश्चात हो, श्रुत ज्ञान कहलात॥२०॥

ॐ ह्रीं विशेष व्यवहारनयेन सूत्रमिदं श्रुतज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-प्रत्ययोऽवधि-र्देव-नारकाणाम्॥२१॥

द्रव्य आदि सीमा सहित, रूप पदारथ ज्ञान।

भव प्रत्यय से ही मिले, सुर नारक को ज्ञान॥२१॥

ॐ ह्रीं भवसापेक्षपर्यायार्थिक नयेन सूत्रमिदं अवधिज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षयोपशम-निमित्तः षड्-विकल्पः शेषाणाम्॥२२॥

क्षयोपशम के हेतु से, नर पशु गति में ज्ञान।
छह प्रकार का होत है, अवधि ज्ञान महान॥।२२॥

ॐ ह्रीं उपचरितसद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं विशिष्टज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऋजु-विपुलमती मनः पर्ययः॥२३॥

दूजे के मन तिष्ठते, कुटिल सरल जो भाव।
विपुल ऋजु मती ज्ञान के, मुनिवर देत बताय॥२३॥

ॐ ह्रीं सामान्य-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं मनःपर्ययज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विशुद्ध्य-प्रतिपाताभ्यां तद्-विशेषः॥२४॥

अप्रतिपाती वा विशुद्ध, कारण बने विशेष।
मनः पर्यय के भेद ये, जानें रूपी भेष॥२४॥

ॐ ह्रीं उपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं विशुद्धज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनःपर्यययोः॥२५॥

खेत, विशुद्धी, विषय वा, नाथ अपेक्षा भेद।
मनपर्यय से अवधि में, है विशेष से भेद॥२५॥

ॐ ह्रीं उपचरित-सद्भूत व्यवहारनयेन सूत्रमिदं विशिष्टज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मति-श्रुतयो-र्निबन्धो द्रव्येष्व-सर्व-पर्यायेषु॥२६॥

सब द्रव्यों को जानता, लेकिन कुछ पर्याय।
मति श्रुत ज्ञान बना रहा, विषय बहुत सकुचाय॥२६॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं द्रव्यपर्यायज्ञान-

प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रूपिष्व-वधेः॥२७॥

रूपी वस्तु जानता, सीमा के अनुकूल ।
अवधि ज्ञान का विषय भी, बता सके भवकूल॥२७॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं सर्वरूपीज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तदनन्त-भागे मनःपर्ययस्य॥२८॥

अवधिज्ञान उत्कृष्ट से, अणु को विषय बनाय।
भाग अनन्ते सूक्ष्म को, मनपर्यय बतलाय॥२८॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं सूक्ष्मज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य॥२९॥

सकल द्रव्य के गुण सकल, और सकल पर्याय।
केवलज्ञानी को दिखे, निज चेतन सुखदाय॥२९।

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं केवलज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकादीनि भाज्यानि युगपदे-कस्मिन्ना-चतुर्भ्यः॥३०॥

आतम में इक साथ हों, एक आदि चौ ज्ञान।
क्षायिक केवलज्ञान अन, क्षयोपशम ही जान॥३०॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं एकादिज्ञानभेद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च॥३१॥

मिथ्यादर्शन उदय में, होता मिथ्याज्ञान।
मति श्रुत अवधीज्ञान को, मिथ्या भी पहिचान॥३१॥

ॐ ह्रीं पर साक्षेप-अशुद्ध-द्रवयार्थिकनयेन अस्वभावनयेन च सूत्रमिदं मिथ्याज्ञान-विनाशाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सद-सतो-रविशेषाद्य-दृच्छोप-लब्धे-रुन्मत्तवत्॥३२॥

दर्शन अच्छा ना बुरा, ज्ञान बुरा बन जाय।

मिथ्या ज्ञानी मत्त-मद, सदसत ना लख पाय॥३२॥

ॐ ह्रीं अनियतनयेन सूत्रमिदं विपरीतज्ञान-विनाशाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नैगम-संग्रह-व्यवहा-रर्जु-सूत्र-शब्द-समभिरूढैवंभूता-नयाः॥३३॥

नैगम संग्रह शब्द सह, ऋजूसूत्र व्यवहार।
समभिरूढ नय सात हैं, एवंभूत प्रकार॥३३॥

ॐ ह्रीं विशेष व्यवहारनयेन सूत्रमिदं नयज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महाअर्घ्य)

सम्यग्दर्शन पंच ज्ञान अरु, सप्त नयों का सम्यग्ज्ञान
यह अध्याय प्रथम कहता है क्या सम्यक् क्या मिथ्याज्ञान।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रुचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलस्योस्परि पुष्पांजलि)

द्वितीय अध्याय

औपशमिक-क्षायिकौ-भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व –मौदयिक पारिणामिकौ च॥१॥

औपशमिक क्षायिक तथा, मिश्र औदयिक भाव।
पारिणामिकी जीव पे, पंच प्रकार प्रभाव॥१॥

ॐ ह्रीं नामनयेन भावनयेन च सूत्रमिदं भावज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वि-नवाष्टा-दशैक-विंशति-त्रि-भेदा यथाक्रमम्॥२॥

दो, नव, अठदश, बीस इक, तथा तीन परकार ।
क्रम से मिल त्रेपन बनें, निज में नेक निहार॥२॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं भावभेदावधारणाय अर्घ्यं निर्वपामीति

स्वाहा।

सम्यक्त्व-चारित्रे॥३॥

औपशमिक के भेद दो, सम्यक् चारित धार ।
भव सागर में भ्रमण से, नाव लगे उस पार॥३॥

ॐ ह्रीं अनित्यअशुद्धपर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं औपशमिकभाव - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च॥४॥

दरश ज्ञान उपभोग सह, लाभ भोग बल दान ।
सम्यक चारित भाव नव, विधि क्षय से ही जान॥४॥

ॐ ह्रीं सादिनित्यपर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं क्षायिकभाव-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रि-त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च॥५॥

चार ज्ञान अज्ञान त्रय, - दर्श लब्धि हैं पाँच ।
सम्यक, चारित, देशव्रत-, क्षयोपशम से जाँच॥५॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं क्षयोपशमचारित्र-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-संयता-सिद्ध-लेश्याश् चतुश्-चतुस्त्र्ये-कैकैकैक-षड्भेदाः॥६॥

गति-कषाय-चौ लिंग त्रय, षट्-लेश्या अज्ञान।
मिथ्यादर्शन, अविरती, असद्धित्व भी जान॥६॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थि कनयेन सूत्रमिदं औदयिकभाव-विनाशनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीव-भव्या-भव्यत्वानि च॥७॥

जीवपना भव्यत्व वा, अभव्यत्व त्रय भाव।
पारिणामिकी हैं कहे, अन्य और भी भाव॥७॥

ॐ ह्रीं नित्य-शुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन अनित्य- अशुद्धपर्यायार्थिकनयेन

च सूत्रमिदं शुद्धपरिणामिक भाव- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उपयोगो लक्षणम्॥८॥

चेतन का परिणाम ही, उपयोगा कहलाय।
लक्षण यह है जीव का, जैन धरम बतलाय॥८॥

ऊँ ह्रीं सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं उपयोगमात्र प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः॥९॥

दरश-ज्ञान-उपयोग दो, उपयोगा के भेद।
चार-आठ उपभेद भी, क्रम से हो संवेद॥९॥

ऊँ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अभेदोपयोग-स्वभाव-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संसारिणो मुक्ताश्च॥१०॥

परिवर्तन जो पाँच हैं, उनमें भटके जोय ।
संसारी वे जीव हैं, भेद-मुक्ति सह दोय॥१०॥

ऊँ ह्रीं सामान्य-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं मुक्तिपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समनस्का-मनस्काः॥११॥

संसारी भी जीव सब, होते दोय प्रकार ।
रहित मना कुछ मन सहित, करो सुधी स्वीकार॥११॥

ऊँ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं अदृश्यज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संसारिणस्-त्रस-स्थावराः॥१२॥

भव में अटके जीव द्वय, विधि त्रस-थावर जान।
तीन लोक में भ्रमत हैं, गुरु की बात न मान॥१२॥

ऊँ ह्रीं सामान्य-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं जीवविज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः॥१३॥

थावर जीव अनन्त हैं, उनमें पाँच प्रकार।
वायु-तेज-अप-हरित औ, क्षिति में दुःख अपार॥१३॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं सूक्ष्मजीव-विज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः॥१४॥

दो-त्रय-चौ-पन-इन्दियाँ, त्रस के भेद जु चार।
दुर्लभता की ये कड़ी, कर्म बली निरवार॥१४॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं त्रसजीव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्चेन्द्रियाणि॥१५॥

इन्द्रिय संख्या पाँच हैं, अधिक नहीं यह जान।
मन ईषत् इन्द्रिय कहा, फल हित की पहचान॥१५॥

ॐ ह्रीं सामान्यविकल्प-सहितपर्यायार्थिकसूत्रमिदं अतीन्द्रिय-ज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्विविधानि॥१६॥

इन्द्रिय के दो भेद हैं, द्रव्य भाव से जान।
लक्षण आगे अब लिखूँ, सुनो-सुनो विज्ञान॥१६॥

ॐ ह्रीं विशेष-विकल्प-सहित-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं द्रव्यभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्॥१७॥

रचना औ उपकरण से, द्रव्येन्द्रिय दो भेद।
भीतर-बाहर जान लो, पुनः भेद पर - भेद॥१७॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं द्रव्येन्द्रिय-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्॥१८॥

लब्धि और उपयोग मिल, बने पदारथ ज्ञान।
भावेन्द्रिय के भेद दो, यही ज्ञान की शान॥१८॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं भावेन्द्रिय-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्पर्शन-रसन-घ्राण चक्षुः- श्रोत्राणि॥१९॥

घ्राण चक्षु औ फास रस, श्रवण इन्द्रियाँ पाँच ।
विषयी के सुख द्वार ये, योगी करता जाँच॥१९॥

ॐ ह्रीं नामनयेन सूत्रमिदं इन्द्रियपूर्णक्षयोपशम-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्-तदर्थाः॥२०॥

गन्ध रूप स्पर्श रस, शब्द विषय हैं जान ।
क्रम से इन्द्रिय के कहे, निज निज शक्ति प्रमाण॥१९॥

ॐ ह्रीं असद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं इन्द्रियक्षयोपशम-वर्धनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुत-मनिन्द्रियस्य॥२१॥

मन का कारज मुख्य है, श्रुत वा श्रुत का ज्ञान ।
इस कारज में होत ना, अक्ष सहायी जान॥२१॥

ॐ ह्रीं असद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं भावश्रुतज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वनस्पत्यन्ताना-मेकम्॥२२॥

सूक्ष्म तथा बादर कहे, इक इन्द्रिय के भेद ।
पृथिवी जल अग्नि-हरित, वायु भेद प्रभेद॥२२॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्‌भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं इन्द्रियज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीना-मेकैक-वृद्धानि॥२३॥

दो इन्द्रिय को आदि ले, पन इन्द्रिय के नाथ ।
कृमि, चींटी, भौंरा, मनुज, आदिक त्रस के साथ॥२३॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं त्रसजीवोदाहरण - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संज्ञिनः समनस्काः॥२४॥

सहित मना जो जीव हैं, उनको संज्ञी मान ।
इन्द्रिय इक से चार तक, जीव बिना मन जान॥२४॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं संज्ञिज्ञानावबोधाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विग्रहगतौ कर्मयोगः॥२५॥

दूजा तन पाने चले, तब गति-विग्रह होय।
कर्म योग संयोग से, पावत जस तस बोय॥२५॥

ॐ ह्रीं कर्मसाक्षेप-असद्भूत व्यवहारनयेन सूत्रमिदं विग्रहगतिजीवावबोध-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुश्रेणि गतिः॥२६॥

ऊर्ध्व अधो तिर्यक् दिशा, में जो सरल कतार।
श्रेणी उसको कहत हैं, गति श्रेणी अनुसार॥२६॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन अनियतनयेन च सूत्रमिदं श्रेणीगतजीवावबोधप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अविग्रहा जीवस्य॥२७॥

सर्व अर्थ को सिद्धकर, सिद्धशिला जब जात ।
श्रेणी के अनु हो गती, बिना मोड़ ही जात॥२७॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं मुक्तजीवगतिज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः॥२८॥

मोड़ रहित या मोड़ सह, गति संसारी जीव ।
चार समय के पहिल ही, पुनः जन्म की नींव॥२८॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं विग्रहगतिज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक समयाविग्रहा॥२९॥

बिना मोड़ की गती में, एक समय की बात।
काल कहा कालज्ञ ने, ऋजुगति जो कहलात॥२९॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं अविग्रहगतिज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकं द्वौ त्रीन्-वा-नाहारकः॥३०॥

विग्रह गति में जीव के, नोकर्मा आहार ।
इक दो-त्रय के समय में, रुकता विविध प्रकार॥३०॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं अनाहारकजीवज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्मूर्छन-गर्भोपपादा जन्म॥३१॥

विविध योनि में जन्म के, भेद तीन ही देख।
सम्मूर्छन गर्भज तथा, उपपादा में पेख॥३१॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं जन्मभेदज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सचित्त -शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्- तद्योनयः॥३२॥

सचित शीत संवृत इतर, करके इनका मेल।
नव योनी आवास हैं, मत इनमें अब खेल॥३२॥

ॐ ह्रीं असद्भूत-व्यवहारनयेन विकल्पनयेन च सूत्रमिदं योनिज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जरायु-जाण्डज-पोतानां गर्भः॥३३॥

जेर अण्ड से पोत वा, होते जो उत्पाद ।
गर्भज के ये भेद सुन, कर अतीत को याद॥३३॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदंगर्भजन्मभेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देव-नारकाणा-मुपपादः॥३४॥

देव नारकी जन्म का, थल उपपाद कहाय।
अल्प बहुत ही काल में, बल पूरण हो जाय॥३४॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं उपपादजन्म-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शेषाणां सम्मूर्च्छनम्॥३५॥

शेष जीव का जन्म तो, सम्मूर्छन कहलाय।
विविध-विविध परमाणु मिल, लेते देह बनाय॥३५॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं संमूर्छनजीव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि-शरीराणि॥३६॥

औदारिक वैक्रिय तथा, आहारक वपु नाम।
तैजस कार्मण देह ये, पँच न निज के धाम॥३६॥

ॐ ह्रीं नामनयेन सूत्रमिदंशरीरज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परं परं सूक्ष्मम्॥३७॥

क्रम-क्रम से ये सूक्ष्म हैं, जानो पाँच शरीर।
चेतन के परिणाम से, पुद्गल की तस्वीर॥३७॥

ॐ ह्रीं अन्वय-सापेक्ष- सामान्यनयेन सूत्रमिदं सूक्ष्मशरीर- ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रदेशतोऽसंख्येय-गुणं प्राक्-तैजसात्॥३८॥

असंख्यात परमाणु का, बढ़ता बढ़ता ढेर ।
तैजस के पहले सभी, तन में इस क्रम फेर॥३८॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं तनुप्रदेश-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनन्तगुणे परे॥३९॥

अन्तिम तन दो जो बचे, गुणे अनन्ते होत ।
पुदगल अणु का खेल यह, सबको दर्श न होत॥३९॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं तेजसकार्मण-शरीरज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अप्रतीघाते॥४०॥

तीन लोक में रोक ना, चाहे वज्र कपाट ।
तेजस कार्मण देह की, यही अनोखी बात॥४०॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं सूक्ष्मशरीरशक्ति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनादि-सम्बन्धे च॥४१॥

तैजस कार्मण देह का, भव में संग अनादि।
चाहे भवि या अभवि हो, प्रतिपल निर्जर सादि॥४१॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिकनयेन अनित्य-अशुद्धपर्यायार्थिकनयेन च सूत्रमिदंसूक्ष्मसम्बन्ध-ज्ञान प्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वस्य॥४२॥

सब संसारी जीव के, दो तन प्रतिपल साथ।
तैजस कार्मण देह के, संग अन्य तन साथ॥४२॥

ॐ ह्रीं सर्वगतनयेन सूत्रमिदं सूक्ष्मशरीर-विज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्या-चतुर्भ्यः॥४३॥

दो शरीर को आदि ले, एक समय में चार ।
हो सकते हैं जीव के, तन भावा अनुसार॥४३॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं एकानेकशरीर-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निरुप-भोग-मन्त्यम्॥४४॥

अन्तिम कार्मण देह की, रही अनोखी बात।
इन्द्रिय के उपभोग बिन विग्रह गति में जात॥४४॥

ॐ ह्रीं अभोक्तानयेन सूत्रमिदं कार्मणदेह-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गर्भ-सम्मूर्छनजमाद्यम्॥४५॥

सम्मूर्छन या गर्भ से, जन्म लेय जो देह।
औदारिक कहते उसे, क्यों करता है नेह॥४५॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं औदारिकशरीर

ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

औपपादिकं वैक्रियिकम्॥४६॥

देव नारकी जीव का, जन्म होय उपपाद ।
वैक्रिय तन संज्ञा उसे, देता जैनी वाद॥४६॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं वैक्रियिक -शरीर-ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लब्धि-प्रत्ययं च॥४७॥

तप तपता तपसी जबै, पाता ऋद्धि विशेष।
लब्धि से भी मिलता है, तन वैक्रिय का भेष॥४७॥

ॐ ह्रीं लब्धिनयेन सूत्रमिदं विशिष्टवैक्रियिकशरीर-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तैजस-मपि॥४८॥

तैजस तन भी प्राप्त हो, लब्धि कारण जान।
दो प्रकार के भेद से, मुनि विशेष में जान॥४८॥

ॐ ह्रीं लब्धिनयेन सूत्रमिदं तैजसशरीर-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभं विशुद्ध-मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त-संयतस्यैव॥४९॥

शुभ विशुद्ध व्याघात बिन, शुभ लक्षण शुभ जात।
गुणस्थान छठवें मुनी, आहारक उपजात॥४९॥

ॐ ह्रीं असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं आहारकशरीर-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि॥५०॥

नर-नारी से भी अधिक, कलुष नपुंसक भाव।
सम्मूर्छन औ नारकी, में इक पल न अभाव॥५०॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं नपुंसकवेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

न देवाः॥५१॥

दिव्य शरीरी दिव्य सुख, ऐसे देवी देव।
वेद नपुंसक बिन बने, द्वय वेदों में सेव॥५१॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं देववेद- ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शेषास्-त्रिवेदाः॥५२॥

जन्म गर्भजों की बची, शेष जीव जो राशि।
उनमें तीनों वेद हैं, द्रव्य भाव सह -वासि॥५२॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं त्रिवेद- ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

औपपादिक-चरमोत्तम-देहा-संख्येय-वर्षायुषोऽन-पवर्त्यायुषः॥५३॥

चरमोत्तम तन देव औ, भोगभूमिया जीव।
तथा नारकी भोगते, पूरी आयु सदीव॥५३॥

ॐ ह्रीं कालनयेन सूत्रमिदं अकालमृत्यु-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्यं)

औपशमिक आदिक भावों का, संसारी-मुक्तिगत जीव
वेद, जन्मत्रय, योनि सभी का, बोध दिया अध्याय द्वितीय।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले, रुचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का, अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रे द्वितीयाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्परि पुष्पांजलिं.....)

तृतीय अध्याय

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमःप्रभा -
भूमयो - घनाम्बु- वाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः॥१॥

(चौपाई)

रत्न शर्करा बालुक पंका, धूम तमा तम-महा निकंपा।
सात भूमि के क्रम से नीचे, तिष्ठे अति बल वायु समूचे॥१॥

ऊँ ह्रीं अस्तित्त्वनयेन सूत्रमिदं नरकसम्यग्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तासु त्रिंशत्पञ्च-विंशति-पञ्चदश-दश-त्रि-पञ्चोनैक-नरक
शत- सहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम्॥२॥

इन पृथ्वी में बिल की संख्या, तीस पचीसा पन-दश लक्खा।
दश त्रय औरहु पन कम लाखा,पाँच बिला सप्तम में भाखा॥२॥

नारका नित्या-शुभतर-लेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः॥३॥

इन नरकों में जो भी जावे, सदा अशुभतर लेश्या पावे।
तथा देह परिणाम रू पीड़ा,विक्रिय सब कुछ दुख की क्रीड़ा॥३॥

ऊँ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं नरकवेदना-ज्ञान -प्राप्तये निर्वपामीति स्वाहा।

परस्परो-दीरित-दुःखाः॥४॥

आपस में अति दुख को देना,सुख इक क्षण का कभी मिले ना।
मार काट ही प्रतिपल कीना, और नहीं कुछ काज नवीना॥४॥

ऊँ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं नारकदुःख -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संक्लिष्टासुरो-दीरित-दुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः॥५॥

कलुष भाव के असुर सुरा भी, जाते चौथी भू पहिले ही।
भिड़ा-भिड़ा कर खूब लड़ाते, दुख महान गा गुरु थक जाते॥५॥

ऊँ ह्रीं कलुषस्वभावनयेन सूत्रमिदं संक्लेशविनाशाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरो-पमा सत्त्वानां परा स्थितिः॥६॥

अब उत्कृष्ट आयु बतलाते, क्रम से इक त्रय सप्त गिनाते ।
दस सतरह-सागर -बावीसा, अन्त भूमि सागर तैंतीसा॥६॥

ॐ ह्रीं नित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं नारकजीवायुर्ज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जम्बूद्वीप-लवणो-दादयः शुभ-नामानो द्वीप-समुद्राः॥७॥

मध्य लोक का वर्णन आता, जीव जहाँ से मुक्ती पाता।
द्वीप समुद्रों का बहु घेरा, सबको शुभ नामों से टेरा॥७॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं मध्यलोक-ज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्विर्द्वि -विष्कम्भाः पूर्व-पूर्वपरिक्षेपिणो वलया-कृतयः॥८॥

चूड़ी जैसी आकृति वाले, पहिले को दूजा घेरा ले।
दूनी दूनी परिधि बताते, असंख्यात संख्या जिन गाते॥८॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदंद्वीपसमुद्राकृति-ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्मध्ये मेरु-नाभि-र्वृत्तो योजन-शत-सहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः॥९॥

उन सबके बीचों-बीचों में, जम्बूद्वीप बना गोले में।
एक लाख योजन विस्तारा, मेरु नाभि सम शोभित न्यारा॥९॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिकगणनानयेन सूत्रमिदं जम्बूद्वीपज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्य-वतैरा-वत-वर्षाःक्षेत्राणि॥१०॥

भरत हैमवत हरी विदेहा, द्वीप-जम्बू के होय विभेदा।
रम्यक औ हैरण्यवतों से, ऐरावत सातों क्षेत्रों से॥१०॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिकक्षेत्रनयेन सूत्रमिदं सप्तक्षेत्र-ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तद्-विभाजिनः पूर्वा-परायता हिमवन्-महाहिमवन्-निषध-नील

रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः॥११॥

इन क्षेत्रों के बिच छह शैला, पूरब से पश्चिम तक फैला।
हिमवन तथा महा-हिमवन हैं, निषध नील रुक्मी शिखरी हैं।११॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिकविभाजननयेन सूत्रमिदं षट्-पर्वतज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममयाः॥१२॥

उन पर्वत के रंग मनहारी, क्रम से पीतरु श्वेत संवारी।
तप्त कनक औ कण्ठ मयूरा, श्वेत हेममय रंगा पूरा॥१२॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं पर्वतवर्ण-ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणि-विचित्र पार्श्वा उपरि मूले च तुल्य-विस्ताराः॥१३॥

पर्वत के सब ही पखवाड़े, मणि-मणियों से खचि अति गाढ़े।
मूल मध्य ऊपर विस्तारा, लगे एक सम प्यारा -प्यारा॥१३॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिक विस्तारनयेन सूत्रमिदं पर्वतवर्णज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पद्म-महापद्म-तिगिञ्छ-केसरि-महापुण्डरीक-पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि॥१४॥

पद्म औ महापद्म तिगिंछा, बने सरोवर गिरि पे स्वच्छा।
केसरि महा पुण्डरीका भी, षट सर बने पुण्डरीका भी॥१४॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिकसंस्थाननयेन सूत्रमिदं पर्वतस्थसरोज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रथमो योजन- सहस्रयामस्तदर्ध-विष्कम्भो ह्रदः॥१५॥

प्रथम सरोवर की लम्बाई, इक हजार योजन बतलाई ।
तथा पाँच सौ योजन चौड़ा, सोचो! माप नहीं यह थोड़ा॥१५॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिक आयामनयेन सूत्रमिदं ह्यदायाम - ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशयोजनावगाहः॥१६॥

अब इसकी गहराई नापें, दस योजन की सीमा थापें।
अब तक काल अनन्ता बीता, भो! आश्चर्य नहीं यह रीता॥१६॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिक -अवगाहनयेन सूत्रमिदं ह्रदावगाहज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्मध्ये योजनं पुष्करम्॥१७॥

उस ह्रद में इक कमल बना है, इक योजन लम्बा चौड़ा है।
खिली पांखुड़ी चारों ओरा, पृथिवी कायिक है अति गोरा॥१७॥

ॐ ह्रीं अनादि-नित्य-पर्यायार्थिकसंस्थितिनयेन सूत्रमिदं अकृत्रिम पुष्कर- ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तद्-द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्काराणि च॥१८॥

अन गिरि पर भी बने हुए हैं, दूनी-दूनी माप लिये हैं।
पद्म सरोवर शोभित होते, ना मुरझाते-मैले होते॥१८॥

ॐ ह्रीं गणनानयेन सूत्रमिदं अन्यपुष्करादिमाप- ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्-निवासिन्यो देव्यः श्री-ही-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः॥१९॥

श्री ही धृति औ कीर्ती देवी, बुद्धि लक्ष्मी सुर से अन सेवी।
सामानिक परिषद सुर संगा, पल्य आयु तक तन मन चंगा।१९॥

ॐ ह्रीं कालनयेन सूत्रमिदं कुलाचलदेवी-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गङ्गा-सिन्धु-रोहिद्रोहि-तास्या-हरिद्धरि-कान्ता-सीता-सीतोदानारी-नरकान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः॥२०॥

क्षेत्र बीच से बहने वाली, गंगा सिन्धु महा जल वाली।
अरु रोहित रोहित आस्या भी, हरिता, हरिकांता नदियाँ भी॥
सीता सीतोदा औ नारी, नरकान्ता नद भी जलधारी ।
सुवर्ण रूप्यकला हैं भातीं, रक्ता रक्तोदा भी जातीं॥२०॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं अकृत्रिमनदी-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं

निर्वपामीति स्वाहा।

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः॥२१॥

एक क्षेत्र बिच नदियाँ दो दो, अलग अलग दिश बहती हो!हो!।
पहिल पहिल की पूरब जाती, जाके सागर में मिल जाती॥२१॥

ॐ ह्रीं वक्रस्वभावनयेन सूत्रमिदं पूर्वनदीगति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शेषास्त्व-परगाः॥२२॥

नद जोड़े में पीछे लेखा, नक्से में वो नाम जु देखा।
ठीक सूत्र के ही अनुसारा, सबका सागर सुखद सहारा॥२२॥

ॐ ह्रीं वनस्वभावनयेन सूत्रमिदं अपरनदीगति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गङ्गा-सिन्ध्वादयो नद्यः॥२३॥

गंगा सिन्धु का परिवार, चौदह तीन बिन्दु नद न्यारा।
दूना-दूना आगे-आगे प्रति जोड़ा संग घेरे भागे॥२३॥

ॐ ह्रीं स्वभावगणनानयेन सूत्रमिदं परिवारनदी-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भरतः षड् विंशति-पञ्चयोजन-शत-विस्तारः
षट्चैकोन-विंशति भागा योजनस्य॥२४॥

भरत क्षेत्र की नाप बताते, दक्षिण से उत्तर तक पाते।
पाँच शतक योजन छब्बीसा,अधिक कहा छह भाग उनीसा।२४॥

ॐ ह्रीं क्षेत्रगणनानयेन सूत्रमिदं भरतक्षेत्रप्रमाण-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तद्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर -वर्षा विदेहान्ता॥२५॥

भरत क्षेत्र से आगे जो हैं, पर्वत-क्षेत्र सभी मन मोहे ।
द्विगुण द्विगुण विस्तार बढ़ाओ, विदेह क्षेत्र तक जा रुक जाओ॥२५॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं भरतक्षेत्रप्रमाण-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तरा दक्षिण-तुल्याः॥२६॥

उसके आगे पर्वत क्षेत्रा, दक्षिण दिश सम वर्णन लेता।
कमल-सरोवर-नद की माप, उस क्रम से ली जाती नाप॥२६॥

ॐ ह्रीं क्षेत्र-साक्षेप-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं उत्तरदिशाक्षेत्रमाप-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भरतैरावतयोर्वृद्धि-ह्रासौ षट्समयाभ्या-
मुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्॥२७॥

ऊँचाई आयू उपभोग, बढ़े घटे षट - काल संयोग।
भरत और ऐरावत में ही, उत्सर्पिणि अवसर्पिणि में ही॥२७॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं षट्समय - ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः॥२८॥

अन्य सभी क्षेत्रों में जानो, हीनाधिक उनमें ना मानो।
रहे व्यवस्था एक समाना, आयु भोगकर काल गँवा ना॥२८॥

ॐ ह्रीं नियतक्षेत्रनयेन सूत्रमिदं अवस्थितक्षेत्र - ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो हैम-वतक-
हारि-वर्षक-दैव कुरवकाः॥२९॥

हैमवतक हरि देवकु रु में, नर-नारी-पशु मिल आपस में ।
इक द्वय तीन पल्य क्रम आयू,भोगभूमि में रहे बिता यूँ॥२९॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं भोगभूमिआयुः प्रमा-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तथोत्तराः॥३०॥

रम्यक औ हेरण्यवतक में, उत्तरकुरु सह उत्तर दिश में।
दक्षिण दिश के मानुष जैसी, आयू भोगभूमि की वैसी॥३०॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं उत्तरदिशा-भोगभूमि आयुःप्रमा-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विदेहेषु संख्येय-कालाः॥३१॥

क्षेत्र विदेहों में षटकाजा, खुला मुक्ति का द्वार वहाँ जा।
पूर्व कोटि आयू उत्कृष्ट, अन्तर्मुहूरत है निकृष्ट॥३१॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं विदेहक्षेत्र-जीवायुर्ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भागः॥३२॥

पहिले जो परिमाप बताया, पुनः अलग विध से समझाया।
द्वीप जम्बु से भरत क्षेत्र का, भाग नवतिशत लख योजन का॥३२॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं जम्बूद्वीपमाप-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्विर्धातकी-खण्डे॥३३॥

द्वीप दूसरा बहुत बड़ा है, गिरि क्षेत्रों से खचा पड़ा है।
खण्ड धातकी शुभ संज्ञा है, क्षेत्रादिक दूनी संख्या है॥३३॥

ॐ ह्रीं नियतसंख्यानयेन सूत्रमिदं धातकीखण्डद्वीप-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्करार्द्धे च॥३४॥

तीजा पुष्कर द्वीप बताया, आधा ढाई द्वीप में पाया।
क्षेत्र, नदी, पर्वत, ह्रद सारे, खण्ड धातकी द्वीप समा रे॥३४॥

ॐ ह्रीं नियतसंस्थाननयेन सूत्रमिदं पुष्करार्द्धद्वीप -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राङ्-मानुषोत्तरान्मनुष्याः॥३५॥

नर खेचर मुनि ऋद्धीधारी, द्वीप अढाई सीमा सारी।
मानुष -उत्तर शैल पड़ा है, मानो रोके शेर खड़ा है॥३५॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं मानुषोत्तरपर्वत-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्या म्लेच्छाश्च॥३६॥

मानुष के दो भेद बताये, कुछ आर्या कुछ म्लेच्छ कहाये।

अशन वसन सब बिन संस्कारा, म्लेच्छ कहे बहुविध हैं आर्या॥३६॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं मनुष्यभेद- ज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भरतैरा-वत-विदेहाः कर्म-भूमयोऽन्यत्र देव-कुरूत्तर कुरुभ्यः॥३७॥

भरतैरावत-पाँच-विदेहा, पन्द्रह कर्मभूमि के गेहा।
पाप-पुण्य अति कर सकते हैं, औ शिव गति भी पा सकते हैं॥३७॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं कर्मभूमि -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नृस्थिती परावरे त्रिपल्यो-पमान्तर्मुहूर्ते॥३८॥

तीन पल्य नर आयु महा है, अन्तरमुहुरत जघन तथा है।
भोग-विषय सब आयू भोगी, धन्य ! धन्य! जो बन गये योगी॥३९॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं उत्कृष्ट जघन्ययायुर्-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिर्यग्योनिजानां च॥३९॥

पशु गति में आयू भी जानो, नर समान उनमें भी मानो।
उमा स्वामि गुरु का वर्णन है,फल इसका तजना जगभ्रम है।३९।

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं तिर्यग्योनिगति-आयुर्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्य)

अधोलोक के नरक बिलों की, द्वीप समुद्रों की संख्या
परिवर्तन तन कालचक्र का, तिर्यग् जग की भी संज्ञा।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रुचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव - उमास्वामिविरचित - तत्त्वार्थसूत्रे तृतीयाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्परि पुष्पांजलिं .....)

चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः॥1॥

(पद्धरी)

तन सप्त धातु मल रहित धार, सेवत इन्द्रिय मन विषय क्षार।
ते अमर देव के चतु निकाय,पूजत नित जिनवर पद्म पाय॥1॥

ॐ ह्रीं अस्तित्त्वनयेन विकल्पनयेन च सूत्रमिदं देवनिकायज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आदितस् -त्रिषु पीतान्त-लेश्याः॥२॥

त्रय भवन वाण ज्योतिषी देव, चौ आदिक की लेश्या रखेव।
हैं कृष्ण नील कापोत पीत, पर्याप्त दशा में एक पीत॥२॥

ॐ ह्रीं अशुद्ध-निश्चयनयेन सूत्रमिदं देवलेश्या-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोप-पन्न-पर्यन्ताः॥३॥

दश आठ पाँच बारहा भेद, भावन व्यन्तर ज्योतिष प्रभेद ।
कल्पोपपन्न वासी सुदेव, मानें नित इन्द्राज्ञा स्वयमेव॥३॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं देवनिकायभेद - ज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोक-पाला-नीक प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः॥४॥

परिवार इन्द्र का अति विशाल,दश-दश विध सुर तन मन रसाल
सामानिक त्रायस्त्रिशं साथ, पारीषद आतमरक्ष साथ॥४॥
सह लोकपाल सैनिक अनीक, अभियोग प्रकीर्णक प्रजा ठीक।
किल्विषिक देव हैं दुखी देव, अपमान सहें कुछ ना कहेव॥४ब॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं देवपरिवार -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रायस्त्रिंशलोक-पाल-वर्ज्या व्यन्तर- ज्योतिष्काः॥५॥

त्रायस्त्रिंशा औ लोकपाल, का नियम रखो यह नित्य ख्याल।

व्यन्तर ज्योतिष में नहीं होत,सुर शासन चलता बिना वोट॥५॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं विशिष्टदेव -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः॥६॥

जो भवनवास व्यन्तर निकाय, दो-दो इन्द्रों का नियम थाय ।
ये नियम अनादि अटूट जान, सब सुर के मर्यादित सुथान॥६॥

ॐ ह्रीं नियतसंख्यानयेन सूत्रमिदं देवेन्द्र-ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काय-प्रवीचारा आ ऐशानात्॥७॥

तन वीर्य रहित वैक्रियक धार, पर विविध-विविध ढंग प्रवीचार।
इशान स्वर्ग तक सभी देव, -देवी शरीर मैथुन कुसेव॥७॥

ॐ ह्रीं सामान्यभोक्तानयेन सूत्रमिदं देवसुख-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शेषाः स्पर्श-रूप -शब्द-मनः प्रवीचाराः॥८॥

कुछ का मन तन छू पुष्ट होत, कुछ रूप रंग लख तुष्ट होत।
सुन मधुर गीत,कुछ मन विचार, देवों में इस विधि प्रवीचार॥८॥

ॐ ह्रीं विशेषभोक्तानयेन सूत्रमिदं अन्यवैमानिक सुख ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परेऽप्रवीचाराः॥९॥

आगे जो हैं अहमिन्द्र देव, करते नहिं मैथुन औ कुसेव।
नहिं काम भोग कामिनी लोग,सुर सुख का कारण पुण्य योग।९।

ॐ ह्रीं अभोक्ताननयेन सूत्रमिदं अप्रवीचारदेव- ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवन-वासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि-
वातस्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः॥१०॥

भावन सुर के दश हैं प्रकार, हैं असुर नाग विद्युत कुमार।
सुपरण अग्नि स्तनित वात, दिक द्वीप कुमारु-दग्धि कहात।१०।

ॐ ह्रीं नामनयेन अस्तित्वनयेन च सूत्रमिदं भवनवासिदेव- ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-
यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः॥११॥

किन्नर किम्पुरुष महोरगादि, गन्धर्व यक्ष राक्षस प्रजाति।
ये भूत पिशाच जु अष्ट भेद,व्यन्तर सुर जानो बिना खेद॥११॥

ॐ ह्रीं नामनयेन अस्तित्वनयेन च सूत्रमिदं व्यन्तरदेव - ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्योतिष्काः सूर्या-चन्द्र-मसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तार-काश्च॥१२॥

यह सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र, तारे फैले जो सर्वयत्र।
वे सब ज्योतिषकी हैं विमान,भ्रम छोड़ो सरवग बात मान॥१२॥

ॐ ह्रीं नामनयेन अस्तित्वनयेन च सूत्रमिदं ज्योतिष्कदेव - ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृलोके॥१३॥

नर लोक ज्योतिषी सुर विहार, करते रहते बिन थके हार।
मेरु गिरि के चारों ही ओर, परिवार सहित घूमत न छोर॥३॥

ॐ ह्रीं स्वभावगतिनयेन सूत्रमिदं ज्योतिष्कदेवभ्रमण- ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्कृतः काल-विभागः॥१४॥

चलते स्वभाव से स्वतः चाल, इस कारण भेद विभाग काल।
यह जिनवर वाणी सत्य जानि,परमागम की यह बात मानि।१४।

ॐ ह्रीं क्रियानयेन सूत्रमिदं कालविभाग- ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बहिरवस्थिताः॥१५॥

नर लोक बाह्य भी रहत देव, स्थित जो रहते हैं स्वयमेव ।
ज्योतिष मण्डल सब मध्य लोक,में रहते गिनती अती थोक।१५।

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं अवस्थितज्योतिर्मण्डल - ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वैमानिकाः॥१६॥

चौथा निकाय वर्णन विशेष, सुनलो ! गुरु से कुछ भी न शेष।
शुभ कार्य पुण्य कर कर्म बोय,तस फल सुर वैमानिकी होय।१६।

ॐ ह्रीं निर्देशनयेन सूत्रमिदं वैमानिकदेव- ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पोपपन्नाः कल्पा-तीताश्च॥१७॥

इन देवों के मुनि भेद गात, सह कल्प-कल्प बिन से बतात।
सोलह स्वर्गों तक कल्प होत,आगे नहिं कल्पित कल्प होत।१७।

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं वैमानिकदेवविकल्प-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उपर्युपरि॥१८॥

इक के सिर ऊपर एक जान, बिखरे बिखरे नहिं ये विमान।
मणिरत्न खचित जिनचैत्य युक्त,पूजित सुर पर नित भोग युक्त।18।

ॐ ह्रीं नियतव्यवस्थानयेन सूत्रमिदं वैमानिकदेवविमानव्यवस्था-ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरलान्तव-कापिष्ठशुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत- प्राणतयो-रारणा-च्युतयो र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्ता-परा-जितेषु सर्वार्थ-सिद्धौ च॥१९॥

सौधर्म एशान सानत्कुमार, माहेन्द्र नाम इस विधि प्रकार।
हैं ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तवेन्द्र, कापिष्ठ शुक्र महाशुक्र इन्द्र॥
आगे सतार फिर सहस्त्रार, आनत प्राणत आरण कतार।
अच्युत ग्रीवक अनुदिश महन्त, ता ऊपर विजया वैजयन्त॥
फिर हैं जयन्त अपराजितेश, सरवारथ सिद्धि अन्तिम सुदेश।
सब दिव्य देह युत अवधिज्ञान,गुण अष्ट तुष्ट शोभित महान।19।

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं वैमानिकदेवसंज्ञा-ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रिया - वधिविषयतोऽधिकाः॥२०॥

आयू प्रभाव आनन्द कान्ति, इन्द्रिय विषया मन चमन शान्ति।
लेश्या विशुद्धि औ अवधिज्ञान,ये ऊपर ऊपर अधिक जान॥२०॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं वैमानिकदेव - गुणविशेष-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गति-शरीर-परिग्रहाभि-मानतो हीनाः॥२१॥

गति काया का आयाम संग, अभिमान कषायें मन्द मन्द।
आगे नाकों में हीन हीन, कारण इसका अघ छीन छीन॥२१।

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिंद वैमानिकदेव-गुणविशिष्ट-ज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पीत-पद्म -शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि शेषेषु॥२२॥

पहिले दो युगलों में है पीत, फिर तीन युगल में पदम पीति ।
आगे लेश्या है एक शुक्ल, यह कथन अपेक्षा गौण मूल॥२२॥

ॐ ह्रीं नियताशुद्धभावनयेन सूत्रमिदं वैमानिकदेव- लेश्या- ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥२३॥

ग्रैवेयिक से पहले विकल्प, उन स्वर्गों की संज्ञा है कल्प।
तातै आगे स्वर्गा सुदेव, अहमिन्द्र स्वयं आज्ञा न सेव॥२३॥

ॐ ह्रीं स्थापनानयेन सूत्रमिदं कल्पवासिदेव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्म-लोकालया लौकांतिकाः॥२४॥

पंचम नाका के अन्त मांहि, आलय अलगाव वहाँ रहाहि।
भावी भव इक धर मुक्ति पाय, तातैं सुर लौकांतिक कहाय।२४।

ॐ ह्रीं नियतक्षेत्रनयेन सूत्रमिदं लौकान्तिकदेव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सारस्वता-दित्य-वह्नयरुण-गर्दतोय-

तुषिताव्या-बाधा-रिष्टाश्च॥२५॥

ये सभी वहाँ वैराग्य पूर्ण, सारस्वत आदित वह्नि अरुण ।
औ गर्दतोय शुभ तुषित नाम, अव्याबाधारिष्टा प्रधान॥२५॥

ॐ ह्रीं नामनयेन विकल्पनयेन च सूत्रमिदं लौकान्तिकदेव-भेद - ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विजयादिषु द्विचरमाः॥२६॥

विजयादिवास अनुदिशी देह, अधिकाधिक द्वयभव भ्रमण लेह।
तातै द्वि चरमा कहे जात, दुख दावानल से छूट जात॥२६॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं लौकान्तिकदेव -भेदज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

औप-पादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः॥२७॥

नर नाक नरक में जनित जीव, अन शेष तिर्यंचा योनि जीव।
त्रय लोक सदन वासी सदैव, ताही ६ सूत्र नया कहैव॥२७॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं तिर्यग्योनिगतजीव-स्थानविशेष - ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्थिति-रसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्द्ध- हीन -मिताः॥२८॥

आयू असुरा नागा सुपर्ण, सागर त्रय-ढाई-पल्य मर्ण ।
सुर-द्वीप धरें दो पल्य आयु, औ डेढ़ पल्य अन कुंवर आयु।२८।

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं भवनवासिदेवा-युर्ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सौधर्मेशानयोः सागरोपमेऽधिके॥२९॥

सौधर्म ऐशानी नाक देव, में आयु कहें देवाधिदेव।
सागर द्वय में कुछ बढत खास, बारह स्वर्गो तक नियम भास।29।

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं आद्यद्वय-कल्पायुर्ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त॥३०॥

सानत्कुमार माहेन्द्र नाक, नाकावासी आयू विपाक।
कुछ अधिक सप्त सागर प्रमाण,बतलाते हैं सब सुधीमान॥३०॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं अग्रदेवायुर्ज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रि-सप्त-नवैका-दश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु॥३१॥

फिर तीन सात नव दशा-एक, तेरह पन-दश से अधिक देख।
षट कल्प युगल सुर अवधि जान,बाईस उदधि सोलवें थान।३१।

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं अन्यदेवायुर्ज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आरणाच्युता-दूर्ध्व-मेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु
विजयादिषु सवार्थसिद्धौ च॥३२॥

इक-इक सागर की बढ़त देख, नव ग्रीवक तक चल रूको पेख।
अनुदिश नव में आयू बतात, क्रम में इक सागर अधिक पात।32।
विजयादि वास की सुर समाज, में इक सागर औ अधिक छाज।
पर सरवारथ सिद्धि सुथान, त्यतीस उदधि उत्कृष्ट जान॥32ब॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं अवशिष्ट-देवायुर्ज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरा पल्योपममधिकम्॥३३॥

आयू जघन्य अब कही जाय, सौधर्मे और ईशान माय ।
इक पल्य अधिक कुछ और जान, यह समय बताते समयवान।33।

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं स्वर्गदेव-जघन्यायुर्ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

परतः परतः पूर्वापूर्वानन्तरा॥३४॥

नीचे स्वर्गो की उच्च आयु, ऊपर जघन्य वह ही कहा यु ।
हों कल्पवासि, कल्पाअतीत, यह नियम क्रमिक क्रम से सटीक॥34॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं अन्यदेव-जघन्यायुर्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नारकाणां च द्वितीयादिषु॥३५॥

नारक जीवों में जघन काल, पाने की इस विधि ही है चाल।
लिखदी पहिले आयूत्कर्ष, गुरु हैं धी धारी दूरदर्श॥३५॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं नारक-जघन्यायुर्ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दश-वर्ष- सहस्राणि प्रथमायाम्॥३६॥

पहली पृथिवी धम्मा विशाल, तामें आयू का जघन काल ।
है दश हजार तक वर्ष पार, करना दुःसह करनी विचार॥३६॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं प्रथमनरक-जघन्यायुर्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनेषु च॥३७॥

भवन वासी सुर हैं समस्त, धर जघन आयु रह मौज मस्त।
वर्षों हजार दश को गुजार, फिर सहें जनम दुख क्षार-क्षार॥३७॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं भवनवासिदेव-जघन्यायुर्ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

व्यन्तराणां च॥३८॥

है यहाँ वहाँ आवास थान, खेलें घूमें रंजायमान।
इक शून्य चार वर्षा प्रमान, आयू जघन्य सुर-बान जान॥३८॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं व्यन्तरदेव-जघन्यायुर्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परा पल्योपम-मधिकम्॥३९॥

उत्कृष्ट आयु करते बखान, व्यन्तर देवों की कही जान।
इकपल्य आयुकुछ अधिक जोय, बिन संयम के सब समय खोय।39।

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं व्यन्तरदेवोत्कृष्टायुर्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्योतिष्काणां च॥४०॥

चमके नभ में जो शशि विमान, वा रवि तारे तारक पिछान ।

इक पल्य आयु कुछ अधिक धार, बीते बिन संयम कर विचार॥40॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं ज्योतिष्क-देवोत्कृष्टायुर्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तदष्ट-भागोऽपरा॥४१॥

कम से कम कितनी आयु पाय, तारा मण्डल नभ में दिपाय।
इक पल्य समय का आठ भाग, बीते भोगों में पाग पाग॥४१॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं ज्योतिष्कदेव-जघन्यायुर्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लौकान्तिकाना-मष्टौ सागरो-पमाणि सर्वेषाम्॥४२॥

शुभ लेश्या विषयनि तें विरक्त, महिमा महती जिनपदासक्त।
लौकान्तिक सागर आठ आयु, देवों में देव ऋषी कहायु॥४२॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं लौकान्तिक-देवायुर्ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्य)

रहे चार विध देवसमूह, उनकी संख्या आयूवास
सुख इन्द्रिय अवधिज्ञान यदि, चौथा पाठ रहा मन पास।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रुचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रे चतुर्थाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्परि पुष्पांजलिं .....)

पंचम अध्याय

अजीव-काया धर्मा-धर्मा-काश-पुद्गलाः॥१॥

(चाल)

नभ धर्म अधर्म कहे हैं, पुद्गल संग द्रव्य रहे हैं।
चारों अजीव औ काया इसलिए सूत्र यह आया॥१॥

ॐ ह्रीं नित्य-द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं अजीवकाय-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं

निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्याणि॥२॥

पर्यायों से जुड़ आया, या पर्यायों को पाया।
ऐसे धर्मादिक जो हैं, वे द्रव्य विलक्षण सो हैं॥२॥

ॐ ह्रीं सामान्यसंग्रहनयेन सूत्रमिदं द्रव्य-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवाश्च॥३॥

हैं जीव बहुत से द्रव्य, कुछ हैं अभव्य कुछ भव्य।
अनमत की कुमति भगाव, दे जोर अलग तस गाव॥३॥

ॐ ह्रीं विशेषसंग्रहनयेन सूत्रमिदं जीवद्रव्य -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नित्या-वस्थितान्यरूपाणि॥४॥

नहिं नाश द्रव्य ये होते, बिन रूप अमूरत होते ।
संख्या का नहिं व्यभिचारा, गुण ये होना अनिवारा॥४॥

ॐ ह्रीं द्रव्यस्वभाव-प्ररूपकनयेन सूत्रमिदं द्रव्यस्वभाव -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रूपिणः पुद्गलाः॥५॥

पुद्गल में गुण कुछ न्यारा, कारण हैं नैक प्रकारा।
तातैं ये रूपी कहायें, रस आदि भी पाये जायें॥५॥

ॐ ह्रीं विशेषद्रव्यस्वभाव -प्ररूपकनयेन सूत्रमिदं पुद्गलद्रव्यस्वभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आ आकाशा-देक-द्रव्याणि॥६॥।

नभ धर्म अधर्म अखण्ड, हैं एक द्रव्य नहिं खण्ड।
इन बिन अन द्रव्य अनेक, संख्या की अपेक्षा देख॥६॥

ॐ ह्रीं अखण्डनयेन सूत्रमिदं अखण्डद्रव्य -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्क्रियाणि च॥७॥

इक ठान से अन्य स्थान, नहिं जाते द्रव्य ये मान ।
तातैं निष्क्रिय कहलाते, निज में परिवर्तन पाते॥७॥

ॐ ह्वीं अक्रियानयेन सूत्रमिदं निष्क्रियद्रव्य -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

असंख्येयाः प्रदेशा धर्मा-धर्मैक-जीवानाम्॥८॥

इक जीव प्रदेश जु होते, संख्यात अनन्त न होते ।
सब धर्म अधर्म सु द्रव्य, असंख्यात प्रदेशी जीव्य॥८॥

ॐ ह्वीं शुद्ध-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं असंख्येप्रदेशद्रव्य -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आकाशस्या-नन्ताः॥९॥

जितने में अणू समाता, नभ देश प्रदेश कहाता।
आकाश प्रदेश अनन्त, जानो कहते भगवन्त॥९॥

ॐ ह्वीं शुद्ध-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अनन्तप्रदेशद्रव्य -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संख्येया-संख्ये-याश्च पुद्गलानाम्॥१०॥

पुद्गल प्रदेश त्रय विध के, संख्यात असंख्य अणू के।
हैं अनन्त प्रदेशी पुद्गल, स्कन्धों का इस विधि है बल॥१०॥

ॐ ह्वीं स्वजाति-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं पुद्गलप्रदेशद्रव्य -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाणोः॥११॥

पुद्गल का सूक्ष्म जु भेद, अणु है नहिं जस अनभेद।
उसमें नहिं होत प्रदेश, कारण वह स्वयं प्रदेश॥

ॐ ह्वीं शुद्ध-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अणुद्रव्यप्रदेश -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोका-काशेऽवगाहः॥१२॥

धर्मादिक जो सब द्रव्य, आवास रहे ज्ञातव्य ।
लोकाकाशा आधार, अवगाह इसी में सार॥१२॥

ऊँ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं लोकाकाश -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

धर्मा-धर्मयोः कृत्स्ने॥१३॥

तिल में रहता ज्यों तैला, धर्माऽधर्मा त्यों फैला।
लोकाकाशा तक जानो, दोनों द्रव का परिमाणो॥१३॥

ऊँ ह्रीं सामान्यनयेन सूत्रमिदं धर्मादिद्रव्यस्वभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक-प्रदेशा-दिषु भाज्यः पुद्गलानाम्॥१४॥

संख्यात असंख्यातों में, वा एक प्रदेशों भी में ।
नन्ते पुद्गल स्कन्ध, अवगाह स्वभाव प्रबन्ध॥१४॥

ऊँ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं पुद्गलावगाहशक्ति -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असंख्येय-भागादिषु जीवानाम्॥१५॥

इक भाग असंख्यातै से, बढ़-बढ़ के असंख्याते में।
रहते इक जीव प्रदेश, सब करें वास निज देश॥१५॥

ऊँ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं जीवद्रव्यावगाहनशक्ति -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत्॥१६॥

ऐसा क्यों क्या कारण है, उसका ही उदाहरण है।
संकोच और विस्तार, जैसा दीपक आधार॥ १६॥

ऊँ ह्रीं सामान्यनयेन विशेषनयेन च सूत्रमिदं जीवद्रव्यसंकोच-विस्तार -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गति-स्थित्युपग्रहौ धर्मा-धर्मयो-रुपकारः॥१७॥

है धर्म द्रव्य उपकार, गति में देता सहकार ।
जीवों पुद्गल की थिति में, है द्रव्य अधर्म उपकृति में॥१७॥

ऊँ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं धर्मादिद्रव्योपकार -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आकाशस्या -वगाहः॥१८॥

सब द्रव्यों को अवकाशा, देता उपग्रह आकाशा।
अवगाह इसी में सारा, पर लक्षण धारे न्यारा॥१८॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं आकाशद्रव्य-वगाहशक्ति -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शरीर-वाङ्मनः प्राणा-पानाः पुद्गलानाम्॥१९॥

तन मन वचनों का होना, उच्छवास-श्वास का लेना।
जीवों के प्रति उपकार, पुदगल का सब आभार॥१९॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं पुदगल-द्रव्योपकार -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख-दुःख-जीवित-मरणो-पग्रहाश्च॥२०॥

सुख दुख जीवा जो पाते, जीवन वा मरण लहाते।
पुदगल कृत हैं उपकार, जानो अन विविध प्रकार॥२०॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं पुदगलद्रव्योपकारविशेष-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परस्परो-पग्रहो जीवानाम्॥२१॥

चाहे गुरु शिष्य हो भाई, या मालिक नौकर-दाई।
इक दूजे पर उपकार, जीवों का सूत्र विचार॥२१॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं जीवद्रव्योपकार-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

वर्तना-परिणाम-क्रियाः परत्वा-परत्वे च कालस्य ॥२२॥

वर्तन परिणमन क्रिया से, छोटा या बड़ा वया से ।
ये काल द्रव्य उपकार, लक्षण निश्चय-व्यवहार॥२२॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं कालद्रव्योपकार -ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः॥२३॥

रस गन्ध रूप अरु फास, पुदगल के गुण हैं भाष।

हो भेद सूक्ष्म या थूल, चौ गुण हैं सब के मूल॥२३॥

ऊँ ह्रीं अशुद्ध-द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं पुद्गलदद्रव्यगुण-विशेषज्ञान - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-
तमश्छाया-तपोद्योत वन्तश्च॥२४॥

जो शब्द बन्ध औ सूक्ष्म, संस्थान भेद स्थूल ।
तम छाया आतप द्योत, पर्यायें ही सब होत॥२४॥

ऊँ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं पुदगलद्रव्यगुण-विशेषज्ञान- प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अणवः स्कन्धाश्च॥२५॥।

पुदगल द्वय रूप विभेद, अणु या स्कन्ध स्वभेद ।
जग में जो कुछ दिख जाता, जड़ है क्यों तू हरषाता॥२५॥

ऊँ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं पुद्गगलद्रव्य-भेदज्ञान प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेद-संघातेभ्यः उत्पद्यन्ते॥२६॥

स्कन्धों की उत्पत्ती, है भेद-संघात प्रवृत्ती।
केवल विभेद संघात, भी कारण है विख्यात॥२६॥

ऊँ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं पुद्गलस्कन्ध -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेदा-दणुः॥२७॥

अणु उत्पत्ती का काजा, कर कर भेदों से पाजा।
अणु तो न कब हु दिख पाता, विज्ञान रहा अज्ञाता॥२७॥

ऊँ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं अणूत्पत्ति -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः॥२८॥

खण्डन या संघातन से, नहिं दिखता कुछ आँखन से।
खण्डन संघात मिला दे, तो चक्षू से दिख पावे॥२८॥

ॐ ह्रीं अस्वभावनयेन सूत्रमिदं चाक्षुषस्कन्धोत्पत्ति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सद् द्रव्य-लक्षणम्॥२९॥

कह आये जो षट् द्रव्य, उनका लक्षण ज्ञातव्य ।
सत रहते द्रव्य हमेशा, अनरूप रूप चाहे कैसा॥२९॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं सद्द्रव्यलक्षण-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्॥३०॥

जो नित्य उपजती नसती, पर्याय ध्रौव्य में वसती।
उत्पाद ध्रौव्य व्यय जाना, लक्षण सद्-रुप बखाना॥३०॥

ॐ ह्रीं उत्पादव्ययसापेक्षअशुद्ध-द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं सत्पदार्थ ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तद्भावाव्ययं नित्यम्॥३१॥

जो भाव सहित सो द्रव्य, व्यय उसका होय न नित्य ।
यह ही तो ध्रौव्यपना है, लक्षण यह बना तना है॥३१॥

ॐ ह्रीं सत्ताग्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं नित्यद्रव्य-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्पिता-नर्पित-सिद्धेः॥३२॥

वस्तू त्रय रूप कही है, अनेकान्त स्वरूप सही है।
यदि इक नय होता अर्पित, दूजा नय स्वयं अनर्पित॥३२॥

ॐ ह्रीं अनेकान्तनयेन सूत्रमिदं अनेकान्तस्वरूप -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः॥३३॥

किस कारण अणु बंध जाते, यह नियम यहाँ बतलाते।
स्निग्ध रूक्ष गुण से ही, बन्धन पुदगल है देही॥३३॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं पुद्गलबन्धस्वरूप - ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

न जघन्य-गुणानाम्॥३४॥

यदि इक गुण वाले होते, स्निग्ध रूक्ष गुण थोते ।
उनका नहिं होता बन्ध, यह कहता सूत्र प्रबन्ध॥३४॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं जघन्यगुणस्वरूप -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण-साम्ये सदृशानाम्॥३५॥

अणु में गुण हो य समाना, तो बन्ध नहीं है माना।
चाहे सम जाति विजाती, बंधन होता नहिं साथी॥३५॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं पुद्गलबन्धव्यवस्थानिषेध-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वयधिकादि-गुणानां तु॥३६॥

बंधन उन अणु में सारे, द्वय गुण अधिके जो धारे ।
चाहे सम जाति विजाती, बंधन हो जाता साथी॥३६॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं पुद्गलबन्धव्यवस्थाविधि - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च॥३७॥

बंधन से अधिक गुणों में, परिणति कम गुण अणु जामें।
ज्यों गुणमय थोड़ी स्याही, नीला बहु पानी भाई॥३७॥

ॐ ह्रीं परिणामपरिणामि-सम्बन्धि-उपचरितसद्‌भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं पुद्गलबन्धफल-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण-पर्ययवद् द्रव्यम्॥३८॥

जिन में हों गुण पर्यायें, लक्षण द्रव्यों का गायें।
सत्ता त्रय नहीं जुदी है, इस युत सत द्रव्य सही है॥३८॥

ॐ ह्रीं सद्‌भूत व्यवहारनयेन सूत्रमिदं द्रव्यलक्षण-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कालश्च॥३९॥

है द्रव्य काल भी जानो, उत्पाद ध्रौव्य व्यय मानो।

गुण निष्क्रिय तथा अरूपी, नहिं बहु परदेशी प्ररूपी॥३९॥

ॐ ह्रीं अस्तित्वनयेन द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदंकालद्रव्य -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोऽनन्त-समयः॥४०॥

नहिं होय समय का अन्त, कहते ऐसा भगवन्त ।
यह काल प्रमाण बताया, व्यवहार मुख्य से गाया॥४०॥

ॐ ह्रीं पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं कालद्रव्यपर्याय-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः॥४१॥

गुण का आश्रय है द्रव्य, नहिं छोड़ कहीं प्राप्तव्य।
गुण में अन गुण नहिं होते, गुण के लक्षण यह होते॥४१॥

ॐ ह्रीं सद्भूत व्यवहारनयेन सूत्रमिदं द्रव्यगुण-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तद्भाव : परिणामः॥४२॥

जिसका जो भाव कहा है, वह ही परिणाम रहा है।
परिणाम रही पर्यायें, द्रव्यों में वही समायें॥४२॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदंद्रव्यपरिणाम -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्यं)

पुद्गल धर्म अधर्माकाश, काल द्रव्य का वर्णन भी,
द्रव्य गुणों पर्यायों के संग, पाठ पाँचवां सुनें सभी।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले, रुचिर चरु रत्नों के दीप,
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का, अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रे पंचमाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्परि पुष्पांजलिं.....)

षष्ठ अध्याय

काय-वाङ्मनःकर्म योगः॥१॥

मिला संयोग यदि मन का, मनस् का योग भी होगा,
हुई लब्धि वचन की तो, वचन का योग भी होगा।
तनिक सा तन मिले तो भी, काय का योग तो होता,
इन्हीं त्रय योग के कारण, भ्रमण संसार में होता॥१॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं योगत्रय -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स आस्रवः॥२॥

भरे ज्यों नीर खेवट में, हुआ यदि छिद्र इक छोटा,
करम परिणे स्वआतम में, भले इक योग ही होता।
क्रिया यह योग की जानो, क्रिया आस्रव की ओ भाई,
इसी कारण रुले अब तक, जगत जंजाल में भाई॥२॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं आस्रवतत्त्व-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभः पुण्यस्या-शुभःपापस्य॥३॥

रखो मन में कुशल भाव, यही कारण सु-योगों का,
करो मत वो अशुभ भाव, जु कारण है कु-योगों का।
सुयोगों से करम पुण्य, कुयोगों से बढ़े पाप,
नियम यह ध्यान में रक्खो, इसी से आत्म पर छाप॥३॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं पुण्यपापतत्त्व -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं । निर्वपामीति स्वाहा।

सकषाया-कषाययोः साम्परायि-केर्या-पथयोः॥४॥

बने जो नाथ आस्रव के, कहे दो विध यहाँ जाते,
कषायों से सहित जो हैं, साम्परायिक उन्हें गाते ।
कषायों से रहित जीवों में, ईर्यापथ बना आस्रव,
प्रथम संसार का कारण, नहीं दूजे में बन्धास्रव॥४॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं आस्रवस्वामि -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय-कषाया-व्रतक्रियाः पञ्च चतुः पञ्च-
पञ्चविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः॥५॥

इन्द्रियाँ पन कषायें चार, क्रिया पच्चीस को देखो,
तथा आस्रव कहे पाँच, सभी सैंतीस को लेखो।
प्रथम आस्रव बने कारण, गुरु ने यह बताया है,
करो शुभ ही क्रिया भविजन, यही सुख गेह साया है॥५॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं सकषायास्रव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीव्र-मन्द-ज्ञाता-ज्ञात-भावाधि-करण-
वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः॥६॥

जीव कुछ पुण्य भावों से, तथा कुछ मन्द भावों से,
कोई विज्ञात भावों से, कोई अज्ञात भावों से।
विधास्रव में तभी अन्तर, पड़े थोड़ा अधिक जानो,
द्रव्य आधार की शक्ति, बनी कारण सभी मानो॥६॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अधिकरणं जीवा-जीवाः॥७॥

बना आस्रव का आधार, उसी के भेद बतलाते,
जीव निर्जीव दो आश्रय, रूप बहु और बन जाते।
करें करुणा गुरु कहते, करो मत जीव खल भाव,
तथा निर्जीव कृत सारी, क्रिया में हों अशुभ भाव॥७॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं आस्रवाधिकरण - ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भ-योग-कृत-कारितानु-
मत –कषायविशेषै-स्त्रि-स्त्रि-स्त्रि-श्चतु-श्चैकशः॥८॥

एक सौ आठ भेदों से, जीव कृत पाप प्रारम्भा,
योग त्रय सह समारम्भा, तथा आरम्भ समारम्भा।
करे कर से व करवाये, किये अघ को सराहे वा,
कषायों में गुणित कर लख, भरत नित पाप जल नौका॥८॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं जीवाधिकरण -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्वि-चतुर्द्वि-त्रि-भेदाः परम्॥९॥

मूल उत्तर गुणी रचना, कही द्वय भेद से जानो,
तथा निक्षेप चौ विधि से, किये संयोग दो मानो ।
वचन मन तन प्रवत्ती सब, कहीं निर्जीव आधारा,
क्रिया शुभ से कुशलता है, अशुभ तो पाप का भारा॥९॥

ॐ ह्रीं विशेषव्यवहारनयेन सूत्रमिदं अजीवाधिकरण -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**तत्प्रदोष -निह्नव-मात्सर्यान्तराया-सादनोपघाता-
ज्ञानदर्शनावरणयोः॥१०॥**

करम जो ज्ञान दर्शन को, ढकें वो भाव पहिचानो,
सुनो गुण गान दूजों का, नहीं पैशून्य मन आनो।
छुपाओ मत बिना ईर्ष्या, दीप दो ज्ञान दूजों को,
करूँ विच्छेद वा दूषण, ज्ञान घातूं नहीं सोचो॥१०॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं ज्ञानदर्शना-वरणास्रवभाव -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**दुःख-शोक-तापा-क्रन्दन-वध-परिदेव-नान्यात्म-
परोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य॥११॥**

निजी मन या किसी मन में, हुई पीड़ा दुखी होना,
वियोगज इष्टगत शोक, तथा वध रोना अरु धोना।
हुआ अपवाद मन संताप, बिलख रो रो जु चिल्लाता,
देख मन खिन्न हो जावे, असाता करम है आता॥११॥

ऊँ ह्रीं अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं असद्वेद्यास्रवभाव - ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूतव्रत्यनु-कम्पा-दान-सराग संयमादियोगः क्षान्तिः शौच-मिति सद्-वेद्यस्य॥१२॥

दया कर सर्व जीवों पर, व्रती जन प्रति अनूकम्पा,
भले हो रोग सह संयम, मिटा क्रोधादि भूकम्पा।
दान पूजादि जिनपद की, करो मन लोभ परिहारो,
करम साता के ये कारण, सभी शुभ कार्य अन धारो॥१२॥

ऊँ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं सवेद्यास्रवभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवा-वर्णवादो दर्शन-मोहस्य॥१३॥

घोर मिथ्यात्व का कारण, सुनो गुरु अब सुनाते हैं,
करें अपवाद केवलि का, दोष श्रुत में दिखाते हैं।
श्रमण समुदाय संघों में, देव दूषण लगाते हैं,
अहिंसा धर्म ना मानें, बहुत दुख वो उठाते हैं॥१३॥

ऊँ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं दर्शनमोहास्रवभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कषायो-दयात्तीव्र-परिणामश्चारित्र-मोहस्य॥१४॥

कषायों का उदय हो तीव्र, चरित मोही करम आता,
कषायें वो भड़कती जब, करम आस्रव भी बढ़ जाता।
रहे उपभोग बिन वनिता, बनी जो आज बाला है,
योग्य उपभोग ज्यों होती, युवति पर मन रसाला है॥१४॥

ऊँ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं चारित्रमोहास्रवभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बह्वा-रम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्या-युषः॥१५॥

नाश जीवों के प्राणों का, बहुत जीवों का जिसमें हो,
कहा आरम्भ है इसको, नहीं व्यापार ऐसा हो।

बहुत हो लोभ परिग्रह का, वितृष्णा विश्व में फैले,
नरक आयू के आस्रव में, सहायक भाव ये मैले॥१५॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं नरकायुरास्रवभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माया तैर्यग्योनस्य॥१६॥

रखे मन में नहीं कहता, वचन से और कुछ बोले,
तथा मन से करे कुछ अन, योग तीनों कुटिल डोले।
कपट झट पट झलक जाये, ध्यान हो आर्त नित मन में,
नियम से आयु पशुओं की, पले माया जु पल-पल में॥१६॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं तिर्यग्योनायुरास्रवभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अल्पारम्भ-परिग्रहत्वं मानुषस्य॥१७॥

अल्प हिंसादि करता हो, नहीं सावध परिणाम,
ममत रखता नहीं पर में, बने जब भद्र परिणाम।
मनुष्यायु के आस्रव में, भाव कारण यही होते,
मनुष्यायु को पाकर के, भाव फिर क्यों कुटिल होते?॥१७॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं मनुष्यायुरास्रवभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वभाव-मार्दवं च॥१८॥

बिना समझाये बतलाये, सहज ही शान्त मन सीधा,
कषायें भी उबलती ना, दया दीनों पे मन भीगा।
मनुज देवायु का आस्रव, इन्हीं भावों से होता है,
कही है मन्द भावों की, यहाँ महिमा क्यूँ रोता है॥१८॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निः शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्॥१९॥

अल्प हो पाप आरम्भ, संग संचय भी कम भाता,

तथा व्रत शील ना पाले, सर्व आयू को पा जाता।
मती में गति नहीं रक्खो, सु दृष्टी से धरम पालो,
गये प्रत्येक गति में हैं, गति पंचम को सम्भालो॥१९॥

ॐ ह्रीं सर्वगतनयेन सूत्रमिदं सर्वायुर्बन्धभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सराग-संयम-संयमासंयमा-कामनिर्जरा बाल-तपांसि दैवस्य॥२०॥

देव आयू सु-आस्रव के, भाव भीने सुनाते हैं,
धरत चिन्तामणी संयम, भले कुछ राग पाते हैं।
धरें जो संयमासंयम, व कायक्लेश उठाते हैं,
निरजरा लक्ष्य के बिन कर, बहुत सुरगति लहाते हैं॥२०॥

ॐ ह्रीं असर्वगतनयेन सूत्रमिदं देवायुर्बन्धभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्त्वं च॥२१॥

अधिक सुख भोग उपभोग, स्वर्ग वैमानिकी देवा,
पहुँचते जन वहाँ वो भी, करी सम्यक्त्व की सेवा।
साथ सम्यक्त्व हो तो फिर, स्वाद सुख का अनोखा है,
साथ मिथ्यात्व के साथी, सुक्ख स्वर्गों का फीका है॥२१॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं सम्यक्त्वमहिमा-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

योगवक्रता-विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः॥२२॥

वचन मन तन क्रिया कुटिला, वक्रता योग कहलाती,
तथा पर प्रति गलत वृत्ती, विसंवादन कही जाती।
'च' पद से चित चंचल पन, चुगल पन अन बहुत बातें,
अशुभ नामा करम आस्रव, इसी कारण बहुत आते॥२२॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अशुभनाम-कर्मास्रव -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तद्विपरीतं शुभस्य॥२३॥

वचन मन तन क्रिया सीधी, सरलता योग की होती,
बनी सबसे सुखद वृत्ती, सहज मन मैल को धोती।
धर्म धर्मायतन आदर, तजें परमाद भव भीती,
करम शुभ नाम आस्रव यदि, रखें शुभ भाव में प्रीति॥२३॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं शुभनामकर्मास्रव -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन-विशुद्धि-र्विनय-सम्पन्नता शील-व्रतेष्वनती-चारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी-साधु-समाधि-वैया-वृत्यकरण-मर्हदा-चार्यबहुश्रुत-प्रवचनभक्ति-रावश्यका-परिहाणि-र्मार्ग-प्रभावना-प्रवचन-वत्सलत्व-मिति तीर्थकरत्वस्य॥२४॥

दरश सम्यक विशुद्धी से, गुणी जन प्रति विनय आना,
शीलवत दोष बिन पाले, सतत निज ज्ञान मन लाना।
डरे संसार दुखों से, त्याग तप हो यथा शक्ति,
विघ्न बाधा करो दूर, समाधि-साधु की भक्ति॥२४॥
बिना हिंसा हो दुख मुक्ति, वैयावृत्ति सही मानी,
बहुत अनुराग अर्हत में, सूरि बहुश्रुत व जिनवाणी।
षडावश्यक पलें रोज, धर्म महिमा सु दिखलाना,
सहज साधर्मि प्रति नेह, तीर्थकर भाव मन भाता॥२४ब॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद्-गुणोच्छादनोद्-भावने च नीचै-र्गोत्रस्य॥२५॥

सदा दूजों की निन्दा में, तथा सदगुण सभी ढाके,
अपन ही मुख बने मिठ्ठू, प्रशंसा गान खुद गाके ।
छिपा के दोष निज के जो, चतुर हम हैं बहुत सोचे,
बन्ध इन भाव से करके, लहाते गोत्र वो नीचे॥२५॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं नीचगोत्रास्रवभावज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्य-नुत्सेकौ चोत्तरस्य॥२६॥

करें गुणियों का गुण गान, व उनके दोष ना गावें,
जतावें दोष सब अपने, तथा सदगुण ना दिपावें।
दम्भ भावों से बचकर के, निजातम भाव नित देखो,
उच्च गोत्रों के आस्रव के, भाव यह नित्य शुभ पेखो॥२६॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं उच्चगोत्रास्रवभावज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विघ्नकरण मन्तरायस्य॥२७॥

किसी को दान से रोके, किसी के लाभ में बाधा,
भोग उपभोग का योग, बीच में विघ्न या बाधा।
करें या भाव भी रक्खे, अन्तराया करम आवे,
ध्यान रख बन्ध के कारण, तभी बन्धन से बच पावे॥२७॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अन्तरायकर्मास्रवभावज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्य)

मन वच कायों के त्रययोग, प्रति विशिष्ट विधि का आस्रव,
अशुभ और शुभ भावों का यह, खेल छठा अध्याय दिखाव।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रुचिर चरू रत्नों के दीप,
शुद्ध धूप अरू सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रे षष्ठाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्पिरि पुष्पांजलिं.....)

सप्तम अध्याय

हिंसानृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरति र्व्रतम्॥१॥

(बसन्ततिलका)

हिंसा कुशील मृष वा बहु-संग चोरी,
मानीं गयीं बुध जनों कृत पाप मोरी।
हो दूर-दूर अघ से शुभ भाव भाओ,
गाओ बसन्त-तिलका सुख शान्ति पाओ॥१॥

ऊँ ह्रीं असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं व्रत ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देश-सर्वतोऽणु-महती॥२॥

जो एक देश अघ छोड़ व्रती बना है,
वो ही हुआ अणुव्रती मद तो मना है।
जो सर्व देश अघ छोड़ व्रती बने हैं,
वो हैं महान महते व्रत में सने हैं॥२॥

ऊँ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं अणुमहाव्रत-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च॥३॥

संकल्प धार फिर भी मन दौड़ता हो,
भाओ सु भाव मन की थिरता बढ़ाओ।
प्रत्येक पाँच व्रत की पन भावनायें,
हैं श्रेष्ठ औषधि सुधी गुरुजी बतायें॥३॥

ऊँ ह्रीं अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वाङ्मनो-गुप्तीर्या-दान-निक्षेपण-समित्या-लोकित-पान-भोजनानि पञ्च॥४॥

गुप्ति सदा वचन की, मन की बनाके,
भू देखाभाल चलते रखते उठाते ।
आलोक तेज रवि हो तब खान पान,

ये पाँच भाव दृढ़ ही व्रत युक्तमान॥४॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अहिंसाव्रतभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च॥५॥

सन्देह पापमय गर्वित वाक्य ना हों,
वाणी दयामय सदैव हि भावना हो।
जो क्रोध लोभ भय त्याग बिना हँसी के।
बोलें, वही वचन सत्य लगें सभी के॥५॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं सत्यव्रतभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**शून्यागार-विमोचिता-वास-परो-परोधा-करण-
भैक्ष्य-शुद्धि सधर्मा-विसंवादाः पञ्च॥६॥**

आवास थान बन वृक्ष व त्यक्त थान,
बे रोक-टोक अन बैठ तथा बिठान।
हो भै क्ष्य शुद्धि सह धार्मिक से लड़ें ना,
ये भावना पन रहें नहिं चोर हो ना॥६॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अचौर्यव्रतभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**स्त्री-राग-कथाश्रवण-तन्मनो-हरांग-निरीक्षण -पूर्व -रतानुस्मरण -
वृष्येष्ट -रस -स्व- शरीर-संस्कार-त्यागाः पञ्च॥७॥**

स्त्री राग रंजन कथा सुन ना अपार,
ना घूर घूर वपु-अंगों को निहार।
ना याद भोग कर इष्ट गरिष्ठ त्याग,
श्रंगार काय बिन तू व्रत ब्रह्म पाग॥७॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं ब्रह्मचर्यव्रतभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनोज्ञा-मनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष-वर्जनानि पञ्च॥८॥

जो अक्ष के विषय पाँच हि आँच माने,

ना राग भाव मन ला मन जो सुहाने।
अच्छी लगे न मन वस्तु न द्वेष ठाने,
भा भाव ठोस व्रत पंचम ओ सयाने॥८॥

ऊँ ह्रीं अनुपचरित-सद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिंद अपरिग्रहव्रतभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हिंसा-दिष्विहा-मुत्रा-पाया-वद्य-दर्शनम्॥९॥

खोटे कुकर्म त्रस त्रासित पाप वाले,
होते दुखी जगत में गति कोई पाले।
निन्दा करे जग सभी अपमान देते,
ये सोच के न व्रतवन्त कुकर्म सेते॥९॥

ऊँ ह्रीं ज्ञाननयेन सूत्रमिदं पापफल-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दुःख-मेव वा॥१०॥

ज्यों दाद खाज खुजला मन को न चैन,
त्यों भोग के विषय दुक्ख कहें जु जैन।
हिंसादि पाप खलु भाव कुकार्य सारे,
ये कोष दोष दुख के तज सोच प्यारे॥१०॥

ऊँ ह्रीं ज्ञाननयेन सूत्रमिदं हिंसादिफलभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-
गुणाधिक क्लिश्यमाना-विनयेषु॥११॥

मैत्री सुभाव सब जीव प्रजाति पे हो,
आमोद हर्ष गुणियों गुण देख के हो।
हो दीन पे दुखित पे करुणा दिलों में,
माध्यस्थ भाव रख लो विपरीतकों में॥११॥

ऊँ ह्रीं क्रियानयेन सूत्रमिदं शुभभाव ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम्॥१२॥

संसार ये अमिट है कर्ता न हर्ता,

जीवा अपार भव भार विहार धर्ता।
काया अनित्य दुख मूल मलीन थैली,
भा भावना मिट सके तन राग रैली॥१२॥

ॐ ह्रीं गुणनयेन सूत्रमिदं संवेगवैराग्यभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रमत्त-योगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा॥१३॥

जो देख भाल चलते तजते प्रमाद,
तो बन्ध पाप नहिं प्राण पलाय पाद।
रागादि भाव सह प्राण वियोग हिंसा,
अध्यात्म आत्म शुभ भाव सही अहिंसा॥१३॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं हिंसा-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अस-दभिधान-मनृतम्॥१४॥

वस्तु असत्य कथनी करना विधान,
वा प्राण पीड़न अकारण झूठ बान।
माना यही दुखज क्लेशज पाप द्वार,
ज्ञानी गुरू कह रहे चल सत्य धार॥१४॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अनृत-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अदत्ता-दानं स्तेयम्॥१५॥

रक्खी पड़ी गिर गयी यदि अन्य वस्तु,
छूते नहीं भले कीमत लाख अस्तू।
ना भाव ही मन बने उसको उठा लूँ,
अस्तेय मात सह पाथ प्रशस्त पालूँ॥१५॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अनृत-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैथुन-मब्रह्म॥६॥

रागादि भाव युत मैथुन भाव लाता,

नारी तथा नर मिलें रति को सजाता।
जो शील को गुणन को व्रत ब्रह्म घाते,
ऐसा कुशील बुध त्याग सुधाम पाते॥१६॥

ॐ ह्रीं अशुद्ध-निश्चयनयेन-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अब्रह्म- ज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मूर्च्छा परिग्रहः॥१७॥

चैतन्य या अचित के प्रति मोह भाव,
मेरे हुए मम यही ममता विभाव।
संकल्प है विकलता भव पाप मूल,
मेटूँ मिटे अधमता दुख शूल भूल॥१७॥

ॐ ह्रीं अशुद्ध-निश्चयनयेन सूत्रमिदं परिग्रह-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशल्यो-व्रती॥१८॥

जो जाप ताप व्रत संयम पालते हैं,
माया निदान अरु मोह न पालते हैं।
हो साथ शल्य व्रत के व्रत ना सुहाते,
ज्यों इक्षु मिष्ट पर गंध न फूल पाते॥१८॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं व्रतीभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अगार्यनगारश्च॥१९॥

जो मोह के उदय से घर में निवास,
वो हैं अगार, कुछ धार व्रती सुवास।
तृष्णा तजी विषय की अनगार होते,
दो भेद हैं व्रती के भव पार होते॥१९॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं व्रतीभेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अणुव्रतोऽगारी॥२०॥

हिंसादि पाँच अघ खान जु अल्प त्यागे,

सम्यक्त्व साथ गुरु पाँच सु पाद पागे।
गेही बना रुचि पना ग्रह काज में ना,
वो ही कहा अणुव्रती विपदा कछू ना॥२०॥

ॐ ह्रीं विशेष व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अणुव्रती-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिग्देशा-नर्थ-दण्ड-विरति-सामायिक-प्रोष-धोप-वासोप-भोग-परिभोग-परिमाणा-तिथि-संविभाग-व्रत-सम्पन्नश्च॥२१॥

सीमा दिशा दिगव्रती दश को बनाता,
ग्रामादि ले नियम देशव्रती कहाता।
पापादि काज सब त्याग अनर्थदण्ड,
ये तीन से अणुव्रती गुण वृद्धि मण्ड॥२१अ॥
एकाग्र -योग धर सामयिकी सुधारे,
आहार त्याग कर प्रोषध-वास धारे।
भोगोपभोग परिसीमित पात्र दान,
शिक्षाव्रती कर रहे सिख ये प्रदान॥२१ब॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं गुणव्रतादि-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता॥२२॥

तैयार हूँ मरण को भय है न चिन्ता,
काया कषाय शिथलीकर देह अन्ता।
गेही गहे सुव्रत को फल एक चाहें,
देहान्त के समय में गुरु गोद चाहें॥२२॥

ॐ ह्रीं संश्लेषसहितानुपचारिता-सद्भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं सल्लेखना- ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शङ्का-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टे-रतिचाराः॥२३॥

सन्देह तत्त्व मन में भव सौख्य कांक्षा,
वा देह के धरम से मन में जुगुप्सा।
वा संस्तुति मत जु अन्य करे प्रशंसा,

सम्यक्त्व दोष पन ये मत धार हँसा॥२३॥

ॐ ह्रीं अशुद्ध-निश्चयनयेन सूत्रमिदं सम्यक्त्वातिचार-ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम्॥२४॥

पायी निधी अणुव्रती उन को निहारो,
जो सात शील व्रत हैं उनको सुधारो।
हैं दोष ज्यों सु-व्रत के सुन पाँच-पाँच,
वो ज्ञान में यदि रहें व्रत को न आँच॥२४॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं व्रतातिचारसंख्या-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बन्ध-वध-च्छेदाति-भारारोपणान्न-पाननिरोधाः॥२५॥

बाँधे तथा वध करे पर अंग छेदे,
सामर्थ्य से अधिक भार जु डार भेदे।
रोके न दे अशन को अति कष्ट-पीड़ा,
व्रत्ती अहिंस व्रत की पन दोष क्रीड़ा॥२५॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अहिंसाव्रता-तिचारभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यान-कूटलेख-
क्रिया न्यासापहार-साकारमन्त्र-भेदाः॥२६॥

दो वेद के मिलन का कुछ गुप्त काज,
मिथ्योपदेश कूटन लिखना कुकाज।
धान्यादि को हड़पते चुगली कराते,
सत्याणुवृत्ति जन वो मैला बनाते॥२६॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं सत्यव्रतातिचार-भाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्तेनप्रयोग-तदाहृता-दान-विरुद्ध-राज्याति-क्रम-
हीनाधिक-मानोन्मान-प्रतिरूपक-व्यवहाराः॥२७॥

चोरी करा खुद करे अन को सराहें,

ले माल चोर बिन न्याय अनीति राहें।
मानोनमान कमती-बढ़ती मिलाते,
साद्दश्य वस्तु छलते अघ को बढ़ाते॥२७॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अचौर्यव्रतातिचार-भाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पर-विवाह करणेत्वरिका-परिगृहीता-परिगृहीता-गमना
नङ्गक्रीडा-काम-तीव्राभिनि –वेशाः॥२८॥

शादी विवाह पर का पर से कराना,
वेश्या ग्रहीत अग्रहीत निकाय जाना।
क्रीड़ा अनंग अति कामुक लालसा हो,
तो ब्रह्मचर्य व्रत निश्चित दोष सा हो॥२८॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं ब्रह्मव्रतातिचारभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षेत्र-वास्तु-हिरण्य-सुवर्ण-धन-धान्य-दासी-
दास-कुप्य-प्रमाणातिक्रमाः॥२९॥

वास्तू हिरण्य धन धान्य व कुप्य भाण्ड,
दासी सुवर्ण अरु खेत व दास शान।
भोगोपभोग परिमाण व्रताऽतिचार,
त्यागो कहें सगुरु जो विरताऽतिचार॥२९।।

ॐ ह्रीं स्वजात्युपचरित-विजात्युपचरित-असद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अपरिग्रव्रतातिचारभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊर्ध्वा-धस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तरा-धानानि॥३०॥

ऊँची अधो दश दिशा तिरछी दिशा को,
लोभादि के वश बढ़ाकर भूलता जो।
व्यापार हेतु बढ़ती यदि देश सीमा,
तो पूर्ण शुद्ध नहिं दिग्वत की महीमा॥३०॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं दिग्व्रतातिचारभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्द-रूपानुपात-पुद्गल-क्षेपाः॥३१।

वस्तू रही परिधि बाहर वो बुलाना,
भेजें कभी पुरुष वा आवाज देना।
रूपानुपात करते कुछ फेंक देते,
वो देशवृत्ति व्रत में अतिचार लेते॥३१॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं देशव्रतातिचार-भाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्या-समीक्ष्याधि-कर-णोपभोगपरिभोगा-नर्थक्यानि॥३२॥

रागादि हास्य अति साथ हि भण्ड बोले,
चेष्टा कुचेष्ट तन से अति धृष्ट बोले।
सोचे बिना अधिक काज व वस्तु धारे,
आनर्थ्यदण्ड व्रत दोष लखो सखा रे॥३२॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अनर्थदण्डव्रतातिचारभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

योग-दुष्प्रणि-धाना-नादर-स्मृत्यनुपस्थानानि॥३३॥

काया चले मन खाले वचना अशुद्धि,
वा मान आदर नहीं अरु भूल बुद्धि।
सामायिकी न बिन दोष रही व्रती के,
तो द्वादशा व्रत पलें पर फूल फीके॥३३॥

ॐ ह्रीं अशुद्ध-निश्चयनयेन सूत्रमिदं सामयिकव्रतातिचारभाव - ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अप्रत्य-वेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्गादान-संस्तरोप-क्रमणा-नादर स्मृत्यनु-पस्थानानि॥३४॥

पूजादि वस्तु गहता पट को बिछाता,
मूत्रादि त्याग लखा शोध बिना गिराता।
उत्साह ना न सुध भूलत नित्य काज,
तो प्रोषधानशन में व्रत दोष राज॥३४॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं प्रोषधव्रतातिचार -

भाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सचित्त-सम्बन्ध-सम्मिश्रा-भिषव-दुःपक्वाहाराः॥३५॥

आहार जो सचित, चित्त मिला हुआ हो,
सम्बन्ध हो सचित का वृष भोज वा हो।
दुष्पक्व भोजन तथा करना व्रती को,
भोगोपभोग परिमाण सदोषता को॥३५॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं भोगोपभोग-व्रतातिचारभाव-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सचित्त-निक्षेपा-पिधान-पर-व्यपदेश-मात्सर्य-कालातिक्रमाः॥३६॥

जो पात्र हो सचित चित्त ढका सु भोज,
दाता जु अन्य इसका कह देय भोज।
सत्कार के बिन दिया गतकाल खाना,
आतिथ्य दान बिन दोष नहीं हि माना॥३६॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अतिथिसंविभाग-वतातिचार-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवित-मरणाशंसा - मित्रानुराग-सुखानुबन्धनिदानानि॥३७॥

इच्छा कि जीवित रहूँ मर जाय आज,
खोले जु संग वह मित्र रु भोग काज।
जो बार बार कर याद निदान चाह,
सल्लेखना नियम से बिगड़े कुराह॥३७॥

ॐ ह्रीं अशुद्ध-निश्चयनयेन सूत्रमिदंसल्लेखनाव्रतातिचार-ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्॥३८॥

दाता वही जु निज का धन दान देते,
देते हि पुण्य सुख को निज हाथ लेते।
कल्याण हो स्व पर का यह भावना हो,
वो दान बीज फलता वट वृक्ष सा हो॥३८॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं दानस्वरूपज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विधिद्रव्य दातृपात्र-विशेषात्तद्विशेषः॥३९॥

आहार दान विधि हो नवधा विशेष,
स्वाध्याय ध्यान सहकारिक द्रव्य शेष।
हो पात्र उत्तम तथा गुण सप्त दाता,
तो दान का फल बने नित सौख्य साता॥३९॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं विशेषदानादि-स्वरूप-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्य)

शुभ उपयोग व्रतों से होता, पुण्यबंध अघ निर्जर भी
कैसे होवे निरतिचार मन, पाठ सिखाया सप्तम ही।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रुचिर चरू रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रे सप्तमाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्परि पुष्पांजलिं.....)

अष्टम अध्याय

(चाल-इहविध राज करे नरनायक)

मिथ्या-दर्शना-विरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्ध -हेतवः॥१॥

क्या कारण है भटक रहे हम, दुख ही दुख सहते,
हूँ स्वतन्त्र पर पकड़ा किसने, क्या कारण रहते ।
जिन जिन ने निज जान लिया, वो कहते मत सेवो,
दृग मिथ्या अविरति कषाय वा, योग प्रमादों को॥१॥

ॐ ह्रीं अशुद्ध-निश्चयनयेन सूत्रमिदं बन्धहेतु-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्
पुद्गला -नादत्ते स बन्धः॥२॥

ये हेतू बन्धन के अब तुम, बन्धन को जानो,
सहित कषायों के कारण ही, कर्म लेप मानो।
कार्य योग्य पुद्गल जब गहता, बन्ध श्लेष होता,
बन्ध बन्ध है बन्ध फन्द है, जग जा क्यों सोता॥२॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन ऋजुसूत्रनयेन च सूत्रमिदं बन्धस्वरूप-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास् तद्विधयः॥३॥

चार भेद से बन्धन होते, काज अलग कहते,
कर्मों का जैसा स्वभाव है, प्रकृति त्यों बंधते।
काल करम की थिति औ रस है, अनुभागी बन्धन,
कार्य प्रदेशों का अवधारण, है प्रदेश बन्धन॥३॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदंबन्धभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-
मोहनी -यायु-र्नाम गोत्रान्तरायाः॥४॥

ज्ञानावरणी दृग आवरणी, वेदनीय जानो,
मोहनीय अरु आयू गोत्र, अन्तराय मानो।
रस रुधिरादि विविध रूप में, परिणे ज्यों खाना,
ग्रहण आत्म परिणामों से त्यों, करम बन्ध माना॥४॥

ॐ ह्रीं सामान्य-व्यवहारनयेन अशुद्ध-द्रव्यार्थिकनयेन च सूत्रमिदं अष्टकर्मस्वरूप -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्च-नव-द्वयष्टा-विंशति-चतुर्द्वि-चत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा
यथाक्रमम्॥५॥

ज्ञानावरणी पाँच भेद हैं, दृग कर्मा के नौ,
वेदनीय द्वय आयु चार वा, गोत्र करम के दो ।
मोहनीय अट्ठाईसा हैं, बियालीस नामा,
अन्तराय आवरण पाँच हैं, भेद अन्य माना॥५॥

ॐ ह्रीं विशेष-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अष्टकर्मभेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानाम्॥६॥

मती ज्ञान श्रुतज्ञान अवधि औ मनपर्यय ज्ञान,
अन्तिम केवल ज्ञान कहा जो, अद्भुत तू जान।
सब ज्ञानों को ढंकने वाले, अलग अलग विधि हैं,
मूलोत्तर भेदों से उनके भेद बहुत विध हैं॥६॥

ॐ ह्रीं अन्वय-सापेक्ष-द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं ज्ञानावरण-प्रकृतिभेद ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चक्षु-रचक्षु-रवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-
प्रचला प्रचलाप्रचला -स्त्यान -गृद्धयश्च॥७॥

चक्षु अचक्षु अवधी केवल, दर्शन आवरणा,
निद्रा अरु निद्रानिद्रा वा, प्रचला का होना।
स्त्यानगृद्धि प्रचलाप्रचला नव, भेद बने जिनके,
दरशन को ढक देते जैसे, द्वारपाल गृह के॥७॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं दर्शनावरणप्रकृतिभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स-दसद्-वेद्ये॥८॥

कुशल भाव का वेदन हो ना, वेदनीय साता,
अकुशलता मन में हो जाना, काम असाता का।
वेदनीय दौनों कर्मों की, दुखा ही है रानी,
हर्ष विषाद छोड़ के भज लो, समता सुख प्रानी॥८॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं प्रकृतिभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन-चारित्र-मोहनीया-कषाय-कषाय-वेदनी-याख्यास्-त्रि-द्विनव-षोडशभेदाःसम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्य-कषाय-कषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक-वेदा अनन्तानुबन्ध्य-प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः

क्रोध मान-माया-लोभाः॥९॥

दर्श मोह के तीन नाम हैं, सम्यक मिथ्यातम,
मिश्र नाम तीजा है दो विधि,चरित मोह का कर्म ।
वेदनीय अकषाय प्रथम है, नव भेदों से मान,
हास्य रत्यरति शोक जुगुप्सा, भय स्त्री वेदा जान॥
तथा नपुंसक पुरुष वेद हैं, सह कषाय कहता,
अनन्तानु अप्रत्याख्याना, प्रत्याख्यान तथा।
साथ संज्वलन क्रोध मान के, लगी लोभ माया,
इस विधि अट्ठाईस कषायें, गुरु ने समझाया॥९॥

ॐ ह्रीं सामान्य-व्यवहारनयेन विशेष-व्यवहारनयेन च सूत्रमिदं मोहनीयकर्मप्रकृतिभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नारक -तैर्यग्योन-मानुष -दैवानि॥१०॥

आयु कर्म के भेद चार हैं, पशू नारकी दे,
तथा मानुषी आयु बेड़ी, जन्म मरण की टेव।
चार कषायें चार आयु की, चार दिशा खूटे ,
आयु कर्म की बेड़ी टूटे, पुनर्जन्म छूटे॥१०॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं आयुः कर्मप्रकृतिभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

गति-जाति-शरीराङ्गो-पाङ्ग-निर्माण-बंधन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानु-पूर्व्यगुरु-लघूपघात-परघाता-तपोद्यो-तोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येक-शरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभसूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च॥११॥

नाम कर्म के भेद कह रहे, ब्यालिस नामों से,
गति जाति तन अंगोपांगा, औ निर्माणों से।
बंधन संघातन संस्थाना, संहनन स्पर्शा है,
गन्ध वर्ण रस आनूपूर्वी, अगुरुलघु भी है॥
उपघाती परघाती आतप, गति विहाय नामा,
उद्योतन प्रत्येक शरीरा, उछ्वासा सूक्ष्मा।

त्रस शुभ सुभग सुस्वरा स्थिर औ, भेदा परियाप्ति,
यश:कीर्ति आदेय इतर विधि, तीर्थंकर शक्ति॥११॥

ॐ ह्रीं भेदग्राहकसंग्रहनयेन सूत्रमिदं नामकर्मप्रकृतिभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उच्चैर्नीचैश्च॥१२॥

उच्च नीच दो ही भेदों का, गोत्र कर्म होता,
जन्म पूज्य कुल में हो कारण, उच्च गोत्र होता।
निन्द्य आचरण कुल में जनना, नीच गोत्र जानो,
दुर्लभता की बात कौन सी, यह तो पहिचानो॥१२॥

ॐ ह्रीं भेदग्राहकसंग्रहनयेन सूत्रमिदं गोत्रकर्मप्रकृतिभेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दान-लाभ-भोगोप-भोग-वीर्याणाम्॥१३॥

इच्छा हो पर विघ्न उपस्थित, अन्तराय कर्म,
पाँच भेद हैं कार्य रोकना, इसका है धर्म।
दान लाभ में तथा भोग में. औ उपभोगों में,
वीर्य शक्ति विधि का बन्धन है, आत्म प्रदेशों में॥१३॥

ॐ ह्रीं भेदग्राहकसंग्रहनयेन सूत्रमिदं अन्तरायकर्मप्रकृतिभेदज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आदितस् तिसृणा-मन्तरायस्य च
त्रिंशत्सागरोपम-कोटी-कोट्यः परा स्थितिः॥१४॥

एक बार यदि ये बंध जाते, कितनी उमर रहे,
उत्कृष्टा और जघन भेद की, थिति गुरु सुनो कहें।
दृग ज्ञानावरणी वेदन औ, अन्तराय विधि की,
उत्कृष्टी थिति कोटाकोटी, तीस सागरा की॥१४॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं चतुःकर्मोत्कृष्टस्थिति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तति-र्मोहनीयस्य॥१५॥

भव वन में भटकन का कारण, मोहनीय नामा,
अष्ट कर्म में प्रबल कर्म यह, सबका है मामा।
सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, उत्कृष्टी थिति है,
इसी वजह से काल अनादी, से बिगड़ी मति है॥१५॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं मोहकर्मोत्कृष्टस्थिति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विंशति-र्नाम-गोत्रयोः॥१६॥

नाम कर्म औ गोत्र कर्म थिति, एक साथ कहते,
कोड़ाकोड़ी बीस सागरा, उत्कृष्टा रहते।
जो सैनी पंचेन्द्रिय पूरण, मिथ्यादृष्टी हैं,
उन जीवों के ही उत्कृष्टी, थिति यह पड़ती है॥१६॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं नामगोत्रकर्मोत्कृष्टस्थिति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रयस्त्रिंशत्सागरो-पमाण्यायुषः॥१७॥

आयु कर्म की थिति उत्कृष्टी, कहते हैं सुन लो,
सागर तैंतीसा प्रमाण है, ध्यान यही रख लो।
दुख उत्कृष्टे सुख उत्कृष्टे, भोगे खूब अरे,
जन्म मरण दुख नहिं ये टूटा, घूमे खूब फिरे॥१७॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं आयुःकर्मोत्कृष्टस्थिति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरा द्वादश-मुहूर्ता वेदनीयस्य॥१८॥

अब जघन्य थिति हैं बतलाते, कर्म वेदनी की,
कहे मुहूरत बारह जानो, वाणी जिनवर की।
गुणस्थान दशवाँ हो भविजन, यह थिति तब पड़ती,
इससे पहिले कभी न इतनी, थिति कमती पड़ती॥१८॥

ॐ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं वेदनीयकर्मजघन्यस्थिति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाम-गोत्रयो-रष्टौ॥१॥

नाम कर्म औ गोत्र कर्म की, जघन थिति कहते,
आठ मुहूरत से पहिले नहिं, जहाँ करम हटते।
यह भी दशवें गुणस्थान में, बंधती है भाई,
इस सीढ़ी पर आओ जल्दी, सूखे भव खाई॥१॥

ऊँ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं नामगोत्रकर्म-जघन्यस्थिति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शेषाणा-मन्तर्मुहूर्ताः॥२०॥

ज्ञानावरणी दृग आवरणी, मोहनीय आयू,
तथा अन्तराय करमन की, थिति है समझा यूँ॥
पाँचों ही अन्तरमूहुरत तक, आतम से बंधते,
जघन समय यह जानो बन्धु, आगम में कहते॥२०॥

ऊँ ह्रीं अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं शेषकर्मजघन्यस्थिति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विपाकोऽनुभवः॥२१॥

नाना विधि के करम कहे हैं, नाना विधि जीवा,
नाना विधि परिणामों का फल, नाना विधि पीवा।
उदय करम का ही विपाक है, यह ही अनुभागा,
फल निज परिणामों से मिलता, कमती वा ज्यादा॥२१॥

ऊँ ह्रीं अनुभवनयेन सूत्रमिदं अनुभवबंध-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स यथानाम॥२२॥

ज्ञानावरणी का फल ज्यों है, ज्ञान शक्ति ढंकना,
दर्शन आवरणी का फल त्यों, दर्शन को ढंकना।
तथा इसी विधि अन्य कर्म का, कहा नाम जैसा,
उदय समय आने पर मिलता, फल उसका तैसा॥२२॥

ऊँ ह्रीं नामनयेन सूत्रमिदं अनुभवबंधविशेष-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ततश्च निर्जरा॥२३॥

कर्म उदय आने पर उसका, फल आतम भोगे,
थिति पूरी होने पर ही वह, आतम को छोड़े।
नाम इसी का कहा निर्जरा, द्वय विधि से जानो,
सविपाकी अविपाक भेद से, मानो श्रद्धानो॥२३॥

ॐ ह्रीं भावनयेन सूत्रमिदं प्रदेशबंध -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात् सूक्ष्मैक-
क्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्त-प्रदेशाः॥२४॥

नाम अनुसार बंधे सातों या, आठों ही करमा,
प्रतिक्षण बन्धन जिसका कारण, योग कर्म करना।
सूक्ष्म स्वभावी कर्म आत्म इक, क्षेत्रा अवगाही,
प्रति प्रदेश से करम अनन्ते, बंधते हैं भाई॥२४॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत- व्यवहारनयेन सूत्रमिदं प्रदेशबंध -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्॥२५॥

शुभ भावों से शुभ प्रकृति जो, आतम में आती,
वह प्रकृति ही पुण्य कर्म है, सबके मन भाती।
वेदनीय साता शुभ आयू, नाम गोत्र शुभ जो,
भेद विधि से बियालीस हैं, समझो और गहो॥२५॥

ॐ ह्रीं स्वजात्यसद्भूत-व्यवहारनयेन विशेषनयेन च सूत्रमिदं पुण्यकर्मप्रकृति-ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अतोऽन्यत्पापम्॥२६॥

अशुभ भाव से अशुभ प्रकृती, आतम में आतीं,
वे प्रकृति ही पाप कर्म हैं, जग में भटकातीं।
पुण्य प्रकृतियाँ छोड़ शेष जो, बची पाप जानो,
भेद विधी से ब्यासी होती, सब जन यह मानो॥२६॥

ॐ ह्रीं स्वजात्यसद्भूत-व्यवहारनयेन विशेषनयेन च सूत्रमिदं

पापकर्मप्रकृति-ज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्य)

अष्टकर्म के बन्धन की विधि, इस अध्याय में बतलाई,
बन्ध तत्त्व का ज्ञान किया तो, बन्ध तत्त्व से बच पाई।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रुचिर चरू रत्नों के दीप,
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्वार्थसूत्रे अष्टमाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्परि पुष्पांजलिं.....)

नवम अध्याय

आस्रव-निरोधःसंवरः॥१॥

(लय-जिसने रागद्वेष कामादिक.....)

नव नव कर्मों का कारण था, आस्रव उसको समझाया,
उस आस्रव का रुक जाना ही, संवर है यह बतलाया।
मोक्ष तत्त्व का मुख्य हेतु यह, इसको पाने यत्न करें,
नीर छिद्र में डाट लगा ज्यों, सहज नाव उस पार तिरें॥१॥

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन सूत्रमिदं संवरतत्त्व-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजयचारित्रैः॥२॥

वह संवर होगा कैसे यह, शीघ्र गुरु अब बतलाओ,
समिति गुप्ति अरु धर्म भावना, बार-बार मन में भाओ।
कष्ट परीषह पथिक सहे जब, सहज शान्ति पथ आ जाता,
दुराचरण तन चर्म मोह तज, चरित धार शिव सुख पाता॥२॥

ॐ ह्रीं एकादेशशुद्धनयेन सूत्रमिदं संवरतत्त्वविधि-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तपसा निर्जरा च॥३॥

चरित चित्त में दृग हो ऊपर, तप अग्नि जब ताप बढ़े,
संवर तत्त्व प्रौढ़ हो जावे, तथा निर्जरा खूब बढ़े।
चट-चट-चटपट करम दहन हो, नया करम भी ना आता,
झटपट-झटपट करम नाश कर, मुक्ति वधू में रम जाता॥३॥

ॐ ह्रीं विशेषसंग्रहनयेन सूत्रमिंद जीवद्रव्य -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्योग -निग्रहो गुप्तिः॥४॥

मन तन वचन योग त्रय क्रीड़ा, रोक लगा निज को पेखे,
आतम बहिरातम ना होवे, ढककर के तातैं रक्खो।
ढककर रखना रक्षण करना, गुप्तातम हो गुप्ती से,
सम्यक मन तन वचन क्रिया की,गुप्ति मिलाती मुक्ती से॥४॥

ॐ ह्रीं क्रियानयेन सूत्रमिदं गुप्ति -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ईर्या-भाषैषणा-दान-निक्षेपोत्सर्गाः समितयः॥५॥

यदि असमर्थ गुप्ति में मुनिवर, सम्यक समिती साथ रहें,
चौ कर भूमि देख के चलते, हित मित औ प्रिय वचन कहें।
दोष रहित आहार करें अरू, देख भाल उपकरण धरें,
मूत्र श्लेष्म मल प्रतिलेखन कर, शुद्धि भूमि पर त्याग करें॥५॥

ॐ ह्रीं क्रिया-विकल्पनयेन सूत्रमिदं समिति-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम-क्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-
तपस्त्यागा-किञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः॥६॥

दशधर्मों का भूषण जिनका, गुरुवर ऐसे हैं कहते,
उत्तम क्षमा मार्दवा आर्जव, शौच सत्य संयम रखते।
तथा करें तप त्याग अकिंचन, ब्रह्मचर्य में नित्य रमें,
ऐसे दश गुण मणि से भूषित, पाद पद्म मम हृदय रहें॥६॥

ॐ ह्रीं स्वभावभूतशुद्धनयेन सूत्रमिदं दशधर्म -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनित्याशरण-संसा-रैकत्वान्यत्वा-शुच्यास्रव-संवर-निर्जरालोक-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वाख्या-तत्त्वानु-चिन्तन-मनुप्रेक्षाः॥७॥

भव अनित्य है अशरण हूँ मैं,सार रहित यह है संसार,
मैं तो नित्य अकेला प्रतिपल, अन्य सभी अन्यत्व विचार ।
देह अशुचि है महा घिनौनी, मन तन वचन तु आस्रव है,
इनके रुकने से हो संवर, तभी निर्जरा का सुख है॥
तथा विचारें लोक स्वरूपा, और बोधि की दुर्लभता,
जिनवर द्वारा कथित धर्म जो, वह ही है सुख की सरिता।
बार-बार बारह भावना का, मुनि मन में नित्य प्रवाह,
धार धीर उस पार जा रहा, पाता आतम सत्य स्वभाव॥७॥

ॐ ह्रीं शुद्धस्वभावहेतुनयेन सूत्रमिदं द्वादशभावना -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्गा च्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः॥८॥

मोक्ष मार्ग की खड्ग धार पर, वीर धीर मुनि चल जाते,
सहें परीषह नित्य तभी तो, उपसर्गों को सह पाते।
घोर परीषह तातें सहते, मन मेरु सम अडिग रहे,
च्यवन मार्ग से कभी न होवे, कर्म निर्जरा सतत रहे॥८॥

ॐ ह्रीं पुरुषाकारनयेन सूत्रमिदं परीषह-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुत्पिपासा-शीतोष्ण-दंश-मशक-नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्याशय्या-क्रोश-वध-याचना-लाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कार पुरस्कार -प्रज्ञाज्ञाना-दर्शनानि॥९॥

क्षुधा पिपासा शीत उष्ण औ, दंशमशक या नग्न हुआ,
अरति स्त्री चर्या या निषद्या, शय्या गुस्सा में भी क्या?
मारे कोई, माँगे कुछ ना हो अलाभ या रोग महा,
तृषा स्पर्श तथा मलपीड़ा पुरस्कार सत्कार रहा॥

प्रज्ञा या अज्ञान साथ में और अदर्शन कष्ट कहा,
इन कष्टों को सहने का ही, नाम परीषह अहो कहा॥९॥

ॐ ह्रीं स्वरूपहेतुनयेन सूत्रमिदं परीषहसंख्या -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूक्ष्म-सांपरायछद्मस्थ-वीत-रागयोश्चतुर्दश॥१०॥

दशवें एकादश बारहवें, गुणस्थान में परिषह जो,
उनकी संख्या चौदह रहती, समझाते हैं मुनिगण वो।
बाधायें जो मोह जनित हैं, वो इनमें नहिं होती हैं,
मोह तजो उपदेश दे रहे, परिषह जिनने झेली हैं॥१०॥

ॐ ह्रीं विशेषसद्भावनयेन सूत्रमिदं परीषहाध्वान -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकादश जिने॥११॥

मोह कर्म का क्षय करके जो, जिनवर श्री भगवान बने,
उनके ग्यारह परिषह होती, चार घातिया कर्म हने।
विष की मारक शक्ति नष्ट तो, फिर विष का क्या काम रहे,
मोहनीय बिन वेदनीय का, उदय रहे निष्काम रहे॥११॥

ॐ ह्रीं विशेषसद्भावनयेन सूत्रमिदं जिनवरपरीषह-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बादरसाम्पराये सर्वे॥१२॥

जिनके होती थूल कषायें, बादर साम्पराय कहते,
छह से नौ तक गुणस्थान को, बादर साम्पराय कहते।
सभी परीषह इनमें होती, कहते ऐसा जिनवर हैं,
समता से सब सहते जाते, धन्य धन्य वो यतिवर हैं॥१२॥

ॐ ह्रीं विशेषसद्भावनयेन सूत्रमिदं विशेषपरीषहाध्वान -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने॥१३॥

ज्ञानी प्रज्ञावान कहावें, तो भी मन ना हरषाये,
तथा कहे अज्ञानी कोई, तो भी मन ना मुरझाये।
ज्ञानावरणी कर्म उदय से, परिषह ये दौनों होतीं,
सहते कर्म दहन करते जो, उनकी ही मुक्ति होती॥१३॥

ॐ ह्रीं कर्मोपाधिसापेक्षअशुद्ध-द्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं ज्ञानावरणजनितपरीषह -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन-मोहान्तराययोरदर्शना-लाभौ॥१४॥

दर्शन मोह का उदय रहे तो, परिषह एक अदर्शन हो,
अन्तराय का उदय रहे तो, एक अलाभ परीषह हो।
कर्म उदय ये सुखा में बाधक, मर्म एक यह पहिचानो,
शाश्वत शर्म मिलेगा तब ही, धर्म शास्त्र गुरु को मानो॥१४॥

ॐ ह्रीं कर्मोपाधिसापेक्षअशुद्धदव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं कर्मद्वयजनितपरीषह -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चारित्र-मोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कार पुरस्काराः॥१५॥

चरित मोह का उदय रहे जब, परिषह सात साथ होते,
नाग्न्या नारी अरति निषद्या, आक्रोशित वाणी सहते।
तथा याचना परिषह भी औ, सहें माना अपमान सभी,
बाधायें जिन जिन ने झेली, मुक्ती राधा मिली तभी॥१५॥

ॐ ह्रीं कर्मोपाधिसापेक्षअशुद्धदव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं चारित्र-मोहदयजनितपरीषह-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वेदनीये शेषाः॥१६॥

क्षुधा पिपासा दंशमशक वा, शीत उष्ण हो चर्या हो,
शय्या वध संस्पर्श तृणों का, रोग मैल -तन शय्या हो।
कर्म वेदनी उदय रहे तो, परिषह ये ग्यारह होती,
ध्यान रहे पर मोहनीय बिन, काम नहीं ये कुछ

करतीं॥१६॥

ॐ ह्रीं कर्मोपाधिसापेक्षअशुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं वेदनीयकर्मजनितपरीषह -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः॥१७॥

शीत उष्ण में एक परीषह, एक समय में इक होगी,
चर्या शय्या और निषद्या, एक समय में इक होगी।
अत: तीन कम हो जावें तो, परिषह एक साथ उन्नीस,
मुनिवर जो बनते सहते वो, तब बनते हैं मुनिवर ईश॥१७॥

ॐ ह्रीं कर्मोपाधिसापेक्षानित्याशुद्धपर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं युगपत्परीषह -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सामायिकच्छेदो-पस्थापनापरिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथा ख्यात-मिति चारित्रम्॥१८॥

मोक्ष महल तक ले जाने को, चारित पंच प्रकार कहा,
सामायिक छेदोपस्थापन, वा परिहार विशुद्धि महा।
सूक्ष्म साम्पराया चारित्रा, यथाख्यात विधि बतलाया,
कर्मों का क्षय करके जिनने, शिव सुख पथ को दरशाया॥१८॥

ॐ ह्रीं भेदकल्पनासापेक्षाशुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सूत्रमिदं चारित्रभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनशनाव-मौदर्य-वृत्ति-परिसंख्यान-रस-परित्याग-विविक्त शय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः॥१९॥

धर्म ध्यान की वृद्धि हेतु, अनशन ऊनोदर करना,
भिक्षा हेतू मुनि निकलें तो, वृत्तिपरिसंख्यान धरना।
षट रस त्याग करें आहारा, विविध विविध आसन शय्या,
क्लेश देय तन को तू कर ले, तप बाहिर के छह भैया॥१९॥

ॐ ह्रीं असद्भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं बाह्यतपो -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्यस्वाध्याय-

व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम्॥२०॥

प्रायश्चित से दोष दूर कर, विनय भाव धर गुरुओं से,
सेवा वैयावृत्ति तथा हो, स्वाध्याय तप शक्ति से।
ममत त्याग व्युत्सर्ग करें जो, तथा ध्यान की निश्चलता,
अभ्यन्तर तप छह धरने से, परम मोक्ष निश्चित फलता॥२०॥

ॐ ह्रीं सद्भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं अभ्यन्तरतपो -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नव-चतुर्दश-पञ्च-द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात्॥२१॥

नव विधि चउ विधि दश भेदों से, तथा पंच दो भेदों से,
तप पन उपभेदों की संख्या, कहते हैं निज-निज क्रम से।
मोक्ष प्राप्ति का मुख्य हेतु है, ध्यान अग्नि की प्रज्वलता,
श्रमण निपुण इन तप में जब हों,तप गुण की तब उज्वलता॥21॥

ॐ ह्रीं यथाक्रम व्यवहारनयेन सूत्रमिदं अभ्यन्तरतपोभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-
व्युत्सर्ग-तपश्छेद परिहारोपस्थापनाः॥२२॥**

नो प्रकार से प्रायश्चित का, विधान करते आगम से,
आलोचन प्रतिक्रमण उभय विधि, मन विवेक व्युत्सर्गों से।
वा तप से दीक्षा छेदन से, संघ रहित कर परिहारी,
दीक्षा देकर उपस्थापना, दोष रहित निज हितकारी॥२२॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं विनयतपोभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः॥२३॥

चउ विध विनय तपों को, नय उपनय के ज्ञाता जो,
विनय ज्ञान की वा दर्शन की, बिना दोष के करते जो।
सम्यक शुचि चारित्रवान हों, विनय चरित की बतलाई,
परोक्ष रूप से गुरु गुण गुनना, विनय उपचरित है भाई॥२३॥

ॐ ह्रीं विकल्पनयेन सूत्रमिदं विनयतपोभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-
कुल-संघ-साधु मनोज्ञानाम्॥२४॥

वैयावृत्ती तप विधि कहते, सिंहवृत्ति के धारक जो,
आचारज उवझाय तपस्वी, शैक्ष ग्लान गुण आगर को।
गण हो कुल हो तथा संघ हो, चिर दीक्षित जो साधू हो,
वा मनोग्य मुनि की सेवा में, मन विवेक से तत्पर हो॥२४॥

ॐ ह्रीं चारित्रचर्यासम्बन्धिउपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं वैयावृत्तिभेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वाचना-पृच्छनानु-प्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः॥२५॥

स्वाध्याय तप के पन भेदा, कहते जो निज अध्यायी,
शास्त्र वाचना अर्थ बताना, प्रश्न पूछना सुखदायी।
पढ़े हुए का मन में चिन्तन, मनन करें वो अनुप्रेक्षा,
तथा नित्य आम्नाय शुद्धता, तब हो धर्म सदुपदेशा॥२५॥

ॐ ह्रीं ज्ञानाज्ञेयसम्बन्धिउपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं स्वाध्यायभेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः॥२६॥

त्याग भाव व्युत्सर्ग कहा है, दो भेदों से यह जानो,
बाहर अन्तर उपधि त्याग के, निज को निज में पहिचानो।
निजानन्द समरसी भाव में, मुनि का जब उपयोग रुके,
चेतन तरु में तप फल द्वारा,मधुर-मधुर निज रस
टपके॥२६॥

ॐ ह्रीं त्यागत्याज्यसम्बन्धिउपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं व्युत्सर्गतपोभेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तमसंहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो ध्यान-मान्तर्मुहूर्तात्॥२७॥

ध्याता उत्तम संहनन धारी, वृत्ति चित्त की निश्चल हो,
विमुख बाहय से उन्मुख निज में, इक पदार्थ में ही थिर हो।

अन्तर एक मुहूरत ही तो, ध्यान अग्नि का काल रहे,
तभी प्रगट केवल रवि जिसमें, द्रव्य चराचर झलक रहे॥२७॥

ॐ ह्रीं ध्यानध्येयसम्बन्धिउपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं ध्यानतपो -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि॥२८॥

ध्यान चक्र से भव सन्तति को, ध्वंस किया औ मुक्त हुए,
ऐसे ध्यानी ज्ञान प्राप्त कर, जग जीवों को विदित किये।
आर्त रौद्र वा धर्म शुक्ल से, चौ विधि ध्यान सकलता हैं,
क्या तजना है क्या गहना है, सुनो-सुनो यदि थिरता है॥२८॥

ॐ ह्रीं सोपाधिकाशुद्धनिश्चयनयेन सूत्रमिदं ध्यान-भेद-ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परे मोक्ष-हेतू॥२९॥

कहे अन्त में धर्म शुक्ल जो, ध्यान वही शुभ कहलाते,
परम मोक्ष पद के कारण वे, जिनसे जग जन सुख पाते।
तथा आर्त वा रौद्र ध्यान तो, भव सन्तति के कारण हैं,
अशुभ हेतु यह पाप बन्ध के, कारण हैं दुख दारुण हैं॥२९॥

ॐ ह्रीं सोपाधिकैकदेशशुद्धनिश्चयनयेन सूत्रमिदं मोक्षहेतुभूतध्यान - ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः॥३०॥

निज जन धन तन के नाशक जो, विष जल शस्त्र सिंह अग्नी,
तथा दुष्ट जन वैरी राजा, बिल जल वन के जीव धनी।
अन्य अनिष्ट पदारथ जो भी, देखों सुनें समागम हो,
कब वियोग हो क्लिष्ट मना हो,आर्त ध्यान यह प्रथम अहो॥३०॥

ॐ ह्रीं असद्भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं प्रथमआर्तध्यानविनाशाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विपरीतं मनोज्ञस्य॥३१॥

मन की प्यारी वस्तू हो वा, सुत मनहर नारी भोगा,

ध्वंस होय वा होय वियोगा, मन में पीड़ा नित शोका।
बार बार चिंता मन पागल, वस्तु मिलेगी अब कब वो,
दूजा आर्त ध्यान है भाई, पाप ताप का ईंधन जो॥३१॥

ॐ ह्रीं असद्‌भूतव्यवहारनयेन सूत्रमिदं द्वितीयार्तध्यानविनाशाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वेदनायाश्च॥३२॥

वात पित्त कफ कोप प्रकोप, कास भगंदर कोढ़ जरा,
देखे सुने न रोग जु पहिले, प्रगट होय मन खोद भरा।
दिवस रैन दुख से व्याकुलता, सह न सके पीड़ा भारी,
पीड़ा चिन्तन आर्त ध्यान है, दुर्निवार दुख आगारी॥३२॥

ॐ ह्रीं कर्मोदयवेदकाशुद्धनिश्चयनयेन सूत्रमिदं तृतीयार्तध्यान विनाशाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निदानं च॥३३॥

भोगीन्द्रों के भोग मिलें वा, देव लोक की लीलायें,
तीन भुवन की राज्य सम्पदा, कामदेव सा तन पायें।
पूजा लाभ प्रतिष्ठा देखों, यह सब मेरी कैसे हो,
चौथा ध्यान निदान यही है, तृष्णा पूरण कैसे हो॥३३॥

ॐ ह्रीं कर्मफलोदयकारकाशुद्धनिश्चयनयेन सूत्रमिदं चतुर्थार्तध्यान विनाशाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तदविरत -देशविरत-प्रमत्त-संयतानाम्॥३४॥

पहिले दूजे तीजे चौथे, गुणस्थान के जीवों के,
देश विरत श्रावक हो पंचम, मुनि प्रमत्त संयम यति के।
आर्त ध्यान की जनन भूमि में, ये जीवा ही बसते हैं,
रहित निदान ध्यान से मुनिवर, तीन भेद रख सकते हैं॥३४॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्‌भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं आर्तध्यान-स्वामि -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हिंसानृत-स्तेय-विषय-संरक्षणेभ्यो रौद्र-मविरत-देशविरतयोः॥३५॥

हिंसा चोरी झूठ कर्म में, परिग्रह संचय चिन्ता में,
रमते हैं आनन्द मानते, रुद्र भाव के आशय में।
पहिले से पंचम सीढ़ी के, ही जीवा यह कर सकते,
रौद्र ध्यान से महा भयानक, दुक्ख न कोई यति कहते॥३५॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं रौद्रध्यानस्वामि - ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम्॥३६॥

आत्म तत्त्व की रुचि जाग्रत हो,निश दिन निज का ध्यान रहे,
धर्म ध्यान वह चौ विधि होता, मन में कुछ ना ग्लान रहे,
जिनवर आज्ञाविचय प्रथम है, दूजा कर्म अपाय विचार।
तीजा कर्म विपाक चिन्तवन, अन्तिम लोकाकार विचार॥३६॥

ॐ ह्रीं भेदोपचारनयेन सूत्रमिदं धर्म ध्यानभेद - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः॥३७॥

निज स्वरूप के उन्मुख रहता, निष्क्रिय शुचितर उपयोगा,
मणि सम धवल उज्ज्वल आतम, शुक्लध्यान से ही होगा।
प्रथम शुक्ल दो ध्यान धारते, अंग पूर्व के जो ज्ञाता,
शुद्ध चरित मुनि धीर वीर हो, करते भव दुख का घाता॥३७॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं प्रथमद्वितीय-शुक्लध्यान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परे केवलिनः॥३८॥

राग द्वेष से रहित हो गये, पूर्ण हुए केवलज्ञानी,
योग सहित औ योग रहित जो, केवलि वो भी हैं ध्यानी।
अन्तिम शुक्ल ध्यान दो उनके, क्रमशः ऐसे होते हैं,
श्रुत आलम्बन रहित होत हैं, ज्ञानी ऐसा कहते हैं॥३८॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं तृतीयचतुर्थ-शुक्ल ध्यान- ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पृथक्त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्म क्रिया-प्रति-
पाति-व्युपरत-क्रिया निवर्तीनि॥३९॥

कहे चार विधि शुक्ल ध्यान के, नाम यहाँ अब बतलाते,
प्रथम पृथक्त्व वितर्क ध्यान से, घाते मोह कर्म जाते।
सह वितर्कएकत्व दूसरा, सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाती,
व्युपरतक्रियानिवृती चौथा, मुक्ती जिससे मिल जाती॥३९॥

ॐ ह्रीं शुद्धपर्यायार्थिकनयेन सूत्रमिदं शुक्लध्यानभेद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्र्येक-योग-काय-योगा-योगानाम्॥४०॥

मन तन वचन योग के योगी, प्रथम ध्यान को ध्याते हैं,
एक योग में लीन हो य के, दूजा ध्यान जु पाते हैं।
केवलि भगवन्तों को केवल, काय योग से ध्यान बने,
अयोग केवलि योगिजनों को, योग रहित हो ध्यान बने॥४०॥

ॐ ह्रीं अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं ध्यानयोगज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे॥४१॥

ध्यान प्रथम दो ध्याने वाले, एकाश्रय ले बढ़ते हैं,
पूर्व विदों के श्रुत ज्ञानी हों, दृढ़ता से तब चढ़ते हैं।
बदल बदल जाते वितर्क से, वा वीचार सहित होते,
शुक्ल ध्यान के प्रथम चरण के, ध्यानी के ये गुण होते॥४१॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिदं ध्यानैकाग्रता-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अवीचारं द्वितीयम्॥४२॥

किन्तु दूसरा शुक्ल ध्यान को, ध्याने वाले जो ध्यानी,
उनमें कुछ अन्तर होता है, समझाती है गुरु वाणी।
नहीं रहे वीचार ध्यान में, एक रूप में स्थित हों,
अवीचार एकत्व ध्यान का, पृथक रहा कुछ लक्षण

यों॥४२॥

ॐ ह्रीं विशेषनयेन सूत्रमिंद द्वितीयशुक्लध्यानयोग्यता प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वितर्कः श्रुतम्॥४३॥

अब वितर्क का लक्षण कहते, निर्वितर्क निज ज्ञान हुआ,
तर्क विचारण ऊहापोह, नाम वितर्क प्रधान हुआ।
श्रुतज्ञान को ही वितर्क से, कहा गया है आगम में,
ध्यान धुरा को पैनी करने, कर्म काटने कारण में॥४३॥

ॐ ह्रीं सोपाधिकाशुद्धनिश्चयनयेन सूत्रमिदं ध्यानयोग्यश्रुतज्ञान -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोग-संक्रातिः॥४४॥

परिवर्तन संक्रान्ति कहाती, नाम उसी का वीचारा,
एक अर्थ से अन्य अर्थ की, प्राप्ती अर्थान्तर धारा।
या व्यंजन की संक्रान्ती हो, तथा योग की संक्रान्ती,
इन तीनों की संक्राती में, उपयोगा हो बिन क्रान्ती॥४४॥

ॐ ह्रीं क्रियानयेन सूत्रमिदं योगसंक्रान्तिरहितध्यान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानन्त वियोजक-
दर्शनमोह-क्षपकोपशमकोपशान्त-मोह क्षपक-क्षीणमोह
जिनाःक्रमशोऽसंख्येय गुण-निर्जराः॥४५॥

कहाँ कहाँ पे जीवों की यूँ अधिक निर्जरा है होती,
सम्यग्दृष्टी से श्रावक की, श्रावक से मुनि महाव्रती।
प्रथम कषाय विसंयोजक की, दर्श मोह क्षय करने की,
चरित मोह उपशामकता से, मोह उपशमन वालों की।
श्रेणी क्षपक चढ़ें उनसे भी, क्षीण मोह की जिनवर की,
गुणित असंख्याती क्रम क्रम से, रहे निर्जरा भविजन की॥४५॥

ॐ ह्रीं वर्तमाननैगमनयेन सूत्रमिदं सर्वनिर्जरास्थान-प्राप्तये अर्घ्यं

निर्वपामीति स्वाहा।

पुलाक-बकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातकाः निर्ग्रन्थाः॥४६॥

बाह्यान्तर परिग्रह के त्यागी, निर्ग्रन्था मुनि पंच विधा,
नाम पुलाक बकुश हो संज्ञा, वा कुशील वा निर्ग्रन्था।
तथा स्नातका मुनि कहलाते, केवलज्ञानी जो होते,
चारित की हीनाधिकता से, नाम मुनी के ये होते॥४६॥

ऊँ ह्रीं वर्तमाननै गमनयेन भाविनैगमनयेन च सूत्रमिदं भावलिङ्गसहितनिर्ग्रन्थपद -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थलिंग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः॥४७॥

इन मुनियों के और भेद भी, जानों विविध विवक्षा से,
संयम से श्रुत, प्रतिसेवन से, तीर्थ लिंग लेश्याओं से।
उपपादा संयम थानों से, भी इनमें अन्तर होता,
अन्तरंग में मोक्ष तत्त्व का, भंग प्रकट सबको होता॥४७॥

ऊँ ह्रीं भेदोपचारनयेन सूत्रमिदं निर्ग्रन्थलिङ्गभेद -ज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्य)

व्रत समिति गुप्ति पालन से, संवर निर्जर होता है
धर्म शुक्ल ध्यानों का फल ही, नौवा पाठ संजोता है।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रुचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ऊँ ह्रीं जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रे नवमऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्परि पुष्पांजलिं.....)

दशम अध्याय

मोह-क्षयाज्ज्ञान-दर्शना-वर-णान्तराय-क्षयाच्च केवलम्॥१॥

(शार्दूल विक्रीडित)

प्राप्ती हो शिव धाम की अब गुरु, दो ज्ञान कैवल्य का,
भव्यात्मा बस मोह का क्षय करें, प्रारम्भ हो कार्य का।
दृगज्ञानावरणान्तराय विधि का, हो अन्त तो साथ में,
चैतन्या चमके चमाचम चरा, त्रै रत्न के साथ में॥१॥

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन सूत्रमिंद केवलज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः॥२॥

हेतू बन्धन के कहे अब तजो, जो बन्ध के द्वार हैं,
होता था नव बन्ध वो रुक गया, तो मुक्ति आधार है।
आत्मा से पहिले लगे करम जो, छूटें वही निरजरा,
अत्यन्ता विलगा हुआ करम से, आत्मा हि सिद्धीश्वरा॥२॥

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन सूत्रमिदं मोक्षफल-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

औपशमिकादि-भव्यत्वानां च॥३॥

क्या द्रव्या करमा हने तब बने, मोक्षादि की भूमिका,
वा भावा करमा तु भी नशत हैं, सिद्धा महा आप्त का?
भावा हाँ उपशामकादि क्षय हों, भव्यत्व का भाव वा,
जैवत्वी परिणामिकी इक रही, शक्ती उदारा जहाँ॥३॥

ॐ ह्रीं नास्तिस्वभावनयेन सूत्रमिदं मोक्षायोग्यभाव-विनाशाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्यत्र केवल-सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः॥४॥

भावा क्षयिक शेष जो बच गये, उल्लेखिता वो करें,
सम्यक्त्वा अरु ज्ञान दर्शन तथा सिद्धत्व भावा धरें।
वीर्यानन्त तथा अनन्त सुख तो, ज्ञानादि के साथ हैं,
सम्पत्ती सुख ज्ञान की यदि मिले, सच्चा वही पाथ है॥४॥

ॐ ह्रीं अस्तिस्वभावनयेन सूत्रमिदं सिद्धात्मभाव-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तदनन्तर-मूर्ध्वं गच्छत्या-लोकान्तात्॥५॥

हो जाता जब जीव मुक्त भव से, जाता कहाँ ये भला,
कैसे हो चलना कहो गगन में, कैसे पता पा चला।
लोकान्ता तक जीव का गमन हो, ऊर्ध्वा दिशा ही रहे,
ना नीचे तिरछा चले गगन में, क्या बात है ये कहें॥५॥

ॐ ह्रीं स्वभावनयेन सूत्रमिदं सिद्धगति-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्व-प्रयोगा-दसंगत्वाद्-बन्धच्-छेदात्तथा-गति-परिणामाच्च॥६॥

संस्कारा पहिले जु थे पड़ गये, औ कर्म भारा घटा,
उच्छेदा विधि बन्ध से जब हुआ, ऊर्ध्वा स्वभावा जु था।
चारों कारण जीव को जब मिले, सीधा व ऊर्ध्वा गया,
आयी ना गुरु बात ये समझ में, दृष्टान्त दे तब कहा॥६॥

ॐ ह्रीं नियतनयेन सूत्रमिदं स्वाभाविकचिच्छक्ति-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**आविद्धकुलाल-चक्रवद्-व्यपगत-लेपालाम्बु-
वदेरण्डबीज-वदग्नि शिखावच्च॥७॥**

घूमे चाक कुलाल का बिन छड़ी, संस्कार से पूर्व ज्यों,
तुम्बी मैल मलीन से रहित हो, तैरे तला नीर ज्यों।
बीजा ज्यों उचटे तु ऊपर चले, ऐरण्ड का जीव त्यों,
सीधी दीपक लौ सदैव नभ में, कर्मा बिना जीव त्यों॥७॥

ॐ ह्रीं उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयेन सूत्रमिदं निजोर्ध्वस्वभावगति -प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मास्तिकायाभावात्॥८॥

जीवों का तु स्वभाव उर्ध्व गमना, सीमा कहाँ जो गया,
क्यों जाके वह अन्त में रुक गया, इच्छा नहीं ना भया?
द्र व्यों में इक धर्म द्रव्य सतता, फैला जु आकाश में,
ता सीमा नहिं लाँघ के चल सके, धर्मास्ति के बाद में॥८॥

ॐ ह्रीं नास्तिस्वभावनयेन सूत्रमिदं निजस्वभावस्थिति-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षेत्र-काल-गति-लिंग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येकबुद्ध-बोधित-ज्ञाना वगाहनान्तर-संख्याल्प-बहुत्वतः साध्याः॥९॥

क्षेत्रा काल गती चरित्र विधि वा, लिंगा बुधा बोधिता,
ज्ञाना वा अवगाहना करण से, अन्तर बड़ा धारता।
संख्या अल्प-बहुत्व तीर्थ विविधा, सिद्धात्म में भेद हो,
वा प्रत्येक सु बुद्ध मुक्ति मति से, चैतन्य का ध्यान हो॥९॥

ॐ ह्रीं भेदोपचारनयेन सूत्रमिदं सर्वविकल्परहितशुद्धात्मतत्त्व-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(महार्घ्य)

केवलज्ञानी होकर आतम, सिद्ध मोक्ष पद पाता है
यह अध्याय बताता दसवां, शिव सुख अनुपम लाता है।
जल चन्दन अक्षत कुसुमन ले रुचिर चरु रत्नों के दीप
शुद्ध धूप अरु सर्व फलों का अर्घ्यं समर्पित सूत्र समीप॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रे दशमाऽध्यायेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति मण्डलोस्परि पुष्पांजलिं.....)

जयमाला

**किया महा उपकार गुरू ने, सूत्र बनाए प्रामाणिक
बड़े-बड़े आचार्यों ने भी टीका लिखी बड़ी तात्विक।
एक-एक सूत्रों में कैसा, गहरा अर्थ समाया है
पूज्यपाद अकलंकदेव ने, इनका हार्द बताया है॥१॥
तथा आर्य विद्यानन्दि ने, पर प्रवादि मति वाणों से
सूत्रों की रक्षा की भारी सुश्लोक और वार्तिक से
रहे अभेद्य सूत्र हर एक, बौद्ध सांख्य नैयायिक से
भव तरने की नाव मिली है, उमास्वामि गुरु नाविक से॥२॥
तत्त्व और छह द्रव्यों का सब, वर्णन यह लोकोत्तर है
तर्क कुतर्क सभी प्रश्नों का, इसमें मिलता उत्तर है।**

जयवन्तो सर्वज्ञ देव श्री, वीर प्रभु हित उपदेशी
जयवन्तो गणधर परमेष्ठी, जग हितकारी जिनभेषी॥३॥
ज्यों दर्पण में सब दर्शन पा नैनवन्त हर्षाये हैं
त्यों ही ये तत्त्वार्थसूत्रजी, भव्यनि मोक्ष कराये हैं।
जीव अजीव बन्ध अरु आस्रव संवर और निर्जरा मोक्ष
सप्त तत्त्व का इसमें वर्णन, जीवों को दे सम्यक् बोध॥४॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भव-उमास्वामिविरचित - तत्त्वार्थसूत्रे दशाऽध्यायेभ्यो जयमाला महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्पांजलिं....)

सरस्वती स्तवन

गी गौतमा गुण गणी गण नायिका है।
ज्ञानादि काव्य कविता मति दायिका है।
माता कृपा कर पिता-प्रभु से मिला दे।
विद्या सुधा रस पिला मुझको जिला दे।

विद्या गुरु स्तवन

मोह भ्रान्ति से भटक गये हैं, भव वन में जग के प्राणी।
शशि सम मनहर सूरत तोरी, शान्ति सुधा देती वाणी।
तथा चन्द्रमा पुष्ट करें ज्यों, नीर राशि के सागर को।
'विद्यासागर' गुरुवर भर दो, त्यों खाली मम गागर को॥

स्थान परिचय

नदी नर्मदा तीर पे, 'कूट सिद्धवर' धाम।
शुद्ध सिद्ध के पद नमूँ, छूटे अघ की घाम॥

समय परिचय

रागद्वेष पन पाप तज, उपयोगा द्वय लीन।
रत्नत्रय को धार के, वीर महोत्सव कीन॥अ॥
तीज शुक्ल बैसाख की, अक्षय तिथी महान।

पद्यमयी अनुवाद कर, किया निज निधी ज्ञान॥ब॥

वीरनिर्वाण संवत् २५२३ (ई. सन् १९९७) में यह पद्यानुवाद अक्षय तृतीया को सिद्धवरकूट में पूर्ण हुआ।

क्षमा याचना

अर्थ शब्द की भूल यदि, पढ़ लो सुधी सुधार।
विद्या गुरु सम भेष धर, निज 'सर्वेश' निहार॥

॥ इति॥

श्रुत पंचमी पूजा

स्थापना

(आर्या-छन्द)

केवलणाणतरूणं सुयणाणस्साराहणा-सुवीयं।
सुयपंचमीसपज्जं करेमि भावेण सड्ढाए॥
जीवट्ठाणं खुद्दा - बंधो य बंध सामित्तविचयो य।
खंडो य वेदणाअ वग्गणखंडो महाबंधो॥

ॐ ह्रीं अर्हं सुयणाणदेव ! अत्थ अवयर अवयर....
ॐ ह्रीं अर्हं सुयणाणदेव !अत्थ तिट्ठ-तिट्ठ .....
ॐ ह्रीं अर्हं सुयणाणदेव ! अत्थ मम संणिहिदो भव भव वस....

जम्माइमरणहेऊ
मिच्छाणाणाइ जिणेणुत्ताइं।
कारणकज्ज-विणासो
भवे जलं समप्पामि॥

ऊँ ह्रीं अर्हं जम्मजरामिच्चुविणासणस्स जलं णिव्ववामि त्ति साहा।

तावत्तयेण जीवा भमंति भवसायरे पुणो णिच्चं।
मलयाचलचंदणयं अतावहरं तेण अच्चेमि॥

ऊँ ह्रीं अर्हं संसारतावविणासणस्स चंदणं णिव्ववामि त्ति साहा।

अक्खय - पदमविणासि सिद्धाण समुज्जलं समुब्भासि।
धवलक्खयाण पुंजं णाणसमक्खं समच्चेमि॥

ऊँ ह्रीं अर्हं अक्खयपदपत्तस्स अक्खयं णिव्ववामि त्ति साहा।

पुप्फं खलु गंधड्ढं तव तणचरण-गंधदो णाहियं।
तुच्छाणि ताणि चरणे णिवदंति अहोमुहेण अहो॥

ऊँ ह्रीं अर्हं कामवाणविद्धंसणस्स पुप्फं णिव्ववामि त्ति साहा।

चउव्विहो आहारो उहयासंजमयरो य जीवेसु।
छक्खंडाणपदेसुं तेण सयं समागदो य चरू॥

ऊँ ह्रीं अर्हं खुहारोगविणासणस्स णेवेज्जं णिव्ववामि त्ति साहा।

मोहंधयारहरणे णत्थि समत्था जदो पदीवसिहा।
लज्जाए लग्गंता णाणसमीवं विसोहेदि॥

ऊँ ह्रीं अर्हं मोहंधयारविणासस्स दीवं णिव्ववामि त्ति साहा।

सुयणाणेण हि जीवो कम्मिंधणवणं डहेदि णिज्जरणं।
भत्तीए कुणदि जम्हा तम्हा धूवं खिवामि मुहु॥

ऊँ ह्रीं अर्हं अट्ठकम्मदहणस्स धूवं णिव्ववामि त्ति साहा।

सुयणाणस्स पयासो दंसण-चरणं समं पसाहेदि।
सुयणाणफलं सोक्खं णाणमणंतं य कंखामि॥

ऊँ ह्रीं अर्हं मोक्खफलपत्तस्स फलं णिव्ववामि त्ति साहा।

जलचंदणादिदव्वं सव्वं मेलिय विणिम्मिद- समग्घं।
सुयपूयाकरणट्ठं सुयभत्तीए समप्पामि॥

ऊँ ह्रीं अर्हं अणग्घपदपत्तस्स अग्घं णिव्ववामि त्ति साहा।

जयमाला

(भुजंगप्रयात-छंद)

जदा पुव्वणाणं य अंगस्स णाणं
विलुत्तं मुणीसुं तदंसस्स णाणं।

सुसोरट्ठदेसम्मि उज्जंतसेले
गुहाए ट्ठिदस्सेगसूरिं सु पत्तं ॥1॥

(तोटक-छंद)

धरसेण महाइरियस्स मणे
सुदणाणसुरक्खण - चिंतणदा।
महिमाणयरीमुणि - मेलणगे,
लहु पेसिदपत्तफलेण तदा ॥ 2॥

मुणिणो य दुवे बहुजोग्गमई
कुसला सुयधारणवायणगा।
लहिऊण सुलक्खणजुत्तजणे
हियए बहुतोसणमेदि गुरू ॥3॥

(भुजंगप्रयात-छंद)

परिक्खा कदा तेण विज्जा पदिण्णा
तदो सिद्धविज्जा गुरूणं समक्खे।
पढंता सुणंता मणे तं धरंति
समत्ते सुगंथे थुदा पूजिदा ते ॥4॥

विहारं करंता गदा दूरदेसे
कदा तेहि सिद्धंत - गंथस्स पुत्ती।
तदो सावयेहिं महासुत्तपूजा
महोच्छाहपुव्वं पसिद्धा सुभूदा॥5॥

ॐ ह्रीं अर्हं सुदणाणदेवयस्स जयमाला पुण्णग्घं णिव्ववामि त्ति साहा।

(आर्या-छंद)

सुयणाणदेवपूया
केवलणाणं सुहं पयच्छंतु।
छक्खंडाणं णाणं
भावसुदं भवे-भवे होदु॥

इतिआसीवादं पुप्फंजलिं खिवे।

दीपावली सांयकालीन पूजा विधि
श्री गौतम गणधर स्तुति

श्री महावीराय नमः

श्री गौतम गणधराय नमः **श्री विद्यासागर गुरवे नमः**

सामायिकदण्डकम्

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

चत्तारि मंगलं अरहंत मंगलं सिद्ध मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरहंत लोगुत्तमा सिद्ध लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि अरिहंत सरणं पवज्जामि सिद्ध सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं धम्माइरियाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरंग-चक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते ! सामाइयं सव्वं सावज्ज जोगं पच्चकखामि जावजीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण ण करेमि ण कारेमि अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि (पच्चक्खामि) णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

कायोत्सर्ग (९ बार णमोकार मंत्र)

थोस्सामिदण्डकम्

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णर-पवर-लोय महिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे ॥१॥

लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो॥२॥

उसहमजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥

एवं मए अभित्थुआ, विहुय-रयमला पहीण-
जरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगुत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

श्री गौतम गणधर स्तुति

(गोयमगणहरथुदि)

(उपजाति छन्द)

जो वड्ढमाणो जिणवीयराओ केवल्लधामो सयलत्थदिट्ठो
तस्सेव मुक्खो पढमो हि सिस्सो तं-गोयमं वीयरदिं-णमामि॥१॥

जो वर्धमान जिनवीतराग, कैवल्यधाम तथा सकल पदार्थों के द्दष्टा हैं, उनके ही मुख्य प्रथम शिष्य जो हैं, उन वीतरति(वीतराग) गौतम को मैं नमन करता हूँ।

वेदेगपाठी य पुराणविण्णू अद्देदमिच्छत्तकसायधारी।
सद्देसणं सो सुणिऊण-सम्मं णाणं धरेदिप्पणमामि सामिं॥२॥

जो वेद के एकपाठी हैं, पुराण विज्ञ हैं, अद्वैत मिथ्यात्व और कषाय को धारण करते हैं, वह समीचीन देशना को सुनकर सम्यग्ज्ञान को धारण कर लेते हैं, ऐसे गौतमस्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।

वेदंतविण्णाणबलेण गव्वी जिणेसरस्सप्पविलोयणेण

मिच्छत्तभावं जहिदूण णाणं लहेदि सम्मं पणमामि सामिं॥३॥

वेदांत के विज्ञान के बल से जो गर्वी (घमंडी) थे किन्तु जिनेश्वरके देखने से मिथ्यात्व के भाव को छोड़कर सम्यग्ज्ञान को प्राप्त किए उन गौतम स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।

सिस्सेसु जो पंचसदेसु सामी गोत्तेण वा गोयमणामधारी।
जो बम्हणो बम्हपरो विजादो तमिदंभूदिं पणमामि णिच्चं॥४॥

जो पाँच सौ शिष्यों के स्वामी हैं तथा गोत्र से गौतम नाम कोधारते हैं। जो ब्राह्मण थे और ब्रह्म में तत्पर हुए थे, उन इंद्रभूति को नित्य प्रणाम करता हूँ।

अणेयबुद्धिप्पहुडीड्ढिजुत्तं चारित्त सुद्धिप्पबलेण खिप्पं
तवस्स णाणस्स फलं सुपत्तं तमिंदभूदिं विणमामि सामिं॥५॥

चारित्र की शुद्धि की प्रबलतासे शीघ्र ही अनेक बुद्धि आदि ऋद्धियों से जो युक्त थे, तप और ज्ञान के फल को प्राप्त किए थे, उन इंद्रभूति गौतम स्वामी गणधर को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

दिव्वज्झुणिं जो सुणिऊण वीर- मुहारविंदस्स विणिग्गदत्थं।
अंतोमुहत्तेण रचीअ गंथं तमिंदभूदिं विणमामि सामिं॥६॥

जो वीर भगवान के मुख कमल से निर्गत अर्थ वाली दिव्य ध्वनि को सुनकर अंतर्मुहर्त में ग्रंथ को रच दिए थे उन इंद्रभूति गणधरस्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।

जं-बारसंगादिमहासुसत्थं पुव्वेहि सागं रचिदं य जेण।
महासमुद्दं जिणदेसिदत्थं तमिंदभूदिं विणमामि सामिं॥७॥

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा देशित जो अर्थशास्त्र महासमुद्र है, उसकी रचना जिन्होंने बारह अंग आदि महाश्रेष्ठ शास्त्र में पूर्वों के साथ की है, उन इंद्रभूति गौतम स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ।

वीरस्स णिव्वाणगदे दिणे हि पच्चक्खणाणं लहिऊण जादो।
परंपराए पढमो हि णाणी तमिंदभूदिं विणमामि सामिं॥८॥

वीर के निर्वाण वाले दिन ही जो प्रत्यक्ष ज्ञान को प्राप्त करके परंपरा से प्रथम केवलज्ञानी (अनुबद्ध केवली) हुए, उन इंद्रभूति को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

जो रागभावं चइऊण वीरे वेरग्गकट्ठेण हि सुक्कझाणं।
झाउं य पावेदि णिजप्पभूदिं तमिंदभूदिं विणमामि सामिं॥९॥

जो वीर भगवान में रागभाव को छोड़कर वैराग्य की पराकाष्ठा से ही शुक्लध्यान को ध्याकर निज आत्मा के वैभव को प्राप्त कर लेते हैं उन इंद्रभूति गणधरको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

गुणी गणेसो य गुणाणुरागी पुरा हि पंडित्तगदो विरागी।
पच्छा विसोहेदि च जस्स पण्णा तमिंदभूदिं विणमामि सामिं॥१०॥

गुणी, गणधर, गुणानुरागी, विरागी पहले तो पाण्डित्य को प्राप्त हुए थे किंतु बाद में जिनकी प्रज्ञा शोभा को प्राप्त हुई उन इंद्रभूति गौतमस्वामी को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

ऋद्धि मंत्र

(स्वस्तिक पर ६४ दीपक ऋद्धि मंत्र के साथ समर्पित करें)

1. **ॐ ह्रीं णमो ओहिबुद्धि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं णमो मणपज्जय जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं णमो केवलणाण जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं णमो कोट्ठबुद्धि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।**
5. **ॐ ह्रीं णमो बीजबुद्धि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।**
6. **ॐ ह्रीं णमो पादाणुसारीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।**
7. **ॐ ह्रीं णमो संभिण्णसोदाराणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।**
8. **ॐ ह्रीं णमो दूरासादणमदि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी**

सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

9. ॐ ह्रीं णमो दूरफासत्तमदि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

10. ॐ ह्रीं णमो दूरघाणत्तमदि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

11. ॐ ह्रीं णमो दूरसवणत्तमदि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

12. ॐ ह्रीं णमो दूरदरसित्तमदि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

13. ॐ ह्रीं णमो दसपुव्वीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

14. ॐ ह्रीं णमो चउदसपुव्वीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

15. ॐ ह्रीं णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

16. ॐ ह्रीं णमो पण्णसमणाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

17. ॐ ह्रीं णमो पत्तेयबुद्धाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

18. ॐ ह्रीं णमो वादित्तबुद्धीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

19. ॐ ह्रीं णमो अणिमाइड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

20. ॐ ह्रीं णमो महिमाइड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

21. ॐ ह्रीं णमो लघिमाइड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

22. ॐ ह्रीं णमो गरिमाइड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति

गौतम-गणेशाय नमः।

23. ॐ ह्रीं णमो पत्तरिड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

24. ॐ ह्रीं णमो पाकामड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

25. ॐ ह्रीं णमो ईसत्तड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

26. ॐ ह्रीं णमो वसित्तड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

27. ॐ ह्रीं णमो अप्पडिघादड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

28. ॐ ह्रीं णमो अंतड्ढाणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

29. ॐ ह्रीं णमो कामरूवड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

30. ॐ ह्रीं णमो गमणगामिड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

31. ॐ ह्रीं णमो जलचारणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

32. ॐ ह्रीं णमो जंघाचारणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

33. ॐ ह्रीं णमो पुप्फफल चारणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

34. ॐ ह्रीं णमो अग्गिधूमचारणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

35. ॐ ह्रीं णमो मेघधारचारणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

36. ॐ ह्रीं णमो तंतुचारणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति

गौतम-गणेशाय नमः।

37. ॐ ह्रीं णमो सिहाचारणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

38. ॐ ह्रीं णमो पवणचारणड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

39. ॐ ह्रीं णमो उग्गतवाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

40. ॐ ह्रीं णमो दित्ततवाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

41. ॐ ह्रीं णमो तत्ततवाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

42. ॐ ह्रीं णमो महातवाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

43. ॐ ह्रीं णमो घोरतवाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

44. ॐ ह्रीं णमो घोरपरक्कमाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

45. ॐ ह्रीं णमो घोर गुण बंभयारीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

46. ॐ ह्रीं णमो मणबलीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

47. ॐ ह्रीं णमो वच बलीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

48. ॐ ह्रीं णमो काय बलीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

49. ॐ ह्रीं णमो आमोसहिपत्ताणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

50. ॐ ह्रीं णमो खेल्लोसहिपत्ताणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी

सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

51. ॐ ह्रीं णमो जल्लोसहिपत्ताणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

52. ॐ ह्रीं णमो मल्लोसहिपत्ताणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

53. ॐ ह्रीं णमो विप्पोसहितपत्ताणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

54. ॐ ह्रीं णमो सव्वोसहि पत्ताणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

55. ॐ ह्रीं णमो मुहणिव्विसड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

56. ॐ ह्रीं णमो दिट्ठिणिव्विसड्ढि जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

57. ॐ ह्रीं णमो आसीविसाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

58. ॐ ह्रीं णमो दिट्ठि विसाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

59. ॐ ह्रीं णमो खीरसवीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

60. ॐ ह्रीं णमो महुरसवीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

61. ॐ ह्रीं णमो अमिय-सवीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

62. ॐ ह्रीं णमो सप्पिसवीणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

63. ॐ ह्रीं णमो अक्खीणमहाणसाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

64. ॐ ह्रीं णमो अक्खीणमहालयाणं जिणाणं केवलज्ञान लक्ष्मी

सहितेन्द्रभूति गौतम-गणेशाय नमः।

दोहा स्तुति (कूटों के अर्घ्य)

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

आदिम तीर्थंकर प्रभो, आदिनाथ मुनिनाथ।
आधि व्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ॥
शरण चरण हैं आपके, तारण तरण जहाज।
भवदधि तट तक ले चलो, करुणाकर जिनराज॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथ जिनेन्द्रादि दशसहस्र मुनि सिद्धपद प्राप्तेभ्यः श्री कैलाशगिरी सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जित-इन्द्रिय जित-मद बने, जित-भवविजित-कषाय।
अजित-नाथ को नित नमूँ, अर्जित दुरित पलाय॥
कोंपल पल-पल को पले, वन में ऋतु-पति आय।
पुलकित मम जीवन-लता, मन में जिन पद पाय॥२॥

ॐ ह्रीं सिद्धिवर कूटतः श्री अजितनाथ जिनेन्द्रादि एक अरब, अस्सी कोटि, चौवन लाख मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम-पद-पंकज से प्रभो, झर-झर-झरी पराग।
जब तक शिव-सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग॥
भव-भव, भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता आज।
संभव-जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज॥३॥

ॐ ह्रीं धवलदत कूटतः श्री संभवनाथ जिनेन्द्रादि नौ कोड़ाकोड़ी, बहत्तर लाख ब्यालीस हजार, पाँच सौ मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विषयों को विष लख तजूँ, बनकर विषयातीत।
विषय बना ऋषि ईश को, गाऊँ उनका गीत॥
गुण धारे पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत।

अभिनन्दन जिन! नित नमूँ, मुनि बन मैं भवभीत॥४॥

ॐ ह्रीं आनन्द कूटतः श्री अभिनन्दन जिनेन्द्रादि बहात्तर कोड़ाकोड़ी, सत्तर कोड़ी छत्तिस लाख, ब्यालीस हजार, सात सौ मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमतिनाथ प्रभु सुमति हो, मम मति है अति मंद।
बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरन्द॥
तुम जिन मेघ मयूर मैं, गरजो बरसो नाथ।
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ॥५॥

ॐ ह्रीं अविचल कूटतः श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्रादि बहात्तर कोड़ाकोड़ी चौरासी कोड़ी, बहत्तर लाख इक्यायी हजार, सात सौ मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ्र-सरल तुम, बाल तव, कुटिल कृष्ण-तम नाग।
तव चिति चित्रित ज्ञेयसे, किन्तु न उसमें दाग॥
विराग पद्मप्रभु आपके, दोनों पाद-सराग।
रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग॥६॥

ॐ ह्रीं मोहन कूटतः श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रादि निन्यानवे कोड़ी सतासी लाख, तेतालीस हजार सात सौ मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अबंध भाते काटके, वसु विध विधिका बंध।
सुपार्श्व प्रभु निज प्रभु-पना, पा पाये आनन्द॥
बाँध-बाँध विधि-बन्ध मैं, अन्ध बना मति-मन्द।
ऐसा बल दो अन्ध को, बंधन तोड़ूँ द्वन्द॥७॥

ॐ हीं प्रभास कूटतः श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि उनचास कोड़ाकोड़ी, चौरासी कोड़ी, बहतर लाख, सात हजार सात सौ बियालिस मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्र कलंकित, किन्तु हो, चन्द्र प्रभु अकलंक।
वह तो शंकित केतु से, शंकर तुम निःशंक॥

रंक बना हूँ मम अतः, मेटो मन का पंक।
जाप जपूँ जिन-नाम का, बैठ सदा पर्यंक॥८॥

ऊँ ह्रीं ललित कूटतः श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रादि नौ सौ चौरासी अरब, बहात्तर कोड़ी, अस्सी लाख, चौरासी हजार, पाँच सौ पचपन मुनि श्रीसम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुविधि! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर॥
बाल मात्र भी ज्ञान ना, मुझमें मैं मुनि-बाल।
वबाल भवका मम मिटे, प्रभु-पद में मम भाल॥9॥

ऊँ ह्रीं सुप्रभ कूटतः श्री पुष्पदंत जिनेन्द्रादि एक कोड़ाकोड़ी, निन्यानवे लाख, सात हजार, चार सौ अस्सी मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल चन्दन है नहीं, शीतल हिम ना नीर।
शीतल जिन! तव मत रहा, शीतल हरता पीर॥
सुचिर काल से मैं रहा, मोह-नींद से सुप्त ।
मुझे जगा कर, कर कृपा, प्रभो करो परितृप्त॥१०॥

ऊँ ह्रीं विद्युत्प्रभ कूटतः श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रादि अठारह कोड़ाकोड़ी, ब्यालीस कोड़ी, बत्तीस लाख, ब्यालिस हजार, नौ सौ पाँच मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनेकान्त की कान्ति से, हटा तिमिर एकान्त ।
नितान्त हर्षित कर दिया, क्लान्त विश्व को शान्त॥
निश्रेयस सुख-धाम हो, हे जिनवर श्रेयांस ।
तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लौं घट में श्वाँस॥११॥

ऊँ हीं संकल कूटतः श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रादि छ्यानवे कोड़ाकोड़ी, छ्यानवे लाख, नौ हजार, पाँच सौ ब्यालिस मुनि श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वसुविध मंगल द्रव्य ले, जिन पूजो सागार।

पाप-घटे फलतः फले, पावन पुण्य अपार॥
बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजों मुनि लोग।
बिन निज शुभ उपयोग के, शुद्ध न हो उपयोग॥१२॥

ऊँ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रादि एकसहस्र मुनि सिद्धपद प्राप्तेभ्यः श्री चम्पापुर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल।
मार दिया तुमने उसे, फाड़ा उसका गाल॥
मोह अमल वश समल बन, निर्बल मैं भयवान्।
विमलनाथ तुम अमल हो, संबल दो भगवान्॥१३॥

ऊँ ह्रीं सुवीरकुल कूटतः श्री विमलनाथ जिनेन्द्रादि सत्तर कोड़ी सात लाख, सत्तर हजार, सात सौ मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनन्त गुण पा कर दिया, अनन्त भव का अन्त।
अनन्त सार्थक नाम तव, अनन्त जिन जयवन्त॥
अनन्त सुख पाने सदा, भव से हो भयवन्त ।
अन्तिम क्षण तक मैं तुम्हें,स्मरूँ स्मरें सब सन्त॥१४॥

ऊँ ह्रीं स्वयम्भू कूटतः श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्रादि छियान्वे कोड़ीकोड़ी, सत्तर कोड़ी, सत्तर लाख, सत्तर हजार सात सौ मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दया धर्म वर धर्म है, अदया-भव अधर्म ।
अधर्म तज प्रभु धर्म ने, समझाया पुनि धर्म॥
धर्मनाथ को नित नमूँ, सधे शीघ्र शिव शर्म।
धर्म-मर्म को लख सकूँ, मिटे मलिन मम कर्म॥१५॥

ऊँ ह्रीं सुदत्त कूटतः श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रादि उन्नीस कोड़ाकोड़ी,नौ लाख, नौ हजार सात सौ पंचानवे मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिनाथ हो शान्त कर, सातासाता सान्त ।
केवल, केवल-ज्योतिमय, क्लान्ति मिटी सब ध्वान्त॥

सकल ज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश।
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूँ नत शीश॥१६॥

ॐ ह्रीं शांतिप्रभ कूटतः श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रादि नौ कोड़ाकोड़ी, नौ लाख, नौ हजार, नौ सौ निन्यानवे मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यान-अग्नि से नष्ट कर, प्रथम पाप परिताप।
कुन्थुनाथ पुरुषार्थ से, बने न अपने-आप॥
ऐसी मुझ पै हो कृपा, मम मन मुझ में आय।
जिस विध पल में लवण है जल में घुल मिल जाय॥१७॥

ॐ ह्रीं ज्ञानधर कूटतः श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्रादि छ्यानवे कोड़ाकोड़ी, छ्यानवे कोड़ी, बतीस लाख, छ्यानवे हजार, सात सौ ब्यालीसमुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाम-मात्र भी नहिं रखो, नाम-काम से काम।
ललाम आतम में करो, विराम आठों याम॥
नाम धरो 'अर' नाम तव, अतः स्मरूँ अविराम।
अनाम बन शिवधाम में, काम बनूँ कृत-काम॥१८॥

ॐ ह्रीं नाटक कूटतः श्री अरहनाथ जिनेन्द्रादि निन्यानवे कोड़ाकोड़ी, निन्यानवे लाख, निन्यानवे हजार, मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहमल्ल को मार कर, मल्लिनाथ जिनदेव।
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षय सुख स्वयमेव॥
बाल ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग।
किसी वस्तु से राग ना, मम तव पद से राग॥१९॥

ॐ ह्रीं सम्बल कूटतः श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्रादि छ्यानवे कोड़ी,मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्ध क्षेत्रात् सिद्ध पद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ।
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ॥

यही भावना मम रही, मुनिव्रत पाल यथार्थ ।
मैं भी मुनिसुव्रत बनूँ, पावन पाय पदार्थ॥२०॥

ऊँ ह्रीं निर्जर कूटतः श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्रादि निन्यानवे कोड़ाकोड़ी, सत्तानवे कोड़ी नौ लाख, नौ सौ निन्यानवे मुनि श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनेकान्त का दास हो, अनेकान्त की सेव।
करूँ गहूँ मैं शीघ्र से, अनेक गुण स्वयमेव॥
अनाथ मैं जगनाथ हो, नमिनाथ दो साथ।
तव पद में दिन-रात हूँ, हाथ जोड़ नत-माथ॥२१॥

ऊँ ह्रीं मित्रधर कूटतः श्री नमिनाथ जिनेन्द्रादि नौ सौ कोड़ाकोड़ी, एक अरब, पैंतालीस लाख सात हजार, नौ सौ ब्यालिस मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नील गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन।
नील कमल आसीन हो, नीलम से अति नील॥
शील-झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील।
शील डोर मुझ बाँध दो, डोर करो मत ढील॥२२॥

ऊँ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रादि सम्बु प्रद्युम्नानिरूद्धत्यादि बहत्तर कोड़ी, सात सौ मुनि श्री गिरनारगिरी सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

खास दास की आस बस, श्वाँस-श्वाँस पर वास।
पार्श्व करो मत दास को, उदासता का दास॥
ना तो सुर-सुख चाहता, शिव-सुख की ना चाह।
तव थुति-सरवर में सदा, होवे मम अवगाह॥२३॥

ऊँ ह्रीं सुवर्णभद्र कूटतः श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि ब्यालीस करोड़,चौरासी लाख, पैंतीस हजार, सात सौ ब्यालीस मुनि श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर-निधी-से धीर हो, वीर बने गभीर ।
पूर्ण तैर कर पा लिया, भव सागर का तीर॥
अधीर हूँ मुझे धीर दो, सहन करूँ सब पीर।
चीर-चीर कर चिर लिखूँ, अन्तर की तस्वीर॥२४॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्रादि षटत्रिंशत् मुनि श्री पावापुरस्य पद्म सरोवरात् सिद्धक्षेत्रात् सिद्धपद प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

SCAN TO WATCH

श्रीजिनसहस्रनाम-स्तोत्रम्

(भगवज्जिनसेनाचार्य कृत)

स्वयंभुवे नमस्तुभ्य-मुत्पाद्यात्मानमात्मनि।
स्वात्मनैव तथोद्भूत-वृत्तयेऽचिन्त्य-वृत्तये॥१॥
नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते।
विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर॥२॥
कर्मशत्रु-हणं देवमामनन्ति मनीषिणः।
त्वामानमत्सुरेण्मौलि- भा- मालाभ्यर्चित-क्रमम्॥३॥
ध्यान- द्रुघण -निर्भिन्न- घन-घाति- महातरुः।
अनन्त- भव- सन्तान- जयादासीदनन्तजित्॥४॥
त्रैलोक्यनिर्जयावाप्त-दुर्दर्प मति-दुर्जयम्।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन मृत्युंजयो भवान्॥५॥
विधूताशेष-संसार-बन्धनो भव्य बान्धवः।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि जन्म-मृत्युजरान्तकृत्॥६॥
त्रिकाल-विषयाशेष-तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षु स्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः॥७॥
त्वामन्धकान्तकं प्राहु-र्मोहान्धासुर-मर्दनात् ।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यतः॥८॥
शिवः शिव-पदाध्यासाद् दुरितारि-हरो हरः।
शंकरः कृतशं लोके शम्भवस्त्वं भवन्सुखे॥९॥
वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरु-गुणोदयैः।

नाभेयो नाभि-सम्भूते-रिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः॥१०॥
त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने ।
त्वं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्ग-स्त्रिज्ञस्त्रिज्ञान-धारकः॥११॥
चतुःशरण-मांगल्य-मूर्तिस्त्वं चतुरस्रधीः ।
पञ्च-ब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम्॥१२॥
स्वर्गावतरणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः।
जन्माभिषेक-वामाय वामदेव नमोऽस्तु ते॥१३॥
सन्निष्क्रान्ताव-घोराय परं प्रशम-मीयुषे।
केवलज्ञान-संसिद्धा-वीशानाय नमोऽस्तु ते॥१४॥
पुरस्तत्पुरुषावस्थां विमुक्ति - पद - भाजिने ।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते॥१५॥
ज्ञानावरण-निर्हा-सान्नमस्ते ऽनन्तचक्षुषे ।
दर्शनावरणोच्छेदान् नमस्ते विश्वदृश्वने॥१६॥
नमो दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामल-दृष्टये ।
नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे॥१७॥
नमस्तेऽनन्त-वीर्याय नमोऽनन्त - सुखात्मने ।
नमस्तेऽनन्त- लोकाय लोकालोकाविलोकिने॥१८॥
नमस्तेऽनन्त -दानाय नमस्तेऽनन्त- लब्ध्ये ।
नमस्तेऽनन्त - भोगाय नमोऽनन्तोपभोगिने॥१९॥
नमः परम -योगाय नमस्तुभ्यमयोनये ।
नमः परम -पूताय नमस्ते परमर्षये॥२०॥
नमः परम - विद्याय नमः पर-मत-च्छिदे ।
नमः परम - तत्त्वाय नमस्ते परमात्मने॥२१॥
नमः परम-रूपाय नमः परम - तेजसे ।
नमः परम - मार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने॥२२॥
परमर्द्धिजुषे धाम्ने परम - ज्योतिषे नमः।
नमः पारेतमःप्राप्त धाम्ने परतरात्मने॥२३॥
नमः क्षीण-कलंकाय क्षीण-बन्ध नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीण-मोहाय क्षीण-दोषाय ते नमः॥२४॥
नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गति-मीयुषे।

नमस्तेऽतीन्द्रिय-ज्ञान-सुखायानिन्द्रियात्मने ॥२५॥
काय-बन्धन-निर्मोक्षादकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्यम-योगाय योगिनामधियोगिने॥२६॥
अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः।
नमः परम-योगीन्द्र-वन्दितांघ्रि-द्वयाय ते॥२७॥
नमः परम-विज्ञान नमः परम-संयम।
नमः परमदृग्दृष्ट-परमार्थाय ते नमः॥२८॥
नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ल लेश्यांशक-स्पृशे ।
नमो भव्येतरावस्था-व्यतीताय विमोक्षिणे॥२९॥
संज्ञयसंज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मने ।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये॥३०॥
अनाहाराय तृप्ताय नमः परम भाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे॥३१॥
अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते स्तादजन्मने ।
अमृत्यवे नमस्तुभ्य-मचलायाक्षरात्मने॥३२॥
अलमास्तां गुणस्तोत्र-मनन्ता-स्तावका गुणाः।
त्वां नामस्मृति-मात्रेण पर्युपासिसिषामहे॥३३॥
एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः ।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पाप-शान्तये॥३४॥
प्रसिद्धाष्ट-सहस्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम् ।
नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये॥३५॥

॥इति प्रस्तावना॥

श्रीमान्स्वयम्भूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः ।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः॥१॥
विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।
विश्वविद्विश्व-विद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः॥२॥
विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः॥३॥
विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्ति-र्जिनेश्वरः।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः॥४॥

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः॥५॥
युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः॥६॥
स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः॥७॥
प्रशान्तारि-रनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः॥८॥
शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः ।
सिद्धः सिद्धान्तविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः॥९॥
सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः ।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः॥१०॥
विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयम्भूष्णुः पुरातनः ।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः॥११॥

ॐ ह्रीं श्री मदादिशतम्॥१॥

दिव्यभाषा-पतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः।
पूतात्मा परमज्योति-धर्माध्यक्षो दमीश्वरः॥१॥
श्रीपतिर्भगवान-र्हन्नरजा विरजाः शुचिः।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः॥२॥
अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः ।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः॥३॥
निरञ्जनो जगज्ज्योति-र्निरुक्तोक्तिरनामयः।
अचलस्थिति-रक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणु-रक्षयः॥४॥
अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्र-कृत् ।
शास्ता धर्मपति-र्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थ-कृत्॥५॥
वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतु-र्वृषायुधः।
वृषो वृषपति-र्भर्ता वृषभांको वृषोद्भवः॥६॥
हिरण्यनाभि-र्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः॥७॥

हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतं-विभवोद्भवः।
स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्पतिः॥८॥
सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्-सर्वलोकजित्॥९॥
सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः।
विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः॥१०॥
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
भूतभव्य-भवद्भर्ता विश्वविद्या-महेश्वरः॥११॥

ॐ ह्रीं श्री दिव्यादिशतम्॥२॥

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः प्रष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः॥१॥
विश्वभृद्विश्वसृड् विश्वेड् विश्वभुग्विश्वनायकः।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः॥२॥
विभवो विभयो वीरो विशोको विजरोऽ जरन्।
विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीत-मत्सरः॥३॥
विनेय- जनताबन्धु- र्विलीना- शेषकल्मषः।
वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः॥४॥
क्षान्तिभाक्पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः।
वायुमूर्ति रसंगात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक्॥५॥
सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञांगममृतं हविः॥६॥
व्योममूर्ति-रमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्ति-र्महाप्रभः॥७॥
मंत्रविन्मंत्र - कृन्मंत्री मंत्रमूर्ति - रनन्तगः।
स्वतंत्र-स्तंत्र-कृत्स्वन्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत्॥८॥
कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युञ्जयोऽमृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भवः॥९॥
ब्रह्मनिष्ठ परंब्रह्माब्रह्मात्मा ब्रह्म-सम्भवः।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेड् महाब्रह्मपदेश्वरः॥१०॥

सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्म-दम-प्रभुः।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः॥११॥

ॐ ह्रीं श्री स्थविष्ठादिशतम् ॥३॥

महाशोकध्वजोऽशोकः कःस्रष्टा पद्म-विष्टरः।
पद्मेशः पद्म-सम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः॥१॥
पद्मयोनि-र्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः॥२॥
गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधि-र्गुणज्ञो गुणनायकः॥३॥
गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्य-नायकः॥४॥
अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः ।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः॥५॥
पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीत-कल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः॥६॥
निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतागा निरास्रवः॥७॥
विशालो विपुल-ज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभृत्सुनय-तत्त्ववित्॥८॥
एकविद्या महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः॥९॥
पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान्॥१०॥
कविः पुराण-पुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैक-पितामहः॥११॥

ॐ ह्रीं श्री महाशोकध्वजादिशतम् ॥४॥

श्रीवृक्ष-लक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः।
निरक्षःपुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः॥१॥

सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः ।
बुद्धबोध्यो महाबोधि-र्वर्धमानो महर्द्धिकः॥२॥
वेदांगो वेद-विद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः॥३॥
अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्त-वाग्व्यक्त-शासनः।
युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः॥४॥
अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् ।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्राच्र्यो महेन्द्र-महितो महान्॥५॥
उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः।
अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्यः परमेश्वरः॥६॥
अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धि - रचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्र्-योऽग्रिमोऽग्रजः॥७॥
महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः।
महायशा महाधामा महा-सत्त्वो महाधृतिः॥८॥
महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन् महाबलः।
महाशक्तिर्महाज्योति-र्महाभूति-र्महाद्युतिः ॥९॥
महामति - र्महा नीति - र्महा क्षान्ति - र्महादयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः॥१०॥
महामहा- महा कीर्ति - र्महा कान्ति-र्महावपुः।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः॥११॥
महामहपतिः प्राप्त-महाकल्याणपञ्चकः।
महाप्रभु - र्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१२॥

ॐ ह्रीं श्री श्रीवृक्षादिशतम् ॥५॥

महामुनि-र्महामौनी महाध्यानी महादमः।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः॥१॥
महाव्रत-पतिर्मह्यो महाकान्ति-धरोऽधिपः।
महामैत्री-मयोऽमेयो महोपायो महोमयः॥२॥
महाकारुणिको मन्ता महामंत्रो महायतिः।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः॥३॥

महाध्वर-धरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसांधाम महर्षि-र्महितोदयः॥४॥
महाक्लेशांकुशः शूरो महा-भूतपतिर्गुरुः।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोध-रिपुर्वशी॥५॥
महाभवाब्धि-सन्तारी महामोहाद्रि-सूदनः।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी॥६॥
महाध्यानपतिर्ध्यात- महाधर्मा महाव्रतः।
महाकर्मारिहाऽऽत्मज्ञो महादेवो महेशिता॥७॥
सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः॥८॥
सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः॥९॥
प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः॥१०॥
प्रणवः प्रणतः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोध्वर्युरध्वरः॥११॥
आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः॥ १२॥

ॐ ह्रीं श्री महामुन्यादिशतम्॥६॥

असंस्कृत-सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत् ।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः॥१॥
अजितो जितकामारि-रमितोऽमितशासनः।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः॥२॥
जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः।
महेन्द्र-वन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः॥३॥
नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुगीः॥४॥
सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः॥५॥
क्षेमीक्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी।

अग्राह्यो ज्ञान-निग्राह्यो ध्यान-गम्यो निरुत्तरः॥६॥
सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवास -श्चतुर्वक्त्र-श्चतुरास्य-श्चतुर्मुखः॥७॥
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्य-परायणः॥८॥
स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान् दूरदर्शनः ।
अणोरणीयाननणु-र्गुरुराद्यो गरीयसाम्॥९॥
सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः॥१०॥
सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः॥११॥

ॐ ह्रीं श्री असंस्कृतादिशतम्॥७॥

बृहद्-बृहस्पति-र्वाग्मी वाचस्पति-रुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपतिः॥१॥
नैकरूपो नयोत्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः॥२॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः॥३॥
लक्ष्मी-वांस्त्री दशाध्यक्षो दृढी-यानिन ईशिता।
मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीर-शासनः॥४॥
धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः॥५॥
अमोघ-वाग-मोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभग-स्त्यागी समयज्ञः समाहितः॥६॥
सुस्थितः स्वास्थ्य-भाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः।
अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः॥७॥
वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्त-धामर्षि-र्मंगलं मलहानघः॥८॥
अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवम - गोचरः।

अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैक-तत्त्वदृक्॥९॥
अध्यात्म-गम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकाल-विषयार्थ-दृक्॥१०॥
शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्ति-परायणः।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः॥११॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्य - स्त्रिजगन्मंगलोदयः।
त्रिजगत्पति-पूज्यांघ्रि-स्त्रिलोकाग्र- शिखामणिः॥१२॥

इति श्री बृहदादिशतम्॥८॥

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः॥१॥
पुराणः पुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांग - विस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधि-देवता॥२॥
युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थिति-देशकः।
कल्याण-वर्णः कल्याणः कल्यः कल्याण-लक्षणः॥३॥
कल्याणप्रकृति-र्दीप्तकल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः॥४॥
देवदेवो जगन्नाथो जगद्-बन्धु - र्जगद्विभुः।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः॥५॥
चराचर-गुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः॥६॥
आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटि-समप्रभः॥७॥
तपनीयनिभस्तुंगो बालार्का-भोऽनलप्रभः।
सन्ध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८॥
निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चन - सन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः॥९॥
द्युम्नाभो जातरूपाभस्तप्तजाम्बूनदद्युतिः।
सुधौतकल-धौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः॥१०॥

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः॥११॥
शान्ति-निष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदःशान्ति-कृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः॥१२॥
श्रेयोनिधि -रधिष्ठान-मप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितःपृथुः॥१३॥

इति श्री त्रिकालदर्श्यादिशतम्॥९॥

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षु-रमोमुहः॥१॥
तेजोराशि-रनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः।
तेजोमयोऽमितज्योति-र्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥२॥
जगच्चूडामणि-र्दीप्तः शंवान्विघ्न- विनायकः।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोक - प्रकाशकः॥३॥
अनिद्रालु -रतन्द्रालु - र्जागरूकः प्रमामयः।
लक्ष्मीपति -र्जगज्ज्योतिधर्मराजः प्रजाहितः॥४॥
मुमुक्षुर्बन्ध - मोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः।
प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः॥५॥
मूलकर्ताऽखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणम्।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक्॥६॥
प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् ।
सुतनुस्तनु-निर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः॥७॥
श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीर - भयंकरः।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोक-वत्सलः॥८॥
लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः ।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृत- पूतवाक्॥९॥
प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः।
भदन्तो भद्रकृद् भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः॥१०॥
समुन्मूलित-कर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः॥११॥

अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारि- स्त्रिलोचनः।
त्रिनेत्रस्त्रयम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञान-वीक्षणः॥१२॥
समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः।
सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदेशकः॥१३॥
शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्य -राशि - रनामयः।
धर्मपालो जगत्पालो धर्म-साम्राज्यनायकः॥१४॥

इति श्री दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम्॥१०॥

धाम्नां पते तवामूनि नामान्यागम - कोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूत - स्मृतिर्भवेत्॥१॥
गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः।
स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत्॥२॥
त्वमतोऽसि जगद्-बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक् ।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः॥३॥
त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगः स्वोत्थानन्त - चतुष्टयः॥४॥
त्वं पञ्चब्रह्म - तत्त्वात्मा पञ्चकल्याण-नायकः।
षड्भेद - भावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः॥५॥
दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवल - लब्धिकः।
दशावतार - निर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर॥६॥
युष्मन्नामावली- दृब्धविलसत्स्तोत्रमालया ।
भवन्तं परिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः॥७॥
इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः ।
यः संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याण - भाजनम्॥८॥
ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठतु पुण्यधीः ।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमा-मभिलाषुकः॥९॥
स्तुत्वेति मघवा देवं चराचर - जगद्गुरुम्।
ततस्तीर्थ - विहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमाम्॥१०॥
स्तुतिः पुण्य-गुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम्॥११॥

(शार्दूलविक्रडितम्)

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्।
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित्।
यो नेन्तॄन् नयते नमस्कृति-मलं नन्तव्यपक्षेक्षणः।
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः॥१२॥
तं देवं त्रिदशाधि-पार्चितपदं घाति- क्षया - नन्तरं।
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जिनीनामिनम्॥
मानस्तम्भ - विलोकनानत्- जगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं।
प्राप्ताचिन्त्य- बहिर्विभूति-मनघं भक्त्या प्रवन्दामहे॥१३॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि॥

जिनसहस्रनाम मंत्र

(1)

1. ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमते नमः
2. ॐ ह्रीं अर्हं स्वयंभुवे नमः
3. ॐ ह्रीं अर्हं वृषभाय नमः
4. ॐ ह्रीं अर्हं शंभवाय नमः
5. ॐ ह्रीं अर्हं शंभवे नमः
6. ॐ ह्रीं अर्हं आत्मभुवे नमः
7. ॐ ह्रीं अर्हं स्वयंप्रभाय नमः
8. ॐ ह्रीं अर्हं प्रभवे नमः
9. ॐ ह्रीं अर्हं भोक्त्रे नमः
10. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वभुवे नमः
11. ॐ ह्रीं अर्हं अपुनर्भवाय नमः
12. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वात्मने नमः
13. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वलोकेशाय नमः
14. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वतश्चक्षुषे नमः
15. ॐ ह्रीं अर्हं अक्षराय नमः
16. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वविदे नमः
17. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वविद्येशाय नमः
18. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वयोनये नमः
19. ॐ ह्रीं अर्हं अनश्वराय नमः
20. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वदृश्वने नमः
21. ॐ ह्रीं अर्हं विभवे नमः
22. ॐ ह्रीं अर्हं धात्रे नमः
23. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वेशाय नमः
24. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वलोचनाय नमः
25. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वव्यापिने नमः
26. ॐ ह्रीं अर्हं विधये नमः
27. ॐ ह्रीं अर्हं वेधसे नमः
28. ॐ ह्रीं अर्हं शाश्वताय नमः
29. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वतोमुखाय नमः
30. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वकर्मणे नमः
31. ॐ ह्रीं अर्हं जगज्जेष्ठाय नमः
32. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वमूर्तये नमः
33. ॐ ह्रीं अर्हं जिनेश्वराय नमः
34. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वदृशे नमः
35. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वभूतेशाय नमः
36. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वज्योतिषे नमः
37. ॐ ह्रीं अर्हं अनीश्वराय नमः
38. ॐ ह्रीं अर्हं जिनाय नमः
39. ॐ ह्रीं अर्हं जिष्णवे नमः
40. ॐ ह्रीं अर्हं अमेयात्मने नमः
41. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वरीशाय नमः
42. ॐ ह्रीं अर्हं जगत्पतये नमः
43. ॐ ह्रीं अर्हं अनंतजिते नमः
44. ॐ ह्रीं अर्हं अचिंत्यात्मने नमः
45. ॐ ह्रीं अर्हं भव्यबंधवे नमः
46. ॐ ह्रीं अर्हं अबंधनाय नमः
47. ॐ ह्रीं अर्हं युगादिपुरुषाय नमः
48. ॐ ह्रीं अर्हं ब्रह्मणे नमः
49. ॐ ह्रीं अर्हं पंचब्रह्ममयाय नमः
50. ॐ ह्रीं अर्हं शिवाय नमः
51. ॐ ह्रीं अर्हं पराय नमः
52. ॐ ह्रीं अर्हं परतराय नमः
53. ॐ ह्रीं अर्हं सूक्ष्माय नमः

54. ॐ ह्रीं अर्हं परमेष्ठिने नमः
55. ॐ ह्रीं अर्हं सनातनाय नमः
56. ॐ ह्रीं अर्हं स्वयंज्योतिषे नमः
57. ॐ ह्रीं अर्हं अजाय नमः
58. ॐ ह्रीं अर्हं अजन्मने नमः
59. ॐ ह्रीं अर्हं ब्रह्मयोनये नमः
60. ॐ ह्रीं अर्हं अयोनिजाय नमः
61. ॐ ह्रीं अर्हं मोहारिविजयिने नमः
62. ॐ ह्रीं अर्हं जेत्रे नमः
63. ॐ ह्रीं अर्हं धर्मचक्रिणे नमः
64. ॐ ह्रीं अर्हं दयाध्वजाय नमः
65. ॐ ह्रीं अर्हं प्रशान्तारये नमः
66. ॐ ह्रीं अर्हं अनंतात्मने नमः
67. ॐ ह्रीं अर्हं योगिने नमः
68. ॐ ह्रीं अर्हं योगीश्वरार्चिताय नमः
69. ॐ ह्रीं अर्हं ब्रह्मविदे नमः
70. ॐ ह्रीं अर्हं ब्रह्मतत्वज्ञाय नमः
71. ॐ ह्रीं अर्हं ब्रह्मोद्यविदे नमः
72. ॐ ह्रीं अर्हं यतीश्वराय नमः
73. ॐ ह्रीं अर्हं शुद्धाय नमः
74. ॐ ह्रीं अर्हं बुद्धाय नमः
75. ॐ ह्रीं अर्हं प्रबुद्धात्मने नमः
76. ॐ ह्रीं अर्हं सिद्धार्थाय नमः
77. ॐ ह्रीं अर्हं सिद्धशासनाय नमः
78. ॐ ह्रीं अर्हं सिद्धाय नमः
79. ॐ ह्रीं अर्हं सिद्धांतविदे नमः
80. ॐ ह्रीं अर्हं ध्येयाय नमः
81. ॐ ह्रीं अर्हं सिद्धसाध्याय नमः
82. ॐ ह्रीं अर्हं जगद्धिताय नमः
83. ॐ ह्रीं अर्हं सहिष्णवे नमः
84. ॐ ह्रीं अर्हं अच्युताय नमः
85. ॐ ही अर्हं अनंताय नमः
86. ॐ ह्रीं अर्हं प्रभविष्णवे नमः
87. ॐ ह्रीं अर्हं भवोद्भवाय नमः
88. ॐ ह्रीं अर्हं प्रभूष्णवे नमः
89. ॐ ह्रीं अर्हं अजराय नमः
90. ॐ ह्रीं अर्हं अजर्याय नमः
91. ॐ ह्रीं अर्हं भ्राजिष्णवे नमः
92. ॐ ही अर्हं धीश्वराय नमः
93. ॐ ह्रीं अर्हं अव्ययाय नमः
94. ॐ ह्रीं अर्हं विभावसवे नमः
95. ॐ ह्रीं अर्हं असंभूष्णवे नमः
96. ॐ ही अर्हं स्वयंभूष्णवे नमः
97. ॐ ह्रीं अर्हं पुरातनाय नमः
98. ॐ ही अर्हं परमात्मने नमः
99. ॐ ह्रीं अर्हं परंज्योतिषे नमः
100.ॐ ह्रीं अर्हं त्रिजगत्परमेश्वराय नमः

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमदादिशतनामभ्यो नमः

(2)

1. ॐ ह्रीं अर्हं दिव्यभाषापतये नमः
2. ॐ ह्रीं अर्हं दिव्याय नमः
3. ॐ ह्रीं अर्हं पूतवाचे नमः
4. ॐ ह्रीं अर्हं पूतशासनाय नमः
5. ॐ ह्रीं अर्हं पूतात्मने नमः
6. ॐ ह्रीं अर्हं परमज्योतिषे नमः
7. ॐ ह्रीं अर्हं धर्माध्यक्षाय नमः
8. ॐ ह्रीं अर्हं दमीश्वराय नमः

9. ऊँ ह्रीं अर्हं श्रीपतये नमः
10. ऊँ ह्रीं अर्हं भगवते नमः
11. ऊँ ह्रीं अर्हं अर्हते नमः
12. ऊँ ह्रीं अर्हं अरजसे नमः
13. ऊँ ह्रीं अर्हं विरजसे नमः
14. ऊँ ह्रीं अर्हं शुचये नमः
15. ऊँ ह्रीं अर्हं तीर्थकृते नमः
16. ऊँ ह्रीं अर्हं केवलिने नमः
17. ऊँ ह्रीं अर्हं योगिने नमः
18. ऊँ ह्रीं अर्हं ईशानाय नमः
19. ऊँ ह्रीं अर्हं स्नातकाय नमः
20. ऊँ ह्रीं अर्हं अमलाय नमः
21. ऊँ ह्रीं अर्हं अनन्तदीप्तये नमः
22. ऊँ ह्रीं अर्हं ज्ञानात्मने नमः
23. ऊँ ह्रीं अर्हं स्वयंबुद्धाय नमः
24. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रजापतये नमः
25. ऊँ ह्रीं अर्हं मुक्ताय नमः
26. ऊँ ह्रीं अर्हं शक्ताय नमः
27. ऊँ ह्रीं अर्हं निराबाधाय नमः
28. ऊँ ह्रीं अर्हं निष्कलाय नमः
29. ऊँ ह्रीं अर्हं भुवनेश्वराय नमः
30. ऊँ ह्रीं अर्हं निरंजनाय नमः
31. ऊँ ही अर्हं जगज्ज्योतिषे नमः
32. ऊँ ह्रीं अर्हं निरोक्तोक्तये नमः
33. ऊँ ह्रीं अर्हं अनामयाय नमः
34. ऊँ ह्रीं अर्हं अचलस्थितये नमः
35. ऊँ ह्रीं अर्हं अक्षोभ्याय नमः
36. ऊँ ह्रीं अर्हं कूटस्थाय नमः
37. ऊँ ह्रीं अर्हं स्थाणवे नमः
38. ऊँ ह्रीं अर्हं अक्षयाय नमः
39. ऊँ ह्रीं अर्हं अग्रण्ये नमः
40. ऊँ ह्रीं अर्हं ग्रामण्ये नमः
41. ऊँ ह्रीं अर्हं नेत्रे नमः
42. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रणेत्रे नमः
43. ऊँ ह्रीं अर्हं न्यायशास्त्रकृते नमः
44. ऊँ ह्रीं अर्हं शास्त्रे नमः
45. ऊँ ह्रीं अर्हं धर्मपतये नमः
46. ऊँ ह्रीं अर्हं धर्म्याय नमः
47. ऊँ ह्रीं अर्हं धर्मात्मने नमः
48. ऊँ ह्रीं अर्हं धर्मतीर्थकृते नमः
49. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषध्वजाय नमः
50. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषाधीशाय नमः
51. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषकेतवे नमः
52. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषायुधाय नमः
53. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषाय नमः
54. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषपतये नमः
55. ऊँ ह्रीं अर्हं भर्त्रे नमः
56. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषभाङ्काय नमः
57. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषोद्भवाय नमः
58. ऊँ ह्रीं अर्हं हिरण्यनाभये नमः
59. ऊँ ह्रीं अर्हं भूतात्मने नमः
60. ऊँ ह्रीं अर्हं भूतभृते नमः
61. ऊँ ह्रीं अर्हं भूतभावनाय नमः
62. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रभवाय नमः
63. ऊँ ह्रीं अर्हं विभवाय नमः
64. ऊँ ह्रीं अर्हं भास्वते नमः

65. ॐ ह्रीं अर्हं भवाय नमः
66. ॐ ह्रीं अर्हं भावाय नमः
67. ॐ ह्रीं अर्हं भवान्तकाय नमः
68. ॐ ह्रीं अर्हं हिरण्यगर्भाय नमः
69. ॐ ह्रीं अर्हं श्री गर्भाय नमः
70. ॐ ह्रीं अर्हं प्रभूतविभवाय नमः
71. ॐ ह्रीं अर्हं अभवाय नमः
72. ॐ ह्रीं अर्हं स्वयंप्रभवे नमः
73. ॐ ह्रीं अर्हं प्रभूतात्मने नमः
74. ॐ ह्रीं अर्हं भूतनाथाय नमः
75. ॐ ह्रीं अर्हं जगत्पतये नमः
76. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वादये नमः
77. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वदिशे नमः
78. ॐ ह्रीं अर्हं सार्वाय नमः
79. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वज्ञाय नमः
80. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वदर्शनाय नमः
81. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वात्मने नमः
82. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वलोकेशाय नमः
83. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वविदे नमः
84. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वलोकजिते नमः
85. ॐ ह्रीं अर्हं सुगतये नमः
86. ॐ ह्रीं अर्हं सुश्रुताय नमः
87. ॐ ह्रीं अर्हं सुश्रुते नमः
88. ॐ ह्रीं अर्हं सुवाचे नमः
89. ॐ ह्रीं अर्हं सूरये नमः
90. ॐ ह्रीं अर्हं बहुश्रुताय नमः
91. ॐ ह्रीं अर्हं विश्रुताय नमः
92. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वत:पादाय नमः
93. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वशीर्षाय नमः
94. ॐ ह्रीं अर्हं शुचिश्रवसे नमः
95. ॐ ह्रीं अर्हं सहस्रशीर्षाय नमः
96. ॐ ह्रीं अर्हं क्षेत्रज्ञाय नमः
97. ॐ ह्रीं अर्हं सहस्राक्षाय नमः
98. ॐ ह्रीं अर्हं सहस्रपदे नमः
99. ॐ ह्रीं अर्हं भूतभव्यभवद्भर्त्रे नमः
100.ॐ ह्रीं अर्हं विश्वविद्यामहेश्वराय नमः

ॐ ह्रीं अर्हं दिव्यभाषापत्या-
दिशतनामभ्यो नमः

(3)

1. ॐ ह्रीं अर्हं स्थविष्ठाय नमः
2. ॐ ह्रीं अर्हं स्थविराय नमः
3. ॐ ह्रीं अर्हं ज्येष्ठाय नमः
4. ॐ ह्रीं अर्हं प्रष्ठाय नमः
5. ॐ ह्रीं अर्हं प्रेष्ठाय नमः
6. ॐ ह्रीं अर्हं वरिष्ठधिये नमः
7. ॐ ह्रीं अर्हं स्थेष्ठाय नमः
8. ॐ ह्रीं अर्हं गरिष्ठाय नमः
9. ॐ ह्रीं अर्हं बंहिष्ठाय नमः
10. ॐ ह्रीं अर्हं श्रेष्ठाय नमः
11. ॐ ह्रीं अर्हं अणिष्ठाय नमः
12. ॐ ह्रीं अर्हं गरिष्ठगिरे नमः
13. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वभृते नमः
14. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वसृजे नमः
15. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वेशे नमः
16. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वभुजे नमः
17. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वनायकाय नमः
18. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वाशिषे नमः
19. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वरुपात्मने नमः

20. ऊँ ह्रीं अर्हं विश्वजिते नमः
21. ऊँ ह्रीं अर्हं विजितान्तकाय नमः
22. ऊँ ह्रीं अर्हं विभवाय नमः
23. ऊँ ह्रीं अर्हं विभयाय नमः
24. ऊँ ह्रीं अर्हं वीराय नमः
25. ऊँ ह्रीं अर्हं विशोकाय नमः
26. ऊँ ह्रीं अर्हं विजराय नमः
27. ऊँ ह्रीं अर्हं अजरते नमः
28. ऊँ ह्रीं अर्हं विरागाय नमः
29. ऊँ ह्रीं अर्हं विरताय नमः
30. ऊँ ह्रीं अर्हं असङ्गाय नमः
31. ऊँ ह्रीं अर्हं विविक्ताय नमः
32. ऊँ ह्रीं अर्हं वीतमत्सराय नमः
33.ऊँ ह्रीं अर्हं विनेयजनताबन्धवे नमः
34.ऊँ ह्रीं अर्हं विलीनाशेषकल्मषाय नमः
35. ऊँ ह्रीं अर्हं वियोगाय नमः
36. ऊँ ह्रीं अर्हं योगविदे नमः
37. ऊँ ही अर्हं विदुषे नमः
38. ऊँ ह्रीं अर्हं विधात्रे नमः
39. ऊँ ह्रीं अर्हं सुविधये नमः
40. ऊँ ह्रीं अर्हं सुधिये नमः
41. ऊँ ह्रीं अर्हं क्षांतिभाजे नमः
42. ऊँ ह्रीं अर्हं पृथिवीमूर्तये नमः
43. ऊँ ह्रीं अर्हं शांतिभाजे नमः
44. ऊँ ह्रीं अर्हं सलिलात्मकाय नमः
45. ऊँ ह्रीं अर्हं वायुमूर्तये नमः
46. ऊँ ह्रीं अर्हं असंगात्मने नमः
47. ऊँ ह्रीं अर्हं वन्हिमूर्तये नमः
48. ऊँ ह्रीं अर्हं अधर्मदहे नमः
49. ऊँ ह्रीं अर्हं सुयज्वने नमः
50. ऊँ ह्रीं अर्हं यजमानात्मने नमः
51. ऊँ ह्रीं अर्हं सुत्वने नमः
52. ऊँ ह्रीं अर्हं सुत्रामपूजिताय नमः
53. ऊँ ह्रीं अर्हं ऋत्विजे नमः
54. ऊँ ह्रीं अर्हं यज्ञपतये नमः
55. ऊँ ह्रीं अर्हं याज्याय नमः
56. ऊँ ह्रीं अर्हं यज्ञाङ्गाय नमः
57. ऊँ ह्रीं अर्हं अमृताय नमः
58. ऊँ ह्रीं अर्हं हविषे नमः
59. ऊँ ह्रीं अर्हं व्योममूर्तये नमः
60. ऊँ ह्रीं अर्हं अमूर्तात्मने नमः
61. ऊँ ह्रीं अर्हं निर्लेपाय नमः
62. ऊँ ह्रीं अर्हं निर्मलाय नमः
63. ऊँ ह्रीं अर्हं अचलाय नमः
64. ऊँ ह्रीं अर्हं सोममूर्तये नमः
65. ऊँ ह्रीं अर्हं सुसौम्यात्मने नमः
66. ऊँ ह्रीं अर्हं सूर्यमूर्तये नमः
67. ऊँ ह्रीं अर्हं महाप्रभाय नमः
68. ऊँ ह्रीं अर्हं मंत्रविदे नमः
69. ऊँ ह्रीं अर्हं मंत्रकृते नमः
70. ऊँ ह्रीं अर्हं मंत्रिणे नमः
71. ऊँ ह्रीं अर्हं मंत्रमूर्तये नमः
72. ऊँ ह्रीं अर्हं अनंतगाय नमः
73. ऊँ ह्रीं अर्हं स्वतन्त्राय नमः
74. ऊँ ह्रीं अर्हं तंत्रकृते नमः
75. ऊँ ह्रीं अर्हं स्वंताय नमः
76. ऊँ ह्रीं अर्हं कृतांताय नमः
77. ऊँ ह्रीं अर्हं कृतान्तकृते नमः

78. ऊँ ह्रीं अर्हं कृतिने नमः
79. ऊँ ह्रीं अर्हं कृतार्थाय नमः
80. ऊँ ह्रीं अर्हं सत्यकृत्याय नमः
81. ऊँ ह्रीं अर्हं कृतकृत्याय नमः
82. ऊँ ह्रीं अर्हं कृतक्रतवे नमः
83. ऊँ ह्रीं अर्हं नित्याय नमः
84. ऊँ ह्रीं अर्हं मृत्युंजयाय नमः
85. ऊँ ह्रीं अर्हं अमृत्यवे नमः
86. ऊँ ह्रीं अर्हं अमृतात्मने नमः
87. ऊँ ह्रीं अर्हं अमृतोद्भवाय नमः
88. ऊँ ह्रीं अर्हं ब्रह्मनिष्ठाय नमः
89. ऊँ ह्रीं अर्हं परब्रह्मणे नमः
90. ऊँ ह्रीं अर्हं ब्रह्मात्मने नमः
91. ऊँ ह्रीं अर्हं ब्रह्मसंभवाय नमः
92. ऊँ ह्रीं अर्हं महाब्रह्मपतये नमः
93. ऊँ ह्रीं अर्हं ब्रह्मेटे नमः
94. ऊँ ह्रीं अर्हं महाब्रह्मपदेश्वराय नमः
95. ऊँ ह्रीं अर्हं सुप्रसन्नाय नमः
96. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रसन्नात्मने नमः
97. ऊँ ह्रीं अर्हं ज्ञानधर्मदमप्रभवे नमः
98. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रशमात्मने नमः
99. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रशान्तात्मने नमः
100.ऊँ ह्रीं अर्हं पुराणपुरुषोत्तमाय नमः

ऊँ ह्रीं अर्हं स्थविष्ठादिशतनामभ्यो नमः

(4)

1. ऊँ ह्रीं अर्हं महाशोकध्वजाय नमः
2. ऊँ ह्रीं अर्हं अशोकाय नमः
3. ऊँ ह्रीं अर्हं काय नमः
4. ऊँ ह्रीं अर्हं स्रष्ट्रे नमः
5. ऊँ ह्रीं अर्हं पद्मविष्टराय नमः
6. ऊँ ह्रीं अर्हं पद्मेशाय नमः
7. ऊँ ह्रीं अर्हं पद्मसंभूतये नमः
8. ऊँ ह्रीं अर्हं पद्मनाभये नमः
9. ऊँ ह्रीं अर्हं अनुत्तराय नमः
10. ऊँ ह्रीं अर्हं पद्मयोनये नमः
11. ऊँ ह्रीं अर्हं जगद्योनये नमः
12. ऊँ ह्रीं अर्हं इत्याय नमः
13. ऊँ ह्रीं अर्हं स्तुत्याय नमः
14. ऊँ ह्रीं अर्हं स्तुतीश्वराय नमः
15. ऊँ ह्रीं अर्हं स्तवनार्हाय नमः
16. ऊँ ह्रीं अर्हं हृषीकेशाय नमः
17. ऊँ ह्रीं अर्हं जितजेयाय नमः
18.ऊँ ह्रीं अर्हं कृतक्रियाय नमः
19. ऊँ ह्रीं अर्हं गणाधिपाय नमः
20. ऊँ ह्रीं अर्हं गणज्येष्ठाय नमः
21. ऊँ ह्रीं अर्हं गुण्याय नमः
22. ऊँ ह्रीं अर्हं पुण्याय नमः
23. ऊँ ह्रीं अर्हं गणाग्रण्ये नमः
24. ऊँ ह्रीं अर्हं गुणाकराय नमः
25. ऊँ ह्रीं अर्हं गुणाम्भोधये नमः
26. ऊँ ह्रीं अर्हं गुणज्ञाय नमः
27. ऊँ ह्रीं अर्हं गुणनायकाय नमः
28. ऊँ ह्रीं अर्हं गुणादरिणे नमः
29. ऊँ ह्रीं अर्हं गुणोच्छेदिने नमः
30. ऊँ ह्रीं अर्हं निर्गुणाय नमः
31. ऊँ ह्रीं अर्हं पुण्यगिरे नमः
32. ऊँ ह्रीं अर्हं गुणाय नमः

33. ॐ ह्रीं अर्हं शरण्याय नमः
34. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यवाचे नमः
35. ॐ ह्रीं अर्हं पूताय नमः
36. ॐ ह्रीं अर्हं वरेण्याय नमः
37. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यनायकाय नमः
38. ॐ ह्रीं अर्हं अगण्याय नमः
39. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यधिये नमः
40. ॐ ह्रीं अर्हं गुण्याय नमः
41. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यकृते नमः
42. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यशासनाय नमः
43. ॐ ह्रीं अर्हं धर्मारामाय नमः
44. ॐ ह्रीं अर्हं गुणग्रामाय नमः
45.ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यापुण्यनिरोधकाय नमः
46. ॐ ह्रीं अर्हं पापापेताय नमः
47. ॐ ह्रीं अर्हं विपापात्मने नमः
48. ॐ ह्रीं अर्हं विपाप्मने नमः
49. ॐ ह्रीं अर्हं वीतकल्मषाय नमः
50. ॐ ह्रीं अर्हं निर्द्वंदाय नमः
51. ॐ ह्रीं अर्हं निर्मदाय नमः
52. ॐ ह्रीं अर्हं शांताय नमः
53. ॐ ह्रीं अर्हं निर्मोहाय नमः
54. ॐ ह्रीं अर्हं निरुपद्रवाय नमः
55. ॐ ह्रीं अर्हं निर्निमेषाय नमः
56. ॐ ह्रीं अर्हं निराहाराय नमः
57. ॐ ह्रीं अर्हं निष्क्रियाय नमः
58. ॐ ह्रीं अर्हं निरुपप्लवाय नमः
59. ॐ ह्रीं अर्हं निष्कलंकाय नमः
60. ॐ ह्रीं अर्हं निरस्तैनसे नमः
61. ॐ ह्रीं अर्हं निर्धूतागसे नमः
62. ॐ ह्रीं अर्हं निरास्रवाय नमः
63. ॐ ह्रीं अर्हं विशालाय नमः
64. ॐ ह्रीं अर्हं विपुलज्योतिषे नमः
65. ॐ ह्रीं अर्हं अतुलाय नमः
66.ॐ ह्रीं अर्हं अचिन्त्यवैभवाय नमः
67. ॐ ह्रीं अर्हं सुसंवृताय नमः
68. ॐ ह्रीं अर्हं सुगुप्तात्मने नमः
69. ॐ ह्रीं अर्हं सुभुजे नमः
70. ॐ ह्रीं अर्हं सुनयतत्त्वविदे नमः
71. ॐ ह्रीं अर्हं एकविद्याय नमः
72. ॐ ह्रीं अर्हं महाविद्याय नमः
73. ॐ ह्रीं अर्हं मुनये नमः
74. ॐ ह्रीं अर्हं परिवृढाय नमः
75. ॐ ह्रीं अर्हं पत्ये नमः
76. ॐ ह्रीं अर्हं धीशाय नमः
77. ॐ ह्रीं अर्जी विद्यानिधये नमः
78. ॐ ह्रीं अर्हं साक्षिणे नमः
79. ॐ ह्रीं अर्हं विनेत्रे नमः
80. ॐ ह्रीं अर्हं विहतान्तकाय नमः
81. ॐ ह्रीं अर्हं पित्रे नमः
82. ॐ ह्रीं अर्हं पितामहाय नमः
83. ॐ ह्रीं अर्हं पात्रे नमः
84. ॐ ह्रीं अर्हं पवित्राय नमः
85. ॐ ह्रीं अर्हं पावनाय नमः
86. ॐ ह्रीं अर्हं गतये नमः
87. ॐ ह्रीं अर्हं त्रात्रे नमः
88. ॐ ह्रीं अर्हं भिषग्वराय नमः
89. ॐ ह्रीं अर्हं वर्याय नमः
90. ॐ ह्रीं अर्हं वरदाय नमः

91. ऊँ ह्रीं अर्हं परमाय नमः
92. ऊँ ह्रीं अर्हं पुंसे नमः
93. ऊँ ह्रीं अर्हं कवये नमः
94. ऊँ ह्रीं अर्हं पुराणपुरुषाय नमः
95. ऊँ ह्रीं अर्हं वर्षीयसे नमः
96. ऊँ ह्रीं अर्हं वृषभाय नमः
97. ऊँ हीं पुरवे नमः
98. ऊँ ही अर्हं प्रतिष्ठाप्रसवाय नमः
99. ऊँ ह्रीं अर्हं हेतवे नमः
100.ऊँ ह्रीं अर्हं भुवनैकपितामहाय नमः

ऊँ ही अर्हं महाशोकध्वजा-दिशतनामभ्यो नमः

(5)

1. ऊँ ह्रीं अर्हं वृक्षलक्षणाय नमः
2. ऊँ ह्रीं अर्हं श्लक्षणाय नमः
3. ऊँ ह्रीं अर्हं लक्षण्याय नमः
4. ऊँ ह्रीं अर्हं शुभलक्षणाय नमः
5. ऊँ ह्रीं अर्हं निरक्षाय नमः
6. ऊँ ह्रीं अर्हं पुंडीरकाक्षाय नमः
7. ऊँ ह्रीं अर्हं पुष्कलाय नमः
8. ऊँ ह्रीं अर्हं पुष्करेक्षणाय नमः
9. ऊँ ह्रीं अर्हं सिद्धिदाय नमः
10. ऊँ ह्रीं अर्हं सिद्धसंकल्पाय नमः
11. ऊँ ह्रीं अर्हं सिद्धात्मने नमः
12. ऊँ ह्रीं अर्हं सिद्धसाधनाय नमः
13. ऊँ ह्रीं अर्हं बुद्धबोध्याय नमः
14. ऊँ ह्रीं अर्हं महाबोधये नमः
15. ऊँ ह्रीं अर्हं वर्धमानाय नमः
16. ऊँ ह्रीं अर्हं महर्द्धिकाय नमः
17. ऊँ ह्रीं अर्हं वेदांगाय नमः
18. ऊँ ह्रीं अर्हं वेदविदे नमः
19. ऊँ ह्रीं अर्हं वेद्याय नमः
20. ऊँ ह्रीं अर्हं जातरूपाय नमः
21. ऊँ ह्रीं अर्हं विदांवराय नमः
22. ऊँ ह्रीं अर्हं वेदवेद्याय नमः
23. ऊँ ह्रीं अर्हं स्वसंवेद्याय नमः
24. ऊँ ह्रीं अर्हं विवेदाय नमः
25. ऊँ ह्रीं अर्हं वदतांवराय नमः
26. ऊँ ह्रीं अर्हं अनादिनिधनाय नमः
27. ऊँ ह्रीं अर्हं व्यक्ताय नमः
28. ऊँ ह्रीं अर्हं व्यक्तवाचे नमः
29. ऊँ ह्रीं अर्हं व्यक्तशासनाय नमः
30. ऊँ ह्रीं अर्हं युगादिकृते नमः
31. ऊँ ह्रीं अर्हं युगाधाराय नमः
32. ऊँ ह्रीं अर्हं युगादये नमः
33. ऊँ ह्रीं अर्हं जगदादिजाय नमः
34. ऊँ ह्रीं अर्हं अतीन्द्राय नमः
35. ऊँ ह्रीं अर्हं अतीन्द्रियाय नमः
36. ऊँ ह्रीं अर्हं धीन्द्राय नमः
37. ऊँ ह्रीं अर्हं महेन्द्राय नमः
38. ऊँ ह्रीं अर्हं अतीन्द्रियार्थदृशे नमः
39. ऊँ ह्रीं अर्हं अनिन्द्रियाय नमः
40. ऊँ ह्रीं अर्हं अहमिन्द्राच्र्याय नमः
41. ऊँ ह्रीं अर्हं महेन्द्रमहिताय नमः
42. ऊँ ह्रीं अर्हं महते नमः
43. ऊँ ह्रीं अर्हं उद्भवाय नमः
44. ऊँही अर्हं कारणाय नमः
45. ऊँ ह्रीं अर्हं कर्त्रे नमः

46. ऊँ ह्रीं अर्हं पारगाय नमः
47. ऊँ ह्रीं अर्हं भवतारकाय नमः
48. ऊँ ह्रीं अर्हं अग्राह्याय नमः
49. ऊँ ही अर्हं गहनाय नमः
50. ऊँ ह्रीं अर्हं गुह्याय नमः
51. ऊँ ह्रीं अर्हं परार्घ्याय नमः
52. ऊँ ह्रीं अर्हं परमेश्वराय नमः
53. ऊँ ह्रीं अर्हं अनंतर्द्धये नमः
54. ऊँ ह्रीं अर्हं अमेयर्द्धये नमः
55. ऊँ ह्रीं अर्हं अचिन्त्यर्द्धये नमः
56. ऊँ ह्रीं अर्हं समग्रधिये नमः
57. ऊँ ह्रीं अर्हं प्राग्रयाय नमः
58. ऊँ ह्रीं अर्हं प्राग्रहराय नमः
59. ऊँ ह्रीं अर्हं अभ्यग्राय नमः
60. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रत्यग्राय नमः
61. ऊँ ह्रीं अर्हं अग्राय नमः
62. ऊँ ह्रीं अर्हं अग्रिमाय नमः
63. ऊँ ह्रीं अर्हं अग्रजाय नमः
64. ऊँ ह्रीं अर्हं महातपसे नमः
65. ऊँ ह्रीं अर्हं महातेजसे नमः
66. ऊँ ह्रीं अर्हं महोदर्काय नमः
67. ऊँ ह्रीं अर्हं महोदयाय नमः
68. ऊँ ह्रीं अर्हं महायशसे नमः
69. ऊँ ह्रीं अर्हं महाधाम्ने नमः
70. ऊँ ह्रीं अर्हं महासत्त्वाय नमः
71. ऊँ ह्रीं अर्हं महाधृतये नमः
72. ऊँ ह्रीं अर्हं महाधैर्याय नमः
73. ऊँ ह्रीं अर्हं महावीर्याय नमः
74. ऊँ ह्रीं अर्हं महासंपदे नमः
75. ऊँ ह्रीं अर्हं महाबलाय नमः
76. ऊँ ह्रीं अर्हं महाशक्तये नमः
77. ऊँ ह्रीं अर्हं महाज्योतिषे नमः
78. ऊँ ह्रीं अर्हं महाभूतये नमः
79. ऊँ ह्रीं अर्हं महाद्युतये नमः
80. ऊँ ह्रीं अर्हं महामतये नमः
81. ऊँ ह्रीं अर्हं महानीतये नमः
82. ऊँ ह्रीं अर्हं महाक्षांतये नमः
83. ऊँ ह्रीं अर्हं महादयाय नमः
84. ऊँ ह्रीं अर्हं महाप्राज्ञाय नमः
85. ऊँ ह्रीं अर्हं महाभागाय नमः
86. ऊँ ह्रीं अर्हं महानंदाय नमः
87. ऊँ ह्रीं अर्हं महाकवये नमः
88. ऊँ ह्रीं अर्हं महामहसे नमः
89. ऊँ ह्रीं अर्हं महाकीर्तये नमः
90. ऊँ ह्रीं अर्हं महाकांतये नमः
91. ऊँ ह्रीं अर्हं महावपुषे नमः
92. ऊँ ह्रीं अर्हं महादानाय नमः
93. ऊँ ह्रीं महाज्ञानाय नमः
94. ऊँ ह्रीं अर्हं महायोगाय नमः
95. ऊँ ह्रीं अर्हं महागुणाय नमः
96. ऊँ ह्रीं अर्हं महामहपतये नमः
97.ऊँ ह्रीं अर्हं प्राप्तमहाकल्याणपंचकाय नमः
98. ऊँ ह्रीं अर्हं महाप्रभवे नमः
99. ऊँ ही अर्हं महाप्रातिहार्याधीशाय नमः
100.ऊँ ह्रीं अर्हं महेश्वराय नमः

ऊँ ह्रीं अर्हं वृक्षादिशतनामभ्यो नमः

(6)

1. ऊँ ह्रीं अर्हं महामुनये नमः
2. ऊँ ह्रीं अर्हं महामौनिने नमः
3. ऊँ ह्रीं अर्हं महाध्यानाय नमः
4. ऊँ ह्रीं अर्हं महादमाय नमः
5. ऊँ ह्रीं अर्हं महाक्षमाय नमः
6. ऊँ ह्रीं अर्हं महाशीलाय नमः
7. ऊँ ह्रीं अर्हं महायज्ञाय नमः
8. ऊँ ह्रीं अर्हं महामखाय नमः
9. ऊँ ह्रीं अर्हं महाव्रतपतये नमः
10. ऊँ ह्रीं अर्हं मह्याय नमः
11. ऊँ ह्रीं अर्हं महाकांतिधराय नमः
12. ऊँ ह्रीं अर्हं अधिपाय नमः
13. ऊँ ह्रीं अर्हं महामैत्रीमयाय नमः
14. ऊँही अर्हं अमेयाय नमः
15. ऊँ ह्रीं अर्हं महोपायाय नमः
16. ऊँ ही अर्हं महोमयाय नमः
17. ऊँ ह्रीं अर्हं महाकारुणिकाय नमः
18. ऊँ ह्रीं अर्हं मंत्रे नमः
19. ऊँ ह्रीं अर्हं महामंत्राय नमः
20. ऊँ ह्रीं अर्हं महायतये नमः
21. ऊँ ह्रीं अर्हं महानादाय नमः
22. ऊँ ह्रीं अर्हं महाघोषाय नमः
23 ऊँ ह्रीं अर्हं महेज्याय नमः
24. ऊँ ह्रीं अर्हं महसांपतये नमः
25. ऊँ ह्रीं अर्हं महाध्वरधराय नमः
26. ऊँ ह्रीं अर्हं धुर्याय नमः
27. ऊँ ह्रीं अर्हं महौदार्याय नमः
28. ऊँ ह्रीं अर्हं महिष्ठवाचे नमः
29. ऊँ ह्रीं अर्हं महात्मने नमः
30. ऊँ ह्रीं अर्हं महसांधाम्ने नमः
31. ऊँ ह्रीं अर्हं महर्षये नमः
32. ऊँ ह्रीं अर्हं महितोदयाय नमः
33. ऊँ ह्रीं अर्हं महाक्लेशांकुशाय नमः
34. ऊँ ह्रीं अर्हं शूराय नमः
35. ऊँ ह्रीं अर्हं महाभूतपतये नमः
36. ऊँ ह्रीं अर्हं गुरवे नमः
37. ऊँ ह्रीं अर्हं महापराक्रमाय नमः
38. ऊँ ह्रीं अर्हं अंनताय नमः
39. ऊँ ह्रीं अर्हं महाक्रोधरिपवे नमः
40. ऊँ ह्रीं अर्हं वशिने नमः
41.ऊँ ह्रीं अर्हं महाभवाब्धिसंतारिणे नमः
42.ऊँ ह्रीं अर्हं महामोहाद्रिसूदनाय नमः
43. ऊँ ह्रीं अर्हं महागुणाकराय नमः
44. ऊँ ह्रीं अर्हं क्षांताय नमः
45.ऊँ ह्रीं अर्हं महायोगीश्वराय नमः
46. ऊँ ह्रीं अर्हं शमिने नमः
47. ऊँ ह्रीं अर्हं महाध्यानपतये नमः
48. ऊँ ह्रीं अर्हं महाध्यानधर्मणे नमः
49. ऊँही अर्हं महाव्रताय नम
50. ऊँ ह्रीं अर्हं महाकर्मारिघ्ने नमः
51. ऊँ ह्रीं अर्हं आत्मज्ञाय नमः
52. ऊँ ह्रीं अर्हं महादेवाय नमः
53. ऊँ ह्रीं अर्हं महेशित्रे नमः
54. ऊँ ही अर्हं सर्वक्लेशापहाय नमः
55. ऊँ ह्रीं अर्हं साधवे नमः
56. ऊँ ह्रीं अर्हं सर्वदोषहराय नमः
57. ऊँ ही अर्हं हराय नमः
58. ऊँ ह्रीं अर्हं असंख्येयाय नमः

59. ॐ ह्रीं अर्हं अप्रमेयात्मने नमः
60. ॐ ह्रीं अर्हं शमात्मने नमः
61. ॐ ह्रीं अर्हं प्रशमाकराय नमः
62. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वयोगीश्वराय नमः
63. ॐ ह्रीं अर्हं अचिंत्याय नमः
64. ॐ ह्रीं अर्हं श्रुतात्मने नमः
65. ॐ ह्रीं अर्हं विष्टरश्रवसे नमः
66. ॐ ह्रीं अर्हं दान्तात्मने नमः
67. ॐ ह्रीं अर्हं दमतीर्थेशाय नमः
68. ॐ ह्रीं अर्हं योगात्मने नमः
69. ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानसर्वगाय नमः
70. ॐ ह्रीं अर्हं प्रधानाय नमः
71. ॐ ह्रीं अर्हं आत्मने नमः
72. ॐ ह्रीं अर्हं प्रकृतये नमः
73. ॐ ह्रीं अर्हं परमाय नमः
74. ॐ ह्रीं अर्हं परमोदयाय नमः
75. ॐ ह्रीं अर्हं प्रक्षीणबन्धाय नमः
76. ॐ ह्रीं अर्हं कामारये नमः
77. ॐ ह्रीं अर्हं क्षेमकृते नमः
78. ॐ ह्रीं अर्हं क्षेमशासनाय नमः
79. ॐ ह्रीं अर्हं प्रणवाय नम:
80. ॐ ह्रीं अर्हं प्रणताय नमः
81. ॐ ह्रीं अर्हं प्राणाय नमः
82. ॐ ह्रीं अर्हं प्राणदाय नमः
83. ॐ ह्रीं अर्हं प्रणतेश्वराय नमः
84. ॐ ह्रीं अर्हं प्रमाणाय नमः
85. ॐ ह्रीं अर्हं प्रणिधये नमः
86. ॐ ह्रीं अर्हं दक्षाय नमः
87. ॐ ह्रीं अर्हं दक्षिणाय नमः
88. ॐ ह्रीं अर्हं अध्वर्यवे नमः
89. ॐ ह्रीं अर्हं अध्वराय नमः
90. ॐ ह्रीं अर्हं आनंदाय नमः
91. ॐ ह्रीं अर्हं नंदनाय नमः
92. ॐ ह्रीं अर्हं नंदाय नमः
93. ॐ ह्रीं अर्हं वंद्याय नमः
94. ॐ ह्रीं अर्हं अनिंद्याय नमः
95. ॐ ह्रीं अर्हं अभिनंदनाय नमः
96. ॐ ह्रीं अर्हं कामघ्ने नमः
97. ॐ ह्रीं अर्हं कामदाय नमः
98. ॐ ह्रीं अर्हं काम्याय नमः
99. ॐ ह्रीं अर्हं कामधेनवे नमः
100. ॐ ह्रीं अर्हं अरिञ्जयाय नमः

ॐ ह्रीं अर्हं
महामुन्यदिशतनामभ्यो नमः
(7)

1. ॐ ह्रीं अर्हं असंस्कृतसुसंस्काराय नमः
2. ॐ ह्रीं अर्हं प्राकृताय नमः
3. ॐ ही अर्हं वैकृतांतकृते नमः
4. ॐ ह्रीं अर्हं अंतकृते नमः
5. ॐ ह्रीं अर्हं कांतिगवे नमः
6. ॐ ह्रीं अर्हं कांताय नमः
7. ॐ ह्रीं अर्हं चिंतामणये नम:
8. ॐही अर्हं अभीष्टदाय नमः
9. ॐ हीं अई अजिताय नमः
10. ॐ ह्रीं अर्हं जितकामारये नम:
11. ॐ ह्रीं अर्हं अमिताय नमः
12. ॐ ह्रीं अर्हं अमितशासनाय नमः
13. ॐ ह्रीं अर्हं जितक्रोधाय नमः

14. ॐ ह्रीं अर्हं जितामित्राय नमः
15. ॐ ह्रीं अर्हं जितक्लेशाय नमः
16. ॐ ह्रीं अर्हं जितान्तकाय नमः
17. ॐ ह्रीं अर्हं जिनेन्द्राय नमः
18. ॐ ह्रीं अर्हं परमानंदाय नमः
19. ॐ ह्रीं अर्हं मुनीन्द्राय नमः
20. ॐ ह्रीं अर्हं दुंदुभिस्वनाय नमः
21. ॐ ह्रीं अर्हं महेन्द्रवंद्याय नमः
22. ॐ ह्रीं अर्हं योगीन्द्राय नमः
23. ॐ ह्रीं अर्हं यतीन्द्राय नमः
24. ॐह्रीं अर्हं नाभिनंदनाय नमः
25. ॐ ह्रीं अर्हं नाभेयाय नमः
26. ॐ ह्रीं अर्हं नाभिजाय नमः
27. ॐ ह्रीं अर्हं अजाताय नमः
28. ॐ ह्रीं अर्हं सुव्रताय नमः
29. ॐ ह्रीं अर्हं मनवे नमः
30. ॐ ह्रीं अर्हं उत्तमाय नमः
31. ॐ ह्रीं अर्हं अभेद्याय नमः
32. ॐ ह्रीं अर्हं अनत्ययाय नमः
33. ॐ ह्रीं अर्हं अनाश्वते नमः
34. ॐ ह्रीं अर्हं अधिकाय नमः
35. ॐ ह्रीं अर्हं अधिगुरवे नमः
36. ॐ ही अर्हं सुधिये नमः
37. ॐ ह्रीं अर्हं सुमेधसे नमः
38. ॐ ह्रीं अर्हं विक्रमिणे नमः
39. ॐ ह्रीं अर्हं स्वामिने नमः
40. ॐ ह्रीं अर्हं दुराधर्षाय नमः
41. ॐ ह्रीं अर्हं निरुत्सुकाय नमः
42. ॐ ह्रीं अर्हं विशिष्टाय नमः
43. ॐ ह्रीं अर्हं शिष्टभुजे नमः
44. ॐ ह्रीं अर्हं शिष्टाय नमः
45. ॐ ही अर्हं प्रत्ययाय नमः
46. ॐ ह्रीं अर्हं कामनाय नमः
47. ॐ ह्रीं अर्हं अनघाय नमः
48. ॐ ह्रीं अर्हं क्षेमिने नमः
49. ॐ ह्रीं अर्हं क्षेमंकराय नम
50. ॐ ह्रीं अर्हं अक्षय्याय नमः
51. ॐ ह्रीं अर्हं क्षेमधर्मपतये नमः
52. ॐ ह्रीं अर्हं क्षमिने नमः
53. ॐ ही अर्हं अग्राह्याय नमः
54. ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञाननिग्राह्याय नमः
55. ॐ ह्रीं अर्हं ध्यानगम्याय नमः
56. ॐ ह्रीं अर्हं निरुत्तराय नमः
57. ॐ ह्रीं अर्हं सुकृतिने नमः
58. ॐ ह्रीं अर्हं धातवे नमः
59. ॐ ह्रीं अर्हं इज्यार्हाय नमः
60. ॐ ह्रीं अर्हं सुनयाय नमः
61. ॐ ह्रीं अर्हं चतुराननाय नमः
62. ॐ ह्रीं अर्हं श्रीनिवासाय नमः
63. ॐ ह्रीं अर्हं चतुर्वक्त्राय नमः
64. ॐ ह्रीं अर्हं चतुरास्याय नमः
65 ॐ ह्रीं अर्हं चतुर्मुखाय नमः
66. ॐ ह्रीं अर्हं सत्यात्मने नमः
67. ॐ ह्रीं अर्हं सत्यविज्ञानाय नमः
68. ॐ ह्रीं अर्हं सत्यवाचे नमः
69. ॐ ह्रीं अर्हं सत्यशासनाय नमः
70. ॐ ह्रीं अर्हं सत्याशिषे नमः
71. ॐ ह्रीं अर्हं सत्यसंधानाय नमः

72. ॐ ह्रीं अर्हं सत्याय नमः
73. ॐ ह्रीं अर्हं सत्यपरायणाय नमः
74. ॐ ह्रीं अर्हं स्थेयसे नमः
75. ॐ ह्रीं अर्हं स्थवीयसे नमः
76. ॐ ह्रीं अर्हं नेदीयसे नमः
77. ॐ ह्रीं अर्हं दवीयसे नमः
78. ॐ ह्रीं अर्हं दूरदर्शनाय नमः
79. ॐ ह्रीं अर्हं अणोरणीयसे नमः
80. ॐ ह्रीं अर्हं अनणवे नमः
81. ॐ ह्रीं अर्हं गरीयसामाद्यगुरवे नमः
82. ॐ ह्रीं अर्हं सदायोगाय नमः
83. ॐ ह्रीं अर्हं सदाभोगाय नमः
84. ॐ ह्रीं अर्हं सदातृप्ताय नमः
85. ॐ ह्रीं अर्हं सदाशिवाय नमः
86. ॐ ह्रीं अर्हं सदागतये नमः
87. ॐ ह्रीं अर्हं सदासौख्याय नमः
88. ॐ ह्रीं अर्हं सदाविद्याय नमः
89. ॐ ह्रीं अर्हं सदोदयाय नमः
90. ॐ ह्रीं अर्हं सुघोषाय नमः
91. ॐ ह्रीं अर्हं सुमुखाय नमः
92. ॐ ह्रीं अर्हं सौम्याय नमः
93. ॐ ही अर्हं सुखदाय नमः
94. ॐ ह्रीं अर्हं सुहिताय नमः
95. ॐ ह्रीं अर्हं सुहृते नमः
96. ॐ ह्रीं अर्हं सुगुप्ताय नमः
97. ॐ ह्रीं अर्हं गुप्तिभृते नमः
98. ॐ ह्रीं अर्हं गोप्त्रे नमः
99. ॐ ह्रीं अर्हं लोकाध्यक्षाय नमः
100. ॐ ह्रीं अर्हं दमीश्वराय नमः

ॐ ह्रीं अर्हं असंस्कृतादिशतनामभ्यो नमः

(8)

1. ॐ ह्रीं अर्हं बृहद्बृहस्पतये नमः
2. ॐ ह्रीं अर्हं वाग्मिने नमः
3. ॐ ह्रीं अर्हं वाचस्पतये नमः
4. ॐ ह्रीं अर्हं उदारधिये नमः
5. ॐ ह्रीं अर्हं मनीषिणे नमः
6. ॐ ह्रीं अर्हं धिषणाय नमः
7. ॐ ह्रीं अर्हं धीमते नमः
8. ॐ ह्रीं अर्हं शेमुषीशाय नमः
9. ॐ ह्रीं अर्हं गिरांपतये नमः
10. ॐ ह्रीं अर्हं नैकरूपाय नमः
11. ॐ ह्रीं अर्हं नयोत्तुङ्गाय नमः
12. ॐ ह्रीं अर्हं नैकात्मने नमः
13. ॐ ह्रीं अर्हं नैकधर्मकृते नमः
14. ॐ ह्रीं अर्हं अविज्ञेयाय नमः
15. ॐ ह्रीं अर्हं अप्रतर्क्यात्मने नमः
16. ॐ ह्रीं अर्हं कृतज्ञाय नमः
17. ॐ ह्रीं अर्हं कृतलक्षणाय नमः
18. ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानगर्भाय नमः ।
19. ॐ ह्रीं अर्हं दयागर्भाय नमः ।
20. ॐ ह्रीं अर्हं रत्नगर्भाय नमः।
21. ॐ ह्रीं अर्हं प्रभास्वराय नमः
22. ॐ ह्रीं अर्हं पद्मगर्भाय नमः
23. ॐ ह्रीं अर्हं जगद्गर्भाय नमः
24. ॐ ह्रीं अर्हं हेमगर्भाय नमः
25. ॐ ह्रीं अर्हं सुदर्शनाय नमः
26. ॐ ह्रीं अर्हं लक्ष्मीवते नमः

27. ॐ ह्रीं अर्हं त्रिदशाध्यक्षाय नमः
28. ॐ ह्रीं अर्हं दृढीयसे नमः
29. ॐ ह्रीं अर्हं इनाय नमः
30. ॐ ह्रीं अर्हं ईशित्रे नमः
31. ॐ ह्रीं अर्हं मनोहराय नमः
32. ॐ ह्रीं अर्हं मनोज्ञाङ्गाय नमः
33. ॐ ही अर्हं धीराय नमः
34.ॐ ह्रीं अर्हं गम्भीरशासनाय नमः
35. ॐ ह्रीं अर्हं धर्मयूपाय नमः
36. ॐ ह्रीं अर्हं दयायागाय नमः
37. ॐ ह्रीं अर्हं धर्मनेमये नमः
38. ॐ ह्रीं अर्हं मुनीश्वराय नमः
39.ॐ ह्रीं अर्हं धर्मचक्रायुधाय नमः
40. ॐ ह्रीं अर्हं देवाय नमः
41. ॐ ह्रीं अर्हं कर्मघ्ने नमः
42. ॐ ह्रीं अर्हं धर्मघोषणाय नमः
43. ॐ ह्रीं अर्हं अमोघवाचे नमः
44. ॐ ह्रीं अर्हं अमोघाज्ञाय नमः
45. ॐ ह्रीं अर्हं निर्मलाय नमः
46. ॐ ह्रीं अर्हं अमोघशासनाय नमः
47. ॐ ह्रीं अर्हं सुरूपाय नमः
48. ॐ ह्रीं अर्हं सुभगाय नमः
49. ॐ ही अर्हं त्यागिने नम
50. ॐ ह्रीं अर्हं समयज्ञाय नमः
51. ॐ ह्रीं अर्हं समाहिताय नमः
52. ॐ ह्रीं अर्हं सुस्थिताय नमः
53. ॐ ह्रीं अर्हं स्वास्थ्यभाजे नमः
54. ॐ ह्रीं अर्हं स्वस्थाय नमः
55. ॐ ह्रीं अर्हं नीरजस्काय नमः
56. ॐ ह्रीं अर्हं निरुद्धवाय नमः
57. ॐ ह्रीं अर्हं अलेपाय नमः ।
58. ॐ ह्रीं अर्हं निष्कलङ्कात्मने नमः
59. ॐ ह्रीं अर्हं वीतरागाय नमः
60. ॐ ह्रीं अर्हं गतस्पृहाय नमः
61. ॐ ह्रीं अर्हं वश्येन्दियाय नमः
62. ॐ ह्रीं अर्हं विमक्तात्मने नमः
63. ॐ ह्रीं अर्हं निःसपत्नाय नमः
64. ॐ ह्रीं अर्हं जितेन्द्रियाय नमः
65. ॐ ह्रीं अर्हं प्रशान्ताय नमः
66. ॐ ह्रीं अर्हं अनन्तधामर्षये नमः
67. ॐ ह्रीं अर्हं मंगलाय नमः
68. ॐ ह्रीं अर्हं मलघ्ने नमः
69. ॐ ह्रीं अर्हं अनघाय नमः
70. ॐ ह्रीं अर्हं अनीदृशे नमः
71. ॐ ह्रीं अर्हं उपमाभूताय नमः
72. ॐ ह्रीं अर्हं दिष्टये नमः
73. ॐ ह्रीं अर्हं देवाय नमः
74. ॐ ह्रीं अर्हं अगोचराय नमः
75. ॐ ह्रीं अर्हं अमूर्त्ताय नमः
76. ॐ ह्रीं अर्हं मूर्तिमते नमः
77. ॐ ह्रीं अर्हं एकाय नमः
78. ॐ ह्रीं अर्हं नैकाय नमः
79. ॐ ह्रीं अर्हं नानैकतत्त्वदृशे नमः
80. ॐ ह्रीं अर्हं अध्यात्मगम्याय नमः
81. ॐ ह्रीं अर्हं अगम्यात्मने नमः
82. ॐ ह्रीं अर्हं योगविदे नमः
83. ॐ ह्रीं अर्हं योगिवन्दिताय नमः
84. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वत्रगाय नमः

85. ॐ ह्रीं अर्हं सदाभाविने नमः
86. ॐ ह्रीं अर्हं त्रिकालविषयार्थदृशे नमः
87. ॐ ह्रीं अर्हं शंकराय नमः
88. ॐ ह्रीं अर्हं शंवदाय नमः
89. ॐ ह्रीं अर्हं दान्ताय नमः
90. ॐ ह्रीं अर्हं दमिने नमः
91. ॐ ह्रीं अर्हं क्षान्तिपरायणाय नमः
92. ॐ ह्रीं अर्हं अधिपाय नमः
93. ॐ ह्रीं अर्हं परमानन्दाय नमः
94. ॐ ह्रीं अर्हं परात्मज्ञाय नमः
95. ॐ ह्रीं अर्हं परात्पराय नमः
96. ॐ ह्रीं अर्हं त्रिजगद्वल्लभाय नमः
97. ॐ ह्रीं अर्हं अभ्यर्च्याय नमः
98.ॐ ह्रीं अर्हं त्रिजगन्मङ्गलोदयाय नमः
99. ॐ ह्रीं अर्हं त्रिजगत्पतिपूजांघ्रये नमः
100.ॐ ह्रीं अर्हं त्रिलोकाग्रशिखामणये नमः

ॐ ह्रीं अर्हं बृहदादिशतनामभ्यो नमः

(9)

1. ॐ ह्रीं अर्हं त्रिकालदर्शिने नमः
2. ॐ ह्रीं अर्हं लोकेशाय नमः
3. ॐ ह्रीं अर्हं लोकधात्रे नमः
4. ॐ ह्रीं अर्हं दृढव्रताय नमः
5. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वलोकातिगाय नमः
6. ॐ ह्रीं अर्हं पूज्याय नमः
7. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वलोकैकसारथये नमः
8. ॐ ह्रीं अर्हं पुराणाय नमः
9. ॐ ह्रीं अर्हं पुरुषाय नमः
10. ॐ ह्रीं अर्हं पूर्वाय नमः
11.ॐ ह्रीं अर्हं कृतपूर्वांगविस्तराय नमः
12. ॐ ह्रीं अर्हं आदिदेवाय नमः
13. ॐ ह्रीं अर्हं पुराणाद्याय नमः
14. ॐ ह्रीं अर्हं पुरुदेवाय नमः
15. ॐ ह्रीं अर्हं अधिदेवतायै नमः
16. ॐ ह्रीं अर्हं युगमुख्याय नमः
17. ॐ ह्रीं अर्हं युगज्येष्ठाय नमः
18. ॐ ह्रीं अर्हं युगादिस्थितिदेशकाय नमः
19. ॐ ह्रीं अर्हं कल्याणवर्णाय नमः
20. ॐ ह्रीं अर्हं कल्याणाय नमः
21. ॐ ह्रीं अर्हं कल्याय नमः
22. ॐ ह्रीं अर्हं कल्याणलक्षणाय नमः
23. ॐ ह्रीं अर्हं कल्याणप्रकृतये नमः
24. ॐ ह्रीं दीप्रकल्याणात्मने नमः
25. ॐ ह्रीं अर्हं विकल्मषाय नमः
26. ॐ ह्रीं अर्हं विकलंकाय नमः
27. ॐ ही अर्हं कलातीताय नमः
28. ॐ ह्रीं अर्हं कलिलजाय नमः
29. ॐ ह्रीं अर्हं कलाधराय नमः
30. ॐ ह्रीं अर्हं देवदेवाय नमः
31. ॐ ह्रीं अर्हं जगन्नाथाय नमः
32. ॐ ह्रीं अर्हं जगद्बन्धवे नमः
33. ॐ ह्रीं अर्हं जगद्विभवे नमः
34. ॐ ह्रीं अर्हं जगद्धितैषिणे नमः
35. ॐ ह्रीं अर्हं लोकज्ञाय नमः
36. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वगाय नमः
37. ॐ ह्रीं अर्हं जगदग्रजाय नमः
38. ॐ ह्रीं अर्हं चराचरगुरवे नमः

39. ॐ ह्रीं अर्हं गोप्याय नमः
40. ॐ ह्रीं अर्हं गूढात्मने नमः
41. ॐ ह्रीं अर्हं गूढगोचराय नमः
42. ॐ ह्रीं अर्हं सद्योजाताय नमः
43. ॐ ह्रीं अर्हं प्रकाशात्मने नमः
44.ॐ ह्रीं अर्हं ज्वलज्ज्वलनसप्रभाय नमः
45. ॐ ह्रीं अर्हं आदित्यवर्णाय नमः
46. ॐ ह्रीं अर्हं भर्माभाय नमः
47. ॐ ह्रीं अर्हं सुप्रभाय नमः
48. ॐ ह्रीं अर्हं कनकप्रभाय नमः
49. ॐ ह्रीं अर्हं सुवर्णवर्णाय नमः
50. ॐ ह्रीं अर्हं रुक्माभाय नमः
51. ॐ ह्रीं अर्हं सूर्यकोटिसमप्रभाय नमः
52. ॐ ह्रीं अर्हं तपनीयनिभाय नमः
53. ॐ ह्रीं अर्हं तुङ्गाय नमः
54. ॐ ह्रीं अर्हं बालार्काभाय नमः
55. ॐ ह्रीं अर्हं अनलप्रभाय नमः
56. ॐ ही अर्हं सन्ध्याभ्रबभ्रवे नमः
57. ॐ ह्रीं अर्हं हेमाभाय नमः
58. ॐ ह्रीं अर्हं तप्तचामीकरच्छवये नमः
59. ॐ ह्रीं अर्हं निष्टप्तकनकच्छायाय नमः
60.ॐ ह्रीं अर्हं कनत्काञ्चनसन्निभाय नमः
61. ॐ ह्रीं अर्हं हिरण्यवर्णाय नमः
62. ॐ ह्रीं अर्हं स्वर्णाभाय नमः
63.ॐ ह्रीं अर्हं शातकुम्भनिभप्रभाय नमः
64. ॐ ह्रीं अर्हं द्युम्नाभाय नमः
65. ॐ ह्रीं अर्हं जातरूपाभाय नमः
66. ॐ ह्रीं अर्हं तप्तजाम्बूनदद्युतये नमः
67. ॐ ह्रीं अर्हं सधौतकलधौतश्रिये नमः
68. ॐ ह्रीं अर्हं प्रदीप्ताय नमः
69. ॐ ह्रीं अर्हं हाटकद्युतये नमः
70. ॐ ह्रीं अर्हं शिष्टेष्टाय नमः
71. ॐ ह्रीं अर्हं पुष्टिदाय नमः
72. ॐ ह्रीं अर्हं पुष्टाय नमः
73. ॐ ह्रीं अर्हं स्पष्टाय नमः
74. ॐ ह्रीं अर्हं स्पष्टाक्षराय नमः
75. ॐ ह्रीं अर्हं क्षमाय नमः
76. ॐ ह्रीं अर्हं शत्रुघ्नाय नमः
77. ॐ ह्रीं अर्हं अप्रतिघाय नमः
78. ॐ ह्रीं अर्हं अमोघाय नमः
79. ॐ ह्रीं अर्हं प्रशास्त्रे नमः
80. ॐ ह्रीं अर्हं शासित्रे नमः
81. ॐ ह्रीं अर्हं स्वभुवे नमः
82. ॐ ह्रीं अर्हं शान्तिनिष्ठाय नमः
83. ॐ ह्रीं अर्हं मुनिज्येष्ठाय नमः
84. ॐ ह्रीं अर्हं शिवतातये नमः
85. ॐ ह्रीं अर्हं शिवप्रदाय नमः
86. ॐ ह्रीं अर्हं शांतिदाय नमः
87. ॐ ह्रीं अर्हं शांतिकृते नमः
88. ॐ ह्रीं अर्हं शांतये नमः
89. ॐ ह्रीं अर्हं कान्तिमते नमः
90. ॐ ह्रीं अर्हं कामितप्रदाय नमः
91. ॐ ह्रीं अर्हं श्रेयोनिधये नमः
92. ॐ ह्रीं अर्हं अधिष्ठानाय नमः
93. ॐ ह्रीं अर्हं अप्रतिष्ठाय नमः
94. ॐ ह्रीं अर्हं प्रतिष्ठिताय नमः

95. ऊँ ह्रीं अर्हं सुस्थिराय नमः
96. ऊँ ह्रीं अर्हं स्थावराय नमः
97. ऊँ ह्रीं अर्हं स्थास्नवे नमः
98. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रथीयसे नमः
99. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रथिताय नमः
100. ऊँ ह्रीं अर्हं पृथवे नमः

ऊँ ह्रीं अर्हं त्रिकालदर्श्या-दिशतनामभ्यो नमः

(10)

1. ऊँ ह्रीं अर्हं दिग्वाससे नमः
2. ऊँ ह्रीं अर्हं वातरशनाय नमः
3. ऊँ ह्रीं अर्हं निर्ग्रन्थेशाय नमः
4. ऊँ ह्रीं अर्हं निरंबराय नमः
5. ऊँ ह्रीं अर्हं निष्किचनाय नमः
6. ऊँ ह्रीं अर्हं निराशंसाय नमः
7. ऊँ ह्रीं अर्हं ज्ञानचक्षुषे नमः
8. ऊँ ह्रीं अर्हं अमोमुहाय नमः
9. ऊँ ह्रीं अर्हं तेजोराशये नमः
10. ऊँ ह्रीं अर्हं अनंतौजसे नमः
11. ऊँ ह्रीं अर्हं ज्ञानाब्धये नमः
12. ऊँ ह्रीं अर्हं शीलसागराय नमः
13. ऊँ ह्रीं अर्हं तेजोमयाय नमः
14. ऊँ ह्रीं अर्हं अमितज्योतिषे नमः
15. ऊँ ह्रीं अर्हं ज्योतिर्मूर्तये नमः
16. ऊँ ह्रीं अर्हं तमोपहाय नमः
17. ऊँ ह्रीं अर्हं जगच्चूड़ामणये नमः
18. ऊँ ह्रीं अर्हं दीप्ताय नमः
19. ऊँ ह्रीं अर्हं शंवदे नमः
20. ऊँ ह्रीं अर्हं विघ्नविनायकाय नमः
21. ऊँ ह्रीं अर्हं कलिघ्नाय नमः
22. ऊँ ह्रीं अर्हं कर्मशत्रुघ्नाय नमः
23. ऊँ ह्रीं अर्हं लोकालोकप्रकाशकाय नमः
24. ऊँ ह्रीं अर्हं अनिद्रालवे नमः
25. ऊँ ह्रीं अर्हं अतन्द्रालवे नमः
26. ऊँ ह्रीं अर्हं जागरूकाय नमः
27. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रमामयाय नमः
28. ऊँ ह्रीं अर्हं लक्ष्मीपतये नमः
29. ऊँ ह्रीं अर्हं जगज्जयोतिषे नमः
30. ऊँ ह्रीं अर्हं धर्मराजाय नमः
31. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रजाहिताय नमः
32. ऊँ ही अर्हं मुमुक्षवे नमः ।
33. ऊँ ह्रीं अर्हं बंधमोक्षज्ञाय नमः।
34. ऊँ ह्रीं अर्हं जिताक्षाय नमः
35. ऊँ ह्रीं अर्हं जितमन्मथाय नमः
36.ऊँ ह्रीं अर्हं प्रशांतरसशैलूषाय नमः
37. ऊँ ह्रीं अर्हं भव्यपेटकनायकाय नमः
38. ऊँ ह्रीं अर्हं मूलकत्रे नमः
39. ऊँ ह्रीं अर्हं अखिलज्योतिषे नमः
40. ऊँ ह्रीं अर्हं मलघ्नाय नमः
41. ऊँ ह्रीं अर्हं मूलकारणाय नमः
42. ऊँ ह्रीं अर्हं आप्ताय नमः
43. ऊँ ह्रीं अर्हं वागीश्वराय नमः
44. ऊँ ह्रीं अर्हं श्रेयसे नमः
45. ऊँ ह्रीं अर्हं श्रायसोक्तये नमः
46. ऊँ ह्रीं अर्हं निरुक्तवाचे नमः
47. ऊँ ह्रीं अर्हं प्रवक्त्रे नमः
48. ऊँ ह्रीं अर्हं वचसामीशाय नमः
49. ऊँ ह्रीं अर्हं मारजिते नमः

50. ॐ ह्रीं अर्हं विश्वभावविदे नमः
51. ॐ ह्रीं अर्हं सुतनवे नमः
52. ॐ ह्रीं अर्हं तनुनिर्मुक्ताय नमः
53. ॐ ह्रीं अर्हं सुगताय नमः
54. ॐ ह्रीं अर्हं हतदुर्नयाय नमः
55. ॐ ह्रीं अर्हं श्रीशाय नमः
56. ॐ ह्रीं अर्हं श्रीश्रितपादाब्जाय नमः
57. ॐ ह्रीं अर्हं वीतभिये नमः
58. ॐ ह्रीं अर्हं अभयंकराय नमः
59. ॐ ह्रीं अर्हं उत्सन्नदोषाय नमः
60. ॐ ह्रीं अर्हं निर्विघ्नाय नमः
61. ॐ ह्रीं अर्हं निश्चलाय नमः
62. ॐ ह्रीं अर्हं लोकवत्सलाय नमः
63. ॐ ह्रीं अर्हं लोकोत्तराय नमः
64. ॐ ह्रीं अर्हं लोकपतये नमः
65. ॐ ह्रीं अर्हं लोकचक्षुषे नमः
66. ॐ ह्रीं अर्हं अपारधिये नमः
67. ॐ ह्रीं अर्हं धीरधिये नमः
68. ॐ ह्रीं अर्हं बुद्धसन्मार्गाय नमः
69. ॐ ह्रीं अर्हं शुद्धाय नमः
70. ॐ ह्रीं अर्हं सूनृतपूतवाचे नमः
71. ॐ ह्रीं अर्हं प्रज्ञापारमिताय नमः
72. ॐ ह्रीं अर्हं प्राज्ञाय नमः
73. ॐ ह्रीं अर्हं यतये नमः
74.ॐ ह्रीं अर्हं नियमितेंद्रियाय नमः
75. ॐ ह्रीं अर्हं भदन्ताय नमः
76. ॐ ह्रीं अर्हं भद्रकृते नमः
77. ॐ ह्रीं अर्हं भद्राय नमः
78. ॐ ह्रीं अर्हं कल्पवृक्षाय नमः
79. ॐ ह्रीं अर्हं वरप्रदाय नमः
80. ॐ ह्रीं अर्हं समुन्मूलितकर्मारये नमः
81. ॐ ह्रीं अर्हं कर्मकाष्ठाशुशुक्षणये नमः
82. ॐ ह्रीं अर्हं कर्मण्याय नमः
83. ॐ ह्रीं अर्हं कर्मठाय नमः
84. ॐ ह्रीं अर्हं प्रांशवे नमः
85.ॐ ह्रीं अर्हं हेयादेयविचक्षणाय नमः
86. ॐ ह्रीं अर्हं अनंतशक्तये नमः
87. ॐ ह्रीं अर्हं अच्छेद्याय नमः
88. ॐ ह्रीं अर्हं त्रिपुरारये नमः
89. ॐ ह्रीं अर्हं त्रिलोचनाय नमः
90. ॐ ह्रीं अर्हं त्रिनेत्राय नमः
91. ॐ ह्रीं अर्हं त्र्यंबकाय नमः
92. ॐ ह्रीं अर्हं त्र्यक्षाय नमः
93. ॐ ह्रीं अर्हं केवलज्ञानवीक्षणाय नमः
94. ॐ ह्रीं अर्हं समंतभद्राय नमः
95. ॐ ह्रीं अर्हं शांतारये नमः
96. ॐ ह्रीं अर्हं धर्माचार्याय नमः
97. ॐ ह्रीं अर्हं दयानिधये नमः
98. ॐ ह्रीं अर्हं सूक्ष्मदर्शिने नमः
99. ॐ ह्रीं अर्हं जितानंगाय नमः
100. ॐ ही अर्हं कृपालवे नमः
101. ॐ ह्रीं अर्हं धर्मदेशकाय नमः
102. ॐ ह्रीं अर्हं शुभंयवे नमः
103. ॐ ह्रीं अर्हं सुखसाद्भूताय नमः
104. ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यराशये नमः
105. ॐ ह्रीं अर्हं अनामयाय नमः
106. ॐ ह्रीं अर्हं धर्मपालाय नमः
107. ॐ ह्रीं अर्हं जगत्पालाय नमः

भक्तामर-स्तोत्रम्

कविवरश्री मानतुङ्गाचार्य

(वसंत तिलका छंद)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो--वितानम्।।
सम्यक् -प्रणम्य जिन-पाद-युगंयुगादा-
वालम्बनं-भव-जले पततांजनानाम्।।१।।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्-त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपितं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ-
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।३।।

वक्तुंगुणान्गुण-समुद्र! शशांक-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।४।।

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्।।५।।

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम!
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतुः।।६।।

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैतिशरीरभाजाम्।
आक्रांत-लोकमलि-नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिवशार्वरमन्धकारम्।।७।।

मत्त्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु,
मुक्ता-फलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः।।८।।

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतांदुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि।।९।।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूत-नाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतोननु तेन किंवा,
भूत्याश्रितं य इहनात्मसमंकरोति।।१०।।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जल-निधे रसितुं क इच्छेत्।।११।।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रि भुवनैक - ललाम - भूत!
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्याम्,
यत्ते समान मपरं न हि रूपमस्ति।।१२।।

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि,
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पांडु-पलाश-कल्पम्।।१३।।

सम्पूर्ण-मंडल-शशांक-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर-नाथमेकं।
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।१४।।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरंचलितं कदाचित् ।।१५।।

निर्धूम-वर्ति रप वर्जित-तैल-पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः।।१६।।

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके ।।१७।।

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्।।१८।।

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमःसुनाथ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः।।१९।।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजोस्फुरन्मणिषुयाति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि।।२०।।

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किंवीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि।।२१।।

स्त्रीणांशतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्व दुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्।।२२।।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः।।२३।।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यम्,
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः।।२४।।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वंशङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर! शिवमार्ग-विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि।।२५।।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतःपरमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय।।२६।।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश!
दोषै रुपात्त-विविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिद-पीक्षितोऽसि।।२७।।

उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति।।२८।।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानं,
तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः।।२९।।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क-शुचि-निर्झर-वारि-धार
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिवशातकौम्भम्।।३०।।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत्रिजगतः परमेश्वरत्वम्।।३१।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागस्-
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गमभूतिदक्षः।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकःसन्,
खेदुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी।।३२।।

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टिरुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसांततिर्वा ।।३३।।

शुम्भत्प्रभा- वलय-भूरि-विभाविभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ति।
प्रोद्य-दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम्।।३४।।

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैःप्रयोज्यः।।३५।।

उन्निद्र-हेम-नव-पंकज-पुञ्ज-कान्ती,
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति।।३६।।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकाशिनोऽपि।।३७।।

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभ-मुद्धतमापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्।३८।

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते।।३९।।

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,
दावानलंज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतन्तं
त्वन्नाम-कीर्तन-जलंशमयत्यशेषम्।।४०।।

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शङ्क-
स्त्वन्नाम-नागदमनी हृदि यस्य पुंसः।।४१।।

वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु-भिदा-मुपैति।।४२।।

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते।।४३।।

अम्भोनिधौक्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रास्-
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति।।४४।।

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः,
शोच्यां दशा मुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पंकज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः।।४५।।

आपाद-कण्ठमुरु- शृंखल-वेष्टिताङ्गा,
गाढं वृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः।
त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यःस्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति।४६।।

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते।।४७।।

स्तोत्र-स्रजं तव जिनेन्द्र! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रं,
तं 'मानतुङ्ग' मवशा समुपैति लक्ष्मीः।।४८।।

।। इति श्रीमानतुङ्गाचार्य-विरचितं आदिनाथ-स्तोत्रं समाप्तम्।।

एकीभाव-स्तोत्रम्

SCAN TO WATCH

आचार्य वादिराज कृत

(मन्दाक्रान्ता छन्दः)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो
घोरं दुःखं भवभव-गतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः।।१।।
ज्योती रूपं दुरित-निवह-ध्वान्त-विध्वंस-हेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्भासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे।।२।।
आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढ-मनाः स्तोत्र-मंत्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्,
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः।।३।।
प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।
ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्टस्
तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णी-करोषि।।४।।
लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्! निर्निमित्तेन बन्धुस्
त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्ति-रप्रत्यनीका।
भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-शय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः।।५।।
जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः।।६।।
पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं

हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन् नमामभ्युपैति।।७।।
पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं
कर्मारण्यात्- पुरुष- मसमानन्द- धाम- प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं
क्रूराकाराः कथमिव रुजा- कण्टका निर्लुठन्ति।।८।।
पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्ति-
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः।।९।।
हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन् मूर्तिशैलोपवाही
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा-धूलि-बन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्
तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः।।१०।।
जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम्।।११।।
प्रापद्दैवं तव नुति-पदैर्जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासव-श्रीप्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभि- रमलैस्त्वन्नमस्कार- चक्रम्।।१२।।
शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नोचे- दनवधि- सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो
मुक्तिद्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कवाटम्।।१३।।
प्रच्छन्नः खल्वय-मघ-मयै-रन्धकारैः समन्तात्
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः।

तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्-भारती रत्न-दीपः।।१४।।
आत्म- ज्योति- र्निधि- रनवधि- र्द्रष्टुरानन्द- हेतुः
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्- भक्तिभाजः
स्तोत्रै-र्बद्ध-प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः।।१५।।
प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरेरायता चामृताब्धेः
या देव त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा।
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद् भवति किमियं देव! सन्देह-भूमिः।।१६।।
प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुख! त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेषरूपां
दोषात्मानोऽप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद् भवन्ति।।१७।।
मिथ्यावादं मल-मपनुदन्-सप्तभङ्गीतरङ्गै-
र्वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव! पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन
व्यातन्वन्तः सुचिर-ममृता-सेवया तृप्नुवन्ति।।१८।।
आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः।।१९।।
इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भव-लय-करी श्लाघ्यतामातनोति।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धिकान्तापतिस्त्वं
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्।।२०।।
वृत्तिर्वाचा-मपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्-भक्ति-पीयूष-पुष्टास्

ते भव्यानामभिमत-फलाःपारिजाता भवन्ति ।।२१।।
कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि-वैर-हारी
क्वैवंभूतं भुवन-तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु।।२२।।
देव! स्तोतुं त्रिदिव-गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिर्जनोयः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थास्
तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः।।२३।।
चित्ते कुर्वन् निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं
देव! त्वां यः समय-नियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधापञ्चितानाम्।।२४।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

भक्ति-प्रह्वमहेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः२५।

(स्वागता छन्द)

वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्किकसिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्य-सहायः।२६।।

भावना द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)

SCAN TO WATCH

आचार्य अमितगति कृत

(उपजाति छन्दः)

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।१।।
शरीरतः कर्तुमनन्त-शक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्त-दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्ग-यष्टिं, तव प्रसादेन ममाऽस्तु शक्तिः।२।

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष-ममत्वबुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ!।।३।।
मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव।।४।।
एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडितास्,तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा।५।
विमुक्तिमार्ग-प्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो!।।६।।
विनिन्दनाऽऽलोचन-गर्हणैरहं, मनोवचःकायकषाय-निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम्।।७।।
अतिक्रमं यद्विमते-र्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये।।८।।
क्षतिं मनः शुद्धि-विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शील-व्रतेर्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम्।।९।।
यदर्थमात्रा-पदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम्।।१०।।
बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि!।११।
यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैर्यः स्तूयते सर्वनराऽमरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१२।।
यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्त-संसार-विकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसञ्ज्ञः, स देवदवो हृदये ममास्ताम्।।१३।।
निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१४।।
विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१५।।
क्रोडीकृताऽशेष-शरीरिवर्गा, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१६।।
यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।

ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१७।।
न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैर्यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ।।१८।।
विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।१९।।
विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।२०।।
येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभय-शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस् तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।२१।।
न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषाय-विद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः।२२।।
न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च सङ्घमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम्।२३।।
न सन्ति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै।२४।
आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस् त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र,स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम्।।२५।।
एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता,न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः।२६।।
यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये।।२७।।
संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्।।२८।।
सर्वं निराकृत्य विकल्प-जालं, संसार-कान्तारनिपातहेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्य-माणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे।।२९।।
स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।३०।।
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेव-मनन्यमानसः परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।।३१।।

यैःपरमात्माऽमितगतिवन्द्यः, सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ।।३२।।

इति द्वात्रिंशतावृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगत-चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्।।

SCAN TO WATCH

इष्टोपदेश

आचार्य पूज्यपाद स्वामी कृत

यस्य स्वयं स्वाभावाप्ति-रभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ।।१।।
योग्योपादानयोगेन, दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता।।२।।
वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकं ।
छायातपस्थयो-र्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।।३।।
यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति?।।४।।
हृषीकज-मनातंकं दीर्घ-कालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव।।५।।
वासनामात्रमेवैतत् सुखं दुःखं च देहिनाम्।
तथा ह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि।।६।।
मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः।।७।।
वपुर्गृहं धनं दाराः, पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते।।८।।
दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे।।९।।
विराधकः कथं हंत्रे जनाय परिकुप्यति ।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते।।१०।।
रागद्वेषद्वयीदीर्घ - नेत्राकर्षण - कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ।।११।।

विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिवाह्यते ।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः प्रचुरा विपदः पुरः।।१२।।
दुरज्येनासुरक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा।१३।।
विपत्तिमात्मनो मूढः, परेषामिव नेक्षते ।
दह्यमान-मृगाकीर्णवनान्तर-तरुस्थवत् ।।१४।।
आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष-हेतुं कालस्य निर्गमम्।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम्।।१५।।
त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः सञ्चिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन, स्नास्यामीति विलिम्पति।।१६।।
आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः।१७।।
भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः सन्ततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा।।१८।।
यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम् ।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्।।१९।।
इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः।।२०।।
स्वसंवेदन-सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकोलोकविलोकनः।।२१।।
संयम्य करणग्राम- मेकाग्रत्वेन चेतसः।।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम्।।२२।।
अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः ।।२३।।
परीषहाद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी ।
जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा।।२४।।
कटस्य कर्त्ताहमिति, सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः ।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव, सम्बन्धः कीदृशस्तदा।।२५।।
बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।।२६।।
एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।२७।।
दुःखसंदोहभागित्वं, संयोगादिह देहिनाम् ।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं, मनोवाक्कायकर्मभिः।।२८।।
न मे मृत्युः कुतोभीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले।।२९।।
भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा।३०।।
कर्म कर्म-हिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वाञ्छति।३१।
परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो, दृश्यमानस्य लोकवत्।।३२।।
गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम्।३३।
स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ।।३४।।
नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्।।३५।।
अभवच्चित्तविक्षेप, एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः।।३६।।
यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि।।३७।।
यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।।३८।।
निशामयति निःशेषमिन्द्रजालोपमं जगत् ।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते ।।३९।।
इच्छत्येकान्तसंवासं निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्।।४०।।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।४१।।
किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्-क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ।।४२।।
यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम् ।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति।।४३।।
अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते ।
अज्ञाततद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते ।।४४।।
परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।।४५।।
अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोःसामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति।।४६।।
आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः।।४७।।
आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम् ।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दुःखेष्वचेतनः।।४८।।
अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत् ।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।।४९।।
जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।५०।।

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान् ,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः।५१।

द्रव्य संग्रह

SCAN TO WATCH

(आचार्य नेमिचन्द्र कृत)

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा।।1।।
जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।।2।।
तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउ आणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स।।3।।
उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खुओही दंसणमध केवलं णेयं ।।4।।
णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुद ओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्ख परोक्खभेयं च।।5।।
अट्ठचदुणाण दंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ।।6।।
वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो।।7।।
पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ।।8।।
ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।।9।।
अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा।।10।।
पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी।।11।।
समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
बादर सुहुमे-इंदिय सव्वे पज्जत्त इदरा य।।12।।
मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।।13।।
णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।

लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवएहिं संजुत्ता।।14।।
अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गलमुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्तिसेसा दु।।15।।
सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया।।16।।
गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई।।17।।
ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई।।18।।
अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं।।19।।
धम्माधम्मा-कालो पुग्गलजीवा, य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो।।20।।
दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो।।21।।
लोयायासपदेसे , इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि।।22।।
एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु।।23।।
संति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य।।24।।
होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ।।25।।
एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू।।26।।
जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं।।27।।
आसव बंधण संवर णिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा, ते वि समासेण पभणामो।।28।।
आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।

भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि।।29।।
मिच्छत्ता विरदिपमादजोग कोधादओऽथ विण्णेया।
पण पण पणदस तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स।।30।।
णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो।।31।।
बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो।।32।।
पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेस भेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।।33।।
चेदणपरिणामो, जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणे अण्णो।।34।।
वद-समिदीगुत्तीओ, धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा।।35।।
जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा।।36।।
सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुहभावो।।37।।
सुह असुह भावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च।।38।।
सम्मदंसणणाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा।।39।।
रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तिय मइओ,होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।।40।।
जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि।।41।।
संसय-विमोह-विब्भम, विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मंणाणं, सायारमणेयभयं च।।42।।
जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समए।।43।।
दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा।

जुगवं जम्हा केवलि, णाहे जुगवं तु ते दो वि।।44।।
असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं ।।45।।
बहिरब्भंतर किरिया रोहो, भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ।।46।।
दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह।।47।।
मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए।।48।।
पणतीस सोल छप्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण।।49।।
णट्ठ चदुघाइकम्मो दंसण सुह णाण वीरिय मइओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो।।50।।
णट्ठट्ठ कम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो।।51।।
दंसण णाण पहाणे, वीरिय-चारित्त-वरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी झेओ।।52।।
जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स।।53।।
दंसणणाण समग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स।।54।।
जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणयएयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्छयं झाणं।।55।।
मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं।।56।।
तवसुदवदवं चेदा, झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा-तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होइ।।57।।
दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंद मुणिणा भणियं जं ।।58।।

तत्त्वार्थसूत्रम्

आचार्य श्री उमास्वामी कृत

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव षट्काय-लेश्याः
पञ्चान्ये चास्तिकाया, व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितैः प्रोक्त-मर्हद्-भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्धधाति, स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः।१।
सिद्धे जयप्प-सिद्धे चउव्विहारा-हणाफलं पत्ते ।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो॥२॥
उज्जोवण-मुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसण-णाण चरित्तं तवाण-माराहणा भणिया॥३॥

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः॥१॥ तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद् वा॥३॥ जीवा-जीवा-स्रवबन्धसंवरनिर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्॥४॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः॥५॥ प्रमाण-नयै- रधिगमः॥६॥ निर्देश- स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थिति- विधानतः॥७॥ सत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्प- बहुत्वैश्च॥८॥ मति-श्रुता-वधि- मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम्॥९॥ तत्प्रमाणे॥१०॥ आद्ये परोक्षम्॥११॥ प्रत्यक्ष-मन्यत्॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ता-भिनिबोध इत्य-नर्थान्तरम्॥१३॥ तदिन्द्रिया-निन्द्रिय- निमित्तम्॥१४॥ अवग्रहे-हावाय-धारणाः॥१५॥ बहु-बहुविध-क्षिप्रानिःसृता-नुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम्॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जन-स्यावग्रहः॥१८॥ न चक्षु-रनिन्द्रियाभ्याम्॥१९॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेक-द्वादश-भेदम्॥२०॥ भव-प्रत्ययोऽवधिर्देव नारकाणाम्॥२१॥ क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पःशेषाणाम्॥२२॥ ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः॥२३॥ विशुद्ध्य-प्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः॥२४॥ विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-

विषयेभ्योऽवधि-मनःपर्ययसयोः॥२५॥ मति-श्रुतयो-र्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु॥२६॥ रूपिष्ववधेः॥२७॥ तदनन्त-भागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना-चतुर्भ्यः॥३०॥ मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥ स-दसतो-रवि-शेषाद्यदृच्छोप-लब्धे-रुन्मत्तवत् ॥ ३२॥ नैगम- संग्रहव्यवहा-रर्जु-सूत्र-शब्द-समभि- रूढैवंभूता नयाः॥३३॥

द्वितीय अध्याय

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिक-पारिणामिकौ च ॥१॥ द्वि - नवाष्टा - दशैक - विंशति - त्रि - भेदा यथाक्रमम्॥२॥ सम्यक्त्व-चारित्रे ॥३॥ ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च॥४॥ ज्ञाना-ज्ञान-दर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रि-त्रि पञ्चभेदाःसम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च॥५॥ गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-संयतासिद्ध-लेश्याश्-चतुश्च-तुस्त्र्ये-कैकैकैक-षड्भेदाः॥६॥ जीव-भव्या-भव्यत्वानि च॥७॥ उपयोगो लक्षणम् ॥८॥ स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च॥१०॥ स मनस्का - मनस्काः ॥११॥ संसारिणस्त्रस - स्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि॥१६॥ निर्वृत्युप-करणे द्रव्येन्द्रियम्॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि॥१९॥ स्पर्श-रस गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः॥२०॥ श्रुत-मनिन्द्रियस्य॥२१॥ वनस्पत्यन्ताना - मेकम् ॥२२॥ कृमि - पिपीलिका- भ्रमर - मनुष्यादीना-मेकैक-वृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्म-योगः॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः॥२८॥ एक-समया-विग्रहा ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥ सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः॥३२॥ जरायु-जाण्डज-पोतानां गर्भः ॥३३॥ देव-नारकाणा-मुपपादः ॥३४॥ शेषाणां सम्मूच्-र्छनम् ॥३५॥ औदारिक-वैक्रियिका-हारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येय-गुणं प्राक्

तैजसात् ॥३८॥ अनन्त - गुणे परे ॥३९॥ अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना-चतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुप - भोग - मन्त्यम्॥४४॥ गर्भसम्मूर्च्छनज- माद्यम्॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम्॥४६॥ लब्धि-प्रत्ययं च॥४७॥ तैजस-मपि॥४८॥ शुभं विशुद्ध- मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त-संयतस्यैव॥४९॥ नारक-सम्मू-र्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः॥५२॥ औपपादिक- चरमोत्तम- देहा-संख्येय-वर्षा-युषोऽन-पवर्त्यायुषः॥५३॥

तृतीय अध्याय

रत्न - शर्करा - बालुका - पङ्क - धूम - तमो - महातमः - प्रभा - भूमयो घनाम्बु - वाता - काश- प्रतिष्ठाःसप्ताधोऽधः॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्च - विंशति-पञ्चदश -दश-त्रि-पञ्चोनैक- नरक-शत-सहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्या-शुभतर-लेश्याः परिणाम-देह- वेदना-विक्रियाः ॥३॥ परस्परो-दीरित-दुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टासुरो- दीरित-दुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेक - त्रि - सप्त - दश - सप्तदश - द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभ-नामानो द्वीप- समुद्राः॥७॥ द्वि- र्द्वि-र्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्वपरिक्षेपिणो वलया- कृतयः॥८॥ तन्मध्ये मेरु- नाभि-र्वृत्तो योजन-शत-सहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः॥९॥ भरत - हैमवत-हरि-विदेह-रम्यकहैरण्यवतैरा-वतवर्षाः क्षेत्राणि॥१०॥ तद्- विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्-महाहिमवन्-निषध-नील-रुक्मि- शिखरिणो वर्षधरपर्वताः॥११॥ हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत- हेममयाः॥१२॥ मणि-विचित्र- पार्श्वा उपरि मूले च तुल्य-विस्ताराः ॥१३॥ पद्म - महापद्म - तिगिञ्छ - केशरि -महापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषा-मुपरि॥१४॥ प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्धविष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजना-वगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्-द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च॥१८॥ तन्- निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति- बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपम स्थितयः ससा-मानिक-परिषत्काः॥१९॥ गङ्गा-सिन्धु-रोहिद्रोहि- तास्या- हरिद्धरि- कान्ता- सीता- सीतोदा- नारी- नरकान्ता- सुवर्ण-

रूप्य-कूला-रक्ता-रक्तोदाः सरित-स्तन्मध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः॥२२॥ चतुर्दशनदी-सहस्र-परिवृता गङ्गा- सिन्ध्वादयो नद्यः॥२३॥ भरतः षड्विंशति-पञ्च-योजन-शत-विस्तारः षट्चैकोन-विंशति भागा योजनस्य॥२४॥ तद्-द्विगुण- द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः॥२५॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥ भरतैरा-वतयोर्वृद्धि-ह्रासौ षट्समयाभ्या – मुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एक-द्वि-त्रि-पल्योपम - स्थितयो हैमवतक – हारि-वर्षक – दैव कुरवकाः॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येय-कालाः॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति - शत - भागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखण्डे॥३३॥ पुष्करार्द्धे च॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च॥३६॥ भरतैरावत- विदेहाःकर्म-भूमयोऽन्यत्र देव-कुरूत्तरकुरुभ्य:॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च॥३९॥

चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्त-लेश्याः॥२॥ दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोप-पन्न-पर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारि-षदात्मरक्ष-लोकपालानीकप्रकीर्णका - भियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः॥४॥ त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः॥६॥ काय -प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाःस्पर्श-रूप-शब्द-मनः -प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽ प्रवीचाराः ॥९॥ भवन - वासिनोऽसुरनाग – विद्युत्सुपर्णाग्नि - वातस्तनितो - दधिद्वीप - दिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्या- चन्द्र-मसौ ग्रह - नक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥ मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः काल-विभागः॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधरमैशान - सानत्कुमारमाहेन्द्र - ब्रह्मब्रह्मोत्तर - लान्तवकापिष्ट - शुक्रमहाशुक्र - शतारसहस्रा - रेष्वानतप्राणतयो - रारणाच्युतयो -

र्नवसुग्रैवेयकेषु - विजयवैजयन्त - जयन्ता पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ - च ॥१९॥ स्थितिप्रभाव - सुखद्युति - लेश्या-विशुद्धीन्द्रिया - वधि - विषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गति - शरीर - परिग्रहाभि - मानतो हीनाः॥२१॥ पीतपद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥२३ ॥ ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः॥२४॥ सारस्वता - दित्य - वह्न्य - रुण - गर्दतोय - तुषिताव्या - बाधा - रिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः॥२६॥ औपपादिक- मनुष्येभ्यः शेषास्ति-र्यग्योनयः॥२७॥ स्थिति - रसुरनाग - सुपर्ण - द्वीप - शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध-हीनमिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥२९॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त॥३०॥ त्रि-सप्त- नवैका -दश - त्रयोदश-पञ्चदशभि-रधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युता-दूर्ध्व - मेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च॥३२॥ अपरा पल्योपम-मधिकम् ॥३३॥ परतःपरतः पूर्वा पूर्वानन्तरा॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च॥३७॥ व्यन्तराणां च॥३८॥ परा पल्योपम-मधिकम्॥३९॥ ज्योतिष्काणां च॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकाना-मष्टौ सागरो - पमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

पंचम अध्याय

अजीव-काया-धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैक-जीवानाम्॥८॥ आकाशस्यानन्ताः॥९॥ संख्येया-संख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोका-काशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्माधर्मयोःकृत्स्ने॥१३॥ एक-प्रदेशा-दिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येय-भागादिषु जीवानाम्॥१५॥ प्रदेश-संहार-विस-र्पाभ्यां प्रदीपवत्॥१६॥ गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयो-रुपकारः॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीर-वाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्॥१९॥ सुख-दुःख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परो-पग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तना-परिणाम-क्रियाः परत्वापरत्वे च

कालस्य।२२॥ स्पर्श -रस -गन्ध -वर्णवन्तः पुद्गलाः॥२३॥ शब्द- बन्ध- सौक्ष्म्य- स्थौल्य- संस्थान- भेद- तमश्छाया- तपोद्योत- वन्तश्च ॥२४॥ अणवःस्कन्धाश्च॥२५॥ भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदा - दणुः ॥२७॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद् द्रव्य - लक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्य - युक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पित - सिद्धेः ॥३२॥ स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः ॥३३॥ न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ गुणसाम्ये सदृशानाम्॥३५॥ द्वयधिकादि - गुणानां तु॥३६॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च॥३७॥ गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्त - समयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

छठा अध्याय

काय-वाङ्-मनःकर्म योगः॥१॥ स आस्रवः ॥२॥ शुभः पुण्यस्या-शुभः पापस्य॥३॥ सकषाया-कषाययोः साम्परायि-केर्या -पथयोः॥४॥ इन्द्रिय-कषाया-व्रतक्रियाः पञ्च चतुः पञ्च पञ्चविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः॥५॥ तीव्र - मन्दज्ञाता - ज्ञात - भावाधि - करण - वीर्य - विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥ अधिकरणं जीवा- जीवाः॥७॥ आद्यं संरम्भ- समा- रम्भा- रम्भ- योगकृत- कारितानु -मत-कषाय-विशेषैस्- त्रिस्- त्रिस्- त्रिश्चतुश्चैकशः॥८॥ निर्वर्तना- निक्षेप-संयोग- निसर्गाद्वि- चतुर्द्वि - त्रि-भेदाःपरम्॥९॥ तत्प्रदोष -निन्हव -मात्सर्यान्तराया-सादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयोः ॥१०॥ दुःख-शोक-तापा-क्रन्दन- वधपरिदेव- नान्यात्म- परोभय -स्थानान्यसद्वेद्यस्य॥११॥ भूतव्रत्यनुकम्पा-दान- सराग संयमादियोगः क्षान्तिः शौच-मिति सद्वेद्यस्य॥१२॥ केवलि-श्रुत- संघ-धर्म-देवा-वर्णवादो दर्शन-मोहस्य ॥१३॥ कषायो-दया-त्तीव्र- परिणामश्चारित्र-मोहस्य ॥१४॥ बह्वा-रम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्या-युषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भ-परिग्रहत्वं मानुषस्य॥१७॥ स्वभाव-मार्दवं च॥१८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सराग- संयम- संयमासंयमाकामनिर्जरा-बाल- तपांसि दैवस्य॥२०॥ सम्यक्त्वं च॥२१॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य॥२३॥ दर्शन - विशुद्धि - र्विनय - सम्पन्नता - शील - व्रतेष्वनती - चारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधु-समाधि-

वैया-वृत्यकरण-मर्हदा-चार्यबहुश्रुत-प्रवचन भक्ति- रावश्यका-परि - हाणि-र्मार्ग -प्रभावना-प्रवचन-वत्सलत्व-मिति तीर्थकरत्वस्य॥२४॥ परात्म-निन्दा-प्रशंसे स-दसद्- गुणोच्छादनोद्- भावने च नीचैर्गोत्रस्य॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्य-नुत्सेकौ चोत्तरस्य॥२६॥ विघ्नकरण-मन्तरायस्य ॥२७॥

सप्तम अध्याय

हिंसानृत- स्तेयाब्रह्म- परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्॥१॥ देश-सर्वतोऽणुमहती॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च॥३। वाङ्‌मनोगुप्तीर्या-दान-निक्षेपण-समित्या-लोकित-पान-भोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्या-नान्यनुवीचि भाषणं च पञ्च॥५॥ शून्यागार-विमोचिता-वास-परो-परोधाकरणभैक्ष्य- शुद्धि-सधर्मा-विसंवादाः पञ्च॥६॥ स्त्री-राग-कथा-श्रवण-तन्मनो-हरांग-निरीक्षण-पूर्व-रतानुस्मरण-वृष्येष्ट-रस- स्व-शरीर-संस्कार-त्यागाः पञ्च॥७॥ मनोज्ञा- मनोज्ञेन्द्रिय-विषय - राग-द्वेष-वर्जनानि पञ्च॥८॥ हिंसा-दिष्विहा- मुत्रा- पायावद्य-दर्शनम्॥९॥ दुःख-मेव वा॥१०॥ मैत्री-प्रमोद- कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्य-माना-विनेयेषु॥११॥ जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम्॥१२॥ प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यप-रोपणं हिंसा॥१३॥ अस-दभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्ता-दानं स्तेयम्॥१५॥ मैथुन-मबह्म॥१६॥ मूर्च्छा परिग्रहः॥१७॥ निःशल्यो व्रती॥१८॥ अगार्यनगारश्च ॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी॥२०॥ दिग्देशानर्थ-दण्ड-विरतिसामायिक- प्रोष-धोप-वासोप- भोग-परि- भोग-परिमाणा- तिथिसंविभाग- व्रत-सम्पन्नश्च॥२१॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता॥२२॥ शंका-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टे-रतीचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्ध-वध- च्छेदाति - भारारोपणान्न- पाननिरोधाः॥२५॥ मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूट-लेख-क्रियान्यासाप-हार-साकारमंत्र-भेदाः ॥२६॥ स्तेन-प्रयोग-तदा-हृता-दान-विरुद्ध-राज्याति-क्रमहीना-धिक-मानोन्-मान-प्रतिरूपक -व्यवहाराः॥२७॥ पर-विवाह-करणेत्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीता-गमना-नङ्गक्रीडा-काम-तीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्र-वास्तु-हिरण्य-

सुवर्ण - धनधान्य - दासी - दास-कुप्य-प्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वा-धस्तिर्यग्व्यति - क्रमक्षेत्रवृद्धि - स्मृत्यन्तरा - धानानि ॥३०॥ आनयन-प्रेष्यप्रयोगशब्द - रूपानुपात - पुद्गल - क्षेपाः ॥३१॥ कन्दर्प - कौत्कुच्य-मौखर्या-समीक्ष्याधिकरणोपभोगपरि-भोगा-नर्थक्यानि ॥३२॥ योग-दुःष्प्रणि - धाना - नादर - स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्य - वेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्गादान-संस्तरोपक्रमणा-नादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्त -सम्बन्ध- सम्मिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः॥३५॥ सचित्त-निक्षेपा-पिधान -पर -व्यपदेश -मात्सर्य -कालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवित-मरणाशंसामित्रानुराग-सुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्॥३८॥ विधिद्रव्यदातृपात्र-विशेषात्तद्विशेषः॥३९॥

अष्टम अध्याय

मिथ्या- दर्शना- विरति- प्रमाद- कषाय- योगा बन्ध- हेतवः॥१॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गला-नादत्ते स बन्धः॥२॥ प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधयः॥३॥ आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण- वेदनीय-मोहनी- यायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः॥४॥ पञ्च-नवद्वयष्टा-विंशति-चतुर्द्वि-चत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम् ॥५॥मति-श्रुता-वधि-मनःपर्यय-केवलानाम्॥६॥ चक्षु-रचक्षु-रवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचलाप्रचला-स्त्यान-गृद्धयश्च॥७॥ स-दसद्-वेद्ये॥८॥ दर्शन-चारित्र- मोहनीया- कषाय- कषाय- वेदनीया- ख्यास्त्रि-द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व -मिथ्यात्व- तदुभयान्य- कषायकषायौ हास्य-रत्यरति- शोक- भय- जुगुप्सा- स्त्री- पुंनपुंसक-वेदाअनन्तानु-बन्ध्यप्रत्याख्यान -प्रत्याख्यान-संज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः॥९॥ नारकतैर्यग्योन-मानुष-दैवानि॥१०॥ गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग- निर्माण- बंधन- संघात- संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गंधवर्णानुपूर्व्यगुरु-लघूपघात-परघाता-तपो-द्योतोच्छ्-वास-विहायोग-तयः प्रत्येक-शरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्मपर्याप्ति- स्थिरादेय-यशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम्॥१३॥ आदितस् -तिसृणा-मन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरो-पम-कोटी-कोट्यः परा स्थितिः॥१४॥ सप्तति-र्मोहनीयस्य॥५॥ विंशति-र्नामगोत्रयोः॥१६॥ त्रयस्- त्रिंशत्सागरो-

पमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादश-मुहूर्ता वेदनीयस्य॥१८॥ नाम-गोत्रयो- रष्टौ ॥१९॥ शेषाणा-मन्तर्मुहूर्ताः॥२०॥ विपाकोऽनुभवः॥२१॥ स यथानाम ॥२२॥ ततश्च निर्जरा॥२३॥ नाम-प्रत्यया:सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैक-क्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्व-नन्तानन्त-प्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥
अतोऽन्यत्पापम्॥२६॥

नवाध्याय

आस्रव-निरोधः संवरः॥१॥ स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा- परीषहजय-चारित्रैः॥२॥ तपसा निर्जरा च॥३॥ सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः॥४॥ ईर्या-भाषैषणा-दान-निक्षेपोत्सर्गाः समितयः॥५॥ उत्तम-क्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्यागा-किञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥ अनित्याशरण- संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वा-ख्या-तत्त्वानुचिन्तन-मनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासा-शीतोष्ण-दंश मशक-नाग्न्यारति-स्त्रीचर्या- निषद्या-शय्या- क्रोश-वध-याचना-लाभ-रोग-तृणस्पर्शमल-सत्कार-पुरस्कार-प्रज्ञाज्ञाना-दर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्मसांपरायच्छद्मस्थ- वीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसाम्पराये सर्वे॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शन-मोहान्तराययोरदर्शना- लाभौ॥१४॥ चारित्र - मोहे नाग्न्यारतिस्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कार-पुरस्काराः॥१५॥ वेदनीये शेषाः॥१६॥ एकादयो भाज्या युगपदे-कस्मिन्नैकोनविंशतेः॥१७॥ सामायिकच्छेदो-पस्थापनापरिहार-विशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात-मिति चारित्रम् ॥१८॥ अनशनाव-मौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस-परित्याग- विविक्त-शय्यासन- कायक्लेशा बाह्यं तपः॥१९॥। प्रायश्चित्त- विनय-वैयावृत्त्यस्वाध्याय-व्युत्सर्ग- ध्यानान्युत्तरं॥२०॥ नव-चतुर्दश-पञ्च-द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात्॥२१॥ आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक - व्युत्सर्ग - तपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥२२॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल -संघ-साधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचनापृच्छना-नुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहनन - स्यैकाग्र - चिन्ता-

निरोधो ध्यान -मान्तर्मुहूर्तात्॥२७॥ आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि॥२८॥ परे मोक्ष-हेतू॥२९॥ आर्त-ममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य॥३१॥ वेदनायाश्च॥३२॥ निदानं च॥३३॥ तदविरत-देशविरत-प्रमत्त-संयतानाम्॥३४॥ हिंसानृत- स्तेय- विषय-संरक्षणेभ्यो रौद्र-मविरतदेशविरतयोः॥३५॥ आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम्॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः॥३७॥ परे केवलिनः॥३८॥ पृथक्त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति-व्युपरत-क्रिया-निवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येक-योग-काय-योगा-योगानाम्॥४०॥ एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे॥४१॥ अवीचारं द्वितीयम्॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३ ॥ वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोग-संक्रांतिः॥४४॥ सम्यग्दृष्टि-श्रावक- विरतानन्त- वियोजक- दर्शनमोह-क्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिना:क्रमशोऽसंख्येय-गुणनिर्जराः॥४५॥ पुलाक-बकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातकाः निर्ग्रन्थाः॥४६॥ संयम- श्रुत- प्रतिसेवना- तीर्थ- लिंग-लेश्योपपाद-स्थानविकल्पतः साध्याः॥४७॥

दशम अध्याय

मोह-क्षयाज्ज्ञान-दर्शना-वरणान्तराय -क्षयाच्च केवलम् ॥१॥ बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न- कर्म- विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादि-भव्यत्वानां च॥३॥ अन्यत्र केवल-सम्यक्त्वज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः॥४॥ तदनन्तर-मूर्ध्वं गच्छत्या- लोकान्तात् ॥५॥ पूर्व-प्रयोगा-दसंगत्वाद्-बन्धच्-छेदात्-तथा-गतिपरिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलाल - चक्रवद्- व्यपगतलेपालाबु - वदेरण्डबीज-वदग्निशिखावच्च॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात्॥८॥ क्षेत्र-काल-गति-लिंग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येकबुद्ध-बोधित- ज्ञानावगाह-नान्तर- संख्याल्प-बहुत्वतः साध्याः॥९॥

॥ इति श्री तत्त्वार्थसूत्रम् ॥

अक्षर-मात्र पद-स्वर-हीनं, व्यञ्जन-संधि-विवर्जित-रेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे॥१॥
दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति।

फलं स्या-दुप-वासस्य, भाषितं मुनिपुङ्गवैः॥२॥
तत्त्वार्थ-सूत्र-कर्तारं, गृद्ध-पिच्छोप-लक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्र- संजात- मुमास्वामि- मुनीश्वरम्॥३॥
पढम चउक्के पढमं पंचमे जाणि पुग्गलं तच्च।
छह सत्तमे हि आस्सव अट्ठमे बंध णायव्वो ॥४॥
णवमे संवर णिज्जर दहमे मोक्खं वियाणे हि।
इह सत्त तच्च भणियं दह सुत्ते मुणिवरिंदेहि॥५॥
जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं ॥६॥
तवयरणं वयधरणं संजमसरणं च जीव-दया करणम्।
अंते समाहिमरणं, चउगइ दुक्खं णिवारेइ॥७॥
कोटिशतं द्वादशचैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्र-संख्य, मेतत् श्रुतं पंचपदं नमामि॥८॥
अरहंत भासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सव्वं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा॥९॥
गुरवः पातु नो नित्यं, ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव-गम्भीरा, मोक्ष-मार्गोपदेशकाः॥१०॥

SCAN TO WATCH

सिद्धोदयाष्टक

(मुनि श्री प्रणम्य सागर जी)

धर्मप्रसिद्धे शुभभारतेऽस्मिन्,
सुमालवायां रमणीयतायाम्।
नेमावरस्तत्र नदी-तटस्थः,
सिद्धोदयाख्यात इहैक तीर्थः।।1।।

अर्थ- धर्म प्रसिद्ध इस शुभ भारत देश में एक रमणीय मालवा प्रान्त है। जिसमें नदी तट पर स्थित एक नेमावर ग्राम हैं। यहीं पर '**सिद्धोदय**' नाम का एक तीर्थ प्रसिद्ध है।

रक्ताम्बरालीढनिकाय योषा,

द्रष्टुं सुयान्ति प्रतिमेन्दुचेष्टाः।

सुदूरमेतीति नदी तु कूलात्,

निदाघके सिद्धमहीति जीयात्।।2।।

अर्थ- ग्रीष्म ऋतु में वह नदी तट से बहुत दूर चली जाती है, यह देखने के लिए ही चन्द्रमा के समान चेष्टा वाली स्त्रियाँ लाल वस्त्रों से सहित ग्रहों (अर्थात लाल पत्थर के जिनालयों) को देखने के लिए अच्छे ढंग से चली जाती है। इस लोक में ऐसी वह सिद्धोदय सिद्ध भूमि जयवन्त हो।

द्वीपान्तरेप्यग्रपदे सुमेरू-

र्वा मूर्तिमध्येऽचलनाभिकुण्डः।

तथा नदीनर्मदमध्यलक्ष्मीः,

सिद्धोदयोऽसौ प्रविभाति तीर्थः।।3।।

अर्थ- जिस प्रकार अनेक द्वीपों के बीच में भी अग्रणी स्थान पर सुमेरू पर्वत होता है या जिस प्रकार शरीर के मध्य में अचल नाभिकुण्ड होता है उसी प्रकार नर्मदा नदी के मध्य की लक्ष्मी यह 'सिद्धोदय' तीर्थ सुशोभित होता है।

सूर्योदये लोहजिनालयेषु,

सन्तो विशन्तोऽरुणतोरणेषु।

वह्नाविवाह्यीति हि संप्रतीत्यै,

जिनस्य धर्मो जगतीह सत्यः।।4।।

अर्थ- दिन में सूर्योदय होने पर साधुजन लाल रंग के जिनालयों के लाल तोरण द्वारों में प्रवेश करते हुए मानो अग्नि में ही प्रवेश कर रहे हैं, इस प्रकार लगता है वे मानो यह विश्वास करा रहे हैं कि इस जगत् में जिनेन्द्र भगवान् का धर्म ही सत्य है।

अभ्रोपचुम्बा शिखरस्य ताति,

र्निसर्गताया उपदेशमाह।

आकाशमध्ये विधिमेघलेपाद्,

गन्तुं न शक्यो शिवमद्य दोषात्।।5।।

अर्थ- आकाश के मध्य में मेघों को छूने वाली शिखरों की पंक्तियाँ

स्वाभाविकता से यह मानो उपदेश दे रहे हैं कि कर्मरूप मेघों का आत्मा में लेप होने से इससे ऊपर नहीं जा सकते हैं। कालदोष से आज मोक्ष में जाना संभव नहीं है।

आयात्शवौघमवलोक्य नद्यां,

यो दृश्यते भंङ्गुरभाज् पृथिव्याम्।

शिखास्थिता कम्पितकेतुपंक्तिः,

कथामतोऽशाश्वततां प्रवक्ति।।6।।

अर्थ- नदी में आते हुए शवों के समूह को देखकर इस पृथ्वी पर जो दिखाई देता है वह क्षण भंगुर है इसलिए मानो यह शिखरों पर स्थित। ध्वजाओं की हिलती पंक्ति आशाश्वतपन की कथा कह रही हो।

विशुद्धि हेतोश्च मनः प्रियाणि,

जिनायतानीह सुरार्चितानि।

यत्यार्यिका-मानुष-संनुतानि,

जयन्तु नित्यं मम भाववाणी।।7।।

अर्थ- इस लोक में जो ये जिनायतन हैं वह विशुद्धि के कारण होने से मन को प्रिय लगते हैं, मनुष्यों से स्तुत हैं। ऐसे ये जिनालय नित्य जयवन्त हों। ऐसी मेरी भाव-पूर्ण वाणी है।

पञ्चाशदाधिक्यमहो सहस्रं,

च पञ्चकोट्यः समये समुक्तम्।

समापुरीशत्वमशेष सारं,

स्वीयं प्रसिद्धयै परिणौमि सिद्धान् ।।8।।

अर्थ - अहो! आगम में कहा है कि साढ़े पाँच करोड़ मुनिराज स्वात्मा के पूर्ण सार रूप ईशत्व को प्राप्त हुए हैं। उन सिद्धों को मैं भी सिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ।

स्तुति विद्या (जिनशतकम्)

आ. श्री समन्तभद्र कृत

श्री आदिनाथ स्तुति

1) श्रीमज्जिनपदाभ्याशं प्रतिपाद्यागसां जये।
कामस्थानप्रदानेशं स्तुतिविद्यां प्रसाधये॥

2) स्नात स्वमलगम्भीरं जिनामितगुणार्णवम्।
पूतश्रीमज्जगत्सारं जनायात क्षणाच्छिवम्॥

3) धिया ये श्रितयेतार्त्या यानुपायान्वरानताः।
येऽपापा यातपारा ये श्रियायातानतन्वत॥

4) आसते सततं ये च सति पुर्वक्षयालये।
ते पुण्यदा रतायातं सर्वदा माभिरक्षत॥

5) नतपीला सनाशोक सुमनोवर्षभाषितः।
भामण्डलासनाशोक सुमनोवर्षभाषितः॥

6) दिव्यैर्ध्वनिसितच्छत्रचामरैर्दुन्दुभिस्वनैः।
दिव्यैर्विनिमितस्तोत्रश्रमदर्दुरिभिर्जनैः॥

7) यतः श्रितोपि कान्ताभिर्दृष्टा गुरुतया स्ववान्।
वीतचेतोविकाराभिः स्रष्टा चारुधियां भवान्॥

8) विश्वमेको रुचामाको व्यापो येनार्य वर्तते।
शश्वल्लोकोऽपि चालोको द्वीपो ज्ञानार्णवस्य ते॥

9) श्रितः श्रेयोऽप्युदासीने यत्त्वय्येवाश्नुते परः।
क्षतं भूयो मदाहाने तत्त्वमेवार्चितेश्वरः॥

10) भासते विभुतास्तोना ना स्तोता भुवि ते सभाः।
या श्रिताःस्तुत गीत्या नु नुत्या गीतस्तुताःश्रिया॥

11) स्वयं शमयितुं नाशं विदित्वा सन्नतस्तु ते।
चिराय भवते पीड्यमहोरुगुरवेऽशुचे॥

12) स्वयं शमयितुं नाशं विदित्वा सन्नतः स्तुते।
चिराय भवतेपीड्य महोरुगुरवे शुचे॥

13) ततोतिता तु तेतीतस्तोतृतोतो तितोतृत।
ततोऽतातितितोतोते ततता ते ततोततः॥

14) येयायायायेयाय नानानूनाननानन।
ममाममाममामामितातती-तितितीतितः॥

15) गायतो महिमायते गा यतो महिमाय ते।
पद्मया स हि तायते पद्मयासहितायते॥

श्री अजितनाथ स्तुति

16) सदक्षराजराजित प्रभो दयस्व वर्द्धनः।
सतां तमो हरन् जयन् महो दयापराजितः॥

17) सदक्षराजराजित प्रभोदय स्ववर्द्धनः।
स तान्तमोह रंजयन् महोदयापराजितः॥

श्री संभवनाथ स्तुति

18) न चेनो न च रागादिचेष्टा वा यस्य पापगा।
नो वामैः श्रीयतेऽपारा नयश्री-र्भुवि यस्य च॥

19) पूतस्वनवमाचारं तन्वायातं भयाद्रुचा ।
स्वया वामेश पाया मा नतमेकार्च्य शंभव॥

20) धाम स्वयममेयात्मा मतयादभ्रया श्रिया।
स्वया जिन विधेया मे यदनन्तमविभ्रमः॥

श्री अभिनन्दननाथ स्तुति

21) अतमः स्वनतारक्षी तमोहा वन्दनेश्वरः।
महाश्रीमानजो नेता स्वव मामभिनन्दन॥

22) नन्द्यनन्तर्द्धयनन्तेन नन्तेनस्तेऽभिनन्दन।
नन्दनर्द्धिरनम्रो न नम्रो नष्टोऽभिनन्द्य न॥

23) नन्दनश्रीर्जिन त्वा न नत्वा नर्द्धया स्वनन्दि न।
नन्दिनस्ते विनन्ता न नन्तानन्तोभिनन्दन॥

24) नन्दनं त्वाप्यनष्टो न नष्टोऽनत्वाभिनन्दन।
नन्दनस्वर नत्वेन नत्वेनः स्यन्न नन्दनः॥

श्री सुमतिनाथ स्तुति

25) देहिनो जयिनः श्रेयः सदातः सुमते हितः।
देहि नोजयिनः श्रेयः स दातः सुमतेहितः॥

26) वरगौरतनुं देव वंदे नु त्वक्षयार्ज्जव।
वर्जयार्त्तिं त्वामार्याव वर्यामानोरुगौरव॥

श्री पद्मप्रभ नाथ स्तुति

27) अपापापदमेयश्रीपादपद्म प्रभोर्दय।
पापमप्रतिमाभो मे पद्मप्रभ मतिप्रद॥

28) वंदे चारुरुचां देव भो वियाततया विभो।
त्वामजेय यजे मत्वा तमितांतं ततामित॥

श्री सुपार्श्वनाथ स्तुति

29) स्तुवाने कोपने चैव समानो यन्न पावकः।
भवानेकोपि नेतेव त्वमाश्रेयः सुपार्श्वकः॥

श्री चन्द्रप्रभ स्तुति

30) चन्द्रप्रभो दयोजेयो विचित्रेऽभात् कुमण्डले।
रुन्द्रशोभोक्षयोमेयो रुचिरे भानुमण्डले॥

31) प्रकाशयन् खमुद्भूतस्त्वमुद्घांककलालयः।
विकाशयन् समुद्भूतः कुमुदं कमलाप्रियः॥

32) धाम त्विषां तिरोधानविकलो विमलोक्षयः।
त्वमदोषाकरोस्तोनः सकलो विपुलोदयः॥

33) यत्तु खेदकरं ध्वान्तं सहस्रगुरपारयन्।
भेत्तुं तदन्तरत्यन्तं सहसे गुरु पारयन्॥

34) खलोलूकस्य गोव्रातस्तमस्ताप्यति भास्वतः।
कालोविकलगोघातः समयोऽप्यस्य भास्वतः॥

35) लोकत्रयमहामेयकमलाकरभास्वते।
एकप्रियसहायाय नम एकस्वभाव ते॥

36) चारुश्रीशुभदौ नौमि रुचा वृद्धौ प्रपावनौ।
श्रीवृद्धौतौ शिवौ पादौ शुद्धौ तव शशिप्रभ॥

श्री पुष्पदंत स्तुति

37) शंसनाय कनिष्ठायाश्चेष्टाया यत्र देहिनः।
नयेनाशंसितं श्रेयः सद्यः सन्नज राजितः॥

38) शंस नायक निष्ठायाश्चेष्टाया यत्र देहि नः।
न येनांशं सितं श्रेयः सद्यः सन्नजराजितः॥

39) शोकक्षयकृदव्याधे पुष्पदन्त स्ववत्पते।
लोकत्रयमिदं बोधे गोपदं तव वर्तते॥

40) लोकस्य धीर ते वाढं रुचयेपि जुषे मतम्।
नो कस्मै धीमते लीढं रोचतेपि द्विषेमृतम्॥

श्री शीतलनाथ स्तुति

41) एतच्चित्रं क्षितेरेव घातकोपि प्रसादकः।
भूतनेत्रपतेस्यैव शीतलोपि च पावकः॥

42) काममेत्य जगत्सारं जनाः स्नात महोनिधिम्।
विमलात्यन्तगम्भीरं जिनामृतमहोदधिम्॥

श्री श्रेयोजिन स्तुति

43) हरतीज्याहिता तान्तिं रक्षार्था यस्य नेदिता।
तीर्थदिः श्रेयसे नेता ज्यायः श्रेयस्य यस्य हि॥

44) अविवेको न वा जातु विभूषापन्मनोरुजा।
वेशा मायाज वैनो वा कोपयागश्च जन्म न॥

45) आलोक्य चारु लावण्यं पदाल्लातुमिवोर्जितम्।
त्रिलोकी चाखिला पुण्यं मुदा दातुंध्रुवोदितम्॥

46) अपराग समाश्रेयन्ननाम यमितोभियम्।
विदार्य सहितावार्य समुत्सन्नज वाजितः॥

47) अपराग स मा श्रेयन्ननामयमितोभियम्।
विदार्यसहितावार्य समुत्सन्न जवाजितः॥

श्री वासुपूज्य जिन स्तुति

48) अभिषिक्तः सुरैर्लोकैस्त्रिभिर्भक्तः परैर्न कैः।
वासुपूज्य मयीशेशस्त्वं सुपूज्यः क ईदृशः॥

49) चार्वस्यैव क्रमेजस्य तुंगः सायो नमन्नभात्।
सर्वतो वक्त्रमेकास्यमंगं छायोनमप्यभात्॥

श्री विमलनाथ जिन स्तुति

50) क्रमतामक्रमं क्षेमं धीमतामर्च्यमश्रमम्।
श्रीमद्विमलमर्चेमं वामकामं नम क्षमम्॥

51) ततोमृतिमतामीमं तमितामतिमुत्तमः।
मतोमातातिता तोत्तुं तमितामतिमुत्तमाः॥

52) नेतानतनुते नेनोनितान्तं नाततो नुतात्।
नेता न तनुते नेनो नितान्तं ना ततो नुतात्॥

53) नयमानक्षमामान न मामार्यार्त्तिनाशन।
नशनादस्य नो येन नये नोरोरिमाय न॥

श्री अनन्त जिन स्तुति

54) वर्णभार्यातिनन्द्याव वन्द्यानन्त सदारव।
वरदातिनतार्य्याव वर्य्यातान्तसभार्णव॥

55) नुन्नानृतोन्नतानन्त नूतानीतिनुताननः।
नतोनूनोनितान्तं ते नेतातान्ते निनौति ना॥

श्री धर्मनाथ स्तुति

56) त्वमबाध दमेनर्द्ध मत धर्मप्रगोधन।
बाधस्वाशमनागो मे धर्म शर्मतमप्रद॥

57) नतपाल महाराज गीत्यानुत ममाक्षर।
रक्ष मामतनुत्यागी जराहा मलपातन॥

58) मानसादर्शसंक्रान्तं सेवे ते रूपमद्भुतम्।
जिनस्योदयि सत्त्वान्तं स्तुवे चारूढमच्युतम्॥

59) यतः कोपि गुणानुक्त्या नावाब्धीनपि पारयेत्।
न तथापि क्षणाद्भक्त्या तवात्मानं तु पावयेत्॥

60) रुचं बिभर्ति ना धीरं नाथातिस्पष्टवेदनः।
वचस्ते भजनात्सारं यथायः स्पर्शवेदिनः॥

61) प्राप्य सर्वार्थसिद्धिं गां कल्याणेतः स्ववानतः।
अप्यपूर्वार्थसिद्ध्येगां कल्याकृत भवान् युतः॥

62) भवत्येव धरा मान्या सूद्यातीति न विस्मये।
देवदेव पुरा धन्या प्रोद्यास्यति भुवि श्रिये॥

63) एतच्चित्रं पुरोधीर स्नपितो मन्दरे शरैः।
जातमात्रः स्थिरोदार क्वापि त्वममरेश्वरैः॥

64) तिरीटघटनिष्ठ्यूतं हारीन्द्रौघविनिर्मितम्।
पदे स्नातः स्म गोक्षीरं तदेडित भगोश्चिरम्॥

65) कुत एतो नु सन्वर्णो मेरोस्तेपि च संगतेः।
उत क्रीतोथ संकीर्णो गुरोरपि तु संमतेः॥

66) हृदि येन धृतोसीनः स दिव्यो न कुतो जनः।
त्वयारूढो यतो मेरु: श्रिया रूढो मतो गुरुः॥

श्री शान्तिनाथ स्तुति

67) चक्रपाणेर्दिशामूढा भवतो गुणमन्दरम्।
के क्रमेणेद्दशा रूढाः स्तुवन्तो गुरुमक्षरम्॥

68) त्रिलोकीमन्वशास्संगं हित्वा गामपि दीक्षितः।

त्वं लोभमप्यशान्त्यंगं जित्वा श्रीमद्विदीशितः॥

69) केवलाङ्गसमाश्लेषबलाढ्य महिमाधरम्।
तव चांगं क्षमाभूषलीलाधाम शमाधरम्॥

70) त्रयोलोकाः स्थिताः स्वैरं योजनेधिष्ठिते त्वया।
भूयोन्तिकाःश्रितास्तेरं राजन्तेधिपते श्रिया॥

71) परान् पातुस्तवाधीशो बुधदेव भियोषिताः।
दूराद्धातुमिवानीशो निधयोवज्ञयोज्झिताः॥

72) समस्तपतिभावस्ते समस्तपति तद्-द्विषः।
संगतोहीन भावेन संगतो हि न भास्वतः॥

73) नयसत्त्ववर्त्तवः सर्वे गव्यन्ये चाप्यसंगताः।
श्रियस्ते त्वयुवन् सर्वे दिव्यर्द्धया चावसंभृताः॥

74) तावदास्व त्वमारूढो भूरिभूतिपरंपरः।
केवलं स्वयमारूढो हरि-र्भाति निरम्बरः॥

75) नागसे त इनाजेय कामोद्यन्महिमार्द्दिने।
जगत्-त्रितयनाथाय नमो जन्मप्रमाथिने॥

76) रोगपातविनाशाय तमोनुन्महिमायिने।
योगख्यातजनार्चाय श्रमोच्छिन्मंदिमासिने॥

77) रोगपातविनाशाय तमोनुन्महिमायिने।
योगख्यातजनार्चायः श्रमोच्छिन्मन्दिमासिने॥

78) प्रयत्येमान् स्तवान् वश्मि प्रास्तश्रान्ताकृशार्तये।
नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्ताय शान्तये॥

79) स्वसमान समानंद्या भासमान स मानघ ।
ध्वंसमानसमानस्तत्रासमानसमानतम्॥

80) सिद्धस्त्वमिह संस्थानं लोकाग्रमगमः सताम्।
प्रोद्धर्त्तुमिव सन्तानं शोकाब्धौ मग्नमंक्ष्यताम्॥

श्री कुन्थुनाथ स्तुति

81) कुन्थवे सुमृजाय ते नम्रयूनरुजायते।
ना महीष्वनिजायते सिद्धये दिवि जायते॥

82) यो लोके त्वा नतः सोतिहीनोप्यतिगुरुर्यतः।
बालोपि त्वा श्रितं नौति को नो नीतिपुरुः कुतः॥

83) नतयात विदामीश शमी दावितयातन।
रजसामन्त सन्देव वन्दे सन्तमसाजर॥

84) पारावाररवारापारा क्षमाक्ष क्षमाक्षरा।
वामानाममनामावारक्ष मर्द्धर्द्धमक्षर॥

श्री अरजिन स्तुति

85) वीरावाररवारावी वररोरुरुरोरव।
वीरावाररवारावी वारिवारिरि वारि वा॥

86) रक्ष माक्षर वामेश शमी चारुरुचानुतः।
भो विभोनशनाजोरुनम्रेन विजरामय॥

87) यमराज विनम्रेन रुजोनाशन भो विभो।
तनु चारुरुचामीश शमेवारक्ष माक्षर॥

88) नय मा स्वर्य वामेश शमेवार्य स्वमाय न।
दमराजर्त्तवादेन नदेवार्त्तजरामद॥

89) वीरं मा रक्ष रक्षार परश्रीरदर स्थिर।
धीरधीरजरः शूर वरसारर्द्धिरक्षर॥

श्री मल्लिजिन स्तुति

90) आस यो नतजातीर्य्यां सदा मत्वा स्तुते कृती।
यो महामतगोतेजा नत्वा मल्लिमितः स्तुत॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ स्तुति

91) ग्लानं चैनश्च नः स्येन हानहीन घनं जिन।
अनन्तानशन ज्ञानस्थानस्थानतनन्दन॥

92) पावनाजितगोतेजो वर नानाव्रताक्षते।
नानाश्चर्य सुवीतागो जिनार्य मुनिसुव्रत॥

श्री नमिनाथ स्तुति

93) नमेमान नमामेनमानमाननमानमा।
मनामोनु नुमोनामनमनोमम नो मन॥

94) न मे माननमामेन मानमाननमानमा।
मनामो नु नु मोनामनमनोम मनोमन॥

95) नर्दयाभर्त्तवागोद्य द्य गोवार्त्तभयार्दन।
तमिता नयजेतानुनुताजेय नतामित॥

96) हतभी: स्वय मेध्याशु शं ते दातः श्रिया तनु।
नुतया श्रित दान्तेश शुद्ध्यामेय स्वभीत ह॥

श्री नेमिनाथ स्तुति

97) मानोनानामनूनानां मुनीनां मानिनामिनम्।
मनूनामनुनौमीमं नेमिनामानमानमन्॥

98) तनुतात्सद्यशोमेय शमेवार्य्यवरो गुरु।
रुगुरो वर्य्य वामेश यमेशोद्यत्सतानुत॥

श्री पार्श्व जिन स्तुति

99) जयतस्तव पार्श्वस्य श्रीमद्भर्तुः पदद्वयम्।
क्षयं दुस्तरपापस्य क्षमं कर्तुं ददज्जयम्॥

100) तमोत्तु ममतातीत ममोत्तममतामृत।
ततामितमते तातमतातीतमृतेमित॥

101) स्वचित्तपटयालिख्य जिनं चारु भजत्ययम्।
शुचिरूपतया मुख्यमिनं पुरुनिजश्रियम्॥

श्री वर्धमान जिन स्तुति

102) धीमत्सुवन्द्यमान्याय कामोद्वामितवित्तृषे।
श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे॥

103) वामदेव क्षमाजेय धामोद्यमितविज्जुषे।

श्रीमते वर्धमानाय नमोन मित विद्विषे॥

104) समस्तवस्तुमानाय तमोघ्नेमितविक्त्विषे।
श्रीमतेवर्धमानाय नमोन मितविद्विषे॥

105) प्रज्ञायां तन्वृतं गत्वा स्वालोकं गोर्विदास्यते।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते॥

106) को विदो भवतोपीड्यः सुरानतनुतान्तरम्।
शं सते साध्वसंसारं स्वमुद्यच्छन्नपीडितम्॥

107) कोविदो भवतोपीड्यः सुरानत नुतान्तरम्।
शं सते साध्वसंसारं स्वमुद्यच्छन्नपीडितम्॥

108) अभीत्यावर्द्धमानेनः श्रेयोरुगुरु संजयन्।
अभीत्या वर्धमानेन श्रेयोरुगुरु संजयन्॥

109) नानानन्तनुतान्त तान्तितनिनुन्नुन्नान्त नुन्नानृत
नूतीनेन नितान्ततानितनुते नेतोन्नतानां ततः।
नुन्नातीतितनून्नतिं नितनुतान्नीतिं निनूतातनुं
तान्तानीतिततान्नुतानन नतान्नो नूतनैनोत्तु नो॥

110) वंदारुप्रबलाजवंजवभयप्रध्वंसिगोप्राभव
वर्द्धिष्णो विलसद्गुणार्णव जगन्निर्वाणहेतो शिव।
वंदीभूतसमस्तदेव वरद प्राज्ञैकदक्षस्तव
वंदे त्वावनतो वरं भवभिदं वर्यैकवंद्याभव॥

111) नष्टाज्ञान मलोन शासनगुरो नम्रं जनं पानिन
नष्टग्लान सुमान पावन रिपूनप्यालुनन् भासन।
नत्येकेन रुजोन सज्जनपते नन्दनन्ननन्तावन
नन्तृन् हानविहीनधामनयनो न स्तात्पुनन् सज्जिन॥

112) रम्यापारगुणारजस्सुरवरैरर्च्याक्षर श्रीधर
रत्यूनारतिदूर भासुर सुगीरर्योत्तरर्द्धीश्वर।
रक्तान् क्रूरकठोरदुर्द्धररुजोरक्षन् शरण्याजर
रक्षाधीर सुधीर विद्वर गुरो रक्तं चिरं मा स्थिर॥

उपसंहार

113) प्रज्ञा सा स्मरतीति या तव शिरस्तद्यन्नतं ते पदे

जन्मादः सफलं परं भवभिदी यत्राश्रिते ते पदे।
मांगल्यं च स यो रतस्तव मते गी: सैव या त्वा स्तुते
ते ज्ञा ये प्रणता जनाः क्रमयुगे देवाधिदेवस्य ते॥

114) सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्चनं चापि ते
हस्तावंजलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि संप्रेक्षते।
सुस्तुत्यां व्यसनं शिरो नतिपरं सेवेदृशी येन ते
तेजस्वी सुजनोऽहमेव सुकृती तेनैव तेज:पते॥

115) जन्मारण्यशिखी स्तवः स्मृतिरपि क्लेशाम्बुधेर्नौ पदे
भक्तानां परमौ निधिः प्रतिकृतिः सर्वार्थसिद्धिः परा।
वन्दीभूतवतोपि नोन्नतिहतिर्नन्तुश्च येषां मुदा
दातारो जयिनो भवन्तु वरदा देवेश्वरास्ते सदा॥

116) गत्वैकस्तुतमेव वासमधुना तं येच्युतं स्वीशते
यन्नत्येति सुशर्म-पूर्णमधिकां शान्तिं व्रजित्वाध्वना।
यद्भक्त्या शमिताकृशाघमरुजं तिष्ठेज्जनः स्वालये
ये सद्भोगकदायतीव यजते ते मे जिनाः सुश्रिये॥

SCAN TO WATCH

प्रार्थना

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

जयतु जिनशासनम्। जयतु जिनशासनम्।
मदन-मद-नाशकं, शिवद-सुख-शासकं।
अनात्म-विभासकं, स्वात्म-प्रकाशकं॥
जयतु जिनशासनम्। जयतु जिनशासनम्॥१॥
सर्व-करुणाकरं, गुणिजनादर-करं।
दुःखिनां हितकरं, शत्रु-समताधरं॥
जयतु जिनशासनम्। जयतु जिनशासनम्॥२॥
पाप-पञ्चान्तकं, मोह-विध्वंसकं।
शान्ति-संवर्द्धकं, मोक्ष-पुरुषार्थकं॥
जयतु जिनशासनम्। जयतु जिनशासनम्॥३॥

प्रमाण-नय-कीर्तनं, कदाग्रह-कर्तनं।
अनेकान्तार्थदं, रत्नत्रयात्मकं॥
जयतु जिनशासनम्। जयतु जिनशासनम्॥४॥
विरोधिनय-मर्दनं, विवक्षित-वादनं।
परिग्रह-मोचकं, अहिंसा-घोषकं॥
जयतु जिनशासनम्। जयतु जिनशासनम्॥५॥

SCAN TO WATCH

१. वीराष्टकम् (बसन्ततिलकाच्छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

गोशालपूरणमतादिबहुप्रवादै-
राप्ताभिमानघनवह्निविदग्धमानैः।
तीर्थंकरोऽहमिति घोषित एककाले
चिख्यासऽतिशयमाप्त न हि स्वकीयम्॥ १ ॥

सिंहासनादिविभवैः परिवेष्टितोऽपि
दिव्यातिदिव्यरमणीकरसंस्तुतोऽपि।
रागोरगेन चलितो न यथार्थतो यन्
नेता त्वमेव भगवन्नसि नो हितैषी॥ २ ॥

संस्तूयसे बुधजनैरिह संस्तवार्ह!
संस्तौम्यहं तदपि भक्तिबलातिभाग्यैः।
यन्मार्गतः सुविगतं हि गजस्य यूथं
किं तत्र यान्ति सततं करिशावका न? ॥ ३ ॥

त्वदर्शनेन मनसीदृश उच्चकैश्च
जातः प्रहर्षमयभूरिविभिन्नभावः।
साक्षादवाप्य निचितां चिति सौख्यभूतिं
किं वा भवेदमुकभाव उपाश्रयामि॥ ४ ॥

गर्भोत्सवे प्रतिदिनं पृथुरत्नवृष्टि-
र्जन्मोत्सवे स्नपनपात्रमभूत् सुमेरौ।
ज्ञानोत्सवेऽशुभदतीवसभा पृथिव्यां
मोक्षोत्सवे विलसते किल सिद्धभूमौ॥ ५ ॥

जातद्विषोर्विनिहतो हि विरोधभावो
गोसिंहयोश्च पिबतोर्जलमेकपात्रे।
देवाधिदेवचरणातिशयेन चित्र-
मेष प्रभाति विभवस्त्वयि साम्यभावात्॥ ६ ॥

ज्ञानं त्वदीयममृतास्पदमाद्यमाप्यं
रूपञ्च चामरयुतं वरदामरार्च्यम्।
त्रैलोक्यसारमननं मननीयमिष्टं
विश्रम्भधाम सुखदं सदयं सदेदम्॥७॥

लोके बुभूविथ यथाऽस्मि तथाऽत्रकाले
मोहाभिभूतमनसा भ्रमधीबलेन।
हे वीरदेव! कुरुतात् करुणां कृपालो!
यस्मादहं तव महात्मसमं भवामि॥८॥

द्रुतविलम्बित छन्द

त्वयि यतौ मम रागविचेष्टनं
परमकारणमस्ति हि मुक्तये।
इति विचार्य कृता तव संस्तुति-
र्जगति को न करोति नृपे नुतिः॥९॥

SCAN TO WATCH

२. भरताष्टकम् (उपजाति छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

आकुञ्चितस्निग्धभुजङ्गकेशं, संपाटयन्नाशु निसर्गभेषम्।
संप्राप्तकाले समवाप बोधं, नाभेयजं तं भरतं यजेऽहम् ॥१॥

आद्यस्य तीर्थाधिपतेर्युगादौ, वाद्यो हि सूनुः पृथुसानुरद्रौ।
आद्यश्च चक्री खलु चक्रभृत्सु, नाभेयजं तं प्रणमामि सत्सु।२॥

षट्खण्डभूमेर्विजयी किलाले, निखातनामा वृषभाख्यशैले।
यन्नामतो भारतवर्षकीर्ति-र्नाभेयजातस्य जयेत्सुकीर्तिः॥३॥

संस्थापितो येन तुरीयवर्णो, वर्णेन रूढिं लभते सुवर्णम्।
अष्टापदेऽकारि च चैत्यगेहं, नाभेयजं तं भरतं यजेऽहम् ॥४॥

चक्रच्छलेनैव जयस्य लक्ष्मीर्ययौ पुरस्तात् क्रमयोर्विधेश्च।
ललाटपट्टे तु बबन्ध पट्टं, बुद्धेः प्रवन्दे भरतक्रमे च ॥५॥
कैलासशैलं पुरुपादपूतं, शुभ्रं विशालं वृषवद् विरूढम् ।
तमारुरुक्षुर्निकटं मुमुक्षुर्नाभेयजं तं परिणौमि मंक्षु ॥६॥
संसारवार्धौ विनिमग्नताया, हेतुर्विदुवैभवलुब्धता या।
तथापि यः पङ्कजवद्धलिप्तस्,तं संस्तुमो वो गृहसंस्थमुक्तः।७॥
द्रष्टाऽर्कचैत्यस्य यथेष्टदाता, शारीरदण्डस्य च यो विधाता।
मेरोरिवाभाज्जिनराट्सभायां, शुद्धयाऽर्चयेऽहं भरतं पृथिव्याम्।८॥

मालिनी (छन्द)

इति सुखयति कामं भुक्तिमुक्तिप्रदानं
तव गुणगणगानं भव्यजीवैकयानम्।
सततनवसुभावैर्नन्नमीमीष्टदं वै
विधिहतवरमल्लं भारतेशं प्रणम्यम्॥९॥

SCAN TO WATCH

३. शारदाष्टकम् (श्री छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

भाषितमर्हज्जिनवरदेवैर्गुम्फितमेतद् गणधरदेवैः।
भक्तिवशोऽहं श्रुतयुतवाणीं नौमि सदा भारति पथि गन्तुम्।१॥
वीरगिरीशोर्जितमुखपद्माद्, गौतमकुण्डेऽपतदथ पूते ।
मोहमहीभृच्चलनसमर्थात्, स्तौमि मुदाऽहं श्रुतपदगङ्गाम्॥२॥
शोभितवृत्तं नययुतकूलं, हंसयतीनां मधुरसुघोषम्।
चेतनभङ्गोच्छलनसुपूरं, श्रीजिनवाक्यनदं विनमामि॥३॥
यत्र निमग्ना विबुधमनुष्याः, स्नापितवन्तो दुरितमनश्यन्।
तत्र गभीरे शुचिनि सुतीर्थे,स्नातुमतोऽहं सपदि यतोऽस्मि।४॥
शीतलनीरं हिमगिरिखण्डं, चन्द्रसिता वा सुखयति नो मे।
श्री जिनवाणी जगति हि यादृग्,जातिजरावासितहृदयं यत्॥५॥
चेतनचण्डद्युतिमुकुरान्ते , पातितवैश्यं सहजविलासम्।
केवलबोधाधिकगुणमूर्ते देहि विशुद्धिं नवगुणलब्धिम्।६॥

भानुरुचिः क्वोडुकिरणदीप्तिः, कोकिलवाणी बकवचनं क्व।
वीरमतं क्वेतरमततीर्थं, भव्य! परीक्ष्योचितमवसेयम्।७॥
हस्तचतुः सन्निभमनु-योगं, स्यात्पदमेकासनमनुभावम्।
सर्वविभाषामयतनुसारं, ध्यायतु चित्ते निशदिनमत्र॥८॥

SCAN TO WATCH

४. कुन्दकुन्दाष्टकम् (स्रग्विणी छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

सत्यपन्थाश्च येन प्रतिष्ठापितः, सत्यवादेन देवी गिरौ निर्जिता।
सत्यसन्देशको यो विनापेक्षया, कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥१॥
प्राभृतं भूरिशो येन निर्मापितं, सत्यदैगम्बरं वर्त्म यत्राधृतम् ।
यद्वचोभिर्मता यस्य सत्यात्मता, कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥२॥
सर्वभव्यार्थिनां मुक्तिमार्गैषिणा, मात्मदृग्बोधसौख्याधिकाकांक्षिणाम्।
येन वृत्तं प्रदत्तं हि निः श्रेयसं, कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥३॥
योऽत्र देवेन्द्र-भूपेन्द्रदुर्वादिभिः पूर्वसूरीश्वरै-र्मुक्तिकामार्थिभिः।
भूरि संस्तूयते स्मर्यते वन्द्यते, कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥४॥
भव्यजीवाब्जिनीनाञ्च यो भास्करो, यस्य कुन्दावदाता सुदन्तावली।
नासिका तु प्रमाणं द्विनेत्रं नयौ, कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥५॥
यस्य शास्त्रे पदार्थाश्च तत्त्वानि वा, द्रव्यपर्यायभावस्वभावा गुणाः।
स्पष्टमाभान्ति वै दर्पणे बिम्बवत्, कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥६॥
यस्य सारत्रयं शोभते भूतले, यस्य वाणी प्रमाणात्मिका मन्यते।
शेमुषी यस्य मोहादिभिः शून्यका। कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥७॥
शुद्धयोगार्पणाय प्रयत्नः सदा, शुद्धजीवास्तिकायाय धीसम्पदा।
शुद्धतत्त्वार्थतायी च यः सर्वदा, कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा ॥८॥

५. समन्तभद्राष्टकम् (स्रग्विणी छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

सन्तःसमन्तभद्रास्ताऽऽगमनयेभ्यः कुमुच्चन्द्राः।
जिनमतसम्मुखचन्द्राः पथदर्शी मे भवेद् भुवि भद्राः॥१॥
प्राणातिपातकृपणाः परमते-भगण्डखण्डैकप्रणाः।
भव्याब्जकाय चण्डा ईडेऽहं तकं मार्तण्डाः ॥२॥
यस्यार्चितपदसेवा कल्पवल्लीव गी वरा प्रमुदे हि।
न्यायाक्षः कविदेवो नन्द्यात् सौख्यं प्रभो! देहि॥३॥
देवागमसद्ग्रन्थाः स्वीकृता दुष्टपथभ्रमद्भिः पथिभिः।
पुष्यंस्त्वं निर्ग्रन्थं मतं ततः सम्मतं कृतिभिः॥४॥
नामुञ्चो दृग्द्रविणं विस्फेटयितुं वपुषि जठरव्याधिम्।
मत्वा द्रविणकुलेऽहं जन्माप्यस्ति विषमव्याधिः ॥५॥
चित्रं प्रभावकं वाऽऽस्थया साकमेष यत्प्रवरवृत्तम्।
अभिनौमि कथा किं वा व्रतेन तं तन्महावृत्तम्॥६॥
प्रथमसारस्वतार्यः संस्तुतिकारः प्राज्ञः कविराद्यः।
प्राभूद्यो प्रमुखार्यः श्रुतधरार्यदत्तज्ञानमासाद्य॥७॥
नानुसूयान्मदाद्वा महज्जिन्मतं भवान् प्रचारितवान्।
तीर्थकरत्वमुपेत्य च समाप द्युर्दयया सत्वान् ॥८॥

श्लोक

शैशवे शान्तिवर्माऽऽ, ख्यातं प्रख्यापितं शान्तवर्त्म।
मुनौ हि निरस्तमोहो भूत्वा विजहार वृषमोहः॥९॥

६. शान्त्यष्टकम् (वंशस्थच्छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

सुभारते येलुगमे निवासको हि भीमगौडा सुजनेष्टपाटिलः।
सुसत्यवत्यात्मज एव भूतले स सातगौडा मुनिशान्तिसागरः॥१॥
सुरोपमाङ्गश्च बलिष्ठदेहवान् तथाऽन्तरङ्गं जिनवर्मनीरितम्।
महीभुवां यो निरपेक्षबांधवः स शान्तिसिन्धुर्हृदि मे सदा वसेत्॥२॥

नवाब्दिकेऽल्पायुषि यद्विवाहितो मृतेऽपि तस्या न तथा पुनः कृतः।
येनाऽयुषो मुक्तिरमा सुसेविता स शान्तिसिन्धुर्हृदि मे सदा वसेत्॥३॥
दिगम्बरीभूय सरन् स्वयं पुरा प्रबोधयन् लुप्तमुनिप्रवृत्तिकान्।
निजात्मसिद्धिं समवाप सुन्दरीं स शान्तिसिन्धुर्हृदि मे सदा वसेत्॥४॥
शठैर्जनैर्भीमविशालपन्नगैः पिपीलिकाभिः प्रचुरोपसर्गतः।
तपोधनोऽक्षोभत योगतो न यः स शान्तिसिन्धुर्हृदि मे सदा वसेत्॥५॥
महाव्रतप्राज्यविभूतये कला सुधीगणानां परिवेषतो वृतः।
शशाङ्कशोभेव विशोभते स्म यः स शान्तिसिन्धुर्हृदि मे सदा वसेत् ।६॥
शिलासु तिग्मे शिशिरे तरोस्तले गिरौ गुहायां समाधाद्यमद्वयम्।
तपस्तपस्यन् समतां विचिन्तयन् स शान्तिसिन्धुर्हृदि मे सदा वसेत्॥७॥
समाधिमादाय सुबुद्धिपूर्वकस्तपः श्रुतं सारमवाप्य देहतः।
चकार भिन्नञ्च चिदात्मसंपदां स शान्तिसिन्धुर्हृदि मे सदा वसेत्॥८॥

श्लोक

भाद्रे शुक्ले द्वितीयायां कुन्थले पर्वते शुभे।
पक्षैकशून्यपक्षे हि विक्रमे स दिवं ययौ॥९॥

SCAN TO WATCH

७. ज्ञानाष्टकम् (वसन्ततिलका छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

श्रीमच्चतु - र्भुजभुजारमणास्पदीया
सौभाग्यवद्-घृतवरी तनयश्च तस्याः।
योऽभूत् कवित् कविवरो यमधर्ममस्तु
तज्ज्ञानसागरयतेः पदयोर्नमोऽस्तु॥१॥

वीरोदयप्रभृतयो भुवि यस्य शस्ता
ग्रन्थाश्च लक्षणभृता विदुषां प्रसक्ताः।
व्याहन्ति मंक्षु तिमिरारिरिवाघवस्तु
तज्ज्ञानसागरयतेः पदयोर्नमोऽस्तु॥२॥

भिन्नार्त्तरौद्रहृदयो जननार्त्तदूरो
मिथ्याप्रपञ्चरहितः शुभभावपूरः।

शुद्धात्मवृत्तिरसिकः सुखमात्मनोऽस्तु
तज्ज्ञानसागरयतेः पदयोर्नमोऽस्तु॥३॥

पंचाक्षकृष्णफणिने पृथुवैनतेयः
कामानलस्य जलदो जिनभानुभा यः।
गङ्गापवित्रजलवद्विमलं मनस्तु
तज्ज्ञानसागरयतेः पदयोर्नमोऽस्तु॥४॥

भूरोमलेऽपि विमलः कलिरूढिपङ्काज्
ज्ञानार्णवे विमलचिन्मयभङ्गलीनः ।
यस्मात् सदैव कुशलं जगतां समस्तु
तज्ज्ञानसागरयतेः पदयोर्नमोऽस्तु॥५॥

चित्ते दया विनिवसत्यभिभूतमेति
दुष्टापकीर्तिरघताऽपि विभीतिमेति।
आचार्यवर्य! समतासुखवस्तु नस्तु
तज्ज्ञानसागरयतेः पदयोर्नमोऽस्तु॥६॥

यत्नात् शशास वृषवीरशिवार्यसंघे
सिद्धान्तसंस्कृतकथादिसुशास्त्रसंघम् ।
पूज्योऽपि योऽत्र मृदुतालयकेतुरस्तु
तज्ज्ञानसागरयतेः पदयोर्नमोऽस्तु॥७॥

त्वं चित्तगेहकमलं मुनिप! प्रविश्य
सद्ध्यानतोरणसमागत आप्रतिष्ठ।
भिक्षाचरोऽपि विददाति सुवस्तु नस्तु
तज्ज्ञानसागरयतेः पदयोर्नमोऽस्तु॥८॥

मालिनी छन्द

सुनयकमलचन्द्रं विश्वशान्त्यैकमन्त्रं
विविधविबुधमान्यं चित्तभूपुण्यधान्यम्।
भवजलजतुषारं मूर्तिमध्यात्मसारां
वृणु सुगुणमगम्यं ज्ञानसूरिं 'प्रणम्य'॥९॥

८. विद्याष्टकम् (वसन्ततिलका छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

SCAN TO WATCH

सुश्रीमतीह जननी च पिता मलप्पा
जज्ञे द्वितीयतनयो भुवि योऽद्वितीयः।
विद्याधरोऽपि सुतरां हृदयस्थविद्यो
विद्यादिसागरमुनीन्द्र! हरारिविद्याः ॥१॥
पापास्पदानि निविड़ानि विभञ्जनार्थं
पुण्यास्पदानि विविधानि विवर्धनार्थम्।
कर्माणि वर्यवर! ते शरणं दधेऽहं
प्रीणातु मां भवहरं चरणारविन्दम्॥२॥
सद्दृष्टिबोधचरणावरणै - कभूषा-
सद्वीर्यवासिततपोधरणैकवेषम् ।
यस्यांगदेवनिलयस्य विभूषणं स्यात्
तस्य प्रवन्द्यचरणं परिणौमि भक्त्या॥३॥
यस्मान्भवद्विशद - देहमनोविचेष्टास्
स्याद्वादगुम्फितवचाः प्रमुदे विशुद्धाः।
तस्मात् सदैव सुजनैः परिवेष्टमानश्
चन्द्रो यथा वियति राजति तारकाभिः।४॥
संसारसिन्धुमतुलं तरितुं तु कोऽलं
यस्मिन् विमूढमनसा विगतोऽतिकालः।
विद्यापते! गुरुगुरो! कृपया महाध्वा
प्राप्तो मयाऽपि भवतो भवतः सुरक्ष॥५॥
नाशीर्वचः कमपि पश्यति नापि दृग्भ्या-
मात्यन्तिकं विरतभावमुखां विधत्ते ।
तस्मादहं भगवतोप्यनुभामि शस्यो
नम्रे जने वितनुते रतिमेष सूरिः॥६॥
येनैध्यते विनयमूलमुदस्य दोषं
ज्ञानार्कभूरिकिरणैर्भुवि पुण्यसस्यम्।
क्षिप्तं क्षणं प्रतिनवं जगतां हिताय

किं चिन्त्यते नु महते सुगुरोर्हिताय॥७॥
यावत्प्रतिष्ठत इला - गगनाम्बुराशि-
मार्तण्ड-कारितदिवारजनीविभागः ।
यावत्प्रवन्द्यजिनचैत्यवृषञ्च भूमौ
तावत्तनोतु सुगुरोर्गुणकीर्तिगानम् ॥८॥

मन्दाक्रान्ता छन्द

विद्यावार्धेः शुभकरकृपाबाणविद्धं शिरो मे
बोधेर्लाभो विबुधचरितं चास्तु तुल्यात्मभावः।
कामारातीभमददलने साहसं पापताति –
दूरे प्रास्तां हृदयसरसीष्टं चिरं वर्धतां वा॥९॥

९. मौनाष्टकम् (उपजाति छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

ब्रुवन्ति ये ते मुनयो न धीरा, तिष्ठति मौने सुधियोऽतिवीराः।
विद्यागुरोरार्षवचः किलैत, दस्तीति मौनं परमार्थमित्रम्॥१॥
बलं कियन्तंन्मनसीति मानं, तथाप्यनुग्राहकशक्तिशापम्।
विज्ञायते मौनमनोमुनीनां, ततोऽस्ति मौनं परमार्थमित्रम्॥२॥
मौनाभिसन्ध्याश्रितमानसानां नो राग-विद्वेषमथापि तेषाम्।
क्रोधो न मानो न मदो विलोभस्ततोऽस्ति मौनं परमार्थमित्रम्॥३॥
मौनेन वै वाग्बलिनो लभन्ते, चान्तर्मुहूर्ते परिवर्त्तनं ते।
श्रुतस्य पूर्णस्य सदा गणेशास्ततोऽस्ति मौनं परमार्थमित्रम्॥४॥
यदृश्यते रूपमिहापि किञ्चिज, जानाति तन्नेति ममात्मरूपम्।
यज्ज्ञायकोऽहं सुविचार्य नूनं, ततोऽस्ति मौनं परमार्थमित्रम्॥५॥
प्रगृह्य दीक्षां समुपैति मौनं, तीर्थंकरोऽपीति किमन्यवृत्तेः।
येनैव कैवल्यविभूतिमेति, ततोऽस्ति मौनं परमार्थमित्रम् ॥६॥
ऋद्धिश्च मौनेन वचः प्रसिद्धि-र्मुनौ व्रतं वास्ति सुखस्य वृद्धिः।
प्रवादनं व्याकुलताफलं यत्, ततोऽस्ति मौनं परमार्थमित्रम्॥७॥
मौनैकतानाः समतैकशाणा, निरीहनिर्भीकतया चरन्ति ।
ये हि प्रणम्या भुवि तेऽभिनन्द्यास्ततोऽस्ति मौनं परमार्थमित्रम्॥८॥

श्लोक

कार्ये चावश्यके पापे, भो ! भोगे भोजने भृशम्।
मौनं पाल्यं महद्भिर्हि, मान्यं संयमबृंहणम् ॥९॥

SCAN TO WATCH

१०. निजबोधाष्टकम् (उपजाति छन्द)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

प्रशान्तभावाभ्युदयेन चित्ते, शंकाम! चारित्रमिदं दधच्च।
निरीहवृत्त्यर्पितभावनातः, स्वर्गापवर्गं सुलभं लभस्व॥१॥
यावन्न चित्तं खलु मारितं तु, मतञ्च वित्तं न निजात्मरूपम्।
न चिंतितं चारुचिदात्मकञ्च, शिवं न तावन् मुनिनाशु यातम् ॥२॥
मानापमाने सदने रणे वा, कालेऽप्यकालेऽयसि काञ्चने वा।
पङ्केप्रियाङ्के गगने गिरीशे, यतिर्विधत्ते तुल्यात्मवृत्तिम् ॥३॥
भोगाभिलाषानलदाहतप्तः, प्राप्नोति यांस्तैश्च तथाप्यतृप्तः।
दुष्त्याज्यभोगान्परिभंगुरांस्तान्, विना विचारं त्यज दूरतस्त्वम्॥४॥
बन्धस्य भो ! भावकभाव्यभावो, ज्ञज्ञेयभावो हि शिवस्य हेतुः।
प्रकीर्तितः प्रत्यय एक एव, समासतः श्रीगुरुणा कृपातः ॥५॥
विध्यात्ममध्ये विविधं विदित्वा, प्रज्ञाश्रितेनात्मचिदं विदित्वा।
निजानुभूत्यात्मकचित्तवृत्त्या, तां छिन्धि शीघ्रं भवसन्ततिर्या॥६॥
सञ्चिन्त्य नित्यत्वमयं स्वभावं, त्वं भव्य! सुस्थो भव मुञ्च दैन्यम्।
द्रव्यस्य जातिर्न तथाऽस्ति हानिः, पर्यायमेव व्ययते समेति॥७॥
अनित्यचक्षुः प्रविधार्य नित्यं वृथाकुलत्वं कुरु माभिमानम्।
सर्वे पदार्थाः परिणामयुक्ता, विनश्वराश्च प्रतिभासितेति ॥८॥

कार्ये चावश्यके पापे, भो ! भोगे भोजने भृशम् ।
मौनं पाल्यं महद्भिर्हि, मान्यं संयमबृंहणम्॥९॥

आचार्य श्रीज्ञानसागर प्रशस्तिपत्रम्

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

SCAN TO WATCH

उपजाति

श्रीमूलसंघे स्वसमाधिमुख्ये, श्री कुन्दकुन्दान्वय उत्तमेऽस्मिन्।
श्रीशान्तिसिन्धुर्भुवि भव्यबन्धु, निरुद्धभट्टारकराजपान्थः॥१॥

शार्दू लविक्रीडित

तत्पट्टे ऽजनि वीरसागरसुधीः स्याद्वादरत्नाकरः
श्रीवीराधिपधर्म केतु-पवनः संसे व्यपादोत्पलः ।
तत्पट्टेऽभवदागमार्थकुशलः सैद्धान्तिकस्तत्त्ववित्
श्रीमानाप्तपदद्वयस्य नितरां ध्याता शिवार्यो वरः॥२॥

आर्या

तस्य प्रथमः शिष्यो ज्ञानसागरश्चागमनेत्रो दिव्यः।
निस्पृहनिरीहचेता यद्वार्ताहं कथयामीतः॥३॥

चौपाई

देशे भारतवर्षे प्रान्ते, राजस्थाने सौख्ये शान्ते।
राणौलीग्रामे कौ रम्यः, पुत्रो जज्ञे सदोपगम्यः॥४॥

वसन्ततिलका

श्रीमच्चतुर्भुजभुजारमणास्पदीया
सौभाग्यवघृतवरी तनयस्तदीया।
भूरामलाह्वयविपश्चिदपास्तकामो
योऽभूत् कवित् कविवरः समकालिदासः॥५॥

प्रमाणिका

अधीत्य संस्कृतागम-प्रमाणतर्कदर्शनम्।
विलिख्य लेखवृत्तिगद्यपद्यभूरिभारतीम्॥६॥
पदे च पाठके प्रतिष्ठितः स नैकसंघके।
तथापि वीरसागरात् समाप्य सप्तमं व्रतम् ॥७॥
अभूल्लघोर्मुनेरिव स्वतः ततः कलापकः ।
महाव्रतेन भूषितः शिवार्यतः सतां मतः॥८॥
अलंकृतश्च सूर्युपाधिना च वृत्तचक्रिणा।

पुनातु मे मनो यथा दिवाकरः क्षितेस्तमः॥९॥

अनुष्टुप्

भाषायां संस्कृते तेन कृतमेकादश तथा।
काव्यं सल्लक्षणोपेतं विविधं विषयाभृतम्॥१०॥

उपजाति

जयोदयाख्यं चरितं जयस्य, महासुकाव्यं रचितं वरस्य।
छन्दोऽभिपूर्णं रसतोऽभिषिक्तं, जीयादलंकारयुतं जगत्सु॥११॥
वीरोदयाख्यं महनीयकाव्यं, शर्माभ्युदायोऽपि च वीरपस्य।
तथा स्वरूपं हि कथं भवेत्त-, द्दर्षेः समाख्यं लघुकायकाव्यम्॥१२॥

अनुष्टुप्

सुदर्शनमहाकाव्यं विशुद्धादर्शदर्शवत् ।
भद्रोदयं च जानीयात् सर्गतुल्यं हिभद्रदम् ॥१३॥
गद्यपद्यमयं चम्पू-काव्यं व्यक्तं दयोदयम् ।
वरं सम्यक्त्वसाराख्यं शतकं कापथघट्टनम्॥१४॥

चौपाई

मुनिमनोरञ्जनाऽशीतिस्तु, मनोमुनेर्मोदाय सदाऽस्तु ।
एवं द्वादशभक्तिसंख्यको, भक्तिसंग्रहो ग्रन्थो ग्रथितः॥१५॥
हितसम्पादकमिष्टं काव्यं, निःप्रतिमं सर्वं विज्ञेयम्।
अथ मातरि भाषायामुक्तं, यत्तदहं प्रवदामि समस्तम्॥१६॥
भाग्यपरीक्षाविधो विधेयो, गुणसुन्दरवृत्तान्तो ध्येयः।
पवित्रमानवजीवनसंज्ञः पठनीयः सर्वैः भुवि सद्यः॥१७॥
काव्यं श्रेष्ठं ऋषभचरित्रं, चरितार्थं पुरुषार्थपरत्वम्।
अथ गद्ये यद्रचितं तेन, तन्निगदामि त्वं शृणु सर्वम्॥१८॥
सचिद्विवेचनमहो च मुख्यं, सचिद्विचाराख्यं शिवसख्यम्।
कुन्दकुन्द एवं जिनधर्मः, सरलविवाहविधोचितमर्म॥१९॥
इतिहासस्य पृष्ठो वै नाम, शोधनिबंधो लघुपरिमाणः।
समयसारशास्त्रस्य सुटीका, विहितापैतविवादा सैका ॥२०॥

वसन्ततिलका

गद्याकृतिर्विदितरत्नकरण्डशास्त्रे

शब्दार्थ भावयु-तमानवधर्मसंज्ञा।
भावानुवाद उदयादिविवेकनामा
पद्यात्मकः **समयसारविशुद्धशास्त्रे**॥२१॥

सारे कृतिः प्रवचनस्य मनोऽभिरामा
सुश्लोकभारसहिता किल देववाण्याम्।
तत्त्वार्थसूत्रसमयस्य च पञ्चमी वा
सर्वा ललाटतिलकैव हि रोचमाना॥२२॥

शार्दूलविक्रीडित

कर्त्तव्याय पथप्रदर्शनमिदं गद्यात्मकाख्यानकं
तेनाऽकारि चरित्रवृद्धिजनकं विद्यार्थिनां दीपवत्।
नित्यं षोडशतीर्थनायकजिन-श्रीशान्तिनाथस्य भो!
भव्यानां भुवि भुक्तिमुक्तिमतुलां दातुं विधानं क्षमम् ॥२३॥

स्तोत्रं देवागमं चाष्टौ प्राभृतं नियमस्य च।
एषां पद्यानुवादञ्च भक्तीनामपि चाकरोत् ॥२४॥

उपजाति

विद्यार्णवस्तु प्रथमोऽस्ति शिष्यो
विवेकावार्धिश्च विजयो मुनिश्च।
आर्योऽथ देशव्रतिषूत्तमीय
एकस्तथा सन्मतिनामधेयः ॥२५॥

वा क्षुल्लके पूज्यपदेऽधिरूढः
श्रीसम्भवो वै विनयः सुखाख्यः।
स्वरूपमोदाख्य इ चिन्मयी वा
कृता कृतिर्वर्णिसमाधिबह्वी ॥२६ ॥

अनुष्टुप्

षण्मासपूर्वं हि कृतप्रयासः
समाधिसिद्ध्यै स्वपदं प्रदाय।
विद्यार्णवायाऽभवदस्तमानः
'प्रणम्य' तं स्वः सुविराजमानः॥२७॥

स्वयंभू-स्तोत्रम्

SCAN TO WATCH

१. अथ वृषभजिनस्तवनम्

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले, समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः, क्षपाकरेणेव गुणोत्करैःकरैः।१।
प्रजापति र्यः प्रथमं जिजीविषूः, शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः।२।
विहाय यः सागरवारिवाससं, वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः।३।
स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा, निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा, बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः।४।
स विश्वचक्षु-र्वृषभोऽर्चितः सतां, समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो, जिनो जित क्षुल्लकवादिशासनः।५।

२. श्री अजितजिनस्तवनम्

यस्य प्रभावात् त्रिदिवच्युतस्य, क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः।
अजेयशक्ति-र्भुवि बन्धुवर्गश्, चकार नामाऽजित इत्यबन्ध्यम्।६।
अद्यापि यस्याऽजित-शासनस्य, सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं ,स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके।७।
यः प्रादुरासीत् प्रभुशक्तिभूम्ना, भव्याशयालीनकलङ्कशान्त्यै।
महामुनि-र्मुक्तघनोपदेहो, यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान्।८।
येन प्रणीतं पृथुधर्मतीर्थं, ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गाङ्गं ह्रदं चन्दनपङ्कशीतं, गजप्रवेका इव घर्मतप्ताः।९।
स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रुर्, विद्याविनिर्वान्तकषाय-दोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितो जितात्मा,जिनश्रियं मे भगवान् विधत्ताम्।१०।

३. श्री शम्भवजिनस्तवनम्

त्वं शम्भवः संभवतर्षरोगैः, संतप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो, वैद्यो यथाऽनाथरुजां प्रशान्त्यै।१।
अनित्यमत्राणमहं क्रियाभिः, प्रसक्तमिथ्याऽध्यवसायदोषम्॥
इदं जगज्जन्मजरान्तकार्तं, निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम्।२।
शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं, तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।

तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं, तापस्तदायासयतीत्यवादीः।३।
बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू, बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं,नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता।४।
शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो, ममार्य! देयाः शिवतातिमुच्चैः ।५।

४. श्री अभिनन्दनजिनस्तवनम्

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये, द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चाऽयुजत् ।६।
अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि च, ममेदमित्याभिनिवेशिकग्रहात्।
प्रभंगुरे स्थावरनिश्चयेन च, क्षतं जगत्-तत्त्वमजिग्रहद्भवान्।७।
क्षुदादिदुःखप्रतिकारतःस्थितिर्, न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनो रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत्।८।
जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्ध दोषतो, भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते ।
इहाऽप्यमुत्राऽप्यनुबन्ध दोषवित् कथं सुखे संसजतीति चाऽब्रवीत्।९।
स चाऽनुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्-तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो! लोकहितं यतो मतं, ततो भवानेव गतिः सतां मतः।२०।

५. श्री सुमतिनाथजिनस्तवनम्

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं, स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति, सर्वक्रियाकारकतत्त्वसिद्धिः।१।
अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं, भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे, तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्।२।
सतः कथंचित् तदसत्त्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषुप्रसिद्धम्।
सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं, स्ववाग्-विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्।३।
न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमःपुद्गलभावतोऽस्ति।४।
विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ, विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं, मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ।५।

६. श्री पद्मप्रभजिनस्तवनम्

पद्मप्रभः पद्म पलाश लेश्यः पद्मालयालिङ्गित-चारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां, पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः।६।
बभार पद्मां च सरस्वतीं च, भवान् पुरस्तात् प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां, सर्वज्ञलक्ष्मी ज्वलितां विमुक्तः।७।
शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते, बालार्करश्मिच्छविरालिलेप।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्, छैलस्य पद्माभ मणेः स्वसानुम्।८।
नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं, सहस्र-पत्राम्बुजगर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो, भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै ।९।
गुणाम्बुधे-र्विप्रुष मप्यजस्रं, नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक् किमुताति भक्तिर्मां बाल माला पयतीदमित्थम्।१०।

७. श्री सुपार्श्वजिनस्तवनम्

स्वास्थ्यं यदाऽऽत्यन्तिकमेष पुंसां, स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा।
तृषोऽनुषङ्गान् न च तापशान्तिरितीदमाख्याद् भगवान् सुपार्श्वः।१।
अजङ्गमं जङ्गमनेय यन्त्रं, यथा तथा जीवधृतं शरीरम् ।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च, स्नेहो वृथाऽत्रेति हितं त्वमाख्यः।२।
अलंघ्यशक्ति- र्भवितव्यतेयं, हेतु-द्वयाविष्कृत-कार्यलिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्तः, संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः।३।
बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः।
तथापि बालो भयकामवश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः।४।
सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता, मातेव बालस्य हिताऽनुशास्ता।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता, मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ।५।

८. श्री चन्द्रप्रभजिन स्तोत्र

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम्।६।
यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोऽरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च, ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम्।७।
स्वपक्षसौस्थित्यमदाऽवलिप्ता, वाक्-सिंहनादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादैः ।८।
यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः।

अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः, समन्तदुःखक्षयशासनश्च ।९।
स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां, विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः,पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे।१०।

९. श्री सुविधिजिनस्तवनम्

उपजाति छन्द

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं, प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे! स्वधाम्ना, नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः।४१।
तदेव च स्यान् न तदेव च स्यात्, तथाप्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च, विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात्।४२।
नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर् न नित्यमन्यत्प्रतिपत्ति-सिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्ग-निमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ।४३।
अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं, वृक्षा इति प्रत्ययवत् प्रकृत्या।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो, गुणानपेक्षे नियमेऽपवादः।४४।
गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं, जिनस्य ते तद् द्विषतामपथ्यम्।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां, ममापि साधोस्तव पादपद्मम्।४५।

१०. श्री शीतलजिनस्तवनम्

वंशस्थ छन्द

न शीतलाश् चन्दनचन्द्ररश्मयो, न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः।
यथामुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः, शमाम्बुगर्भाः शिशिराविपश्चिताम्।४६।
सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं, मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः।
व्यदिध्यपस्त्वं विषदाहमोहितं, यथा भिषग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहम्।४७।
स्वजीविते काम सुखे च तृष्णया, दिवा श्रमार्ता निशि शेरते प्रजाः
त्वमार्य नक्तंदिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि।४८।
अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया, तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते ।
भवान् पुनर्जन्मजराजिहासया, त्रयीं प्रवृत्तिं समधीरवारुणत्।४९।
त्वमुत्तमज्योतिरजः क्व निर्वृतः क्व ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः।
ततः स्वनिःश्रेयसभावनापरैर्, बुधप्रवेकैर्जिनशीतलेड्यसे ।५०।

११. श्री श्रेयोजिनस्तवनम्

उपजाति छन्द

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्, नेको यथा वीतघनो विवस्वान्।५१।
विधि र्विषक्तप्रतिषेधरूपः, प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम्।
गुणोऽपरो मुख्यनियामहेतुर्, नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते।५२।
विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो, गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्, द्वयावधिः कार्यकरं हि वस्तु।५३।
दृष्टान्तसिद्धावुभयो-र्विवादे, साध्यं प्रसिद्ध्येन् न तु तादृगस्ति।
यत्सर्वथैकान्तनियामिदृष्टं, त्वदीय दृष्टिर्विभवत्यशेषे।५४।
एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिर् न्यायेषुभि-र्मोहरिपुं निरस्य।
असि स्म कैवल्यविभूतिसम्राट्, ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः।५५।

१२. श्री वासुपूज्यजिनस्तवनम्

उपजाति छन्द

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु, त्वं वासुपूज्यस् त्रिदशेन्द्रपूज्यः।
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र!, दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः।५६।
न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्त-वैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृति र्नः, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।५७।
पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य, सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ।५८।
यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूतेर्, निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः।
अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूतमभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ।५९।
बाह्ये तरोपाधिसमग्रतेयं, कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवाऽन्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां, तेनाऽभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम्।६०।

१३. श्री विमलजिनस्तवनम्

वंशस्थ छन्द

य एव नित्यक्षणिकादयो नया, मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः, परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः।६१।
यथैकशः कारकमर्थसिद्धये, समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्यविशेषमातृका, नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः।६२।

परस्परेक्षाऽन्वय-भेद-लिङ्गतः, प्रसिद्ध-सामान्य-विशेषयोस्तव।
समग्रताऽस्ति स्वपरावभासकं, यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम्।६३।
विशेष्यवाच्यस्य विशेषणं वचो, यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत्।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते, विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम्।६४।
नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता, रसोपविद्धा इव लोहधातवः ।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो, भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः।६५।

१४. श्री अनन्तजिनस्तवनम्

वंशस्थ छन्द

अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो , विषङ्गवान् मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता, त्वया ततोऽभू र्भगवाननन्तजित्।६६।
कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिना-, मशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथ-दुर्मदामयं, समाधिभैषज्यगुणै- र्व्यलीनयत्।६७।
परिश्रमाऽम्बुर्भयवीचिमालिनी, त्वया स्वतृष्णासरिदार्य! शोषिता।
असङ्गघर्मार्कगभस्तितेजसा, परं ततो निर्वृतिधाम तावकम्।६८।
सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते , द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते ।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि, प्रभो परं चित्रमिदं तवेहितम्।६९।
त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम, प्रलापलेशोऽल्पमते-र्महामुने!।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि, शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः।७०।

१५. श्री धर्मजिनस्तवनम्

रथोद्धता छन्द

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन् , धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः।७१।
देवमानव-निकाय-सत्तमै-रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः।
तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो,व्योमनीवशशलाञ्छनोऽमलः।७२।
प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो, देहतोऽपि विरतो भवानभूत्।
मोक्षमार्गमशिषन् नरामरान् नापि शासनफलैषणातुरः।७३।
कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो, नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो, धीर! तावकमचिन्त्यमीहितम्।७४।
मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् , देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ परमासि देवता , श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः ।७५।

१६. श्री शान्तिजिनस्तवनम्

उपजाति छन्द

विधाय रक्षां परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्ति र्मुनिर्दयामूर्तिरिवाऽघशान्तिम्।७६।

चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण, जित्वा नृपः सर्व-नरेन्द्रचक्रम्।
समाधिचक्रेण पुन-र्जिगाय, महोदयो दुर्जयमोहचक्रम्।७७।
राजश्रिया राजसु राजसिंहो, रराज यो राजसुभोगतन्त्र:।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो, देवासुरोदारसभे रराज।७८।
यस्मिन् नभूद्राजनि राजचक्रं, मुनौ दयादीधिति धर्मचक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं, ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम्।७९।
स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्तिः, शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै,शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः।८०।

१७. श्री कुन्थुजिनस्तवनम्

वसन्ततिलका छन्द

कुन्थु - प्रभृत्यखिल- सत्त्व - दयैक- तानः
कुन्थु-र्जिनो ज्वर-जरा-मरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै,
भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वर चक्रपाणिः।८१।
तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-
मिष्टेन्द्रियार्थ- विभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव काय- परिताप- हरं निमित्त
मित्यात्मवान् विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ।८२।
बाह्यं तपः परम-दुश्चरमा-चरंस्त्व,
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम् ।
ध्यानं निरस्य कलुष-द्वय-मुत्तरस्मिन्
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ।८३।
हुत्वा स्व- कर्म-कटुक- प्रकृतिश्चतस्रो,
रत्नत्रयातिशय-तेजसि - जात- वीर्यः।
बभ्राजिषे सकल - वेद- विधे र्विनेता,
व्यभ्रे यथा वियति दीप्तरुचि-र्विवस्वान्।८४।

यस्मान् मुनीन्द्र! तव लोक पिता महाद्या,
विद्या-विभूति-कणिका-मपि नाप्नुवन्ति।
तस्माद् भवन्त-मज - मप्रतिमेय-मार्याः
स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः।८५।

१८. श्री अरजिनस्तवनम्

पथ्यावक्तं छन्द

गुणस्तोकं सदुल्लङ्घ्य, तद्-बहुत्वकथास्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तु, -मशक्यास्त्वयि सा कथम्।८६।
तथापि ते मुनीन्द्रस्य, यतो नामापि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्, ततो, ब्रूयाम किञ्चन।८७।
लक्ष्मीविभवसर्वस्वं, मुमुक्षोश्चक्रलाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते, जरत्तृणमिवाभवत्।८८।
तव रूपस्य सौन्दर्य, दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो, बभूव बहुविस्मयः।८९।
मोहरूपो रिपुः पापः, कषायभटसाधनः।
दृष्टिसंपदुपेक्षाऽस्त्रैस्त्वया धीर! पराजितः।९०।
कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस् त्रैलोक्य-विजयाऽर्जितः।
ह्रेपयामास तं धीरे, त्वयि प्रतिहतोदयः।९१।
आयत्यां च तदात्वे च, दुःखयोनि-र्दुरुत्तरा।
तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा, विद्यानावा विविक्तया।९२।
अन्तकः क्रन्दको नृणां, जन्मज्वरसखः सदा।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य, व्यावृत्तः कामकारतः।९३।
भूषावेषायुधत्यागि, विद्यादमदयापरम् ।
रूपमेव तवाचष्टे, सर्व!* दोषविनिग्रहम्।९४।
समन्ततोऽङ्गभासां ते, परिवेषेण भूयसा।
तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मं ध्यानतेजसा।९५।
सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस्, तावको महिमोदयः ।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते, सत्त्वं नाथ! सचेतनम्।९६।
तव वागमृतं श्रीमत् , सर्वभाषास्वभावकम् ।

*** पाठान्तरः धीर**

प्रीणयत्यमृतं यद्वत्, प्राणिनो व्यापि संसदि।९७।
अनेकान्तात्म -दृष्टिस्ते , सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्, तदयुक्तं स्वघाततः।९८।
ये परस्खलितोन्-निद्राः स्वदोषेभ-निमीलिनः।
तपस्विनस्ते किं कुर्यु,-रपात्रं त्वन्मतश्रियः।९९।
ते तं स्वघातिनं दोषं, शमीकर्तुमनीश्वराः।
त्वद्विषः स्वहनो बालास् तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः।१००।
सदेकनित्यवक्तव्यास् तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति, पुष्यन्ति स्यादितीह ते ।१०१।
सर्वथा नियम त्यागी, यथादृष्ट-मपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये, नान्येषामात्मविद्विषाम्।१०२।
अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः, प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात् ते, तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्।१०३।
इति निरुपमयुक्तशासनः, प्रियहितयोगगुणानुशासनः।
अरजिन! दमतीर्थनायकस् त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः।१०४।
मतिगुणविभवानुरूपतस् त्वयि वरदागमदृष्टिरूपतः।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं, मम भवताद्दुरितासनोदितम्।१०५।

१९. श्रीमल्लिनाथजिनस्तवनम्

श्रीछन्दः अथवा सान्द्रपदं छन्द

यस्य महर्षेः सकलपदार्थप्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सामर-मर्त्यं जगदपि सर्वं, प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपतति स्म।१०६।
यस्य च मूर्तिः कनकमयीव, स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा, स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून्।१०७।
यस्य पुरस्ताद् विगलितमाना, न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्, जातविकोशाम्बुजमृदुहासा।१०८।
यस्य समन्ताज् जिनशिशिरांशोः शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्र, त्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम्।१०९।
यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्निर्, ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं, मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि।११०।

२०. श्री मुनिसुव्रतजिनस्तवनम्
वैतालीयं छन्द

अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिर्, मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनिपरिषदि निर्बभौ भवा, -नुडुपरिषत्परिवीतसोमवत्।१११।
परिणत- शिखि-कण्ठरागया, कृतमद-निग्रह-विग्रहाभया।
तव जिन! तपसः प्रसूतया, ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम्।११२।
शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमतिविस्मयं यते! यदपि च वाङ्मनसीयमीहितम्।११३।
स्थितिजनननिरोधलक्षणं, चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।
इति जिन! सकलज्ञलाञ्छनं, वचनमिदं वदतां वरस्य ते।११४।
दुरित-मलकलङ्क-मष्टकं, निरुपम- योगबलेन-निर्दहन्।
अभवदभवसौख्यवान् भवान्, भवतु ममापि भवोपशान्तये।११५।

२१. श्री नमिजिनस्तवनम्
शिखरिणी छन्द

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा,
भवेन् मा वा स्तुत्यः, फलमपि ततस्तस्य च सतः।
किमेवं स्वाधीन्याज्, -जगति सुलभे श्रायसपथे,
स्तुयान्न त्वा विद्वान् सततमभिपूज्यं नमिजिनम्।११६।
त्वया धीमन्! ब्रह्म, -प्रणिधिमनसा जन्मनिगलं,
समूलं निर्भिन्नं, त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी।
त्वयि ज्ञानज्योतिर्, विभवकिरणै-र्भाति भगवन्,
नभूवन् खद्योता, इव शुचि रवावन्यमतयः।११७।
विधेयं वार्यं चा, -नुभयमुभयं मिश्रमपि तद्,
विशेषैः प्रत्येकं, नियमविषयैश्चापरिमितैः।
सदाऽन्योऽन्यापेक्षैः, सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा,
त्वया गीतं तत्त्वं, बहुनयविवक्षेतरवशात्।११८।
अहिंसा भूतानां, जगति विदितं ब्रह्म परमं,
न सा तत्रारम्भोऽस्, त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ ।
ततस्तत्-सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थ-मुभयं,
भवानेवात्याक्षीन्, न च विकृतवेषोपधिरतः।११९।

वपु-र्भूषावेष, -व्यवधि-रहितं शान्तकरणं,
यतस्ते संचष्टे, स्मरशरविषातंक - विजयम्।
विना भीमैः शस्त्रै-, रदय -हृदयामर्ष- विलयं,
ततस्त्वं निर्मोहः, शरणमसि नः शान्तिनिलयः।१२०।

२२. श्रीअरिष्टनेमिजिनस्तवनम्

विषमजातावुद्गता छन्द

भगवानृषिः परमयोग-दहन-हुत- कल्मषेन्धनः।
ज्ञानविपुलकिरणैः सकलं, प्रतिबुद्ध्यबुद्धकमलायतेक्षणः।१२१।
हरिवंश- केतुरनवद्य- विनय- दमतीर्थ- नायकः।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुञ्जरोऽजरः।१२।
त्रिदशेन्द्र-मौलि-मणिरत्न-किरण-विसरोपचुम्बितम् ।
पादयुगलममलं भवतो, विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम्।१२३।
नख- चन्द्ररश्मि- कवचाति- रुचिर -शिखराङ्गुलिस्थलम्।
स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः।१२४।
द्युतिमद्रथाङ्ग-रविबिम्ब-किरण-जटिलाशुं मण्डलः।
नीलजलदजलराशिवपुः सहबन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः।१२५।
हलभृच्च ते स्वजन-भक्ति-मुदित-हृदयौ जनेश्वरौ ।
धर्मविनयरसिकौ सुतरां, चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः।१२६।
ककुदं भुवः खचर-योषिदुषित- शिखरैः रलङ्कृतः।
मेघपटलपरिवीततटस्तव, लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा।१२७।
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च, सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीतिविततहृदयैः परितो, भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः।१२८।
बहिरन्तरप्यु-भयथा च, करण-मविघाति नार्थकृत्।
नाथ!युगपदखिलं च सदा, त्वमिदं तलामलकवद्विवेदिथ।१२९।
अत एव ते बुधनुतस्य चरित-गुणमद्‌भुतोदयम्।
न्यायविहितमवधार्य जिने, त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम्।१३०।

२३. श्रीपार्श्वजिनस्तवनम्

वंशस्थ छन्द

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्‌गुणैः, प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः।
बलाहकै-र्वैरिवशैरुपद्रुतो, महामना यो न चचाल योगतः।१३१।

बृहत्फणामण्डल- मण्डपेन यं, स्फुरत्तडिित्पिङ्ग-रुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं, विरागसंध्यातडिदम्बुदो यथा।१३२।
स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया, निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम्।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं,त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम्।१३३।
यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं, तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः।
वनौकसः स्वश्रमबन्ध्यबुद्धयः, शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे।१३४।
स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः, समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते,विलीनमिथ्यापथदृष्टि-विभ्रमः।१३५।

२४. श्रीवीरजिनस्तवनम्

स्कन्धकछन्दः अथवा आर्यागीति छन्द

कीर्त्या भुवि भासि तया, वीर! त्वं गुणसमुच्छ्या भासितया,
भासोडुसभाऽऽसितया, सोम इव व्योम्नि कुन्दशोभासितया।१३६।
तव जिन! शासनविभवो, जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः।
दोषकशासनविभवः, स्तुवन्ति चैनं प्रभाकृशासनविभवः।१३७।
अनवद्यः स्याद्वादस्, तव दृष्टेष्टाऽविरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो, स द्वितयविरोधान् मुनीश्वराऽस्याद्वादः।१३८।
त्वमसि सुरासुरमहितो, ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामाऽमहितः।
लोक-त्रय-परमहितोऽनावरण-ज्योति-रुज्ज्वलद्धाम - हितः।१३९।
सभ्यानामभिरुचितं, दधासि गुणभूषणं श्रिया चारुचितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचितं, जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम्।१४०।
त्वं जिन! गतमदमायस्, तव भावानां मुमुक्षुकामद! मायः।
श्रेयान् श्रीमदमायस्, त्वया समादेशि स प्रयामदमाऽयः।१४१।
गिरिभित्त्यवदानवतः , श्रीमत इव दन्तिनः स्रवद्दानवतः।
तव शमवादानवतो, गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः।१४२।
बहुगुणसम्पदसकलं, परमतमपि, मधुरवचनविन्यासकलम्।
नयभक्त्यवतंसकलं, तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम् ।१४३।

। इति श्री स्वयम्भूस्तोत्रम्।

सिद्धिश्रेयसमुदय-स्तोत्रम्

-सिद्धसेन दिवाकर कृत

ॐ नमोऽर्हते परमात्मने परमज्योतिषे परमपरमेष्ठिने परमवेधसे परमयोगिने परमेश्वराय तमसः परस्तात् सदोदितादित्यवर्णाय समूलोन्मूलितानादिसकलक्लेशाय ॥१॥

ॐ नमो भूर्भुवः स्वस्त्रयीनाथमौलिमंदारमालार्चितक्रमाय सकलपुरुषार्थयोनिनिरवद्यविद्याप्रवर्तनैकवीराय नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषडर्थैकान्तशान्तमूर्तये भवद्भाविभूतभावावभासिने कालपाशनासिने सत्त्वरजस्तमोगुणातीताय अनन्तगुणाय वाङ्मनसोरगोचरचरित्राय पवित्राय कारणकारणाय तारणतारणाय सात्विकदैवताय तात्विकजीविताय निर्ग्रन्थब्रह्महृदयाय योगीन्द्रप्राणनाथाय त्रिभुवनभव्यकुलनित्योत्सवाय विज्ञानानंदपरब्रह्मैकात्म्यसात्म्य-समाधये हरिहरहिरण्यगर्भादिदेवतापरिकलितस्वरूपाय सम्यग्ध्येयाय सम्यक्श्रद्धेयाय सम्यक्शरण्याय सुसमाहितसम्यक्स्पृहणीयाय ॥२॥

ॐ नमोऽर्हते भगवते आदिकराय तीर्थंकराय स्वयंबुद्धाय पुरुषोत्तमाय पुरुषसिंहाय पुरुषवर-पुंडरीकाय पुरुषवरगंधहस्तिने लोकोत्तमाय (लोकनाथाय) लोकहिताय लोकप्रद्योतकारिणे लोकप्रदीपाय अभयदाय दृष्टिदाय मार्गदाय बोधदाय धर्मदाय जीवदाय शरणदाय धर्मदेशकाय धर्मनायकाय धर्मसारथये धर्मवरचातुरंगचक्रवर्तिने व्यावृत्तछद्मने अप्रतिहतसम्यग्दर्शनज्ञानसद्मने ॥३॥

ॐ नमोऽर्हते जिनाय जापकाय तीर्णाय तारकाय बुद्धाय बोधकाय मुक्ताय मोचकाय त्रिकालवेदिने पराङ्गताय कर्माष्टकनिषूदनाय अधीश्वराय शंभवे स्वयंभवे जगत्प्रभवे जिनेश्वराय स्याद्वादिने सार्वाय सर्वज्ञाय सर्वदर्शिने सर्वतीर्थोपनिषदे सर्वपाखंडमोचिने सर्वयज्ञफलात्मने सर्वयज्ञफलाय सर्वज्ञकालात्मने सर्वध्यानरहस्याय केवलिने देवाधिदेवाय वीतरागाय ॥४॥

ॐ नमोऽहते परमार्थाय परमकारुणिकाय सुगताय तथागताय महाहंसाय हंसराजाय महासत्वाय [महाशिवाय] महाबोधाय महामित्राय सुगताय सुनिश्चिताय विगतद्वंदाय गुणाब्धये [लोकनाथाय] जितमारबलाय ॥५॥

ॐ नमोऽर्हते सनातनाय उत्तमश्लोकाय मुकुन्दाय गोविन्दाय विष्णवे जिष्णवे अनंताय अच्युताय श्रीपतये विश्वरूपाय हृषीकेशाय जगन्नाथाय भूर्भुवःस्वःसमुत्तराय मानंजराय कालंजराय ध्रुवाय अजेयाय अजिताय अजराय अजरसे अजाय अचलाय अव्ययाय विभवे अविनाशाय अचिंत्याय असंख्याय आदिसांख्याय [आदिकेशाय] आदिशिवाय महाब्रह्मणे परमशिवाय एकानेकानन्तस्वरूपिणे भावाभावविवर्जिताय अस्तिनास्तिद्वयातीताय पुण्यपापविरहिताय सुखदुःखविमुक्ताय व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय अनादिमध्यनिधनाय नमो मुक्तिस्वरूपाय ॥६॥

ॐ नमोऽर्हते निष्तङ्काय निःशंकाय निर्भयाय निर्द्वंद्वाय निस्तरंगाय निरूर्मये निरामयाय निष्कलंकाय परमदैवताय सर्वदैवताय सदाशिवाय महादेवाय शंकराय महेश्वराय महाव्रतिने महायोगिने पंचमुखाय मृत्युंजयाय अष्टमूर्तये भूतनाथाय जगदानंदाय जगत्पितामहाय जगद्देवाधिदेवाय जगदीश्वराय जगदादिकंदाय जगद्भास्वते जगत्कर्म्मसाक्षिणे जगच्चक्षुषे त्रयीतनवे अमृतकराय शांतकराय ज्योतिश्चक्रचक्रिणे महाज्योतिर्महात्मने परिप्रतिष्ठिताय स्वयं कत्रे स्वयं हत्रे स्वयं पालकाय आत्मेश्वराय नमो विश्वात्मने ॥७॥

ॐ नमोऽर्हते सर्वदेवमयाय सर्वध्यानमयाय सर्वज्ञानमयाय सर्वतेजोमयाय सर्वमंत्रमयाय सर्वरहस्यमयाय सर्वभावाभावजीवाय जीवेश्वराय अरहस्यरहस्याय अस्पृहस्पृहणीयाय अचिंत्यचिंतनीयाय अकामकामधेनवे असंकल्पितकल्पद्रुमाय अचिंत्यचिंतामणये चतुर्दशरज्जवात्मकजीवलोकचूड़ामणये चतुरशीतिजीवयोनिलक्षप्राणिनाथाय पुरुषार्थनाथाय परमार्थनाथाय अनाथनाथाय जीवनाथाय देवदानवसिद्धसेनाधिनाथाय ॥८॥

ॐ नमोऽहते निरंजनाय अनंतकल्याणनिकेतन-कीर्तनाय सुगृहीतनामधेयाय धीरोदात्त-धीरोद्धत-धीरशांत-धीरललित-पुरुषोत्तम-पुण्यश्लोकशतसहस्रलक्षकोटिवंदितपादारविंदाय सर्वमताय ॥९॥

ॐ नमोऽर्हते सर्वसमर्थाय सर्वप्रदाय सर्वहिताय सर्वाधिनाथाय कस्मैवनाय (?) क्षेत्राय पात्राय तीर्थाय पावनाय पवित्राय अनुत्तराय उत्तराय योगाचार्याय संप्रक्षालनाय प्रवराय अग्राय वाचस्पतये मांगल्याय सर्वात्मनीयाय सर्वार्थाय अमृताय सदोदित-ब्रह्मचारिणे तापिने दक्षिणीयाय निर्विकाराय वज्रऋषभनाराचमूर्तये तत्त्वदर्शिने पारदर्शिने निरुत्तमज्ञानबलवीर्यधैर्यतेजः-

शत्यैश्वर्यमयाय [आदिपुरुषाय, आदिपरमेष्ठिने, आदिमहेशाय, महाज्योतिःसत्वाय] महार्च्चिधनेश्वराय महामोहसंहारिणे महासत्त्वाय महाज्ञानमहेंद्राय महाहंसराजाय महासिद्धाय महालयाय महाशांतये महायोगींद्राय अयोगिने महामहीयसे महाहंसाय शिवमचलमरुजमनंतमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्तिमहानंदमहोदयं सर्वदुःखक्षयं कैवल्यममृतं निर्वाणमक्षरं परब्रह्मनिश्रेयसमपुनर्भवं सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं सुप्राप्तवते चराचरवते नमो नमोऽस्तु श्रीमहावीराय त्रिजगत्स्वामिने श्रीवर्द्धमानाय ॥१०॥

ॐ नमोऽर्हते केवलिने परमयोगिने मुक्तिमार्गयोगिने विशालशासनाय सर्वलब्धिसंपन्नाय निर्विकल्पाय कल्पनातीताय कलाकलापकलिताय विस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टाय सौम्याय शान्ताय दान्ताय मांगल्यवरदाय अष्टादशदोषरहिताय श्वासयद्विश्व (?) विश्वसमीहिताय स्वाहा ॥११॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः।

लोकोत्तमो निःप्रतिमस्त्वमेव,त्वं शाश्वतं मंगलमप्यधीश।
त्वामेकमर्हन् शरणं प्रपद्ये,सिद्धार्थ-सद्धर्ममयस्त्वमेव॥१॥
त्वं मे माता पिता नेता देवो धर्मो गुरुः परः।
प्राणाः स्वर्गोऽपवर्गश्च स त्वं तत्त्वं पतिर्गतिः॥२॥
जिनो दाता जिनो भोक्ता जिनः सर्वमिदं जगत्।
जिनो जयति सर्वत्र यो जिन: सोऽहमेव च॥३॥
यत्किंचित्कर्म हे देव ! सदा सुकृतदु:ष्कृतं।
तन्मे जिनपदस्थस्य हुंक्षः क्षपयतां जिनः॥४॥
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपं।
सिद्धिः श्रयति मां येन त्वत्प्रसादात्त्वयिस्थितम्॥५॥

माहात्म्य

इतीमं पूर्वोक्तमिन्द्रस्तवैकादशमंत्रराजोपनिषद्गर्भं अष्टमहासिद्धिप्रदं सर्वपापनिवारणं सर्वपुण्यकारणं सर्वदोषहरं सर्वगुणाकरं महाप्रभावं अनेकसम्यग्दृष्टि-भट्टारक-देवताशतसहस्र-शुश्रूषितं भवान्तरकृता-

संख्यपुण्यं प्राप्यं सम्यग्जपतां पठतां गुण्यतां श्रृण्वतां समनुप्रेक्षमाणानां भव्यजीवानां चराचरेऽपि सद्वस्तु तन्नास्ति यत्करतले प्रणनयि न भवति ।इति।

किंच, इतीमं पूर्वोक्तमिंद्रस्तवैकादशमंत्रराजोपनिषद्गर्भं इत्यादि यावद्भव्यजीवानां भवनपतिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकवासिनो देवाः सदा प्रसीदन्ति।

इतीमं० भव्यजीवानां व्याधयो विलीयंते।

इतीमं० भव्यजीवानां प्रथिव्यप्तेजोवायुगगनानि भवंत्यनुकूलानि।

इतीमं० भव्यजीवानां सर्वसंपदा मूलं जायते जनानुरागः।

इतीमं० भव्यजीवानां साधवः सौमनस्येनानुग्रहपरा जायंते।

इतीमं० भव्यजीवानां खलाः क्षीयन्ते।

इतीमं० भव्यजीवानां जलस्थलगगनचराः क्रूरजंतवोऽपि मैत्रीमया भवंति।

इतीमं० भव्यजीवानां ऐहिक्यः सर्वापि शुद्धगोत्र-कलत्र-पुत्र-मित्र-धन-धान्य-जीवित-यौवन-रूपाऽरोग्य-यशः-पुरस्सराः सर्वजनीनाः संपदः परभाग्यशालिन्यः सुदर्काश्च संमुखीना भवंति।

किं बहुना, इतीमं० भव्यजीवानां यावत् आयुष्मिक्यः स्वर्गापवर्गश्रियोऽपि क्रमेण यथेच्छं स्वयंवरेणोत्सवसमुत्सुका भवंति।

।इति सिद्धिश्रेयसमुदयः।

यथेन्द्रेण प्रसन्नेन समादिष्टोऽर्हतां स्तवः।
तथाऽयं सिद्धसेनेन लिलिखे संपदापदं॥

इति शक्रस्तवः सहस्रनामापरपर्यायपठितो महालाभाय भवतु सुपार्श्वजिनप्रसादात्॥

मन्दालसा- स्तोत्रम्

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि,संसारमायापरिवर्जितोऽसि।
शरीरभिन्नस्त्यज सर्वचेष्टां, मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र ॥१॥
ज्ञाताऽसि द्रष्टाऽसि परमात्म-रूपी,अखण्ड-रूपोऽसि गुणालयोऽसि।
जितेन्द्रियस्त्वं त्यज मानमुद्रां, मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र ॥२॥
शान्तोऽसि दान्तोऽसि विनाशहीनः, सिद्धस्वरूपोऽसि कलंकमुक्तः।
ज्योतिस्वरूपोऽसि विमुञ्च मायां, मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र!॥३॥
एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि ,चिद्रूपभावोऽसि चिरंतनोऽसि।
अलक्ष्यभावो जहि देहमोहं, मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र!॥४॥
निष्काम- धामासि विकर्मरूपा,रत्नत्रयात्मासि परं पवित्रम्।
वेत्तासि चेतोऽसि विमुंच कामं, मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र!॥५॥
प्रमादमुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि, अनन्तबोधादि-चतुष्टयोऽसि।
ब्रह्मासि रक्ष स्वचिदात्मरूपं,मन्दालसावाक्यमुपास्व पुत्र!।।६।।
कैवल्यभावोऽसि निवृत्तयोगी, निरामयो ज्ञात- समस्त- तत्त्वम्।
परात्मवृत्तिस्स्मर चित्स्वरूपं, मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र!॥७॥
चैतन्यरूपोऽसि विमुक्तभावो भावाविविकर्माऽसि समग्रवेदी !
ध्यायप्रकामं परमात्मरूपं, मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र।।८।।
इत्यष्टकैर्या पुरतस्तनूजं, विबोधनार्थं नरनारिपूज्यम्।
प्राव्रज्य भीताभवभोगभावात्, स्वकैस्तदाऽसौ सुगतिं प्रपेदे ॥९॥
इत्यष्टकं पापपराङ्मुखो यो, मन्दालसायाःभणति प्रमोदात्।
स सद्गतिं श्रीशुभचन्द्रमासि,संप्राप्य निर्वाणगतिं प्रपेदे ॥१०॥

॥इति मन्दालसास्तोत्रम्॥

वर्षायोग धारण-समापन-क्रिया-विधि

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्या-नुक्रमेण सकल-कर्म -क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्

(विधिवत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि बोलकर बड़ी सिद्धभक्ति पढ़ना चाहिये)

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
चत्तारि मंगलं अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। अड्ढाइज्ज-दीव-दो समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं पार-गयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं धम्म-वर चाउरंग-चक्क-वट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं, करेमि भंते ! सामायियं सव्वसा-वज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण, ण करेमि ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणुमणामि तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ना चाहिए।)

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंत जिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे॥१॥
लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चेबीसं चेव केवलिणो॥२॥
उसह-मजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।

पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे॥३॥
सुविहिं च पप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि॥४॥
कुंथुं च जिण वरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदाम्यरिट्ठ-णेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च॥५॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुय-रयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु॥६॥
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं॥७॥
चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पया-संता।
सायर-मिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।८॥

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित-विद्विषे।
यज्ज्ञानाऽन्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदाऽयते॥१॥
तव सिद्धे णय-सिद्धे , संजम-सिद्धे चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि॥२॥

इच्छामि भंते! सिद्ध भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण- सम्म-दंसण-सम्म चरित्त-जुत्ताणं, अट्ठ विह कम्मविप्प-मुक्काणं, अट्ठ गुण-संपण्णाणं, उड्ढ-लोए-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्त- सिद्धाणं, अतीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहि मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्या-नुक्रमेण सकल-कर्म -क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री योगिभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम्।

(विधिवत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि करके पश्चात् योगिभक्ति पढ़ना चाहिये)

प्रावृट्-काले सविद्युत्प्रपतित-सलिलेवृक्षमूलाधिवासाः।
हेमन्ते रात्रि-मध्ये, प्रति-विगतभया-काष्ठवत्त्यक्तदेहाः।१।
ग्रीष्मे सुर्यांशुतप्ता,गिरि-शिखर-गताःस्थानकूटान्तरस्थाः।

ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनि-गणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूताः॥२॥

गिम्हे गिरि-सिहरत्था, वरिसायाले-रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, ते साहू वंदिमो णिच्च॥३॥
गिरि-कन्दर-दुर्गेषु, ये वसंति दिगम्बराः।
पाणिपात्र-पुटाहारास्, ते यांति परमां गतिम्॥४॥

इच्छामि भंते योगि-भत्ति-काउस्सग्गोकओ, तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमिसु, आदावण-रुक्खमूलअब्भोवासठाणमोण-वीरासणेक्कपास कुक्कुडासण-चउछपक्खखवणादि जोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खम्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

पूर्व दिशा में

यावन्ति जिन चैत्यानि, विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावन्ति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्॥

१. अथ वृषभजिन स्तोत्र

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले , समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः, क्षपाकरेणेव गुणोत्करैःकरैः।१।
प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः।२।
विहाय यः सागरवारिवाससं, वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभुःप्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः।३।
स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा, निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा, बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः।४।
स विश्वचक्षु-वृषभोऽर्चितः सतां, समग्रविद्यात्मवपुनिर्रञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो, जिनो जित क्षुल्लकवादिशासनः ।५।

२. श्री अजित जिन स्तुति

यस्य प्रभावात् त्रिदिवच्युतस्य, क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः।
अजेयशक्ति-र्भुवि बन्धुवर्गश्चकार नामाऽजित इत्यबन्ध्यम्।६।
अद्यापि यस्याजितशासनस्य, सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम्।

प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं , स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके।७।
यः प्रादुरासीत् प्रभुशक्तिभूम्ना, भव्याशयालीनकलङ्कशान्त्यै।
महामुनि-र्मुक्तघनोपदेहो, यथाऽरविन्दाभ्युदयाय भास्वान्।८।
येन प्रणीतं पृथुधर्मतीर्थं, ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गाङ्ग ह्रदं चन्दनपङ्कशीतं, गजप्रवेका इव घर्मतप्ताः।९।
स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रु, -र्विद्याविनिर्वान्तकषाय-दोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितो जितात्मा, जिनश्रियं मे भगवान् विधत्ताम्।१०।

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्या-नुक्रमेण सकल-कर्म -क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री लघुचैत्यभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम्।

(विधिवत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि स्तव बोलकर निम्नलिखित चैत्यभक्ति पढ़ना चाहिये))

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु, नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिन-पुङ्गवानाम्।१।

अवनि-तल-गतानां, कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां,
वन-भवन-गतानां, दिव्य-वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृताानां, देव-राजा-र्चितानां,
जिनवर-निलयानां, भावतोऽहं स्मरामि।२।
जम्बू-धातकि-पुष्करार्धवसुधा-क्षेत्र-त्रये ये भवांश्,
चंद्राम्भोज शिखण्डिकण्ठकनक-प्रावृड्घनाभा जिनाः।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः,
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।३।
श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ, रजतगिरिवरे , शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे, रतिकर-रुचके, कुण्डले मानुषाङ्के।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ, दधिमुखशिखरे, व्यंतरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि।४।
द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ, द्वाविन्द्रनील-प्रभौ।
द्वौ बन्धूक-सम-प्रभौ जिनवृषौ, द्वौ च प्रियंगुप्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिताः, सन्तप्त-हेम-प्रभास्,
ते सञ्ज्ञान-दिवाकराः सुर -नुताः, सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः।५।

इच्छामि भंते! चेइय-भत्ति - काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अहलोय-तिरियलोय -उड्ढलोयम्मि, किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिण चेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतरजोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति, अहमवि इह संतो तत्थ, संताई णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउमज्झं।

प्राग्दिग्-विदिगन्तरे केवलि-जिन-सिद्ध-साधुगण-देवाः
ये सर्वर्द्धि-समृद्धा योगि- गणांस्तानहं वन्दे।१।

(इति पूर्व दिक्वन्दना)

दक्षिण दिशा में

यावन्ति जिन चैत्यानि, विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावन्ति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्।

३. श्री सम्भव जिन स्तोत्र

त्वं शम्भवः संभवतर्ष-रोगैः, संतप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो, वैद्यो यथाऽनाथरुजां प्रशान्त्यै।१।
अनित्यमत्राणमहं क्रियाभिः, प्रसक्तमिथ्याऽध्यवसायदोषम्।
इदं जगज्जन्मजरान्तकार्तं, निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम्।२।
शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं, तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं, तापस्तदायासयतीत्यवादीः।३।
बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू, बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं, नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता।४।
शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो, ममार्य! देयाः शिवतातिमुच्चैः।५।

४. श्री अभिनन्दन जिन स्तोत्र

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये, द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चाऽयुजत्।६।

अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि च, ममेदमित्याभिनिवेशिकग्रहात्।
प्रभंगुरे स्थावरनिश्चयेन च, क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान्।७।
क्षुदादिदुःखप्रतिकारतःस्थितिर्, न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनोरितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत्।८।
जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो, भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते।
इहाऽप्यमुत्राऽप्यनुबन्धदोषवित्कथं सुखे संसजतीति चाऽब्रवीत्।९।
स चाऽनुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं, ततो भवानेव गतिः सतां मतः।१०।

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री लघुचैत्यभक्ति-कायोत्सर्ग करोम्यहम्।

(विधिवत् सामायिकदण्डक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि स्तव बोलकर वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु' इत्यादि लघुचैत्यभक्ति अञ्चलिका सहित पढ़ना चाहिये)

दक्षिण दिग्-विदिगन्तरे, केवलि-जिनसिद्धसाधुगण-देवाः
ये सर्वर्द्धि-समृद्धा, योगि- गणांस्तानहं वन्दे ।२।

(इति दक्षिण -दिग्-वन्दना)

पश्चिम दिशा में

यावन्ति जिन चैत्यानि, विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावन्ति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्।

५. श्री सुमतिनाथ जिन स्तोत्र

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं, स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति, सर्वक्रियाकारक तत्त्वसिद्धिः।११।
अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं, भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्।२।
सतः कथंचित् तदसत्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषुप्रसिद्धम्।
सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं, स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्।३।
न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति।४।
विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ, विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था।

इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं, मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ।५।

६. श्री पद्मप्रभ जिन स्तोत्र

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः पद्मालयालिङ्गित-चारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां, पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः।६।
बभार पद्मां च सरस्वतीं च, भवान् पुरस्तात् प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां, सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः।७।
शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते , बालार्करश्मिमच्छविरालिलेप।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्, छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम्।८।
नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं, सहस्र-पत्राम्बुजगर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो, भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै॥।
गुणाम्बुधे-विप्रुषमप्यजस्रं, नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव माद्दक् किमुताति भक्तिर्मां बालमालापयतीदमित्थम्।१०।

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं , भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री लघुचैत्यभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम्।

(विधिवत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि स्तव बोलकर वर्षेषु वर्षान्तारपर्वतेषु' इत्यादि-लघुचैत्यभक्ति अञ्चलिका सहित पढ़ना चाहिये)

पश्चिम दिग् -विदिगन्तरे, केवलि-जिनसिद्ध-साधुगण-देवाः
ये सर्वर्द्धि-समृद्धा, योगि- गणस्तानहं वन्दे ।३।

(इति पश्चिम -दिग्-वन्दना)

उत्तर दिशा में

यावन्ति जिन चैत्यानि, विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावन्ति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्।

७. श्री सुपार्श्व जिन स्तोत्र

स्वास्थ्यं यदाऽऽत्यन्तिकमेष पुंसां, स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद् भगवान् सुपार्श्वः।१।
अजङ्गमं जङ्गमनेय-यन्त्रं, यथा तथा जीवधृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च , स्नेहो वृथाऽत्रेति हितं त्वमाख्यः।२।

अलंघ्यशक्ति- र्भवितव्यतेयं, हेतुद्वयाविष्कृत-कार्यलिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहक्रियार्तः, संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः।३।
बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः।
तथापि बालो भयकामवश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः।४।
सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता, मातेव बालस्य हिताऽनुशास्ता।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता, मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य।५।

८. श्री चन्द्रप्रभजिन स्तोत्र

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम्।६।
यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोऽरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च, ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम्।७।
स्वपक्षसौस्थित्यमदाऽवलिप्ता, वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदाद्रगण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादैः ।८।
यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः, समन्तदुःखक्षयशासनश्च।९।
स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां, विपन्नदोषाभ्र कलङ्कलेपः।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः, पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे।१०।

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री लघुचैत्यभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम्।

(विधिवत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि स्तव बोलकर वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु' इत्यादिलघुचैत्यभक्ति अञ्चलिका सहित पढ़ना चाहिये)

उत्तरदिग् -विदिगन्तरे, केवलि-जिनसिद्ध-साधुगण-देवाः
ये सर्वर्द्धि - समृद्धा, योगि - गणांस्तानहं वन्दे ।४।

(इति उत्तर -दिग्-वन्दना)

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री पञ्चमहागुरुभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम्। (देखें पृ.सं. - 389)

(विधिवत् सामायिक दण्डक आदि पढ़कर पञ्चमहागुरुभक्ति अञ्चलिका

सहित पढ़ना चाहिये)

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री शान्तिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्। (देखें पृ.सं. - 408)

(विधिवत् सामायिक दण्डक आदि पढ़कर शान्तिभक्ति पढ़ना चाहिये)

अथ वर्षायोग-प्रतिष्ठापन (निष्ठापन) क्रियायां पूर्वाचार्या-नुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्तिं योगिभक्तिं, लघुचैत्यभक्तिं, पञ्च-महागुरु-भक्तिंशान्तिभक्तिं, च कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोष- विशुद्धयर्थं आत्म-पवित्री-करणार्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम्। (देखें पृ.सं. - 411)

(विधिवत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि स्तव बोलकर बड़ी समाधिभक्ति पढ़ना चाहिये)।

॥इति वर्षायोग धारण-समापन क्रियाविधिः॥

गोम्मटेस पडिमा भत्ती

(मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज)

सिरिजिणसेण मुणीसरकहिदं, बाहुबली जिणमहिमावयणं।
ठविदा भरयेणं जिणपडिमा पोदणपुरठाणे बहुगरिमा।१।
सुणिय कालला माया एवं, दंसणकरणे कुणदि सुभावं।
जाव ण दंसणमहं करोमि, ताव ण दुद्धं मुहे धरेमि।२।
जणणीगहणं वदं सुदेणं, चामुण्डरायेणं जं णादं।
ताए अहिलासं पूरेज्ज, भावं तस्स मणम्मि होज्ज।३।
सह परिवारेणं सा जत्ता, पारंभा मग्गे सुववत्था।
पोदणपुर-मग्गं णहि पावइ, कडवप्पं खलु सो आगच्छइ।४।
णेमिचंदसिद्धंतगुरुस्स, चरणं पूजिय महिमं तस्स।
पूदगिरिस्स सुणिय संतुट्ठो, तत्थ मंदिरेसुं स पविट्ठो।५।
मायाए सह सिविरं गच्छिय, चिंताभारेणं सो सयिय।
पादो जग्गिय मायापुत्तं, परोप्परं संतुट्ठं दिट्ठं।६।
रत्तीए सुमिणं मए दिट्ठं, कहेदि माया सुदो वि सम्मं।
चामुण्डय्या सह मायाए, सूरिसमीवं विणम्मदाए।७।
वुत्ते सुरी भासदि हं वि, सुमिणं पासमि कहेमि तं वि।
एगा देवी जक्खी दिट्ठा, कुसुमंडिणी कहेदि सुतुट्ठा।८।
पोदणपुरमग्गो अवरुद्धो, सप्पेहिं कण्डेहिं विद्धो।
सेलत्तो दक्षिणमुहट्ठाणं, बाणपओगं किच्चा बाणं।९।
लग्गदि जत्थ तत्थ इगचित्तं, बाहुबलिसामिस्स विचित्तं।
होहिदि भासिय एवं जादा, देवी सा खलु अंतज्झाणा।१०।
अवरदिणे गुरुआणाए सो, बाणपओगं कादुं णध्दो।
मंतणमोक्कारं उच्चारिय, चित्तं दिट्ठं बाणं मुचिय।११।
सव्वे हरिसा विंझगिरीए, पस्सिय तुट्ठियभव्वसिलं ते।
पडिमाघडणट्ठणं खलु पच्छा, तेण पेसिदा अणुयरभिच्चा।१२।
सयं धरिय सामण्णविभेसं, सिप्पिगवेसणहेदू देसं।
गच्छदि मंती मायाआणं, पूरणकामो ठाणं ठाणं।१३।
पडिमा सा होदव्वा एसा, विस्से हवे ण कावि सरिसा।
दंसणेण दुब्भाव विणासो, सच्च-अहिंसा-संति-पयासो।१४।

जुगे जुगे जिणधम्मपहाणं, णिग्गट्ठं हिदमप्पपहाणं।
चागअकिंचणभावा हेदू, अप्पसंतिसुहकरणसुसेदू।१५।
कहमवि पत्तो सिप्पिविसिट्ठो, णाममरिट्ठणेमि सो जेट्ठो।
कहिदं सिप्पि! कुणहि णिम्माणं, पाणवंतमिह तं पासाणं।१६।
दाहिमि ते मुहजाचणदाणं, पुहपासाणसुवण्णपमाणं।
पस्सदि सिप्पी विम्महणेत्तो, सीकरणं तं लोहिदचित्तो।१७।
पारंभदि कज्जं सो सणियं, धरियमणं एयंते एगं।
आवागमणं रुंधिय तत्थ, मग्गं रचिय सुदिट्ठपसत्थं ।१८।
कइपयमासाणंतरमेगे, भरमाणो चुण्णं खलु सूदे।
माया आगच्छंता दिस्सदि, सिप्पिसुदं किं करोसि पुच्छदि।१९।
माआ! णत्थि इदं रयचुण्णं, पस्स पस्स एदम्मि सुवण्णं।
णिक्खित्तं करमेवं भासिय, सूदे असमत्थो उट्ठाविय।२०।
णित्तेजो सिप्पी पुण रूवदि, माया पस्सदि रक्खदु कोक्कदि।
पावभावफलमेदं पुत्त!, धम्मे कज्जे लोहं मुंच।२१।
पस्स काललाजादं पुत्तं, महोदारचित्तं तुं तुच्छं।
अत्थि सुदो मे जदि तो पुत्त, हत्थकलं मा विक्कसि अत्थ।२२।
जणणीवयणं सोच्चा सिप्पी, उरलोहं धोवदि सो दप्पी,
जाचदि खमं च आसीवादं, देउ करोमि हं णिब्बाधं ।२३।
णमोक्कारमंतस्स सुजावं, आइरियादि कुणदि जणजादं।
जिणगंधोदगफासे देहे, संचारो सत्तीए अंगे।२४।
सिप्पी णीरोगो संजादो, सुहकज्जे लग्गदि सुहभावो।
णिल्लोहो एयग्गमणेणं, महाभव्वपडिमाघडणट्ठं।२५।
कदो समो रत्तीए दिवसे, पादे अंगुलिणहससिभासे।
जंघा भुजा माहवीलित्ता, कुंचिदकेसा अंबुजणेत्ता।२६।
अणुवमसुंदरमहासरीरं, घडिदं रूवं णाहिगहीरं।
पडिमापुण्णं दिद्ठं हियए, हरिसोल्लासो णरणारीए।२७।
छम्मासे हि मुत्तिपदिट्ठा, महाभिसेगो कदो विसिट्ठा।
गोमटेससुहणामं दिण्णं, जय जय जय जिडपडिमापुण्णं ।२८।

(दोहा-छन्द)

गोम्मटेसजिणवस्स मे भत्तीराएणत्थ।

कदा संथुदी भावदो, गमणं होज्ज तत्थ।२९।
मुणिपण्मसायर रचिय भत्तिं इमं पढेउ।
सो सुरणरवरवंदिदो मोक्खं सिग्ध लहेउ।३०।

(श्लोक)

भिवाणीणयरे कदा पुण्णा सुरयणा मए।
सुक्कपक्खे य मासम्मि मगसिरे दुवे तिही।31।

(यह स्तुति मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी महाराज ने भिवानी नगर के मंदिर (हरियाणा) में दिनांक २०-११-२०१७ मंगसिर सुदी दोज को लिखी।)

SCAN TO WATCH

१. सिद्धभक्ति

(स्रग्धरा छन्द)

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदयान्, साधितात्म- स्वभावान्
वन्दे सिद्धि-प्रसिद्ध्यै, तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टि-तुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुण-गणोच्छादि-दोषापहाराद्,
योग्योपादान-युक्त्या दृषद इह यथा हेम-भावोपलब्धिः।१।
नाभावः सिद्धिरिष्टा, न निजगुणहतिस्तत् तपोभिर्न युक्तेः
अस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक्-तत् क्षयान् मोक्षभागी।
ज्ञाता दृष्टा स्वदेह- प्रमिति-रुपसमाहार-विस्तार-धर्मा,
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा, स्वगुणयुत इतो, नान्यथा साध्यसिद्धिः।२।
स त्वन्तर्बाह्य- हेतु- प्रभव- विमल- सद्दर्शन- ज्ञान- चर्या
संपद्धेति- प्रघात- क्षत- दुरिततया, व्यञ्जिताचिन्त्य-सारैः।
कैवल्यज्ञानदृष्टि - प्रवर - सुख - महावीर्य - सम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादि- स्थिरपरमगुणै- रद्भुतैर्भासमानः।३।
जानन् पश्यन् समस्तं, सम-मनुपरतं, संप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं, निचित-मनुपमं, प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन् सर्वप्रजानामपरमभिभवन्, ज्योति-रात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनाऽसौ, क्षणमुपजनयन्, सत्स्वयंभूः प्रवृत्तः।४।

छिन्दन् शेषानशेषान्, निगल-बल-कलींस्तै-रनन्त-स्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्रयावगाहा-, गुरु-लघुक-गुणैः, क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यैश्चान्य-व्यपोह-, प्रवण- विषय- संप्राप्ति- लब्धि- प्रभावै
रूर्ध्वं व्रज्या स्वभावात् समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्रये। ५।
अन्याकाराप्ति-हेतु-, र्न च भवति परो येन तेनाल्प-हीनः,
प्रागात्मोपात्त-देह-, प्रति-कृति रुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्- तृष्णा- श्वास- कास-, ज्वरमरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह-
व्यापत्याद्युग्र-दुःख-प्रभवभवहतेः, कोऽस्य सौख्यस्य माता।६।

आत्मोपादान-सिद्धं, स्वय-मतिशय-वद्, वीत-बाधं विशालं,
वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं, विषय-विरहितं, निःप्रतिद्वन्द्व -भावम्।
अन्य-द्रव्यानपेक्षं, निरुपममितं, शाश्वतं सर्व-कालम्,
उत्कृष्टानन्त-सारं, परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्।७।
नार्थः क्षुत्-तृड्-विनाशाद्, विविध-रसयुतै-, रन्न-पानै-रशुच्या,
नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै-, र्न हि मृदुशयनै-र्ग्लानि-निद्राद्यभावात्।
आतङ्कार्ते -रभावे, तदुपशमन -सद्-, भेषजानर्थतावद्,
दीपानर्थक्य-वद् वा, व्यपगत-तिमिरे, दृश्यमाने समस्ते।८।
तादृक्-सम्पत्-समेता, विविध-नय-तपः-संयम-ज्ञान-दृष्टि-
चर्या-सिद्धाः समन्तात्, प्रवितत्-यशसो, विश्वदेवाधि-देवाः।
भूता भव्या भवन्तः, सकल-जगति ये, स्तूयमाना विशिष्टैस्,
तान् सर्वान् नौम्यनन्तान्,निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम्।९।

(आर्या छन्द)

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्ट-दोष-विरहितं सुपरिशुद्धं ।
अतिभक्तिसंप्रयुक्तो, यो वन्दते स लघु लभते परम सुखम्।

अंचलिका

इच्छामि भंते! सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं-सम्म-णाण

सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्म- विप्पमुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाण -कालत्तय- सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि,पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुग-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

२. नंदीश्वरभक्ति

(आर्यागीति छन्द)

त्रिदशपतिमुकुट- तट- गत-
मणिगणकर-निकर-सलिलधाराधौत।
क्रमकमलयुगलजिनपतिरुचिर-,
प्रतिबिम्बविलय विरहितनिलयान्।१।

निलयानहमिह महसां सहसा, प्रणिपतन-पूर्वमवनौम्यवनौ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्ध्या निसर्गशुद्धान्विशुद्धये घनरजसाम्।२।
भावनसुर-भवनेषु, द्वासप्तति-शत-सहस्र -संख्याभ्यधिकाः।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता, भवनानां भूरि -तेजसां भुवनानाम्।३।
त्रिभुवन-भूत -विभूनां, संख्यातीतान्यसंख्य -गुण-युक्तानि।
त्रिभुवनजननयनमनः, प्रियाणिभवनानि भौमविबुधनुतानि।४।
यावन्ति सन्ति कान्त-ज्योति - र्लोकाधिदेवताभिनुतानि।
कल्पेऽनेक-विकल्पे, कल्पातीतेऽहमिन्द्र-कल्पेनल्पे।५।
विंशतिरथ त्रिसहिता, सहस्र-गुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता।
चतुरधिकाशीतिरतः, पञ्चकशून्येन विनिहतान्यनघानि।६।
अष्टापञ्चाशदतश्-चतुःशतानीह मानुषे च क्षेत्रे ।
लोकालोकविभागप्रलोकनाऽऽलोक-संयुजां जयभाजाम्।७।
नव-नव-चतुःशतानि च, सप्त च नवतिःसहस्र-गुणिताःषट् च।
पञ्चाशत्पञ्च-वियत्, प्रहताः, पुनरत्र कोट्योऽष्टौ प्रोक्ताः।८।
एतावन्त्येव सता-मकृत्रि-माण्यथ जिनेशिनां भवनानि।

भुवनत्रितये त्रिभुवन-सुर-समिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि।९।
वक्षार-रुचक-कुण्डल-रौप्य-नगोत्तर-कुलेषु कारनगेषु ।
कुरुषु च जिनभवनानि, त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या।१०।
नन्दीश्वर-सद्-द्वीपे, नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते धृत-शोभे।
चन्द्रकर-निकर-सन्निभ-रुन्द्र-यशो वितत-दिड्मही मण्डलके।११।
तत्रत्याञ्जन-दधिमुख-रतिकर-पुरु-नग-वराख्य-पर्वत-मुख्याः ।
प्रतिदिश-मेषा-मुपरि, त्रयो-दशेन्द्रार्चितानि, जिनभवनानि।१२।
आषाढ-कार्तिकाख्ये, फाल्गुनमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः।
आरभ्याष्टदिनेषु च, सौधर्मप्रमुखविबुधपतयो भक्त्या।१३।
तेषु महामह-मुचितं प्रचुराक्षत-गन्ध-पुष्प-धूपै- र्दिव्यैः।
सर्वज्ञ-प्रतिमाना-मप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्व-हितम्।१४।
भेदेन वर्णना का, सौधर्मः स्नपन-कर्तृता-मापन्नः ।
परिचारक-भावमिताः, शेषेन्द्रा रुन्द्र-चन्द्रनिर्मल-यशसः।१५।
मङ्गल-पात्राणि पुनस्तद्-देव्यो बिभ्रतिस्म शुभ्र- गुणाढ्याः।
अप्सरसो नर्तक्यः, शेष -सुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः।१६।
वाचस्पति-वाचामपि, गोचरतां संव्यतीत्य यत्-क्रममाणम्।
विबुधपतिविहितविभवं, मानुषमात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम्।१७।
निष्ठापित-जिनपूजाश्-चूर्ण-स्नपनेन दृष्टविकृतविशेषाः।
सुरपतयो नन्दीश्वरजिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः।१८।
पञ्चसु मंदरगिरिषु, श्री-भद्रशालनन्दन-सौमनसम्।
पाण्डुकवनमिति तेषु, प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव।१९।
तान्यथ परीत्य तानि च, नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि।
स्वास्पदमीयुः सर्वे, स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य ।२०।
सहतोरणसद्वेदी - परीतवनयाग - वृक्ष - मानस्तम्भः।
ध्वजपंक्तिदशकगोपुर, चतुष्टयत्रितयशालमण्डपवर्यैः ।२१।
अभिषेकप्रेक्षणिका, क्रीडनसंगीतनाटका-लोकगृहैः।
शिल्पिविकल्पित-कल्पनसंकल्पातीत-कल्पनैः समुपेतैः।२२।
वापी सत्पुष्करिणी, सुदीर्घिकाद्यम्बुसंसृतैः समुपेतैः।
विकसितजलरुहकुसुमै-र्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि।२३।
भृंगाराब्दक- कलशा- द्युपकरणैरष्टशतक- परिसंख्यानैः।

प्रत्येकं चित्रगुणैः कृतझणझणनिनद-वितत-घण्टाजालैः।२४।
प्रभ्राजंते नित्यं, हिरण्यमयानीश्वरेशिनां भवनानि।
गंधकुटीगतमृगपति-विष्टररुचिराणि विविधविभव-युतानि।२५।
येषु जिनानां प्रतिमाः, पञ्चाशत-शरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः।
मणिकनक-रजतविकृता, दिनकरकोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहाः।२६।
तानि सदा वंदेऽहं, भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसां महसां प्रतिदिशमतिशय-शोभाविभाञ्जि पापविभाञ्जि।२७।
सप्तत्यधिकशतप्रिय-धर्म क्षेत्रगततीर्थकर-वर-वृषभान्।
भूतभविष्यत् संप्रतिकालभवान् भवविहानये विनतोऽस्मि।२८।
अस्यामवसर्पिण्यां, वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता ।
अष्टापदगिरिमस्तक - गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः।२९।
श्रीवासुपूज्यभगवान्, शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानाम्।
चम्पायां दुरित-हरः, परमपदं प्रापदापदा-मन्तगतः।३०।
मुदितमतिबलमुरारि-प्रपूजितो जितकषायरिपुरथ जातः।
वृहदूर्जयन्तशिखरे, शिखामणिस्त्रिभुवनस्य नेमिर्भगवान्।३१।
पावापुरवरसरसां, मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसाम्।
वीरो नीरदनादो, भूरि-गुणश्चारुशोभमास्पद-मगमत्।३२।
सम्मदकरिवन-परिवृत-सम्मेदगिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे।
शेषा ये तीर्थकराः, कीर्तिभृतः, प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन्।३३।
शेषाणां केवलिना-मशेषमतवेदिगणभृतां साधूनां ।
गिरितलविवरदरीसरिदुरुवनतरुविटपिजलधिदहनशिखासु ।३४।
मोक्षगतिहेतु-भूत-स्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्र-भक्तिनुतानि।
मंगलभूतान्येता - न्यंगीकृत-धर्मकर्मणामस्माकम् ।३५।
जिनपतयस्तत्- प्रतिमा- स्तदालयास्तन्निषद्यका- स्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भवघात-हेतवो भव्यानाम्।३६।
सन्ध्यासु तिसृषु नित्यं, पठेद्यदि स्तोत्र-मेतदुत्तम-यशसाम्।
सर्वज्ञानां सार्वं, लघु लभते श्रुतधरेडितं पद-ममितम्।३७।
नित्यं निःस्वेदत्वं, निर्मलता क्षीर-गौर-रुधिरत्वं च।
स्वाद्याकृति-संहनने , सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम् ।३८।
अप्रमित-वीर्यता च, प्रिय-हित वादित्व-मन्यदमित-गुणस्य।

प्रथिता दश-संख्याताः, स्वतिशय-धर्मा स्वयं-भुवो देहस्य।३९।
गव्यूति- शत- चतुष्टय- सुभिक्षता- गगन- गमन- मप्राणिवधः।
भुक्त्युपसर्गाभाव-श्चतुरास्यत्वं च सर्व-विद्येश्वरता ।४०।
अच्छायत्व-मपक्ष्मस्पन्दश्च सम-प्रसिद्ध-नख-केशत्वम् ।
स्वतिशय-गुणा भगवतो,घाति-क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव।४१।
सार्वार्ध-मागधीया, भाषा मैत्री च सर्व-जनता-विषया।
सर्वर्तुफलस्तबकप्रवाल-कुसुमोप- शोभित- तरु- परिणामाः ।४२।
आदर्शतल-प्रतिमा, रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।
विहरण-मन्वेत्यनिलः, परमानन्दश्च भवति सर्वजनस्य।४३।
मरुतोऽपि सुरभि-गन्ध-व्यामिश्रा योजनान्तरं भूभागम्।
व्युपशमितधूलिकण्टक-तृण-कीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति।४४।
तदनु स्तनितकुमारा, विद्युन्माला-विलास-हास-विभूषा।
प्रकिरन्ति सुरभि-गन्धिं, गन्धोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः।४५।
वरपद्मरागकेसरमतुल-सुख- स्पर्श-हेम- मय-दल- निचयम्।
पादन्यासे पद्मं सप्त, पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवन्ति ।४६।
फलभार-नम्र-शालि-ब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृत-रोमाञ्चा।
परिहृषितेव च भूमि-स्त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यन्ती।४७।
शरदुदयविमल-सलिलं, सर इव गगनं विराजते विगतमलम्।
जहति च दिशस्तिमिरिकां,विगतरजः प्रभृति जिह्मताभावं सद्यः।४८।
एतेतेति त्वरितं ज्योति-र्व्यन्तर-दिवौकसा-ममृतभुजः।
कुलिशभृदाज्ञापनया, कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम्।४९।
स्फुरदरसहस्र-रुचिरं, विमल-महारत्न-किरणनिकर-परीतम्।
प्रहसितकिरण- सहस्रद्युति- मण्डलमग्रगामिधर्मसुचक्रम्।५०।
इत्यष्ट-मंगलं च, स्वादर्श-प्रभृति-भक्ति-राग-परीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशै-रेतेऽपि - निरुपमातिशयाः ।५१।
वैडूर्यरुचिर- विटप- प्रवाल-मृदु- पल्लवोपशोभित- शाखः।
श्रीमानशोक-वृक्षो वर-मरकतपत्रगहनबहलच्छायः।५२।
मन्दारकुन्दकुवलय-नीलोत्पल- कमल-मालती- बकुलाद्यैः।
समद-भ्रमर-परीतैर्व्यामिश्रा पतति कुसुमवृष्टिर्नभसः।५३।
कटक-कटि-सूत्र-कुण्डल-केयर-प्रभृति-भूषितांगौ स्वंगौ।

यक्षौ कमलदलाक्षौ, परिनिक्षिपतः सलीलचामरयुगलम्।५४।
आकस्मिकमिव युगपद्-दिवसकरसहस्र-मपगत-व्यवधानम्।
भामण्डलमविभावित - रात्रिंदिवभेदमतितरामाभाति।५५।
प्रबल- पवनाभिघात- प्रक्षुभित- समुद्र-घोष- मन्द्र-ध्वानम्।
दन्ध्वन्यते सुवीणावंशादि-सुवाद्यदुन्दुभिस्तालसमम् ।५६।
त्रिभुवनपतिता -लाञ्छन- मिन्दुत्रयतुल्यमतुल- मुक्ताजालम् ।
छत्रत्रयं च सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्त-दण्डमधिकमनोज्ञम्।५७।
ध्वनिरपि योजनमेकं, प्रजायते श्रोतृ-हृदयहारि-गम्भीरः।
ससलिलजलधरपटलध्वनितमिव प्रविततान्तराशावलयम्।५८।
स्फुरितांशुरत्न- दीधिति- परिविच्छुरिताऽमरेन्द्र- चापच्छायम्।
ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः स्फटिक-शिलाघटितसिंहविष्टरमतुलम्।५९।
यस्येह चतुस्त्रिंशत्-प्रवर-गुणाः प्रातिहार्य-लक्ष्म्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुण-महते ।६०।

अंचलिका

इच्छामि भंते ! णंदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, णंदीसर-दीवम्मि, चउदिस-विदिसासु अंजण-दधिमुह- रदिकर-पुरुणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर- जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहिं गंधेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि, दिव्वेहि धुव्वेहि, दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि वासेहि, दिव्वेहि ण्हाणेहि आसाढ -कत्तियफागुण-मासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति, णंदीसरमहाकल्लाणपुज्जं करंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ -गमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

SCAN TO WATCH

३. पञ्चमहागुरु भक्ति

(आर्या छन्द)

श्रीमदमरेन्द्र-मुकुट- प्रघटित-मणि- किरणवारि- धाराभिः।

प्रक्षालितपद-युगलान्, प्रणमामि जिनेश्वरान् भक्त्या।१।
अष्टगुणैःसमुपेतान्, प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्म-रिपु-समितीन्।
सिद्धान् सततमनन्तान्, नमस्करोमीष्टतुष्टिसंसिद्ध्यै ।२।
साचारश्रुतजलधीन्, प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग-, कमलानि दधे शिरसि मेऽहम्।३।
मिथ्या-वादि -मदोग्र - ध्वान्त - प्रध्वंसि-वचन-संदर्भान्।
उपदेशकान् प्रपद्ये , मम दुरितारि- प्रणाशाय।४।
सम्यग्दर्शन - दीप - प्रकाशका - मेय -बोध-सम्भूताः।
भूरि-चरित्र-पताकास्, ते साधु-गणांस्तु मां पान्तु।५।
जिन-सिद्ध-सूरि- देशक-साधु-वरानमल- गुण- गणोपेतान्।
पञ्चनमस्कारपदैस् त्रिसन्ध्य-मभिनौमि मोक्षलाभाय।६।
एष पञ्चनमस्कारः, सर्व-पापप्रणाशनः ।
मङ्गलानां च सर्वेषां, प्रथमं मंगलं भवेत् ।७।
अर्हत्सिद्धाचार्यो - पाध्यायाः सर्वसाधवः ।
कुर्वन्तु मङ्गलाः सर्वे, निर्वाण-परमश्रियम् ।८।
सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान्, सिद्धानाचार्य-पाठकान् साधून्।
रत्नत्रयं च वन्दे रत्नत्रय- सिद्धये भक्त्या ।९।
पान्तु श्रीपाद-पद्मानि पञ्चानां परमेष्ठिनाम् ।
लालितानि सुराधीश- चूडामणि- मरीचिभिः ।१०।
प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान्, गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगाङ्गै- रष्टभिः स्तुवे ।११।

अंचलिका

इच्छामि भंते! पंचमहागुरु-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेलं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठ-गुण-संपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण-माउया-संजुत्ताणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुणपालणरदाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण- गुणसंपत्ति होउ मज्झं।

४. चैत्यभक्ति

SCAN TO WATCH

(स्रग्धरा छन्द)

श्रीगौतमादि-पद-मद्भुत-पुण्यबन्ध- ,
मुद्योतिताखिल-ममोघ-मघ-प्रणाशम् ।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं,
निर्वाणकारण-मशेष-जगद्धितार्थम् ॥

(हरिणी छन्द)

जयति भगवान् हेमाम्भोज-प्रचार-विजृम्भिता-
वमर-मुकुटच्छायोद्गीर्ण-प्रभा-परिचुम्बितौ ।
कलुष-हृदया मानोद्भ्रांता परस्पर-वैरिणः,
विगत-कलुषा:पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः॥1॥
तदनु जयति श्रेयान्-धर्मः प्रवृद्ध-महोदयः,
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणत-नयस्याङ्गी-भावाद-विविक्त-विकल्पितम्,
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्र-वचोऽमृतम्॥2॥
तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभङ्ग-तरङ्गिणी,
प्रभव-विगम ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी।
निरुपम-सुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलम् ,
विगत-रजसं मोक्षं देयान् निरत्यय-मव्ययम्॥3॥

(आर्या छन्द)

अर्हत्सिद्धाचार्यो-, पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्व-जगद्-वंद्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः॥4 ॥
मोहादि-सर्व-दोषारि-घातकेभ्यः सदा हत-रजोभ्यः।
विरहित-रहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ॥5 ॥
क्षान्त्यार्जवादि-गुण-गण,सुसाधनं सकललोकहित-हेतुम्।
शुभ-धामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्॥6 ॥
मिथ्याज्ञानतमोवृत-, लोकैकज्योतिरमित-गमयोगि।
साङ्गोपाङ्ग-मजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे ॥7 ॥
भवन-विमान-ज्योति-, र्व्यन्तर-नरलोक विश्व-चैत्यानि।

त्रिजग-दभिवन्दिताना, त्रेधा वन्दे जिनेन्द्राणाम्॥8 ॥
भुवन-त्रयेऽपि भुवन-, त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थ-कर्त्रृणाम्।
वन्दे भवाग्नि-शान्त्यै, विभवाना-मालया-लीस्ताः॥9 ॥
इति पञ्च-महापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुध-जनेष्टाम्॥10॥

(वियोगिनी छन्द)

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-, द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि, वन्दे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्॥11॥
द्युतिमण्डलभासुराङ्गयष्टीःप्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः॥1 2 ॥
विगतायुधविक्रिया-विभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कान्त्याऽप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे॥
कथयन्ति कषायमुक्ति-लक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम्॥13॥
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्॥14॥
यदिदं मम सिद्धभक्ति-नीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे॥15॥

(अनुष्टुप् छन्द)

अर्हतां सर्व-भावानां, दर्शन-ज्ञान-सम्पदाम्
कीर्तियिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये॥१६॥
श्रीमद्-भवन-वासस्था स्वयं भासुर-मूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम्॥१७॥
यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये॥१८॥
ये व्यन्तर-विमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्या-मतिक्रान्ताः सन्तु नो दोष-विच्छिदे॥१९॥
ज्योतिषा-मथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयम्भुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान्॥२०॥
वन्दे सुर-किरीटाग्र - मणिच्छाया-भिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्च्चाः सिद्धि-लब्धये ॥21॥

इति स्तुति पथातीत-श्रीभृता-मर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव-निरोधिनी ॥22॥

(आर्यागीति/स्कंध छन्द)

अर्हन्- महा- नदस्य- त्रिभुवन- भव्यजनतीर्थयात्रिक- दुरितं-
प्रक्षालनैककारण- मतिलौकिक- कुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम्॥२३॥
लोकालोक-सुतत्त्व - प्रत्यव- बोधन- समर्थ- दिव्यज्ञान-
प्रत्यह- वहत्प्रवाहं व्रत- शीलामलविशाल- कूलद्वितयम्॥२४॥
शुक्लध्यान- स्तिमित- स्थित- राजद्राज- हंसराजित- मसकृत् ।
स्वाध्याय-मन्द्रघोषं, नानागुण-समितिगुप्ति-सिकतासुभगम् ।।२५॥
क्षान्त्यावर्त-सहस्रं , सर्वदया- विकच- कुसम- विलसल्लतिकम्।
दुःसह परीषहाख्य- द्रुततर- रङ्गत्तरङ्ग- भङ्गुर- निकरम्॥२६॥
व्यपगत-कषाय-फेनं, राग-द्वेषादि-दोष-शैवल-रहितम् ।
अत्यस्तमोहकर्दम- मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् ॥२७॥
ऋषि-वृषभस्तुति- मन्द्रोद्रेकितनिर्घोषविविधविहग- ध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं सास्रव- संवरणनिर्जरा- निःस्रवणम्॥२८॥
गणधर- चक्र- धरेन्द्र- प्रभृति- महाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः।
बहुभिःस्नातंभक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थ- ममेयम् ॥२९॥
अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तर-समस्त-दुरितं दूरम्।
व्यपहरतु परमपावनमनन्य जय्य स्वभावभावगंभीरम्॥३०॥
अताम्र-नयनोत्पलं सकल - कोप - वह्ने - र्जयात् ,
कटाक्ष-शर - मोक्ष-हीन-मविकारतोद्रेकतः।
विषाद- मद- हानितः प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते हृदय - शुद्धि - मात्यन्तिकीम्॥३१॥
निराभरण - भासुरं विगत - राग - वेगोदयात्,
निरम्बर - मनोहरं प्रकृति - रूप - निर्दोषतः।
निरायुध - सुनिर्भयं विगत - हिंस्य - हिंसा - क्रमात्,
निरामिष-सुतृप्ति-मद्-विविधवेदनानां क्षयात्॥३२॥
मितस्थिति - नखाङ्गजं गत - रजोमल - स्पर्शनम्।
नवाम्बुरुह - चन्दन - प्रतिम - दिव्य - गन्धोदयम्।
रवीन्दु - कुलिशादि - दिव्य - बहुलक्षणालंकृतं ।

दिवाकर- सहस्र -भासुर-मपीक्षणानां प्रियम् ॥३३ ॥
हितार्थं - परिपन्थिभिः प्रबल-राग - मोहादिभिः,
कलङ्कितमना जनो यदभिवीक्ष्यशो शुद्धयते ।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः।
शरद्- विमल- चन्द्रमण्डलमिवोत्थितं दृश्यते ॥३४॥
तदेत - दमरेश्वर - प्रचल - मौलि - माला - मणि,
स्फुरत् - किरण - चुम्बनीय - चरणारविन्द- द्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूप - मन्धीकृतम् ।
जगत्- सकल- मन्यतीर्थ- गुरु- रूप- दोषोदयैः ॥३५॥

(क्षेपक श्लोकः)

(स्रग्धरा छन्द)

मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजल, सत्खातिका पुष्पवाटी,
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकान्तर्ध्वजाद्याः।
शालःकल्पद्रुमाणां सुपरिवृत्तवनं स्तूपहर्म्यावली च,
प्राकारः स्फाटिकोन्त-नृसुरमुनिसभा, पीठिकाग्रे स्वयंभूः॥1॥
वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु, नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानाम्॥2॥

अवनि - तल - गतानां, कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां,
वन - भवन - गतानां, दिव्य - वैमानिकानाम्।
इह मनुज - कृतानां, देव राजा - र्चितानां,
जिनवर निलयानां, भावतोऽहं स्मरामि॥३॥

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

जम्बू - धातकि पुष्पकरार्धवसुधा, क्षेत्र त्रये ये भवांश्,
चंद्राम्भोज शिखण्डिकण्ठकनक - प्रावृङ्घनाभाजिनाः।
सम्यग्ज्ञान चरित्र - लक्षणधरा दग्धाष्ट - कर्मेन्धना,
भूतानागत वर्तमान - समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः॥४॥

(स्रग्धरा छन्द)

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ, रजतगिरिवरे, शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे, रतिकर - रुचके, कुण्डले मानुषाङ्के॥

इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ, दधिमुखशिखरे, व्यंतरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले, यानि चैत्यालयानि॥5॥

(बसन्ततिलका छन्द)

देवा - सुरेन्द्र- नर - नाग – समर्चितेभ्यः
पाप-प्रणाशकर-भव्य-मनो हरेभ्यः ।
घण्टा-ध्वजादि परिवार विभूषितेभ्यो,
नित्यं नमो जगति सर्वजिना - लयेभ्यः ॥६॥

अंचलिका

इच्छामि भंते ! चेइय - भत्ति - काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अहलोय - तिरियलोय - उड्ढलोयम्मि, किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउ -विहा देवा सपरिवारा दिव्वेणण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्च-कालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताई णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउमज्झं।

SCAN TO WATCH

५. श्रुतभक्ति

(आर्या छन्द)

स्तोष्ये संज्ञानानि परोक्ष-प्रत्यक्ष-भेद-भिन्नानि।
लोकालोकविलोकन-लोलितसल्लोकलोचनानि सदा॥१॥
अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिन्द्रियेन्द्रियजम्।
बह्वाद्यवग्रहादिककृत - षट्त्रिंशत् - त्रिशत - भेदम् ॥२॥
विविधर्द्धिबुद्धि - कोष्ठस्फुटबीजपदानुसारिबुद्ध्यधिकं।
संभिन्न - श्रोतृ - तया, सार्धं श्रुत - भाजनं वन्दे॥३॥
श्रुतमपि जिनवर - विहितं गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अङ्गाङ्ग- बाह्य - भावित - मनन्त-विषयं नमस्यामि॥४॥
पर्यायाक्षर - पद - संघात - प्रतिपत्तिकानुयोग - विधीन्।

प्राभृतक - प्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु - पूर्वं च ॥५॥
तेषां समासतोऽपि च विंशतिभेदान् समश्नुवानं तत्।
वन्दे द्वादशधोक्तं गम्भीर - वर - शास्त्र - पद्धत्या॥६॥
आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवाय - नामधेयं च।
व्याख्या - प्रज्ञप्तिं च ज्ञातृकथोपासकाध्ययने ॥७॥
वन्देऽन्तकृद्दश - मनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थम्।
प्रश्नव्याकरणं हि विपाकसूत्रं च विनमामि॥८॥
परिकर्म च सूत्रं च स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते ।
सार्द्धं चूलिकयापि च पञ्चविधं दृष्टिवादं च॥९॥
पूर्वगतं तु चतुर्दशधोदित - मुत्पादपूर्व - माद्यमहम् ।
आग्रायणीय - मीडे पुरु - वीर्यानुप्रवादं च॥१०॥
संततमहमभिवन्दे तथास्ति - नास्ति प्रवादपूर्वं च।
ज्ञानप्रवाद - सत्यप्रवाद - मात्मप्रवादं च ॥११॥
कर्मप्रवाद - मीडेऽथ प्रत्याख्यान - नामधेयं च।
दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च॥१२॥
कल्याणनामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं च।
अथ लोकबिन्दुसारं वन्दे लोकाग्रसारपदम् ॥१३॥
दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च।
षोडश च विंशतिं च त्रिंशतमपि पञ्चदश च तथा ॥१४॥
वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम्।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि॥१५॥
पूर्वान्तं ह्यपरान्तं ध्रुव - मध्रुव - च्यवन - लब्धि - नामानि।
अध्रुव - सम्प्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च ॥१६॥
सर्वार्थकल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम् ।
सिद्धि - मुपाध्यं च तथा चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य॥१७॥
पञ्चमवस्तु - चतुर्थ - प्राभृतकस्यानुयोगनामानि।
कृतिवेदने तथैव स्पर्शनकर्म - प्रकृतिमेव ॥१८॥
बन्धन - निबन्धन -प्रक्रमानुपक्रम - मथाभ्युदय - मोक्षौ।
संक्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्मपरिणामौ॥१९॥
सात - मसातं दीर्घ, ह्रस्वं भवधारणीय - संज्ञं च।

पुरुपुद्गलात्मनाम च, निधत्तमनिधत्तमभिनौमि॥२०॥
सनिकाचितमनिकाचितमथकर्मस्थितिकपश्चिमस्कन्धौ ।
अल्पबहुत्वं च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम्॥२१॥
कोटीनां द्वादशशतमष्टापञ्चचाशतं सहस्राणाम् ।
लक्षत्र्यशीतिमेव च, पञ्च च वन्दे श्रुतपदानि॥२२॥
षोडशशतं चतुस्त्रिंशत् कोटीनां त्र्यशीति-लक्षाणि।
शतसंख्याष्टासप्तति-, मष्टाशीतिं च पदवर्णान्॥२३॥
सामायिकं चतुर्विंशति-स्तवं वन्दनां प्रतिक्रमणम्।
वैनयिकं कृतिकर्म च, पृथुदशवैकालिकं च तथा॥२४॥
वर-मुत्तराध्ययन-मपि, कल्पव्यवहार-मेव-मभिवन्दे।
कल्पाकल्पं स्तौमि, महाकल्पं पुण्डरीकं च॥२५॥
परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव ।
निपुणान्यशीतिकं च, प्रकीर्णकान्यङ्ग-बाह्यानि॥२६॥
पुद्गल-मर्यादोक्तं, प्रत्यक्षं सप्रभेद-मवधिं च।
देशावधि - परमावधि - सर्वावधि - भेद-मभिवन्दे॥२७॥
परमनसि स्थितमर्थं, मनसा परिविद्य मन्त्रिमहितगुणम्।
ऋजुविपुलमतिविकल्पं स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम्॥२८॥
क्षायिकमनन्तमेकं, त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपदवभासम्।
सकल-सुख-धाम सततं, वन्देऽहं केवलज्ञानम् ॥२९॥
एवमभिष्टवतो मे ज्ञानानि समस्त-लोक-चक्षूंषि॥
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धिज्ञानफलं सौख्य-मच्यवनम् ॥३०॥

अंचलिका

इच्छामि भंते! सुदभत्ति -काउस्सगो कओ तस्सा-लोचेउं, अंगोवंगपइण्णए- पाहुडय- परियम्म- सुत्त- पढमाणुओग- पुव्वगय- चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

६. निर्वाणभक्ति

(आर्या छन्द)

विबुधपति-खगपति-नरपति-धनदोरग-भूतयक्षपतिमहितम् ।
अतुलसुखविमलनिरुपमशिवमचलमनामयं हि संप्राप्तम्।१।
कल्याणैः संस्तोष्ये पञ्चभिरनघं त्रिलोकपरमगुरुम्।
भव्यजनतुष्टि- जननैर्दुरवापैः सन्मतिं भक्त्या।२।
आषाढसुसितषष्ठ्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि।
आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीशः।३।
सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान् संप्रदर्श्य विभुः।४।
चैत्रसितपक्षफाल्गुनि- शशाङ्कयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ।५।
हस्ताश्रिते शशाङ्के चैत्र-ज्योत्स्ने चतुर्दशी-दिवसे।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ।६।
भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनन्त-गुणराशिः।
अमरोपनीतभोगान् सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्युः।७।
नानाविधरूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम्।
चन्द्रप्रभाख्यशिविकामारुह्य पुराद्विनिःक्रान्तः।८।
मार्गशिरकृष्णदशमी-हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते सोमे ।
षष्ठेन त्वपराह्णे भक्तेन जिनः प्रवव्राज।९।
ग्रामपुर- खेट- कर्वट- मटंब- घोषाकरान्प्रविजहार ।
उग्रैस्तपो- विधानैर्- द्वादश- वर्षाण्यमर-पूज्यः।१०।
ऋजु-कूलायास्तीरे शालद्रुमसंश्रिते शिलापट्टे ।
अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ।११।
वैशाखसित -दशम्यां हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते चन्द्रे ।
क्षपक-श्रेण्यारूढ-स्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ।१२।
अथ भगवान् संप्रापद्दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यम्।
चातुर्वर्ण्य-सुसङ्घस्तत्राभूद् गौतम-प्रभृतिः।१३।
छत्राशोकौ घोषं सिंहासन-दुंदुभीकुसुमवृष्टिम्।

वरचामर भामण्डल-दिव्यान्यन्यानि चावापत् ।१४।
दशविधमनगाराणा-मेकादशधोत्तरं तथा धर्मम्।
देशयमानो व्यवहरत्-त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः।१५।
पद्मवनदीर्घिकाकुल-विवधि-द्रुमखण्डमण्डिते रम्ये ।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः।१६।
कार्तिककृष्ण - स्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद्-व्यजरामरमक्षयं सौख्यम्।१७।
परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधाह्यथाशु चागम्य।
देवतरुरक्तचन्दन- कालागुरु - सुरभिगोशीर्षैः ।१८।
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभि-धूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गता दिवं खं च वनभवने।१९।

(प्रहर्षिणी छन्द)

इत्येवं भगवति वर्धमानचन्द्रे, यः स्तोत्रं पठति सुसन्ध्ययो-र्द्वयोर्हि।
सोऽनन्तं परम-सुखं नृदेव-लोके, भुक्त्वान्ते शिव-पदमक्षयं प्रयाति।२०।

(वसंततिलका छन्द)

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुत-पारगाणां,
निर्वाण-भूमि-रिह भारतवर्ष-जानाम्।
तामद्य शुद्ध -मनसा क्रियया वचोभिः
संस्तोतु-मुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या।२१।
कैलाशशैल-शिखरे परि-निर्वृतोऽसौ ,
शैलेशिभाव-मुपपद्य वृषो महात्मा।
चम्पापुरे च वसुपूज्य-सुतः सुधीमान्,
सिद्धिं परामुपगतो गतरागबन्धः।२२ ।
यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः,
पाखण्डिभिश्च परमार्थ-गवेष-शीलैः।
नष्टाष्ट-कर्म-समये तदरिष्टनेमिः,
संप्राप्तवान् क्षितिधरे वृहदूर्जयन्ते ।२३।
पावापुरस्य बहिरुन्नत-भूमि-देशे,
पद्मोत्पला-कुलवतां सरसां हि मध्ये ।
श्री-वर्द्धमान-जिनदेव इति प्रतीतो,

निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ।२४।
शेषास्तु ते जिनवरा जित-मोह-मल्ला,
ज्ञानार्कभूरि-किरणै-रवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारित-सौख्यनिष्ठ-,
सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः।२५।
आद्यश्चतु - र्दश-दिनै- र्विनिवृत्तयोगः,
षष्ठेन निष्ठित-कृतिर्जिनवर्द्धमानः।
शेषाविधूत-घनकर्म -निबद्ध पाशाः,
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः।२६।
माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्धा
न्यादाय मानस-करै-रभितः किरन्तः।
पर्येम आदृति-युता भगवन्-निषद्याः,
संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः।२७।
शत्रुञ्जये नगवरे दमितारि-पक्षाः,
पण्डोः सुताः परम-निर्वृति-मभ्युपेताः।
तुंग्यां तु सङ्गरहिता बलभद्रनामा,
नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः।२८।
द्रोणीमति - प्रवर-कुण्डल - मेंढ्रके च,
वैभार-पर्वत-तले वर-सिद्धकूटे।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि - बलाहके च,
विन्ध्ये च पोदनपुरे वृष-दीपके च।२९।
सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे,
दण्डात्मके गजपथे पृथु-सार-यष्टौ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः,
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन्।३०।
इक्षोर्विकार-रसपृक्त-गुणेन लोके,
पिष्टोऽधिकं मधुरता-मुपयाति यद्वत् ।
तद्वच्च पुण्यपुरुषै-रुषितानि नित्यं,
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि।३१।
इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीना,

प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृति-भूमिदेशाः।
ते मे जिना जितभया मुनयश्च शान्ताः,
दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम्।३२।

क्षेपक श्लोकानि

(स्रग्धरा छन्द)

कैलाशाद्रौ मुनीन्द्रः पुरुरपदुरितो मुक्तिमाप प्रणूतः।
चंपायां वासुपूज्यस्-त्रिदशपतिनुतो नेमिरप्यूर्जयन्ते।१।
पावायां वर्धमानस् त्रिभुवन-गुरवो विंशतिस्तीर्थनाथाः।
सम्मेदाग्रे-प्रजग्मुर्ददतु विनमतां निवृतिं नो जिनेन्द्राः।२।

(अनुष्टुप् छन्द)

गौर्गजोश्वः कपिः कोकः सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो गण्डो महिष-सूकरौ।३।
सेधा-वज्र-मृगच्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छपश्चोत्पलं शङ्खो नाग-राजश्च केसरी।४।
शान्ति-कुन्थ्वर-कौरव्या यादवौ नेमि-सुव्रतौ ।
उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकुवंशजाः ।५।

अंचलिका

इच्छामि भंते! परिणिव्वाणभत्ति काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्मि, अवसप्पिणीए चउत्थ - समयस्स पच्छिमे - भाए, आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि, पावाए णयरीए कत्तिय-मासस्स किण्ह-चउदसिए रत्तीए सादीए, णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो, तिसुवि लोएसु, भवणवासिय-वाणविंतर जोयिसिय कप्पवा-सियत्ति चउव्हिा देवा सपरिवारा दिव्वेण णहाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति परिणिव्वाण-महाकल्लाण-पुज्जं करंति, अहमवि इह संतो तत्थ संताइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि,-मरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ-मज्झं।

७. आचार्यभक्ति

(आर्यागीति/स्कन्ध छन्द)

सिद्ध-गुण-स्तुति निरता, नुद्धूतरुषाग्नि-जालबहुलविशेषान् ।
गुप्तिभिरभिसंपूर्णान् मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान् ॥१॥

मुनि-माहात्म्य विशेषान्, जिनशासन-सत्प्रदीप-भासुरमूर्तीन् ।
सिद्धिं प्रपित्-सुमनसो, बद्धरजोविपुल-मूलघातन-कुशलान्॥२॥

गुणमणि-विरचितवपुषः, षड्द्रव्यविनिश्चतस्य धातृन्सततम्।
रहितप्रमादचर्यान्, दर्शनशुद्धान् गणस्य संतुष्टि-करान् ॥३॥

मोहच्छिदुग्र-तपसः प्रशस्त-परिशुद्धहृदयशोभन-व्यवहारान् ।
प्रासुक-निलयाननघानाशा विध्वंसि-चेतसो हतकुपथान् ॥४॥

धारित-विलसन्मुण्डान्वर्जितबहुदण्ड-पिण्डमण्डल-निकरान् ।
सकलपरीषहजयिनः, क्रियाभिरनिशं प्रमादतःपरिरहितान् ॥५॥

अचलान् व्यपेतनिद्रान्, स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्या - हीनान्।
विधिनानाश्रितवासा, नलिप्तदेहान् विनिर्जितेन्द्रियकरिणः॥६॥

अतुलानुत्कुटिका-सान्विविक्त-चित्तान-खण्डित-स्वाध्यायान् ।
दक्षिण-भावसमग्रान्, व्यपगत-मदरागलोभ-शठमात्सर्यान् ॥७॥

भिन्नार्तरौद्र-पक्षान्, संभावित-धर्मशुक्ल-निर्मल-हृदयान् ।
नित्यं पिनद्धकुगतीन्,पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारवचर्यान् ॥८॥

तरुमूल-योगयुक्ता, -नवकाशाताप-योगराग-सनाथान् ।
बहुजनहितकरचर्यानभया - ननघान्महानुभाव - विधानान्॥९॥

ईदृशगुण-सम्पन्नान, युष्मान्भक्त्या-विशालया - स्थिरयोगान् ।
विधिनानारत-मग्रयान्, मुकुलीकृतहस्त-कमलशोभितशिरसा॥१०॥

अभिनौमिसकलकलुष-प्रभवोदयजन्म-जरामरणबंधन-मुक्तान् ।
शिवमचलमनघमक्षय, -मव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम्॥११॥

क्षेपकश्लोकानिः

(आर्या छन्द)

श्रुत- जलधि-पारगेभ्यः, स्वपर-मतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः॥१॥

छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहा-चार-करण-संदरिसे।
सिस्साणुग्गह-कुसले, धम्मा-इरिये सदा वंदे॥२॥

गुरु-भत्ति संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति॥३॥

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

ये नित्यं व्रत-मंत्र-होम निरता, ध्यानाग्नि होत्रा-कुलाः,
षट्कर्माभि-रतास्तपो-धन धनाः, साधुक्रिया साधवः ।
शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणाश्चंद्रार्क-तेजोऽधिकाः,
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः प्रीणंतु मां साधवः॥४॥

(अनुष्टुप् छन्द)

गुरवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञान-दर्शन नायकाः।
चारित्रार्णव-गंभीरा, मोक्ष-मार्गोपदेशकाः॥५॥

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

प्राज्ञः प्राप्त-समस्त शास्त्र हृदयः, प्रव्यक्तलोकस्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभा-परः प्रशमवान्, प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्न-सहः प्रभुः परमनो, हारी परानिन्दया,
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः, प्रस्पष्ट-मिष्टाक्षरः॥६॥

(हरिणी छन्द)

श्रुत-मविकलं शुद्धा वृत्तिः पर-प्रति-बोधने,
परिणति-रुरुद्योगो मार्ग-प्रवर्तन-सद्विधौ ।
बुधनुति-रनुत्सेको, लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा,
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्॥७॥

विशुद्धवंशः परमाभिरूपो जितेन्द्रियो धर्मकथाप्रसक्तः।
सुखर्द्धिलाभेष्वविसक्त चित्तोबुधैः सदाचार्य इति प्रशस्तः॥८॥

विजित - मदन - केतुं निर्मलं निर्विकारं,
रहित - सकल - सङ्गं संयमासक्त - चित्तं।
सुनय - निपुण - भावं ज्ञाततत्त्वप्रपञ्चं,
जनन-मरण-भीतं सद्गुरुं नौमि नित्यम्।।९॥

सम्यग्दर्शन मूलं, ज्ञानस्कंधं चरित्र-शाखाढ्यम्।
मुनिगणविहगाकीर्णमाचार्य-महाद्रुमं वन्दे ॥१०॥

अंचलिका

इच्छामि भंते ! आयरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण, सम्मदंसण सम्मचारित्तजुत्ताणं पञ्चविहाचाराणं आयरियाणं, आयारादि - सुदणाणोवदेसयाणं, उवज्झायाणं, तिरयण-गुणपालणरयाणं, सव्व-साहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

SCAN TO WATCH

८. चारित्र भक्ति

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्, - केयूर-हाराङ्गदान्,
भास्वन्-मौलि-मणिप्रभा-प्रविसरोत्-तुङ्गोत्तमाङ्गान्नतान् ।
स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनयश्, चक्रुः प्रकामं सदा,
वन्दे पञ्चतयं तमद्य निगदन्, - नाचार-मभ्यर्चितम् ॥१॥

अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वया-विकलता, - कालोपधा-प्रश्रयाः,
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहु-मतिश्, चेत्यष्टधा व्याहृतम् ।
श्रीमज्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता, तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपता, - म्युद्धूतये कर्मणाम् ॥२॥

शङ्का-दृष्टि-विमोह-काङ्-क्षणविधि, व्यावृत्ति-सन्नद्धतां,
वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरतिं, धर्मोपबृंह-क्रियाम् ।
शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद्, भ्रष्टस्य संस्थापनं,
वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं, मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥३॥

एकान्ते शयनोपवेशन-कृतिः, संतापनं तानवं,
संख्या-वृत्ति-निबन्धना-मनशनं, विष्वाण-मर्द्धोदरम् ।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः, स्वादो रसस्यानिशं,
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगति,- प्राप्त्यभ्युपायं तपः ॥४॥

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनं,
ध्यानं व्यापृति-रामया-विनि गुरौ, वृद्धे च बाले यतौ ।
कायोत्सर्जन सत्क्रिया, विनय-इत्येवं तपः षड्विधं,
वन्देऽभ्यन्तरमन्तरङ्गबलवद्, - विद्वेषि विध्वंसनम् ॥५॥

सम्यग्ज्ञान विलोचनस्य दधतः श्रद्धान-मर्हन्मते,
वीर्यस्या-विनि-गूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः।
या वृत्तिस्तरणीव नौ-रविवरा, लघ्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं, वन्दे सता-मर्चितम् ॥६॥

तिस्रः सत्तम-गुप्तयस्तनुमनो, भाषानिमित्तोदयाः,
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः, पञ्चव्रतानीत्यपि ।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परैः-
आचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्, वीरं नमामो वयम् ॥७॥

आचारं सह-पञ्चभेद-मुदितं, तीर्थं परं मङ्गलं,
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्र-महतो, वन्दे समग्रान्यतीन् ।
आत्माधीन-सुखोदया-मनुपमां लक्ष्मी-मविध्वंसिनी-,
मिच्छन्केवलदर्शना-वगमन, प्राज्य-प्रकाशोज्ज्वलाम् ॥८॥

अज्ञा-नाद्य-दवीवृतं नियमिनोऽ, वर्तिष्यहं चान्यथा,
तस्मिन् नर्जित-मस्यति प्रतिनवं, चैनो निराकुर्वति ।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसा-मृद्धिं नयत्यद्भुतं,

तन्मिथ्या गुरुदुष्कृतं भवतु मे, स्वं निन्दतो निन्दितम् ॥९॥
संसार-व्यसना-हति-प्रचलिता, नित्योदय-प्रार्थिनः,
प्रत्यासन्न-विमुक्तयः सुमतयः, शान्तैनसः प्राणिनः ।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपान-मुच्चैस्तरा-,
मारोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं, जैनेन्द्र-मोजस्विनः॥१०॥

इच्छामि भंते ! चारित्तभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्स आलोचेउं सम्म-णाणुज्जोयस्स सम्मत्ताहि-ट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स, कम्म-णिज्जरफलस्स, खमाहारस्स, पञ्चमहव्वयसंपण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पञ्चसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाण साहणस्स, समया इव पवेसयस्स सम्मचारित्तस्स णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहि-लाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।.

SCAN TO WATCH

९. योगिभक्ति

(दुबई छन्द)

जातिजरो-रुरोग-मरणातुर, शोकसहस्र - दीपिता,
दुःसह - नरक - पतनसन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्ध-चेतसः ।
जीवितमम्बु-बिन्दुचपलं, तडिदभ्र-समा विभूतयः,
सकलमिदं विचिन्त्य मुनयः, प्रशमाय वनान्त-माश्रिताः॥१॥

(भद्रिका छन्द)

व्रतसमिति-गुप्तिसंयुताः, शमसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः।
ध्यानाध्ययनवशङ्गताः, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ॥२॥

(दुबई छन्द)

दिनकर किरण-निकर-संतप्त, शिला-निचयेषु निःस्पृहाः,
मलपटला - वलिप्ततनवः शिथिलीकृत - कर्मबंधनाः।
व्यपगत-मदन-दर्प-रतिदोष, कषाय-विरक्त-मत्सरा,

गिरिशिखरेषु चंडकिरणाभि, -मुखस्थितयो दिगम्बराः॥३॥

(भद्रिका छन्द)

सज्ज्ञानामृतपायिभिः, क्षान्तिपयः सिञ्च्यमानपुण्यकायैः।
धृतसन्तोषच्छत्रकैः, तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ॥४॥

(दुबई छन्द)

शिखिगल-कज्जलालिमलिनै, -र्विबुधाधिपचाप-चित्रितैः ,
भीम-रवैर्विसृष्ट-चण्डाशनि, शीतल-वायु-वृष्टिभिः ।
गगनतलं विलोक्य जलदैः, स्थगितं सहसा तपोधनाः,
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु, निशासु विशङ्कमासते ॥५॥
जलधारा-शरताडिता, न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।
संसारदुःखभीरवः, परीषहाराति-घातिनः प्रवीराः ॥६॥

(दुबई छन्द)

अविरतबहल-तुहिनकण, वारिभिरंघ्रिप-पत्रपातनैः-
अनवरतमुक्त-सीत्काररवैःपरुषैरथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः।
इह श्रमणा धृति-कम्बला-वृताः शिशिर-निशां,
तुषार-विषमां गमयन्ति, चतुःपथे स्थिताः ॥७॥
इति योगत्रयधारिणः, सकलतपशालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः।
परमानन्दसुखैषिणः, समाधिमग्र्यं दिशन्तु नो भदन्ताः॥८॥

क्षेपकश्लोकः

(अनुष्टुप् छन्द)

योगीश्वरान् जिनान् सर्वान् योग-निर्धूत-कल्मषान्।
योगैस्त्रिभि - रहं वन्दे, योग - स्कन्ध -प्रतिष्ठितान् ॥१॥

(स्रग्धरा छन्द)

प्रावृट्-काले सविद्युत्प्रपतित-सलिले वृक्षमूलाधिवासाः।
हेमन्ते रात्रि-मध्ये, प्रति-विगतभयाः काष्ठवत्-त्यक्तदेहाः॥

ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता, गिरि-शिखर-गताः स्थानकूटान्तरस्थाः।
ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनि - गणवृषभा मोक्षनिः श्रेणिभूताः ॥२॥

(आर्या छन्द)

गिम्हे गिरि-सिहरत्था, वरिसायाले-रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, ते साहू वंदिमो णिच्च॥१॥

(अनुष्टुप् छन्द)

गिरि-कन्दर-दुर्गेषु, ये वसंति दिगम्बराः।
पाणिपात्र-पुटाहारास्, ते यांति परमां गतिम्॥२॥

अंचलिका

इच्छामि भंते ! योगिभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमिसु आदावण-रुक्खमूल-अब्भोवासठाणमोण - वीरास - णेक्कपास कुक्कुडासण-चउछपक्ख-खवणादि जोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

SCAN TO WATCH

१०. शान्ति भक्ति

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्! पादद्वयं ते प्रजा,
हेतुस्तत्र विचित्र-दुःख-निचयः, संसार घोरार्णवः।
अत्यन्त-स्फुरदुग्र-रश्मि - निकर, - व्याकीर्ण-भूमण्डलो,
ग्रैष्मः कारयतीन्दु-पाद-सलिलच्-, छायानुरागं रविः।१।
क्रुद्धाशीर्विष -दष्ट-दुर्जय-विष, - ज्वालावली-विक्रमो,
विद्या-भेषज-मन्त्र-तोय-हवनै-, र्याति प्रशान्तिं यथा।
तद्वत्ते चरणारुणाम्बुज-युगस्, - तोत्रोन्मुखानां नृणां,
विघ्नाः काय विनायकाश्च सहसा,शाम्यन्त्यहो विस्मयः।२।

सन्तप्तोत्तम - काञ्चन - क्षितिधर, श्रीस्पर्द्धि- गौरद्युते,
पुंसां त्वच्चरणप्रणाम-करणात् पीडाः प्रयान्ति क्षयम् ।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्कर-शत-, व्याघात-निष्कासिता,
नाना देहि विलोचन-द्युतिहरा, शीघ्रं यथा शर्वरी।३।
त्रैलोक्येश्वर- भङ्ग-लब्ध- विजया- दत्यन्त- रौद्रात्मकान्,
नाना-जन्म-शतान्तरेषु पुरतो, जीवस्य संसारिणः।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना, कालोग्र-दावानलान्,
न स्याच्चेत्तव पाद-पद्म-युगल-स्तुत्यापगा-वारणम्।४।
लोकालोक-निरन्तर-प्रवितत-, ज्ञानैक -मूर्त्ते विभो!
नाना - रत्न - पिनद्ध - दण्ड -रुचिर -श्वेतात-पत्रत्रय।
त्वत्पाद-द्वय-पूत-गीत-रवतः, शीघ्रं द्रवन्त्यामया,
दर्पाध्मात-मृगेन्द्रभीम-निनदाद्, वन्या यथा कुञ्जराः।५।
दिव्य-स्त्री-नयनाभिराम -विपुल, श्रीमेरु - चूडामणे,
भास्वद्-बालदिवाकर-द्युति-हर-, प्राणीष्ट -भामण्डल।
अव्याबाध-मचिन्त्य -सार -मतुलं, त्यक्तोपमं शाश्वतं ।
सौख्यं त्वच्चरणारविन्द-युगल-, स्तुत्यैव सम्प्राप्यते।६।
यावन्नोदयते प्रभा-परिकरः श्री-भास्करो भासंयस् ,
तावद् धारयतीह पङ्कज-वनं, निद्रातिभार-श्रमम्।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्!, न स्यात् प्रसादोदयस्
तावज्जीव-निकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ।७।
शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र-शान्तमनसस् त्वत्पाद्-पद्माश्रयात्,
संप्राप्ताः पृथिवी-तलेषु बहवः शान्त्यर्थिनः प्राणिनः।
कारुण्यान् मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरू,
त्वत्पादद्वय-दैवतस्य गदतः शान्त्यष्टकं भक्तितः।८।|

(दोधक छन्द)

शान्तिजिनं शशि-निर्मल-वक्त्रं, शीलगुण-व्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चित-लक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम्।९।
पञ्चममीप्सित-चक्रधराणां, पूजितमिन्द्र-नरेन्द्रगणैश्च ।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि।१०।

दिव्यतरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टि, -र्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे, यस्य विभाति च मण्डलतेजः।११।
तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं, शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं, मह्यमरं पठते परमां च ।१२।

(वसन्ततिलका छन्द)

येऽभ्यर्चिता मुकुट- कुण्डल- हार- रत्नैः,
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पादपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपास्,
तीर्थङ्कराः सतत शान्तिकरा भवन्तु ।१३।

(उपजाति छन्द)

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः।१४।

(स्रग्धरा छन्द)

क्षेमं सर्वप्रजानां, प्रभवतु बलवान्, धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्, वितरतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चोरिमारिः, क्षणमपि जगतां, मास्मभूज्जीव-लोके,
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं, प्रभवतु सततं, सर्व-सौख्य-प्रदायि।१५।

(वसन्ततिलका छन्द)

तद्-द्रव्य-मव्ययमुदेतु शुभःस देशः,
संतन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण,
रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षुवर्गे१६।

(अनुष्टुप छन्द)

प्रध्वस्त-घाति-कर्माणः, केवल - ज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः।१७।

अंचलिका

इच्छामि भंते! संतिभत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पञ्च महा-कल्लाण-संपण्णाणं अट्ठ-महापाडिहेर-सहियाणं चउतीसातिसय -विसेस -संजुत्ताणं,

बत्तीस-देविंद-मणिमय- मउड-मत्थय-महियाणं बलदेव-वासुदेव चक्कहर-रिसि-मुणि-जदि-अणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स -णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महा– पुरिसाणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ , सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

SCAN TO WATCH

११. समाधि भक्ति

(अनुष्टुप छन्द)

स्वात्माभिमुख-संवित्ति-लक्षणं श्रुत-चक्षुषा।
पश्यन्पश्यामि देव त्वां केवलज्ञान - चक्षुषा।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां, गुणागण-कथा, दोषवादे च मौनम्।१।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे।
संपद्यन्तां, मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः।२।

(रथोद्धता छन्द)

जैनमार्ग-रुचिरन्य-मार्ग-निर्वेगता, जिनगुण-स्तुतौ मतिः।
निष्कलंक-विमलोक्ति-भावनाः संभवन्तु मम जन्मजन्मनि।३।

(आर्या छन्द)

गुरुमूले यति-निचिते, - चैत्यसिद्धान्त-वार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि, संन्यसन्-समन्वितं मरणम्।४।

(अनुष्टुप् छन्द)

जन्म-जन्म-कृतं पापं, जन्म -कोटिसमार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-मूलं, हन्यते जिन-वन्दनात् ।५।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

आबाल्याज्जिनदेवदेव! भवतः, श्रीपादयोः सेवया,
सेवासक्त - विनेयकल्प-लतया, कालोऽद्यया-वद्गतः।

त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना, प्राण-प्रयाणक्षणे,
त्वन्नाम-प्रतिबद्ध-वर्णपठने, कण्ठोऽस्त्व-कुण्ठो मम।६।

(आर्या छन्द)

तव पादौ मम हृदये , मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन्निर्वाण-संप्राप्तिः।७।
एकापि समर्थेयं, जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम् ।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः।८।

(प्राकृत गाथा)

पंच अरिंजयणामे पंच य मदि-सायरे जिणे वंदे।
पंच जसोयहरणामे, पंच य सीमंदरे वंदे।९।
रयणत्तयं च वंदे, चउवीस जिणे च सव्वदा वंदे।
पञ्चगुरुणां वंदे, चारणचरणं सदा वन्दे ।१०।

(अनुष्टुप् छन्द)

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म , - वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे ।११।
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।१२।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते , मुक्तिश्रियो वश्यता-,
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति-प्रयततो, मोहस्य सम्मोहनम् ,
पायात्पञ्च-नमस्क्रियाक्षरमयी, साराधना देवता।१३।

(अनुष्टुप् छन्द)

अनन्तानन्त-संसार, - संततिच्छेद-कारणम् ।
जिनराज-पदाम्भोज-स्मरणं शरणं मम।१४।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ।१५।
नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये ।

वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति।१६।
जिने भक्ति-र्जिने भक्ति-, र्जिने भक्ति-र्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ।१७।

(आर्या छन्द)

याचेऽहं याचे ऽहं, जिन! तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।
याचेऽहं याचेऽहं, पुनरपि तामेव तामेव।१८।

(अनुष्टुप् छन्द)

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ।१९।

अंचलिका

इच्छामि भंते! समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूवपरमप्पज्झाणलक्खणं समाहि-भत्तीए णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं समाहि-मरणं जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

SCAN TO WATCH

१२. वीयराय भक्ति

- मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

हे वीयराय भयवंत विहो
सव्वण्हु - हियंकर संति पहो।
अण्णाणं हर जगजणमणहर !
अवमाणं वेरं पावं हर
मंगलमय! मंगलदाणकरं
तव जुगचरणं सरणं सरणं ॥१॥
हे वीयराय.....

जीवा दु महामदमोहजुदा
जणणं मरणं जणणं मरणं
कुव्वंति सया बहुजोणिगदं

तव जुगचरणं मदमोहहरं ॥२॥

हे वीयराय .....

जीवाण सया देहासती
विसयासत्ती ण कदा तित्ती।
भयवंत-जिणेसर- मोक्खपहो
कुव्वदि णियतितिं जगमेत्तिं ॥३॥

हे वीयराय .....

SCAN TO WATCH

१३. गोम्मटेस थुदि

- आचार्य श्री नेमिचन्द्र

विसट्ट- कंदोट्ट- दलाणुयारं, सुलोयणं चंद - समाण - तुण्डं।
घोणाजियं चम्पय - पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥१॥

अच्छाय - सच्छं जलकंत - गंडं, आबाहु - दोलंत सुकण्ण पासं।
गइंद - सुण्डुज्जल - बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥२॥

सुकण्ठ - सोहा - जियदिव्व संखं, हिमालयुद्दाम - विसाल - कंधं।
सुपेक्ख-णिज्जायल सुट्ठुमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥३॥

विंज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिंहामणि सव्व - सुचेदियाणं।
तिलोय - संतोसय - पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥४॥

लयासमक्कंत-महासरीरं, भव्वावलीलद्ध- सुकप्परुक्खं।
देविंदविंदच्चिय - पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥५॥

दियंबरो जो ण च भीइजुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादिजंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥६॥

आसां ण जो पेक्खदि सच्छदिट्ठि, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥७॥

उपाहिमुत्तं धण - धाम - वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय - मोहहारयं।
वस्सेय- पज्जंतमुववास - जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥८॥

१४. पंच महागुरु भक्ति

मणुय-णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया, पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥1॥

जेहिं झाणग्गि-बाणेहिं अइ-दड्ढयं, जम्म-जर-मरण-णयरत्तयं दड्ढयं,
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दितु सिद्धा वरं णाणयं ॥2॥

पंच-हाचार-पंचग्गि-संसाहया बारसंगाइ-सुअ-जलहि-अवगाहया।
मोक्ख-लच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खंगयासंगया ॥3॥

घोर-संसार-भीमाडवी-काणणे, तिक्ख-वियरालणह-पाव-पंचाणणे।
णट्ठ-मग्गाण जीवाण पहदेसिया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया॥4॥

उग्गतवचरणकरणेहिं झीणं गया, धम्म वर झाण सुक्केक्क झाणं गया।
णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहवो ते महं मोक्खपहमग्गया॥5॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरुवंदए, गुरुय-संसार-घण-वेल्लि सो छिंदए।
लहइ सो सिद्धसोक्खाइं बहुमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥6॥

अरुहा सिद्धा-इरिया उवज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
एयाण-णमोयारा भवे भवे मम सुहे दिंतु ॥7 ॥

१५. पागद धजगीद

(प्राकृत ध्वज गीत)

- मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

पंचवण्णमय जेण्हधजो जयदु जयदु जयदु
सव्व -भव्व - मंगलयारी जयदु जयदु जयदु ॥१॥

सव्व विग्घणासणयारी जयदु जयदु जयदु
जिणमदमंगलचिण्हं एदं जयदु जयदु जयदु ॥२॥

अणेयंतमयधम्मो लोए जयदु जयदु जयदु
सच्च-अहिंसा-विजय पडागा जयदु जयदु जयदु ॥३॥

मंगलमय-जिणसासण-चिण्हं जयदु जयदु जयदु
घरे घरे जिणधम्म - पडागा जयदु जयदु जयदु ॥४॥

भारददेसे संतिकेदू जयदु जयदु जयदु
एसा विजयंती विस्सम्मि जयदु जयदु जयदु॥५॥

१६. जिणवाणी थुदि

(जिणवाणी स्तुति)

- मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

सिरि जिणवाणी जग कल्लाणी
जगजणमदतममोहहरी ,
जणमणहारी गणहरहारी
जम्मजराभवरोगहरी ।
तित्थयराणं दिव्वझुणिं जो
पढइ सुणइ मईए धारइ ,
णाणं सोक्खमणंतं धरिय
सासद-मोक्खपदं पावइ ॥

१७. चउवीस जिणभत्ति

(चौबीस जिनभक्ति)

- मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

जय उसह जिणेसर आदिदेव
जय अजिय सुरासुर-पाय-सेव।
जय संभव जिद-भवसयल-दोस
जय अहिणंदण आणंद कोस ॥1॥

जय सुमइणाह सम्मइपयास
जय पउमप्पह सिवलोयवास
जय जय सुपास णियभत्तपास
चंदप्पह-जिणवर चंदभास ॥2 ॥

जय पुप्फदंत महिमामहंत
जय सीयल सीयलवयणकंत
जय सेय सेयपहदरिससुज्ज

जय वासुपुज्ज तियलोयपुज्ज ॥3॥
जय विमलजिणेसर विजियचित्त।
जय जय अणंतजिण अइपवित्त
जय धम्मणाह धम्माहिराय ।
जय संतिणाह जगसंतिदाय ॥4॥
जय कुंथुजिणेसर दयावंत
जय अरजिण णाह विमुत्तिकंत
जय मल्लिजिणेसर विहदकम्म
जय मुणिसुव्वय जिण पत्तसम्म॥5॥
जय णमिजिण भवतणमोहमोक्ख
जय णेमिजिणेसर सीलसोक्ख
जय पासणाह सम्मेद-मुत्त
जय वड्ढमाण देसिदजिणुत्त ॥6॥
चउवीस जिणेसर वंदणेण
मम चित्तं णिम्मलयरं जेण
जिणवर-भत्ती पुण्णेण होइ
जो करइ तियालं सुहं लेइ ॥7॥

SCAN TO WATCH

१८. भजन

मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

पसीयंतु ते पसीयंतु मे,
पसीयंतु ते पसीयंतु मे।
जिणा केवली धम्मतित्थंकरा
पसीयंतु ते पसीयंतु मे॥
जे णिम्ममा जे णिरीहा सदा
जे चेयणाए विलीणा मुदा
रमंति सदा सुद्धभावेसु जे
पसीयंतु ते पसीयंतु मे॥

सिद्धारिहा सूरिणो साहवो
अज्झावगा पंच परमेट्ठिणो।
सुहं दिंतु सरणोत्तमा मंगला
पसीयंतु ते पसीयंतु मे।

SCAN TO WATCH

१९. वड्ढमाण सामि

(वर्धमान स्वामी)

मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

वड्ढमाणं जिणं धम्मतित्थंकरं
भव्वजीवाण सच्चं पहदेसगं॥
पंचमे दुस्समे अम्हि काले तुमं
मे समक्खं सदा होहि वरभावणं।
वीयरागस्स चरणं हि सरणं परं
वड्ढमाणं जिणं धम्मतित्थंकरं ॥१॥
जण्णहिंसा णिसिद्धा कदा जेण सा
जस्स माहप्पमेदं ण वचिगोयरा।
'जीवहि जीवयंतु' त्ति संदेसगं
वड्ढमाणं जिणं धम्मतित्थंकरं ॥२॥
दद्दुरो जस्स पूयासुभावं गदो
मिच्चुणा जो खणेणग्गसग्गी भवो।
चंदणा भत्तिबद्धा य पावइ सुहं
वड्ढमाणं जिणं धम्मतित्थंकरं ॥३॥
पूयचरणं हि चित्ते चिट्ठदु मुदा
सम्ममग्गं सुदिट्ठं लहेमु सदा
इत्थमेवज्जा! भावस्स कुरु पूरणं
वड्ढमाणं जिणं धम्मतित्थंकरं ॥४॥

२०. णवदेवदा थुदि

(नवदेवता स्तुति)

मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

णमो णमो णमो णमो, णमो जिणाण ते णमो
सुरक्ख रक्ख रक्ख मां, जिणेस तुं गणेस तुं
सुरासुरेहि वंदिदा, मुणीसरेहि कामिदा
सुभव्वजीवसंथुदा, णमामि सिद्धसंपदां।।1।।
सुहं दिसंतु मे जिणा...

तवस्स वीरियस्स खं, सुणाणदंसणस्स जे
चरित्तधम्मयस्स पालगा जयंतु सूरिणो।
मणम्मि सव्वसत्थसार-भूदतच्चधारगा
मुणंति पाठगा वुसं लसंतु धम्मदेसगा।।२।।
सुहं दिसंतु मे जिणा...

गजेहि साहिमाणगा समं सिहेहि पोरुसा
महीव - खंतिमाणुसा सया जयंतु साहवो
जिणिंद-संपणीद-भारदी जिणागमो महा
खमादि-धम्म-देसणा जिणुत्त-धम्म-सोहणा।।3।।
सुहं दिसंतु मे जिणा...

जिणालया अकिट्टिमा य किट्टिमा जयंतु ते।
जिणिंदबिंबभासुरा महीतले जयंतु ते।
सणादणा णवावि देवदा सया जयंतु ते।
सुमंगला भवंतु मे सुमंगला भवंतु मे।।4।।
सुहं दिसंतु मे जिणा...

२१. बारह भावणा

(बारह भावना)

मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

1. अणिच्चभावणा

सरीर-संबलं य ते सरीरसोट्ठवं य ते
सरीर-सुंदरं य ते सरीर-रूवदा य ते।
दिढं पदक्कमं य ते सुदूर-चालणं य ते
ण सस्सदं हवे दा ण सस्सदं हवे कदा॥1॥
वरं च सोक्खमिंदियं वरं च सोक्खमित्थिदं
वरं च पुत्त-पुत्तियं वरं धणं च वाहणं।
वरं गिहं समुण्णदं वरं पदं सुणायगं
ण सस्सदं हवे कदा ण सस्सदं हवे कदा॥2॥
अणिच्चभावणा वरा....

2. अरक्खभावणा

ण पुण्णसेणिगं बलं ण अड्ढसेणिगं बलं
ण पुट्ठदेहवंत - मल्लरक्खपाल - संजुदं।
णरो ण रायणायगो ण बंधुबांधवागुलं
णु मिच्चुणा हदे खणे सहायगं सहायगं॥3॥
ण मंतसिद्धदेवदा ण तंतकूरकज्जदा
अणेय - जंतु - मंत - जुत्तणीर - धारपादिदा।
महातवस्स इड्ढियस्स वा बलेण संजुदा
णु मिच्चुणा हदे खणे सहायगं सहायगं॥4॥
अरक्खभावणा वरा....

3. भवभावणा

कदा य णारगे भवे विपच्चदे विछिज्जदे
तिरिक्खजम्मणं य गिण्हिदूण णिच्च बाहदे।
भवे णरस्स सोक्खकंखिदे वि दुक्खसंतदी
सुहं कहिं वि णत्थि णत्थि लेसमेत्तियं सुहं॥5॥
सुरिंद - देवणायगे णरिंदविंदणायगे
पभूदलोयसंपदा - समूह - मुक्खसामिगे।
दु सेट्ठिहासदिट्ठिदे य चक्कवट्टिये ट्ठिदे
सुहं कहिं वि णत्थि णत्थि लेसमेत्तियं सुहं॥6॥
भवस्स भावणा वरा.....

4. एयत्तभावणा

पजायदे हि एगगो मरेदि एगगो तहा
पभुंजदे य एगगो सुहं दुहं विणासणं।
सुदिग्घ - कालणिम्मजोणिजम्ममिच्चु - भुंजणं
अहो हि एगगो हि एगगो हि एगगो भवे॥7॥
कलत्तपुत्तहेउणा करेदि पंचपावयं
धणत्थमत्थ सो महावहादिमुच्छणाउलं।
फलेण तस्स संपडेदि णारये णिगोदये
अहो हि एगगो हि एगगो हि एगगो भवे॥8॥
तुमं सया हि एगगो......

5. अण्णभावणा

सरीर - मादुबंधु - मित्त - पुत्त - लाहलालसा
हि जीवदो सया पुहं ति पुव्व-जम्मवासणा।
तहा वि मण्णदे णरो विमूढ-माणसो भवे
ममेयमेव मा विणा भवे ण का वि साहणा॥9॥

णियस्स कम्म भावबंध-तप्फलाणुसारिणी
सुदादिबंधु-बांधवस्स जोजणा सुविज्जदे।
विसादहस्स-भावदो तहा वि तम्मयेण सो
विभुंजदे णरो हि तं ण अण्णरूवदो कुही॥10॥
वरा हि अण्णभावणा....

6. सरीरभावणा

सरीरमेव पुव्व-कम्म-पागदाणमस्सयं
कहिं सुहं कहिं दुहं कहिं मुदं य जम्मयं।
सरीर-मेव कारणं भयस्स मारणस्स वा
मदं तदो हि हेयमेव हेयमेव सव्वदा॥11॥
खणे बलं खणे विभंगुरं खणे सरोगदं
खणे सुसुंदरं खणे विरूवगं णिरामयं।
खणे हि रागकारणं खणे य रोसकारणं
सया समाणरूवदो ण दिस्सदे विचेट्ठिदं॥12॥
सरीरभावणा वरा...

7. आसवभावणा

सरीरभाव-दव्ववाचि-चित्तचेट्ठिदेहि वा
पमादमिच्छ-जोगपावकोहपच्चयेहि वा
णिरंतरं समासवो असेस-जीवरासिगे
असेसकम्मसव्वभेदजादगस्स विज्जदे॥13॥
णिमज्जदे पडेदि दुक्खसायरे भवे सया
फलेण आसवस्स पंचभेदगे पुणो पुणो।
विचिंतिदे जदा हि मंदमोहभावसंजुदो
तदा विभेद-णाणसंबलेण होदि वंचिदो॥14॥
आसवस्स भावणा...

8. संवरभावणा

जिणिंद-तित्थरोचिदस्स मिच्छभाव-संवरो
वदेसु तप्परस्स वा असंजदस्स संवरो।
विरागभाव-भाविदस्स भो कसाय-संवरो
णिरुद्ध-जोगिणो हवेदि तिण्णिजोग-संवरो॥15॥
तिगुत्ति-रुद्धमाणसेण साहुणा णिजम्मि जा
रुई पसारिदा तदो ण पाव-पुण्ण-कंखणा।
णिजप्परक्खणस्स सो विही जिणागमे सदा
सुसंवरोअसेस-कम्म-रोहणेण जायदे॥16॥
संवरस्स भावणा......

9. णिज्जराभावणा

अणिट्ठयारि मे इणं इणं दु इट्ठयारि मे
जले चलेदि माणसे य राग-रोसवाउणा।
जदा तदा ण संति चित्तदा कदा हवे अरे।
कहिं ण णिज्जरा अहो कहिं ण णिज्जरा अहो॥17॥
ण वेसमेत्त-धारणेण साहु-संगमेण णो
महोग्गणेगभेय-भिण्णताव-वाहणेण णो।
णिजप्पसाहणा-विहीण-साहुणो समं विणा
कहिं ण णिज्जरा अहो कहिं ण णिज्जरा अहो॥18॥
वरं हि भवणिज्जरा....

10. लोयभावणा

ण केण माणुसेण बम्हणा सुरेण णिम्मिदो
अहो य उड्ढमज्झतिण्णिभेददो पदिट्ठिदो।
अकिट्टिमो वि सस्सदो पडिक्खणं विणट्ठगो
जहा जिणेहि दिस्सदे तहा जिणेहि भण्णिदो॥19॥

जगो घणादितिण्णि-वाउवेट्ठिदो सयं ट्ठिदो
सुजीव-पुग्गलादि-छव्विहेहि सुट्ठु पूरिदो।
वये वि जम्मणे वि धोव्वगेहि णिच्चसंजुदो
विचित्त-भावसंगदो इमो मुणीहि चिंतिदो॥20॥

लोयभावणा वरा....

11. समाहिभावणा

णिगोद-थावर-त्तसत्त-पुण्ण-सव्व-देहदा
मई सुदस्स णाणदा य णम्मदा य रम्मदा।
विभूदिसोक्खसंपदा य धम्म-कज्जमुक्खदा
इमा य उत्तरोत्तरा सुदुल्लहाप्पबोहिदा॥21॥
परेण भिण्णरूवदो य सव्वहा णिजम्मि या
रुई पईदिवेदणा य णिच्छयो य धारणा।
समाहिभावणा सया हि णिव्वियप्पसाहणा
सुबोहिदुल्लहा मदा सुबोहिदुल्लहा मदा॥22॥

बोहिदुल्लहा वरा....

12. धम्मभावणा

जिणेहि बेविहेहि भासिओ वुसो हियंकरो
असंगचित्तधारगाण संजदाण भूसिदो।
गिहत्थकम्म-पालगाण दिट्ठि-मोहणूणगो
सुसग्गमोक्खदायगो परत्थ अत्थ सोक्खदो॥23॥
समुत्तमो खमाजुदो य मद्दवो य अज्जवो
सउच्च-सच्च-संजमादि- तावचागसंजुदो।
अकिंचणो य बंभचेरभेदगो दहा मदो
असेसलोय-मंगलोत्थ सज्झगोवि साहणो॥24॥

धम्मभावणा वरा.....

२२. सुयपंचमी थुदि

(श्रुत पंचमी स्तुति)

मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

जयउ सुयदेवदा
सुगुरुमुहणिग्गदा।
जयउ सुयपंचमी
णाण चिंतामणी॥
जो जिणणाणदिवायर-पूयं
भत्तिवसेण करेदि विमाणी।
सो खलु जेट्ठसिदस्स तिहीए
पंचमवासर-मिच्छदि णाणी॥
जयउ सुयदेवदा........णाण चिंतामणी।
भूयबलिस्स ससंघसुमज्झे
आगमपूयण-मच्चणकज्जं।
पव्वमहोच्छवमत्थ कुणंति
भव्वजणा सुयपंचमिणामा॥
जयउ सुयदेवदा........णाण चिंतामणी।
पायदसद्दमयी जिणवाणी
आइरियाण जए हिययारी।
सुत्तमयी परमागमभासा
लोयविलोयणलोयणयारी॥

SCAN TO WATCH

नई छहढाला

रचयिता : मुनि प्रणम्य सागर

मंगलाचरण

तीन लोक में चार हैं, मंगल शरण व श्रेष्ठ।
अर्हत् सिद्ध व साधुगण, धर्म जैन जगज्येष्ठ।१।
तीर्थंकर जिनदेव की जिनवाणी को ध्याय।
सार्व धर्म संक्षेप से कहूँ चित्त हुलसाय।२।

प्रथम ढाल

(तर्ज- शान्तिनाथमुख शशि उनहारी...)

चदुगति में हैं जीव अनन्त पंच परावर्तन नहिं अन्त।
तीन लोक में अति घन भरे ज्यों डिबिया काजल को धरे।१।
बादर सूक्ष्म भेद से जीव दो विध एकेन्द्रिय जानीव।
पृथ्वी जल अग्नि अरु वायु तथा वनस्पति थावर गाउ।२।
साधारण प्रत्येक हु दोय तिन निगोद साधारण होय।
साधारण आहार शरीर एक संग जनि मरणन पीर।३।
नित्य इतर दो भेद निगोद सब ही पूर्ण अपूर्ण विबोध।
श्वास अठारह भाग हि जीते लब्धि अपर्याप्तक सुख रीते।४।
जन्म मरण जो होय निरन्तर कहें क्षुद्र भव संज्ञा जिनवर।
छ्यासठ सहस इक सौ बत्तीस एकेन्द्रिय के भव जिन दीस।५।
सिद्ध जीव से गुणे अनन्त तन निगोद इक जीव बसन्त।
हीरा दुर्लभ बालु समुद्र त्यों दुर्लभ त्रसता है भद्र।६।
बे ते चउ इन्द्रिय जे जीव विकलेन्द्रिय शंखादि अतीव।
अस्सी साठ और चालीस तिनमें क्षुद्रक भव जिन दीस।७।
तातें पंचेन्द्रिय पर्याय दुर्लभ गुण कृतज्ञ ज्यों आय।
पंचन्द्रिय के हैं चौबीस क्षुद्रक भव कहते जिन ईश।८।
छासठ सहस त्रिशत छत्तीस सब अन्तरमुहुरत भव दीस।
रत्नराशि चौपात मिले ज्यों मनुज जनम दुर्लभ पाना त्यों।९।
पुनः मनुज दुर्लभ तरु जले फिर से वे पुद्गल आ मिलें।

देश, कुलेन्द्रिय विभव निरोग पुनः पुनः दुष्कर संयोग।१०।
गर्भवास निकसन दुख भूला यौवन मद में रहता फूला।
रोग बुढ़ापा मरणत रोय फिर भी सुख का बीज न बोय।११।
धर्म बिना जो जीवन जीव व्यर्थ नेत्र बिन वक्त्र सदीव।
धर्म पाय विषयन में व्यस्त चन्दन दाह भस्म कर मस्त।१२।
जस तस विषय विरक्ति होय मरण समाधि सुदुर्लभ जोय।
इस विध दुर्लभ है संज्ञान बिन विचार पशु मनुज समान।१३।
कर्म और नोकर्म अखेद द्रव्य परावर्तन द्वय भेद।
थोड़ा बचा ना कोई द्रव्य भोग न छोड़ा भव्य अभव्य।१४।
जन्म मृत्यु से रहित जहान क्षेत्र बचा ना तू यूं जान।
सभी काल के समय अतीव जना मरा है हर इक जीव।१५।
प्रतिभव की हर एकैं आयु भव परिवर्तन कर दुख पायु।
उत्कट मध्यम जघन विभाव विधिबंधन का वर्तन पाव।१६।
ज्यों मदिरा पी और विकार बढ़ता कर्मन का त्यों भार।
यूँ परिवर्तन हुए अनन्त कारण कहूँ यथा भगवन्त ।१७।

द्वितीय ढाल

(तर्ज- ऐसे मिथ्यादृग ज्ञान चरण ...)

मिथ्यादर्शन अरु ज्ञान चर्ण, संसृति कारण श्रुत जैन वर्ण।
इनको तजने का जतन होय, सो ही सम्यक् पुरुषार्थ होय।१।
मिथ्यामत देव कुबुद्धि रोग, दुख अपथ त्याग बिन दुक्ख भोग।
औषध सेवन से रोग जाय, ताकी चर्चा विधि कही जाय। २।
जो देव शास्त्र गुरु तीन तत्त्व तिनके स्वरूप का ज्ञान सत्त्व।
तिनकी श्रद्धा सत तत्त्व सार, सम्यग्दर्शन का सुख अपार।३।
हैं दोष अठारह रहित देव, गुण छियालीस से युक्त एव।
तिनको ही नित अरिहन्त मान, सर्वज्ञ हितंकर वही जान।४।
श्री जिनमुख निर्गत शास्त्र बोध, नययुत ना पूर्वापर विरोध।
ता ही से वस्तु स्वरूप सिद्ध, संसार बन्ध मुक्ति प्रसिद्ध। ५।
केवलि श्रुतकेवलि श्रमण सूरि, मति अंजुलि से मुनिनाथ पूरि।
कलिकाल विषै जिसका प्रवाह, लाए धनि ते दिखलाय राह।६।
आरम्भ परिग्रह रहित नित्य, सद्ध्यान ज्ञान रत योग सत्य।

ते सद्‌गुरु पंचम काल पाय, विषयन विरक्त नत दोय पाय।७।
ते भावलिंगि मुनि हैं महन्त, आतम ज्ञानी चारित्रवन्त।
गुरु आगम आज्ञा का प्रबन्ध, समकित जानो मत बनो अन्ध।८।
धरसेन शिष्य श्रीपुष्पदंत, कृत भूतबली सिद्धान्त ग्रन्थ।
श्रीकुन्दकुन्द अरु उमास्वामि, मुनि समन्तभद्र पदपूज्य नौमि।९।
अकलंक आदि श्रीवीरसेन, हैं आर्ष सन्त इन रचित वैन।
जो पढ़ें प्रमाणिक वचन ज्ञान, सो लहैं प्रमाणिक शास्त्रज्ञान।१०।
सूरज सूरिन के ग्रन्थ पाय, अविरत जुगनू क्यों शास्त्र गाय।
मुनिवचनों की श्रद्धा जु धार, समकित अठ अंग समेत सार।११।
अंजन सम भव्य निशंक होय, बिन ज्ञान धरे भी अमर होय।
निःकांक्ष बनी विष विषय जान, समदृष्टि अनन्तमती बखान।१२।
आहार देय मुनि-वमन देख, उद्दायन तीजा अंग लेख
नहि पच्चीसा तीर्थेश आज, निर्मूढ रेवती का सुकाज।१३।
उपगूहन सेठ जिनेन्द्र नाम, मुनि वारिषेण थिति करण काम
विष्णु मुनि हैं वात्सल्य धाम, मुनि वज्र अन्तिमे अंग नाम।१४।
त्रय मूढ आठ मद बिना होय, समकित अठ अंगन सहित सोय।
दृग मोहादिक विध सप्त नाश,क्षायिक आदिक जिननाम भास।१५।
सो समकित भी व्यवहार जान, कारण है निश्चय कार्य मान।
मुनि पाण्डव पारसनाथ स्वामि, सम्यग्दृष्टि निश्चयी नामि।१६।
जब श्रमण होय निज ध्यान लीन,तब आत्म रुची प्रकटे प्रवीण।
परद्रव्य भिन्न निज आत्मज्ञान, सो ही निश्चय अनुभूति ज्ञान।१७।
निज में थिरता निश्चय चरित्र, तीनों इक संग न भिन्न मित्र।
इस विधि द्वय विध जो मोक्षमार्ग, क्रम-क्रम तें साधों भव्य जाग।१५।

तृतीय ढाल

(तर्ज- आतम को हित है सुख...)

निश्चय से सब जीव शुद्ध हैं एकेन्द्रिय या सिद्ध
विधि व्यवहार बताता किस विध संसारी हो सिद्ध।
योग कषायों के ही कारण आतम के परिणाम।
तिनको ही गुणथान कहो है चौदह संख्य प्रमाण।१।
ज्यों कोई ज्वरवान पुरुष को सब कुछ कड़वो लागे।

त्यों मिथ्यादृष्टि जीवन को जिनवर वचन न भावे।
प्रथम कहो तिनमें मिथ्यात्व पंच भेद उर आनो।
एकान्तिक विपरीत विनय सह संशयाज्ञान बखानो।२।
दो नय में एक ही को माने सो एकान्ति कहावे
केवलि कवलाहार बतावे वह विपरीत रहावे।
वैनेयिक कह सब देवन को अरु गुरुजन को मानो
क्या सच्चा क्या झूठा संशय ज्ञान बिना शिव ठानो।३।
गुणस्थान पहले से जीव चौथो पंचम सातें
कोई भी इक प्राप्त कर सके भव्य जीव क्रम ना तें।
जो अनादि मिथ्यादृष्टि हैं चारों गति के प्राणी
प्रथम लहें उपशम समकित को पंच लब्धिवश ज्ञानी।४।
सप्त प्रकृति का उपशम जिनको उपशम सम्यग्दृष्टि
सम्यक् प्रकृति उदय होय यदि वेदक सम्यग्दृष्टि।
जिनवर भक्ति बढ़ाने वाला केवलि द्वय पद मूल
सप्त प्रकृति का क्षय कर पावे क्षायिक भव को कूल।५।
उपशम सम्यग्दृष्टि के यदि आदि कषाय उदयावे
सासादन दूजो गुणथान ज्ञान अज्ञान कहावे।
अनन्तानुबन्धी कषाय का काज है समकित घाते
एक समय से छह आवलि पल गिरत समय ही पाते।६।
मिश्र प्रकृति दूजी कषाय के उदय समय में तीजा
गुणस्थान चौथा पंचम या छठवें से भी तीजा।
सादि बना भवि मिथ्यादृष्टि पहले से भी तीजा
अन्तरमुहुरत काल बाद फिर नीचे या ऊपर जा।७।
इन तीनों विषैं सब जीव अशुभ उपयोगी
जघन धरे अविरत सद्दृष्टि भावत शुभ उपयोगी।
यह ही जघन पात्र कहलाते जघन हि अन्तर आतम
शुभ उपयोग बढ़े व्रत से तो मध्यम अन्तर आतम।८।
सम्यग्दृष्टि को नित होवे धर्म धर्मफल प्रीति
यह संवेग तथा निर्वेद भव तन भोग विरक्ति।
आत्म साक्षिका में अघ निन्दा गर्हा गुरु से कम्पा

उपशम भाव क्षमा परिणाम सर्वप्राणि अनुकम्पा।९।
रत्नत्रयधारी में भक्ति साधर्मी से नेह
आठ गुणों के पालन से ही सम्यग्दर्शन लेह।
चौथे से पंचम सप्तम जा आदि तीज आ जावे
लघु मुहूर्त छासठ तैंतीस सागर काल रहावे।१०।
बारह व्रत धर त्रस हिंसा तज थावर घात न कीजे
देशविरति पंचम गुण ठानक संयम रति निज लीजे।
असंख्यात गुण श्रेणी प्रतिपल विधि निर्जर को पावे
मध्यम अन्तर आतम सो ही मध्यम पात्र कहावे।११।
त्रस थावर हिंसा से विरती पंच महाव्रत धारी
तीव्र चतुर्थ कषाय उदय में हो प्रमाद की बारी।
सो छठवें गुणथानक मुनिवर उत्तम पात्र बने हैं।
मन्द कषाय उदय गुण सप्तम रहित प्रमादपने हैं।१२।
होय प्रवृत्ति भी सप्तम में शुभ उपयोगी होते
मध्यम अन्तर आतम भी वे ध्यान बिना विधि खोते।
निज आतम में लीन मुनीश्वर शुद्ध उपयोग लहावें
उत्कट अन्तर आतम हो के स्वानुभूति रस पावें।१३।
अप्रमत्त गुण में मुनिवर जब श्रेणी सन्मुख होवें
सातिशयी वह अधःकरण में निज आतम में खोवें।
मोहनीय कर्मों का उपशम उपशम श्रेणि कहावे
जिस विध कर्मों का क्षय होता क्षपक श्रेणि मढ़ जावे।१४।
होंय अपूर्व विशुद्ध भाव जहाँ ठाण अपूर्वकरण है
अनिवृत्ति परिणाम जहाँ हैं नवमा ठाण चरण है।
सूक्ष्म लोभ ही शेष बचा ज्यों कौसुंभी पट लाली
सूक्ष्म साम्परायी दशवें गुण अन्तिम राग प्रणाली।१५।
होंय सभी उपशान्त कषायें सो ग्यारहवाँ ठाणो
नष्ट हुईं यदि सकल कषायें क्षीणमोह वह जानो।
घाती कर्मों के क्षय से फिर केवलज्ञानी सयोगी।
तेरहवें में योग नाश से केवली होंय अयोगी।१६।
पाँच ह्रस्व अक्षर सम काल चौदहवें में रहते

होंय सिद्ध गुण ठाण अतीत शुद्ध हैं निश्चय नय तें।
स्वाभाविक उन सुख रुचि राखे सो ही भव्य कहावे
यह अपूर्व अवसर है आया रुचि स्वरूप मन लावे।१७।

चौथी ढाल

(तर्ज- जिसने राग द्वेष कामादिक...)

सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान कहा जाता
जिसके होने पर आतम में रत्नत्रय ही मन भाता
प्रथम करण अरु चरण द्रव्य से मुख्य चार अनुयोग कहे
सबका क्रम से अध्ययन करता सम्यज्ञानी वही रहे।१।
श्री जिनसेनादिक आचारज आदिपुराणादिक कर्ता
प्रथम यही प्रथमानुयोग है धर्म बढ़े अघ का हर्ता।
लोक अलोक विषय संज्ञान वह करणानुयोग गाता।
यति वृषभ कृत प्रज्ञप्ति में तीन लोक की बहु गाथा।२।
रत्नकरण्डक आदिक ग्रन्थ श्रुत चरणानुयोग सारे
गृहि मुनि की चर्या का वर्णन ज्ञान अवश्य रखो प्यारे।
दीपक सम द्रव्यानुयोग है जीवादिक तत्त्वों का ज्ञान
द्रव्य गुणों अरु पर्यायों का सूत्र ग्रन्थ तत्त्वार्थ महान।३।
नय प्रमाण से पर-मत खण्डन जिनमत मण्डन करने को
देवागम से न्याय ग्रन्थ हैं वस्तु परीक्षा करने को।
भरत सगर आदिक भी इस विध रुचि करते अध्यात्म प्रधान
तन्त्र समाधि इष्ट उपदेश गेही को दें आतम ज्ञान।४।
गृह आरम्भ परिग्रह त्यागी धवल पठन के अधिकारी
समयसार की शुद्धातम रुचि व्रती जनों को हितकारी।
यह व्यवहार ज्ञान है निश्चय ज्ञानी जो मुनि सद्ध्यानी
अल्पज्ञानि शिवभूति अमोही बन जाते केवलज्ञानी।५।
नही ज्ञान का जिनको उद्भव वह भी शिवपथ का राही
शास्त्र ज्ञान मति में उतरे ना णमोकार जप मन भाई।
हृदय धार चल गुरुवचनों को श्रावक हो या श्रमण रहा
निर्मोही बन बढ़ता जाता सम्यग्ज्ञानी उसे कहा।६।
सप्तव्यसन से रहित नित्य हो जिन भगवन की पूजा हो

जिनमुनि नमन नेह सहधर्मी पात्र दान मन उपजा हो।
दया दीन पे श्रुत अभ्यासी सद्-र्शन व्रत रतिधारी
सो गृहस्थ सम्यग्ज्ञानी अन मोहपाश की बलिहारी।७।
पंच ज्ञान सम्यक् प्रमाण हैं तीन ज्ञान मिथ्यात्व रहे
मति श्रुत दोय परोक्ष ज्ञान हैं प्रत्यक्षा व्यवहार कहे।
अवधिज्ञान मनपर्यय दो को देश प्रत्यक्ष कहें ज्ञानी
केवलज्ञान सर्व प्रत्यक्षी अतः प्रमाणिक जिनवाणी।८।
प्रतिपदार्थ जो भी सत् दिखता है अनन्त धर्मों वाला
कह सकता है सब धर्मों को अनेकान्त का मत वाला।
नित्य अनित्य अनेक एक या विधि निषेध दो धर्मविरूद्ध
बना विवक्षा नय की कथनी स्याद्वाद शैली अविरुद्ध।९।
स्यात् शब्द का अर्थ कथंचित् किसी अपेक्षा से कहना
स्याद्वाद की कथन रीति की शोभा सप्तभंग गहना।
वस्तु कथंचित् सत् होती जब आत्मचतुष्टय आपेक्षित
वही कथंचित् असत् हुई जब अन्य चतुष्टय सापेक्षित।१०।
क्रम से जो सत् असत् कहे वह, भंग तीसरा उभय स्वरूप
एक साथ दो कथन असम्भव, चौथा अवक्तव्य का रूप।
सत् कहने पर भी विरुद्ध द्वय, सदसत् कहे नहीं जाते
अतः पाँचवें सत् अवाच्य सम, असत् अवाच्य भंग पाते।११।
क्रम से कहने पर दोनों को, युगपत् कहना नहीं बने
इसीलिए सदसत् अवाच्य का, सप्तभंग संधान बने।
केवलज्ञानी वस्तु धर्म सब, आतम से साक्षात् लखें
वैसा ही श्रुतज्ञानी जाने, नय से किन्तु परोक्ष लखें।१२।
अर्थरूप नय वस्तु धर्म इक उसका वाचक शब्द नया
उसको जाने ज्ञान अंश जो, ज्ञानरूप नय उसे किया।
द्रव्य और पर्याय नयों से, मूलभेद सिद्धान्त अधीन
निश्चय अरु व्यवहार दो तथा, अन्य भेद अध्यात्म महीन।१३।
वचन भेद से भेद अपरिमित नय के जिनवर कहते हैं
अनुभव में व्यवहार व निश्चय गुणभूमि अनु लहते हैं।
सप्तम से ही ध्यान लीन मुनि शुद्ध नयाश्रित अनुभवते

आतम ज्ञानानन्द स्वभावी उससे पहले बस कहते।१४।
नय प्रमाण से श्रुत अनुसारी वस्तु तत्त्व का ज्ञानी ही
सम्यग्ज्ञानी कहलाता है पी पीकर जिनवाणी ही।
संशय विभ्रम मोह त्याग के चारित को धारण करना
इस बिन समकित खो जाता है सूजी में धागा रखना ।१५।

पाँचवी ढाल

(तर्ज- इस विध राज करे नरनायक...)

सकलदेश विध चारित द्वय हैं सम्यग्ज्ञान सुकार्य
राग द्वेष की हानि करन को भवि जन वृत्त सुधार्य।
चरित मोह के नाश बिना ना आतम अनुभव होई
छिलका जौ जब हटे लालिमा घटे शुद्धि तब सोही।१।
बिन व्रत तप कर कर्म निर्जरा हाथी न्हौन समान
फूलों से यदि गिरिवर टूटे तो ना गिह में ध्यान।
तातें सकल चरित चिंतो जो जिनवर लिंग महान
लाख उपाय बनाय भव्य जन ग्रहण करो सुख खान।२।
जीव मार्गणा, योनि, कुलों के भेद जानकर वर्ते
कृत कारित अनुमति से हिंसा ना होवे मन शर्तें।
अघ आरम्भ निवृत्ति भाव प्रथम अहिंसा जानो
यही ब्रह्म शुद्धातम धर्म अन सब भेद बखानो।३।
मृषा वचन तज भस्म नीर भी बिना दिये ना लीजे
मन में ना वनिता का चिंतन ना ही चित्र लखीजे।
जो निर्ग्रन्थ मार्ग के अनुचित पाप बढ़ावन हारे
सो परिग्रह मुनिवर ना राखें व्रत प्राणों से प्यारे।४।
प्रासुक भू जुग भूमि लख के दिवस गमन ईर्या है
चुगली निन्दा वच तज हितकर भाषा समिति प्रिया है।
पर प्रदत्त प्रासुक इच्छा बिन भोजन एषण समिती
लख मार्जन कर उपधि उठावें धरते चौथी समिती।५।
प्रासुक भू मलत्याग पाँचवी पंचेन्द्रिय गति रोकें
बे त्रय चार मास इक बार अनशन कर कच लोचें।

बिन स्नान त्रिकाल दिगम्बर दंत पंक्ति ना धोवें
पत्थर, काठ, भूमि पे निशि में इक करवट से सोवें।६।
एक वक्त भोजन की बिरियां ठाडे अंजुलि जीमें
त्रय संध्या सामायिकमय हो निज तन ममत न कीने।
संस्तुति, वन्दन तीर्थंकर का निज प्रतिक्रमण सुहावें
प्रत्याख्यान भावि दोषन का मूलगुणों में दिढावें।७।
अट्ठाइस गुण पालन शुद्धि मुक्ति महल सोपानो
या व्यवहार बिना ना निश्चय आतम सुख क्या पानो।
रत्नत्रय युत दश धर्मन सों भीनो मुनि ही धर्म
रौद्र निमित्त क्रोध उपजावें भावें क्षमा स्ववर्म।८।
ज्ञान बढो तप रूप बढो पै मन मृदु पर गुण चिंतै
निज दोषन का आलोचन कर आर्जव ही हिय चिंतै।
तृष्णा लोभ हृदय से धोने वृष संतोष सुधारा
शक्ति बने ना श्रुतपालन की तो भी न झूठ उचारा।९।
गमनागमन सभी कारज में जीव दया द्वय संयम
पर निरपेक्ष तपें तप धर्म त्याग निमित्त असंयम।
ना कुछ मेरा ना कोई मेरा आकिंचन मन आने
नारी संग ना रूप लखन की इच्छा ब्रह्म कहाने।१०।
बारह तप सह उग्र परीषह बारह भावना भावें
भेदज्ञान दृढआतम लीन समयसार मन लावें।
निश्चय धर्म ध्यान से भिन्न आतम ज्यों असि म्यान
यही स्वरूपाचरण कहावे निर्विकल्प निज ध्यान।११।
शुद्धनयाश्रित आत्मज्योति से प्रथम शुक्ल सद्ध्यान
दूजे शुक्ल ध्यान से तब ही प्रकटे केवलज्ञान।
पुण्यफला अरिहन्ता भगवन आयु उदय में विहरें
तीर्थंकर विधि उदय होय तब तीर्थ धर्म कह विचरें।१२।
काय योग जब सूक्ष्म बने तो तीजा ध्यान सुध्यावें
योग नाशकर वही केवली जिन अयोगि कहलावें।
चौदहवें गुण में शीलेश ध्यान चतुर्थ करें हैं
सकल कर्म का क्षण में क्षय कर सिद्धि वधू को वरे हैं।१३।

धन्य धन्य जे जीव जु पाए आतम सुख की झील
काल अनन्त रहेंगे यूं ही ज्ञान चेतना शील।
कर्म कर्मफल चेतनता में कब तक आत्म रुलोगे
ज्ञान चेतना अनुभव रुचि बिन कैसे मोक्ष लहोगे।१४।
काज बने जब सो भवितव्य काललब्धि सो काल
होय प्रमादी काल प्रतीक्षा करें मूढ की चाल।
परम पुण्य अरु अतिशय चारित पौरुष मुक्ति हेतू
भाग्य और पौरुष का मेल कार्यसिद्धि का सेतू। १५।

छठी ढाल

(तर्ज- मुनि सकल व्रती बड़भागि...)

जो धर ना सके यम भारी सो हो घर में व्रतधारी।
मधु मांस मद्य नहिं खावे वैराग्य भावना भावे।१।
गुरु पंचक शरण रहे हैं दर्शन प्रतिमा सो गहे हैं।
बारह व्रत दृढ चित धारे व्रति श्रावक शल्य निवारे।२।
कृत कारित अनुमोदन से त्रस घात न मन वच तन से।
सो थूल अहिंसा व्रत है यमपाल प्रसिद्ध चरित है।३।
ना मोष विपदि करि भासे धनदेव सा सच ही भासे।
पर द्रव्य गहे न अदत्ता मन वारिषेण सपवित्ता।४।
पर नारी झूठी पत्तर चाहे सो मानो कुक्कर।
यूं सोच ब्रह्म आराधे ज्यों सेठ सुदर्शन धारे।५।
धन धान्यादिक मर्यादा पंचम व्रत जय कर यादा।
परिमाण दिशा से दिग्व्रत दूजा अनर्थदण्डन व्रत।६।
ना चिंते पर धन नारी अपध्यान दुःश्रुती टारी।
अघ वणिज न दे उपदेशा भूजल नहिं नाश हु लेशा।७।
नहिं अस्त्र शस्त्र ले देवें पन अनर्थ न किंचित् सेवें।
भोजन पानादिक भोगा आसन सीमा उपभोगा।८।
त्रय योग शुद्धि संध्या में सामायिक आतम भावें।
पर्वन के दिन उपवासा दूजा शिक्षाव्रत खासा।९।
अतिथि को देकर दाना व्रत पाले सौख्य निधाना।

गृह ग्रामादिक परिमाणा देशावकाश में माना।१०।
ये बारह व्रत निर्दोषे वह व्रती गुणों को पोषे
गुणश्रेणी प्रतिपल सारे कर्मन की लडियाँ डारे।११।
तीनों संध्या समता में नियमित तीजी प्रतिमा में।
प्रोषध त्रिभेद अनुशक्ति चौथी से देह विरक्ति।१२।
भोजन सचित्त नहिं भुंजे सो सचित विरत मन रंजे।
निशि भोज दिवा रति त्यागे त्रयविध छठवीं निज पागे।१३।
सब नारि त्याग निज पेखे सप्तम में ब्रह्मा देखे।
आरम्भ त्याग अघ दूरा तज संग ममत भी चूरा।१४।
दशवीं में अनुमति ना दे गृह कर्म विर्षे शम स्वादे।
भिक्षाभोजी नीरंगा ग्यारहवें में यति संगा।१५।
कोपीन मात्र जब राखे ऐलक श्रावक सब भाखे।
यूं क्रमशः दृढता लाओ निज हित करने व्रत भाओ।१६।
समकित हो देशव्रती हो, संयम बिन ना मुक्ति हो।
ये गहे असंखों बारा थिरता समाधि के द्वारा।१७।
आयु क्षय निकट रहावे सल्लेखन व्रत मन लावे।
जो शक्ति बने मुनिपन की तो लेवे दीक्षा जिन की।१८।
यदि ना तो मरण समाधि तज उपधि आधि अरु व्याधि।
इस विध जो स्वर्ग सिधारें पुनि चयकर मुनिव्रत धारे ।९।
दो या त्रय भव उत्कृष्टे सत आठ जघन बिन कष्टे।
भवसागर रुल्यो अपारा कस कमर जतन कर यारा।२०।
कब तक गिह बंध धरोगे फिर कब तुम ममत तजोगे।
मौका मत तज यह ज्ञानी करुणा धरि कहि गुरुवाणी।२१।

प्रशस्ति

आदिनाथ जिनराज के बैठ जिनालय आज।
पूर्ण गुड़ी पड़वा हुआ सार्थ ढाल छह काज।१।
वीर गए निर्वाण की पच्चीस सौ चालीस।
'मुनि प्रणम्य' रच धन्य हो वीर नवावे सीस।२।

चौदह गुणस्थान

(मुनि श्री प्रणम्य सागर जी)

तुम कितना चलकर आये हो, कितना चलना बाकी है,
कितना साध चुके निज को तुम, और साधना बाकी है।
मोह योग को कितना छोड़ा, कितनी यात्रा तय करना,
गुणस्थान चौदह पर चढ़कर, सिद्धशिला तक है चढ़ना।१।

प्रथम गुणस्थान

ज्वर से पीड़ित रोगी को ज्यों मिष्ट बुरा ही लगता है,
मिथ्यादृष्टि जीवों को त्यों, तत्त्व ज्ञान ना रुचता है।
आत्म तत्त्व श्रद्धान बिना जो, तन को ही आतम माने,
उन जीवों का गुणस्थान ही, प्रथम रहा बुधजन जाने।२।

द्वितीय गुणस्थान

सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था, चौथा गुणस्थान पाया,
अनन्तानुबंधी कषाय का, कर्म उदय में तब आया।
गिरे तभी सम्यक्त्व शिखर से, मिथ्या भू तक ना आया,
यही बीच की दशा गुरु ने, सासादन है समझाया।३।

तृतीय गुणस्थान

खट्टे मीठे दधिगुड़ जैसा, स्वाद अनोखा है जिसका,
कुछ सम्यक् कुछ मिथ्या रहता, ऐसा मिश्र स्वाद उसका।
इस में नहीं कभी होता है, बंध आयु का और मरण,
श्रद्धा दोनों और लुढ़कती, तीजा गुणस्थान का क्षण।४।

चतुर्थ गुणस्थान

छूट गया सारा मिथ्यातम, मन का मल सब दूर हुआ,
सम्यग्ज्ञान हृदय में उतरा, सम्यग्दर्शन उदित हुआ।
देव, शास्त्र, गुरु में रुचि रखता, व्रत संयम से दूर रहा,
अविरत सम्यग्दृष्टि वह ही, शिवपथ अभिमुख दीख रहा।५।

पंचम गुणस्थान

त्रस हिंसा का त्याग किया हो, संयम पथ पर जरा बढ़ा,

बिना प्रयोजन थावर वध भी, त्याग किया समभाव बढ़ा।
अणुव्रत का पालन करने में चित्त निरन्तर लीन रहे,
पंचम गुणस्थान में श्रावक, देशविरत है संत कहें।६।

षष्ठ गुणस्थान

ग्रंथि छोड़ दी तन की मन की, हो गये अब निर्ग्रन्थ मुनि,
पञ्च महाव्रत पालन की ही, रग-रग में चढ़ गई धुनी।
आर्त्त-रौद्र को तजकर जो नित, धर्म शुक्ल को ध्याता है,
है प्रमत्त पर संयत रहता, गुण छठवां कहलाता है।७।

सप्तम गुणस्थान

शुरू हुई एकाकी यात्रा, बचे नहीं संकल्प विकल्प,
आत्मध्यान की हुई पात्रता, रहा कषायोदय भी अल्प।
समिति में भी गुप्ति में भी, सावधानता बनी हुई,
अप्रमत्त इस गुणस्थान में, आधी यात्रा पूर्ण हुई।८।

अष्टम गुणस्थान

उपशम श्रेणी और क्षपक पर, चढ़ते अलग-अलग साधक,
क्षपक प्राप्त कर लेता मंजिल, उपशम तो आगे बाधक।
समय-समय अति शुद्धभाव से, भाव निराले प्रतिपल हैं,
नाम अपूर्वकरण इसका है, करणभाव ही संबल हैं।९।

नवम गुणस्थान

भिन्न समयवर्ती जीवों के, भावों में ना सदृशता,
एक समयवर्ती जीवों के, भावों में ही सदृशता।
ध्यान अग्नि की ज्वालाओं से, वेद कर्म जल-जल जाता,
अनिवृत्ती इस गुणस्थान की, महिमा कौन सुना पाता?।१०।

दशम गुणस्थान

रक्त रेशमी पट में जैसे , धुल जाने पर भी हो शेष,
सूक्ष्मलालिमा रागभाव की, त्यों आतम में रहती शेष।
उपशम और क्षपक दोनों ही, सूक्ष्म लोभ वेदन करते,
एक दबाते एक मिटाते, निष्कषाय मुनि मन हरते।११।

एकादश गुणस्थान

निर्विकल्प सद्ध्यान बना है, सब कषाय का शमन हुआ,
उपशामक को पड़े लौटना, जब आगे न गमन हुआ।
स्वच्छ सरोवर जल-सी शुद्धि, यथाख्यात चारित्र हुआ,
एकादशवें गुणस्थान तक, हो सकता है जीव मुआ ।१२।

द्वादश गुणस्थान

ध्यान अग्नि से क्षपक मुनीश्वर, मोह नष्ट कर देता है,
परम समाधी लीन दशा में , साधक तभी पहुँचता है।
वापस नहीं लौटता अब तो, मंजिल को पा जाता है,
क्षीणमोह इस गुणस्थान को, केवलज्ञान दिलाना है ।१३।

त्रयोदश गुणस्थान

घातिकर्म चकचूर किया तब, पूर्ण ज्ञान आवरण हटा,
सुख अनंत शक्ति का साथी, केवल दर्शन भी प्रकटा।
परमातम की संज्ञा पायी, यह अरहंत दशा भाई,
शिव, जिन, केवलि, ईश्वर ब्रह्मा, नाम इन्हीं के हैं भाई।१४।

चतुर्दश गुणस्थान

मन वच तन के तीन योग का, कारण यह औदारिक तन,
योगरहित कर कर्म निर्जरा, पाया आतमज्ञान सघन।
सकलशील के स्वामी बनकर, अंतिम शुक्लध्यान ध्याया,
लघु पंचाक्षर समय ठहरकर, मुक्तिरमा को अपनाया।१५।

सिद्ध भगवान्

जन्म मरण से मुक्ति पाई, ज्ञाता दृष्टा शेष रहे,
लोक शिखर पर शोभित होते, तन बिन चेतन मात्र रहे।
हो निर्बन्ध अनंत सौख्य युत, बिन बाधा उपयोग करें,
सिद्धशिला पर सिद्ध जिनेश्वर, सबकी सिद्धि शीघ्र करें।१६।

अन्तर्गूंज

(मुनि प्रणम्य सागर कृत भजन संग्रह)

SCAN TO WATCH

१. सिद्ध स्तुति

सिद्ध शुद्ध लोकाग्र विराजित मेरा आतम शुद्ध बने
असंख्यात आतम देशों में गुण अनन्त हों प्रकट घने
समकित श्रद्धामय सिद्धों सी निज आतम में हों संलीन
सम्यक केवल ज्ञान प्रभा में लोक अलोक रहे नितलीन
समकित दर्शन गुण में नित ही निज पर का नित दर्शन हो
गुण अनन्त को धारण करने की शक्ति भी निजपन हो
ऐसा ही हो सूक्ष्म परिणमन जैसा सिद्ध प्रभू का है
बादर परिणति नित्य निरादर-आदर का घर जैसा है
सिद्ध शुद्ध अवगाहित कर लो अपने अवगाहन गुण में
गुरू लघु भेद मिटा के बैठें तव सम अगुरुलघु गुण में
व्याबाधा से रहित निराकुल निराबाध का अनुभव हो
अष्ट गुणों में गुण अनन्त का सिद्ध समान ही अनुभव हो।

SCAN TO WATCH

२. गुरू - स्तुति

मुख की छटा की छवि लागे ऐसी प्यारी जैसे
चाँदनी चकोर सम पूनम की प्याली है,
तप की तपा से खिली रूप की चमक जैसे
सूरज तपन से कुसुम खिलने वाली है,
ज्ञान का प्रकाश पुंज तीन लोक जगमगो
दूर तम का तमाशा आत्मा मवाली है,
तनिक सी आयु में उपाय मुक्ति को करें जे
लागे मुक्ति नारि अब वधू बनने वाली है।१।

भव रोग दूर करें राग मोह मद हरें,
ऐसे गुरू सूरि के दर्श आज पाये हैं।

तन पे जुलम करें करम अलग करें,
श्रद्धा उर धारे निश्चय मन को लुभाये हैं।
मुद्रा लख अविकारी भेद विज्ञान होत,
देव नर जन सब पाके हर्षाये हैं।
गुरू विद्यासागर के कर की कृपा से ही,
मंगल ही मंगल हैं खूब सुख छाये हैं।२।

३. हम इन्हीं के...

ग्रीष्म की धूप में, शीत की धुंध में
वर्षा में तरू तले, ठूंठ से जो खड़े
सबका परमात्मा, बन गया आत्मा
खुद में ही खो गये हैं।
हम उन्हीं के हो गये हैं।

नग्न जर्जर सी देह , ज्ञान करुणा सनेह
शाम का सूर्य था, कृत्य का बोध था
पदवी को छोड़कर, मोह को तोड़कर
दे उजाला, जगत से गये हैं।
हम उन्हीं के हो गये हैं।

ज्ञान रवि की तपन, विद्याधर का बदन
विद्या ज्योति जली, जग की प्रज्ञा जगी
शिष्य को गुरू बना, ज्ञान देकर घना
देह को बस बदल जो गये हैं।
हम उन्हीं के हो गये हैं।

मेरे गुरू हैं महाँ, इन-सा जग में कहाँ
पाया जब से दरश, हुआ सम्यक दरश,
हो समाधि मरण, फिर से हो गुरू मिलन
इक यही कामना कर चले हैं।
हम इन्हीं के हो गये हैं।

४. हे प्रभु कब मैं.....

SCAN TO WATCH

हे प्रभु कब मैं, सो मुनि बनहूँ,

गिरी मसान गुह,कोटर मज्झे, बिन मालिक बिन सोधी सज्जे,
दोष रहित बस्ती में बसकर, निज मस्ती में मस्त ही रह हूँ ।
हे प्रभु कब ....

दो अनेक वा एक अकेले, सब तीरथ सब, मुनि मन मेले,
शुद्ध पवन सम विहर विहर कर, विरह राग से कबहूँन सनहूँ।
हे प्रभु कब .....

ज्यों गो चरने वन को जावे, त्यों गोचरि को वन से आवे
पर परिचय में चित न लगाकर, चित चिन्मय से बतियां करहूँ।
हे प्रभु कब ....

चार मास इक ठाणहिं ठाणे, सहि हों मेघ धूप औ जाड़े
दया क्षमा सब जीवन सों धरि, ध्यान अगनि तें करमनि दहहूँ।
हे प्रभु कब मैं, सो मुनि बनहुँ।

SCAN TO WATCH

5. श्रद्धा की आँखों से देखो

श्रद्धा की आँखों से देखो, पत्थर में भगवान दिखे हैं
गुरू दर्शन में भगवत मूरति, हम को तो श्रीराम दिखे हैं

बाट जोहते बीती उमरिया, नैना सूखे टूटी कमरिया
कुटिया में वो जब आयेंगे, मीठे बेर उन्हें भायेंगे
पूर्ण हुई जब कठिन परीक्षा, तब शबरी को राम दिखे हैं।
गुरू दर्शन में भगवत मूरति, हम को तो श्रीराम दिखे हैं।
नाचत-नाचत भई दीवानी, कब आयी कब गई जवानी
जग के ताने चुभते भाले, जहर भरे प्याले पी डाले
जब भक्ति के झरने फूटे, तब मीरा को श्याम दिखे हैं।
गुरू दर्शन में भगवत मूरति, हम को तो श्रीराम दिखे हैं।

आते आते लौट गये क्यों, देहली सूनी छोड गये क्यों
आँचल उड़ता-उड़ता पुकारे, आओ साँवरिया तुम ही सहारे
राजपाट तज चली बावली, तब राजुल को नेमि दिखे हैं।
गुरू दर्शन में भगवत मूरति, हम को तो श्रीराम दिखे हैं।

SCAN TO WATCH

6. अस्त हो रहे .....

अस्त हो रहे ज्ञान सूर्य ने, सोचा था इक दिन की शाम
मेरे ढल जाने के बाद, कौन करेगा मेरा काम।

अंधकार मय मोह जगत में, ज्ञान प्रकाश भरेगा कौन?
मेरे जीवन की बुझती, ज्योति को और जलाये कौन।
सब अयोग्य कातर दिखते हैं, कोई न दिखता है निष्काम,
मेरे ढल जाने के बाद.......

धर्म महा है पाथ कठिन है, किसको इसका रहस कहें,
निष्ठा का जो दीप जलाये, ज्ञान चरित में लीन रहें।
तभी एक विद्याधर आया, दूर कहीं से गुरु के धाम,
मेरे ढल जाने के बाद.......

फिर गुरू ने शिक्षा-दीक्षा दे, इच्छा जल को जला दिया,
स्वयं शिष्य के चरणों में आ, बैठ अहं को गला दिया।
खूब जले विद्या का दीपक, दुआ ज्ञान की आठों याम,
मेरे ढल जाने के बाद......

तुम प्रकाश के पुंज बनो अरु, तुम्हीं बनो सूरज श्रीमान्,
तुम्हीं चलाओ सबको पथ पे, और चलो खुद हे धीमान्।
मैं निश्चित हुआ विद्या मुनि, जीवन सफल बना वरदान,
मेरे ढल जाने के बाद.......

गुरूकुल बना के कुल-गुरू बनना,वचन नहीं प्रवचन देना,
छोटा बड़ा भेद को तज के, तुम सबको अपना लेना।
यूं कहकर फिर विदा हो गया, ज्ञान सूर्य वह गुरू महान्,
मेरे ढल जाने के बाद.......

7. जिंदगी जिन्दा कहाँ है?

SCAN TO WATCH

हर दिशा आशा बनी, फैली हुई आकाश तक,
तोड़ लाऊँगा सितारे, यह यकीं था आज तक,
पर वहीं से लौटते राही के चेहरे पे सिकन
देखकर मुझको लगा कि जिन्दगी जिन्दा कहाँ है?
दुःखी कोई प्रीति करके, दुःखी कोई प्रीति बिन
दुःखी कोई पुत्र से तो, दःखी कोई पत्र बिन
पुत्र इच्छा से बढ़ी, पुत्री की संतति से दुःखी
देखकर मुझको लगा, कि जिन्दगी जिन्दा कहाँ है?
वो दीवाली दीप वाली और ये होली के रंग,
उत्सवों से सजी सुबह, मृत्यु के साये में भंग,
मरघटा पर प्राण घट दो, फूक करके लौटते ,
सोचकर मुझको लगा कि जिन्दगी जिन्दा कहाँ है?
पुण्य के संयोग से कुण्डलगिरि शुभ क्षेत्र पर,
आचार्य श्री के दर्श से, जब हर्ष छाया चित्त पर,
और वो वात्सल्य कर का स्पर्श पाके आपसे ,
देखकर मुझको लगा कि जिन्दगी जिन्दा यहाँ है?

8. अरिहन्तों की प्रतिमाओं का.....

SCAN TO WATCH

अरिहंतो की प्रतिमाओं का ध्यान धरो भाई,
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई।
भोगों की चाहत में राहत किसको यहाँ मिली,
बगिया में वह कली कौन सी रहती सदा खिली,
मानव जिसमें धंसता जाता जीवन वह खाई
कोई भी ना करे........

सासों की चाबी से चलता तेरा देह खिलौना,
बच्चों सा यह खेल सदा ही तुझको लगा सलौना,
समय मिला ना आत्म ध्यान का अब मृत्यु आई,

कोई भी ना करे........

तन अपना जब धोखा देता क्यों पर को चाहे,
पंछी मर जाता पिंजड़े में उड़ना ना चाहे,
अपने को पहचान यहाँ अरु सबसे माँग विदाई

कोई भी ना करे........

यदि तू चाहे नहीं डूबना इस भव सागर में,
अरिहंतों को नहीं भूलना घर में बाहर में,
इसी नाम की रटना से तू प्रीति लगा भाई

कोई भी ना करे.......

SCAN TO WATCH

9. मैं हूँ वो नहीं

मैं हूँ वो नहीं, जो तुम्हें दिख रहा हूँ,
मैं हूँ जो नज़र से परे ही रहा हूँ।
न जाने कहाँ से, यहाँ आ गया हूँ,
मैं चेतन हूँ, तन में समाया गया हूँ।
जो छूटा है मुझसे, वो मेरा नहीं था,
मैं बंधन से मुक्ति को अब पा रहा हूँ।

मैं हूँ वो नहीं.........॥१॥

सभी की तरह थी, मेरी जो भी हसरत,
नहीं मुझको उनकी, रही अब ज़रूरत।
मुझे जब से मेरा, पता मिल गया है,
मैं तबसे ही, अपने में सुख पा रहा हूँ।

मैं हूँ वो नहीं.........॥२॥

कठिन राह पर भी, मैं आसान क्यों हूँ,
समझकर भी सब कुछ, मैं अनजान जो हूँ।
यहाँ मेरी मंजिल, मेरे सामने है,
जो पाया न अब तक, वो अब पा रहा हूँ।

मैं हूँ वो नहीं.........॥३॥

ये एहसास कैसा मुझे हो रहा है,
ये मुझको ही केवल नज़र आ रहा है।
जुदा है जो मुझसे जुदा ही रहेगा,
मैं अपने को अपने में ही पा रहा हूँ।

मैं हूँ वो नहीं.........॥४॥

मेरे बाद भी, लोग आएंगे ऐसे,
जो पूछेगे, जग में जिये तुम थे कैसे।
कहूँगा, मनाओ ये मृत्यु का उत्सव,
मैं इस बार मरकर भी, मर न रहा हूँ।
मैं हूँ वो नहीं, जो तुम्हें दिख रहा हूँ॥५॥

SCAN TO WATCH

10. अरिहन्त भजन कर प्यारे

अरिहन्त भजन कर प्यारे, जा करने तें पातक भाजें
दूर होंय अँधियारे।
अरिहन्त भजन ......
पर परिणति में मनवा डोले,आकुलता दुख सारे
निज चेतन ही दिखे निराकुल,जब अर्हन् चित धारे।
अरिहन्त भजन ......
यह करना फिर, फिर यह करना, फिर-फिर करनी कारे
एक बार कर करनी ऐसी,छूटें गति गलियारे।
अरिहन्त भजन ....
रस विहीन आतम रस अनुपम, निज अनुभव रसिया रे
एक बार चाखे जा रस जो,लगे भोग रस खारे।
अरिहन्त भजन ......

11. बनते बनते

SCAN TO WATCH

बनते-बनते बात बिगड़ जाती है क्यों?
जलते-जलते बाती बुझ जाती है क्यों?

एक किरण आयी आंगन में आशा की
खुश हो आँख उठायी तभी दिलाशा की
इसमें अपना रूप लखूँ या कैद करूँ
सोच नहीं पाया मैं क्या फरियाद करूँ
बादल की टुकड़ी में वह खो जाती क्यों?
बनते-बनते......

होना था अभिषेक सुबह सिंहासन पर
बैठा था निश्चिंत खुशी में सारा घर
मेरा पति कल राजा होगा देखूँगी
उनके राज मुकुट को लख सुधि खो दूंगी
पति के पीछे सीता वन जाती है क्यों?
बनते-बनते......

रावण मरण हुआ गृह आगमन हुआ
पुत्रों का लख गर्भ राम मन चमन हुआ
सोचा था अब गम की काली रात टली
सीता का अपवाद सुने तब राम बली
फिर से सीता एकाकी वन जाती क्यों?
बनते-बनते......

राजुल के हाथों में मेंहदी देख़ूँगा
बेटी को डोली में बिठा के रोलूँगा
रानी बिटिया लेने नेमी आएंगे
चन्द चकोरी जोड़ी लख सब गाएंगे
घर आते बारात लौट जाती है क्यों?
बनते-बनते......

SCAN TO WATCH

12. मेरा मन समर्थ हो

मेरी प्रभु से प्रार्थना, आत्म शक्ति अर्थ हो
मेरा मन समर्थ हो, मेरा मन समर्थ हो

मेरा जो बुरा करे , जो मुझे न चाहता
मेरी बात को सदा जो द्वेष से नकारता
मेरे मन में उसके लिए साम्यभाव हो सदा,
बैर अरु विरोध में, पल न मेरा व्यर्थ हो
मेरा मन समर्थ हो, मेरा मन समर्थ हो।1।

हम किसी के कार्य में कभी न विघ्न डाल दें
झूठ, छल, फरेब से न उलझनों का जाल दें
दूसरों की उन्नति में मन की हो प्रसन्नता,
प्रेम भावना की धार, दृष्टि में तदर्थ हो।
मेरा मन समर्थ हो, मेरा मन समर्थ हो।2।

भले न मेरी चाह कभी पूर्ण हो अपूर्ण हो
मन मेरा उत्साह से उमंग से परिपूर्ण हो
रोग में वियोग में न आए कभी खिन्नता,
हम सदा ही खुश रहें ये भावना सशर्त हो।
मेरा मन समर्थ हो, मेरा मन समर्थ हो।3।

देश के उत्थान में धर्म के प्रचार में
सत्य शान्ति मित्रता अहिंसा के प्रसार में
परोपकार में रहे सदा हमारी भावना
मेरी उम्र में नहीं किसी भी क्षण अनर्थ हो।
मेरा मन समर्थ हो, मेरा मन समर्थ हो ।4।

13. समकित सावन

SCAN TO WATCH

अब मोहे समकित सावन भायो
इस सावन से, गुरू भक्ति में
मेरा मन सुख पायो
सिद्ध शिला की छत पर मैंने
भक्ति डोर लटकायो
ता पर चारित तखती रखकर
बैठ भावना गायो अब मोहे ....

शुद्धातम उपदेश घनाघन
रिमझिम निर्जर छायो
छठ-सातें गुण ठाण बिठाकर
गुरू ने मोहि झुलायो अब मोहे ....

आतम सुख हरियाली निरखत
चहुँगति दुःख भुलायो
पी-पी कर गुरू के वचनामृत
चातक सम हरषायो अब मोहे ....

सावन मास सुवास सदा ही
ताप तुषार हटायो
गुरू उपकार कहयो नहिं जाये
ज्ञायक भाव सुहायो अब मोहे ....

SCAN TO WATCH

14. जब से घर में टी.वी. आई

जब से घर में टी.वी. आई, जी को बन गई यह दुखदाई।
दिन भर बहुएं नाटक देखें, रात में बेटे फिल्म देखें।
मना करो तो करें लड़ाई, जब से घर में टी.वी. आई।1।
गेम वीडियो दिन भर खेलें, कार्टूनों की फिल्में देखें।
सुपरमैन सब बच्चे भाई, जब से घर में टी.वी. आई।2।
सल्लू धोनी सचिन की बातें, गजनी कटिंग गब्बर की लातें।

पेंट शर्ट लड़की ले आई, जब से घर में टी.वी. आई।3।
पढ़ते लिखते बच्चे नहीं हैं, कछु कहो कोई सुनतइ नहिं हैं।
बीबी रोज बजारे जाई, जब से घर में टी.वी. आई।4।
खाना पीना उसी के आगे, उसी को देखत सोते जागे।
चश्मा लगो दवाई खाई, जब से घर में टी.वी. आई।5।
दर्शन देव न प्रवचन भायें, फिल्में किरकिट गाना गाऐं।
लोक लाज सब धरम गंवाई, जब से घर में टी.वी. आई।6।

SCAN TO WATCH

15. वृक्षों सा लहराना सीखो

धीरे-धीरे मजबूती से, बच्चो आगे बढ़ना सीखो
वृक्षों सी तुम धरती भीतर, अपनी धाक जमाना सीखो।1।
चाहे कोई भी मौसम हो, तुम उसको अपनाना सीखो
सब कुछ सहकर दृढ़ता रखकर, वृक्षों जैसा बढ़ना सीखो
धीरे-धीरे .... ।2।
पतझड़ आने पर मत डरना, नव कोंपल का यह है गहना
सुख दुख को सम भाव से सहना, वृक्षों से बच्चों तुम सीखो
धीरे-धीरे .... ।3।
फूल फलों से जब लध जाओ, सबको सब कुछ देते जाओ
वृक्षों सा नीचे झुक करके, तुम ऊँचाई पाना सीखो
धीरे-धीरे .... ।4।
चाहे कोई पत्थर मारे, या कोई हथियार से काटे
तुम वृक्षों से सबके हित में, बच्चों भाव जगाना सीखो
धीरे-धीरे .... ।5।
बिना स्वार्थ के बांटो खुशबू, सबको मुस्कानों से भर तू
आंधी तूफां में भी बच्चों, वृक्षों सा लहराना सीखो
धीरे-धीरे .... ।6।

SCAN TO WATCH

16. मेरे भगवन्

मेरे भगवन मुझे इक बार तू आगाह कर देना
जभी हो शाम जीवन की मुझे इतलाह कर देना।
मुझे मौका बस इक देना कि मैं अफसोस कर पाऊँ
हुई जो गलतियाँ मुझसे उन्हें मैं तुमसे कह पाऊँ
मेरी आँखों में हों आँसू हो पश्चाताप अपने पर
मैं अपनी मान लूँ गलती चला सद्-राह पर देना

जभी हो शाम १

हुआ गीला मेरा तन तो कई सौ बार पानी से
नहीं भीगा हृदय मेरा कभी भी जैन वाणी से
मुझे वो भक्ति सिखला दो जो मन के मैल धो डाले
न छूटे ध्यान चरणों का नहीं गुमराह कर देना

जभी हो शाम २

मैं तज दूं मोह इस तन का,नहीं भोजन में मन लाऊँ
पीऊँ शुद्धात्म अमृत को उसी के गीत नित गाऊँ
मेरे मन साम्य इतना हो रहे ना वेदना मन में
रहे बस ध्यान जिनवर का गमों को स्याह कर देना

जभी हो शाम ३

न जाने कौन से भव में मैं मुक्ती राह को पाऊँ
न जाने फिर कहाँ तेरा गुरू मैं दर्श पा पाऊँ
करो करूणा मेरे ऊपर मुझे सम्बोधि को देओ
रहे तेरी ही मन भक्ति यही बस चाह भर देना

जभी हो शाम ४

17. केशलुंचन स्तुति
(राग वैराग्य भावना)

धन्य-धन्य मुनि महातपस्वी संजम को श्रृंगारो
केशलोंच कर तन ममता तज आतम पृथक् विचारो।
तीर्थंकर से महा यशस्वी चक्री बलधर मानव
केशलोंच कर दीक्षा धारे पूजें सुर नर-दानव ।१।
पँच मुष्टि कच लोंच किये जे ते तीर्थंकर ध्यावें
उनके ही मारग पर चल कर मुनि मन निज हर्षावें।
जा को नाम सुनैं भय होवे देखत विस्मय होवे
सो लुंचन कर परम तपस्वी तनिक न धीरज खोवें।२।
कामदेव सम सुन्दर तन में यौवन मदन बढ़ावे
बाल सँवारे रूप निहारे रागी मन सुख पावे ।
उन केशन को आप हाथ से नोंचत ना घबरावे
चुन-चुन खींचे मुनिवर मानो चुन-चुन कर्म खपावे।३।
आतम हित के हेतु तपस्वी तन को ममत निवारें
एक यही अवसर है जिससे मोक्ष पंथ पग धारें।
क्लेश काय को बने न मन को भाव विशुद्ध संभारे
निज तन ही जब नोंच दियो तो पर हैं कौन हमारे।४।
एक बाल भी खिंच जावे तो दीन मनुज बिललावे
धन्य-धन्य तुम तपसी मुनिवर मन में म्लान न लावे।
शिर दाढ़ी अरू मूंछ तने जे केश आप तज दीने
जिनको देखत शूरवीर भी हो जावत भय भीने ।५।
दो त्रय चार मास में मुनिवर उत्तम, मध्य, जघन्या
लोंच करन का वीरज लख के ललचाई शिव कन्या।
जो असिधारा व्रत ये पालें करके इन्द्रिय वश में
उनके लिए स्वयं हो जाती जगत सम्पदा वश में ।६।
धन्य-धन्य मुनिवर तव जीवन धन्य घड़ी यह आई
केशलोंच तव देखत-देखत आतम शुध बुध आई।
जिनके केश देव जन लेकर क्षीर उदधि को जावें

उन केशन की महिमा कैसे सुधी मनुज गा पावें ।७।
नहीं याचना करें किसी से दीन-हीन ना होवें
मुनिवर तातैं निज हाथों से केशलोंच कर सोहें।
आश किसी की जिन्हें न जग में उन आशा हम कीनी
हाथ जोर कर तव चरणों में विनती हम कर लीनी।८।
मुझमें भी गुरू साहस देओ बुद्धि, विवेक जगाओ
मेरी आतम में जो बैठे ममता मोह भगाओ।
तव भक्ति से वर यह चाहूँ शक्ति मुझमें आवे
जो अनन्त बलवान आतमा शिव सुख को पा जावे।९।

(दोहा)

सिद्ध प्रभु का ध्यान कर सिद्ध शिला की ओर।
चले सिद्ध गति पावने उन्हें नमन कर जोर ।१०।
जिनके तपः प्रभाव से इन्द्र होय नत माथ।
देखभाल वर तेज को रवि-शशि जोडें हाथ ।११।
केश लोंच महिमा अगम शक्ति कहन की नाहिं
जो निज अनुभव कर कहे वह 'प्रणम्य' जग माहिं।१२।

SCAN TO WATCH

18. कुछ हो या न हो

कुछ हो या ना हो मेरा मन दुर्बल ना हो
प्रेम भाव से क्षमा भाव से
समता मय मेरा स्वभाव हो
गुणी जनों के दर्शन से
मन मंगल-मंगल हो ।१।
कुछ हो या न हो मेरे मन में घृणा न हो
कुछ हो या ना हो मेरा मन दुर्बल ना हो।
जो भी मिला है मुझको जग में
निर्मल-निर्मल लगा है मन में
क्रोध रहित जो काम रहित जो
ऐसे गुरू की भक्ति नित हो।२।

कुछ हो या ना हो मन गुरू निन्दक ना हो
कुछ हो या ना हो मेरा मन दुर्बल ना हो।
मोक्ष मिलेगा मिलता रहेगा
धर्म पलेगा फलता रहेगा
अहंकार तज कुटिल भाव तज
मन तुम सरल रहो ।३।
कुछ हो या ना हो मेरे मन में छल ना हो
कुछ हो या ना हो मेरा मन दुर्बल ना हो।

SCAN TO WATCH

19. मन तू भ्रम में काहे भ्रमावे

आती मृत्यु जाता जीवन, रोते रहते सपने यौवन
हर सावन में प्यासा पपीहा, एक बूंद तरसावे।
मन तू भ्रम में काहे भ्रमावे।
लहरों से जो माटी आये, उससे घर साहिल पे बनाये
लहरें आयीं ले गई माटी, काहे तू इठलाये।
मन तू भ्रम में काहे भ्रमावे।
सब कुछ जाने, सब कुछ खोजे
इक गति छोड़े, दूजी होजे
परमारथ की प्रीति बिना तू
काल हि व्यथा गँवावे।
मन तू भ्रम में काहे भ्रमावे।
पाप छोड़ता, पुण्य को भजता
तज बेड़ी, हथकड़ी को गहता
शुद्धातम की छटा निराली
मोही मन ना भावे।
मन तू भ्रम में काहे भ्रमावे।

20. दुनिया में तरक्की

SCAN TO WATCH

दुनिया में तरक्की की नुमाइश तो देखिये
इंसान की इस दौर में ख्वाहिश तो देखिये
गेहूँ, अनाज बीज परदेश जा रहे
परदेश से फिर देश में ये खाद ला रहे
खेती को खत्म करने की साजिश है चल रही
मुर्गी के दाने मछलियों की खेती बढ़ रही
अब माँस के व्यापार से यह देश चलेगा
पशु - पक्षियों के खून से ये देश सजेगा
हर रोज भ्रष्ट व्यक्तियों की लिस्ट खुल रही
पेटेंट देश की हर एक चीज हो रही
सरकार की हर रोज फरमाइश तो देखिये

दुनिया में तरक्की ....

शिक्षा के नाम पर यहाँ व्यापार चल रहे
कॉलेज में होटल क्लबों के खेल चल रहे
शादी से पहले लड़कियो के गर्भ गिर रहे
अब गर्भ में ही भ्रूण कत्ले आम हो रहे
ममता ही माँ की मर गयी तो पुत्री क्या करे?
संस्कार ही नहीं मिले तो पुत्र क्या करे?
बेटी, बहू, माँ-बाप का लिहाज मिट गया
टी.वी. के नाटकों को देख धर्म लुट गया
विज्ञान के इस युग की पैदाइश तो देखिये

दुनिया में तरक्की ......

बेरोजगार बढ़ रहा है यंत्र बढ़ रहे
गांजा-शराब के यहाँ ठेके हैं खुल रहे
हर चीज यहाँ पैकेटों में बंद आ रही
गंदी सड़ी-सी चीज में भी खुश्बू आ रही
बोतल में बंद पानी में तेजाब बिक रहा
हर आदमी भी शान से पीकर के हँस रहा

अभियान चल रहे हैं कि 'पानी बचाइये"
सब भ्रष्ट हैं पर उन्नति के गीत गाइये
बाजार में हर चीज की प्राइस तो देखिये
दुनिया में तरक्की ......

SCAN TO WATCH

21. यहाँ आया न

जिया मन खूब मर्जी से, बड़ा गमगीन अफ़साना।
यहाँ आया न मर्जी से, न मर्जी से वहाँ जाना।
घुटन सब ओर हर दिल के गरल के घूंट पीता है
बयां कर भी नहीं सकता सिसकता और जीता है
यहाँ बेबश हर इक इंसा हुआ है कैद पिंजड़े में
कि हैं पर फिर भी मुश्किल क्यों रह पक्षी का उड़ पाना
यहाँ आया न...........

जवाँ हर आरजू दिल की, जवां दिल का तराना है
जवाँ होने से पहले ही जवां का कारनामा है
ये हैं दो चार दिन के खेल जीवन भर की बरबादी
बड़ा मुश्किल यहाँ होता बुझा दीपक जला पाना
यहाँ आया न.........

किसी के हार जाने से मना मत जश्न खुशियों का
ये सब तो वक्त की बातें नहीं रख बैर सदियों का
नहीं कोई सदा हारा नहीं कोई सदा जीता
किसी का दिल दुखा करके कहाँ तक हो खुशी पाना
यहाँ आया न...........

चमन हर वक्त चेतन का, यहाँ आबाद रहता है
महक उसकी जिसे आये वो बन्दा मस्त रहता है
बस इक विश्वास उसका कर, है धोखा जिस्म,दौलत में
बहुत कठिनाई का आलम यहाँ खुद को समझ पाना
यहाँ आया न......

22. क्यों गम में है...........

SCAN TO WATCH

कहाँ खो गयी है खुशी जिन्दगी की
क्यों गम में है अब जो हँसी जिंदगी थी
वो बचपना का हँसना सदा मुस्कुराना
वो कितना सहज था सभी गम भुलाना।
है कितना ये बेवश कि हँस भी न पाता
नहीं कुछ भी गम पर न हँसना सुहाता।
बड़ा होके जीना भी कितना है मुश्किल
ये खुद ही सिपाही है खुद ही मुवक्किल।
कठिन क्यों हुई जो सहज जिन्दगी थी
क्यों गम में है १

वो मित्रों की महफिल वो अपनों की संगत
नहीं कुछ भी डर था, थी मौजों की रंगत।
बिछड़ते गए उम्र के दौर में सब
उड़े डाल से खग कहाँ थे कहाँ अब।
सभी बीच रहकर जो रहते थे सुलझे
वही आज अपनी ही उलझन में उलझे।
उलझ क्यों गई हैं खुशी जिन्दगी की
क्यों गम में है २

गये थे खुशी लेने बाजार में जो
ठगे से , लुटे से, खड़े दिख रहे वो।
ये दुनिया के बाज़ार का भ्रम है कैसा?
जो दिखता है जैसा नहीं होता वैसा।
बनाया जिन्हें दोस्त दुश्मन बने हैं
समझ ही न आता कि क्या सामने है?
तड़फ क्यों रही हैं खुशी जिन्दगी की
क्यों गम में है ३

बना आज पैसा ही पैसा जरूरत
वही बाप, भाई, वही खूबसूरत।
पिता, मात, भाई न बीबी, न बेटी
सभी दूर बस पास, पैसे की पेटी।
बहुत ऊँचा बनने की चाहत में हरदम
बचा है अकेला नहीं कोई हमदम।
बिखर क्यों गई हैं खुशी जिन्दगी की
क्यों गम में है ४

SCAN TO WATCH

23. भगवान् से जाकर मिलेंगे

लक्ष्य ऊँचा करके चल बन्दे सफ़र में
पथ बताते मील के पत्थर मिलेंगे।१।
मुश्किलों से गुजरने की आरजू में
शूल भी ये फूल से बनकर खिलेंगे।२।
पक्षियों सा उड़ सदा आकाश में
चाँद-तारे राह के दीपक बनेंगे।३।
हौंसले कमजोर ना कर इस जहाँ में
हर कदम पर हम विजेता बन चलेंगे।४।
मेरी खिदमत में कोई हाजिर न हो
कष्ट में भी हम नहीं कुछ भी कहेंगे।५।
भावनाओं पर हमें विश्वास ऐसा
हम स्वयं भगवान् से जाकर मिलेंगे ।६।

SCAN TO WATCH

24. तो कोई बात बने

देह इक दीप है माटी का अरसे से बुझा
ज्योत आतम की जले तो कोई बात बने।१।
घर का कचड़ा तो कई बार जला गलियों में
मन का कुछ मैल जले तो कोई बात बने।२।
यूँ तो कई बार दिवाली आई ओ गई

ज्ञान का दीप जले तो कोई बात बने ।३।
दीप में तैल भरा और बाती भी रही
एक चिनगारी जले तो कोई बात बने।४।
कहीं खुशियाँ हैं और गम का कहीं अंधियारा
दीप हर घर में जले तो कोई बात बने।५।
किसी को रोशनी से भर न सके क्या मतलब
दीप से दीप जले तो कोई तो बात बने।६।

SCAN TO WATCH

25. डूब जाती है क्यों कश्ती

बन के भौंरा तेरी खुश्बू में कई बार यहाँ
मैंने मर-मर के जाँ गँवाई बहुत बार यहाँ
मैंने मर-मर के......

वही गुलशन है वही गुल है गुलची भी वही
ये हकीकत है जो समझा नहीं इक बार यहाँ
मैंने मर-मर के......

चाह बदली है रूप बदले हैं, मंज़िल है वही
पाके सब कुछ नहीं पाने सा, रहा दर्द यहाँ
मैंने मर-मर के......

कोई बतला दे कैसे रोकूँ, ये जिद अन्तस की
डूब जाती है मेरी, कश्ती क्यूँ हर बार यहाँ
मैंने मर-मर के.....

26. आओ बच्चों तुम्हे सिखायें

SCAN TO WATCH

आओ बच्चो तुम्हें सिखायें णमोकार का ध्यान हम।
णमोकार का ध्यान लगाके बन जाएँ भगवान हम।
वंदे जिनवरम्, वंदे श्री अर्हम्।

1. इसी मंत्र का ध्यान लगाके अंजन चोर बना भगवान।
इसी मंत्र से पाया उसने गगन गामिनी विद्यायान।
पढ़ो कहीं भी किसी समय भी कैसा भी हो मन का हाल।
इसको जपने से थम जाते तूंफा आँधी और भूचाल।
श्रद्धा से अब ध्यान लगाके शक्ति आजमायें हम।
णमोकार...वंदे जिनवरम्, वंदे श्री अर्हम्।

2. ऋद्धिधारी ऋषिवर मुनिवर अरु गणधर परमेष्ठी जब।
णमोकार का ध्यान लगाके पा जाते हैं शक्ति सब।
मरण समाधि यही कराता केवलज्ञान प्रदाता है।
इससे बढ़कर नहीं जहाँ में कोई रक्षक त्राता है।
श्वास-श्वास में इसे बसाकर अब कर लें विश्वास हम।
णमोकार...वंदे जिनवरम्, वंदे श्री अर्हम्।

3. जीवन्धर ने मंत्र सुनाया मरते-मरते श्वान को।
देव बना फिर कहने आया जीवक से एहसान को।
पारस प्रभु ने यही सुनाया मरते नाग नागिनी को।
और बैल भी यही मंत्र सुन बन जाता सुग्रीव वो।
क्यों न बने फिर सब मिलकर के इक अच्छे इंसान हम।
णमोकार...वंदे जिनवरम्, वंदे श्री अर्हम्।

SCAN TO WATCH

27. रोशनी का वही

हर घड़ी परिणमन जानता देखता, हाँ वहीं है नूर।
रोशनी का वही दरिया ज्ञान का हाँ वहीं है जरूर।
ये जमीं ये गगन सब अपने में है मगन
क्या बना सका ईश्वर ये कुदरत ये चमन

वो ही तो है सुख दुख से परे , जो है सभी से दूर
रोशनी का वही दरिया ज्ञान का हाँ वहीं है जरूर।१।

इक बूंद पानी की अमृत बने विष भी
जैसी मिली संगत ढ़ल जाती वैसी ही
वो ईश्वर है जो करता नहीं हमको यहाँ मजबूर
रोशनी का वही दरिया ज्ञान का हाँ वहीं है जरूर।२।

भटका अनादि से सबका यहाँ आतम
जो देखता उसको मिट जाए मिथ्या भ्रम
वो ईश्वर है जिसको देखो रस्ता मिलेगा जरूर
रोशनी का वही दरिया ज्ञान का हाँ वहीं है जरूर।३।

सुख ज्ञान दर्शन की शक्ति अनन्त रखे
निज आत्म सुख में लीन, जग राग रोष हरे
वो ही तो है मेरा भगवन् भक्ति करो भरपूर
रोशनी का वही दरिया ज्ञान का हाँ वहीं है जरूर।४।

SCAN TO WATCH

28. उस वर्ष न जाने क्या होगा?

तुम रहना कहीं मित्रों बस अन्याय अनीति नहीं करना
है मंजिल दूर नहीं डरना तुम धीरे-धीरे बस चलना
चहुँ ओर निशा अंधियारी है पापों का सघन तिमिर दिखता
दिन में भी हिंसा झूठ कपट के बादल का मौसम रहता
इक दीप जलाना अन्तस में मत सोचो इससे क्या होगा?
इस वर्ष यहाँ हम हैं तुम हो उस वर्ष न जाने क्या होगा?
गम की प्रतिकूल परिस्थिमि में जब मन उजड़ा उजड़ा सा हो
स्वारथ से भरी इस दुनिया में सब दूर न कोई अपना हो
तब तुम आवाज लगाना इक मेरे प्रभु मेरू गुरू आओ
पारस बाबा विद्यासागर मेरा गम दूर भगा जाओ
तुम दौड़ बस यहाँ आ जाना, मत पूछो इससे क्या होगा
इस बार यहाँ गुरू है प्रभु हैं उस वार न जाने क्या होगा?

किस्मत नैया जग लहरों में कहीं डूब रही कहीं तिरती है
कहीं कभी गोते खाकर आफत से नहीं उबरती है
कभी तन से दुख कभी मन से दुख सुख तो ऊपर की लहरों सा
दुख गहरा एक समुन्दर है जीवन दिखता है भंवरों सा
इस तट पे यहाँ संगी साथी उस तट पे न जाने क्या होगा
इस वर्ष यहाँ आनन्द महा उस वर्ष न जाने क्या होगा?

SCAN TO WATCH

29. शुद्ध चिद्रूपोहम

गगन मगन है गगन में, निर्मल शुद्ध स्वभाव
चेतन चेतन में मगन जग जड़ पूर्ण विभाव
चेतन का चैतन्य में चेतनता से ज्ञान
जहाँ हो रहा वही है उपादेय चिद्धाम
शुद्ध चिद्रूपोहम................

ज्ञान ज्ञान में ज्ञेय ज्ञेय में ज्ञायक आतम राम
नभ नभ में है धूलि धूलि में निज-निज परिणति जान
जिसके चिंतन मनन ध्यान से मद मत्सर बे काम
बहुत थक गए अब तो होवे चेतन में विश्राम
शुद्ध चिद्रूपोहम..............

भेद ज्ञान कर हंसा बन जा नीर क्षीर पहिचान
चेतन क्या निश्चेतन क्या तू भेद ज्ञान से जान
ज्यों सोने से प्रस्तर हटता चमक दमक संधान
त्यों चेतन से मोह हटे तो शुद्ध चेतना ध्यान
शुद्ध चिद्रूपोहम.............

जिसके ध्यान से आत्म विशुद्धि अरू शुद्धि से ध्यान
कारण कार्य वही फिर कारण रूचि बढ़ती निज ध्यान
उसी ध्यान से भेद ज्ञान हो उसी से केवलज्ञान
ध्याता ध्यान अरू ध्येय एक जहँ निजसं वेदन नाम
शुद्ध चिद्रूपोहम...........

छह अक्षर का मंत्र ये अनुपम तोड़े मोह अज्ञान
जिस चिन्तन से संवर होवे तत्क्षण ऐसा जान
ज्ञान बढ़े वैराग्य बढ़े फिर नही राग का काम
चिन्ता चित् दोनों विभिन्न हैं निजानन्द मम नाम

चिद्रूपोहम............

SCAN TO WATCH

30. गुरू के नाम का कर ले

गुरु के नाम का कर ले तू जाप। तेरा भव-भव का छूटे पाप,
ओ बन्दे तेरा भव-भव का छूटे पाप।

१. पाप धुंआ दुनियाँ में छाया
दिखता नहीं अपना ही साया-२
सबसे मिले कोई काम न आया
सच्चा हितैषी समझ न पाया-२
अपने को पाया, जबसे मिले गुरु आप।

तेरा भव-भव का...

२. इतनी करुणा ज्ञान दिया है
मुझ पामर का नाम किया है-२
तेरा नाम बना मेरी शान
मेरीसाँसों में तेरी जान-२
मेरा किया गुरु जैसा, सबका हरो संताप।

तेरा भव-भव का...

३. गुरु की सेवा गुरु की पूजा
प्रभु का ही है नाम ये दूजा-२
जीवन बनाया तुमने जीवन सजाया तुमने
जीवन संवारा तुमने जीवन जिलाया तुमने-२
हर दिल पै छायी मेरे, गुरूवर की छाप।

तेरा भव-भव का.

४. छोटे से जीवन में तुमने
आगे बढ़कर काम किये-२
गढ़कर नव इतिहास गुरुजी
जिनशासन का नाम किये-२
शिथिलाचार मिटाने वाले कुन्दकुन्द से आप।
तेरा भव-भव का....

SCAN TO WATCH

31. जो स्वयं मोक्ष पथ पर

जो स्वयं मोक्ष पथ पर बढ़े जा रहे।
और भव्यों को भी साथ ले जा रहे।

१. है निराली डगर मोक्ष का ये सफर
क्या हमें गम जो गुरु सा मिला हमसफर
जिनकी वाणी में तत्त्वों का होता जिकर
जिनका मन इतना पावन हो करुणा का घर
इसलिए भक्त उनके बढ़े जा रहे। जो स्वयं ...

२. जो सदाचार संयम का मेरु शिखर
जिनके चरणों में देवों की रहती बसर
वो गुरु मेरा विद्या का सागर महां
जिनके चरणों में झुकता है सारा जहाँ
उनके चरणों में हम भी चढ़े जा रहे । जो स्वयं.....

३. आया स्वर्णिम ये अवसर ये स्वर्णिम दिवस
एक राही चला ले के संकल्प बस
आतमा के अलावा परिग्रह है सब
छोड दो साथ सबका अकेला हो अब
उनके पीछे भी लाखों चले जा रहे। जो स्वयं.....

32. ओऽऽ छाये हुए मेघो

छाये हुए मेघो बहती हवाओं,
संदेश लेकर चले जाओ ओऽऽ।--२
जहाँ बैठे हों गुरुदेव मेरे, उनको छूकर के आओ।
कहना गुरुवर उनको बुलाओ, मेघों और हवाओं।

1. जब हों सामायिक में बैठे, उनकी साँसों में घुल जाना
पढ़ें जब स्वयंभू श्री गुरुवर जी, उनके स्वर में तुम मिल जाना
जब लें पिच्छी हाथ में वों तो, आगे-आगे तुम हो जाना
इतना कहना दरश दिलाओ, गुरु दर्शन दिलाओ
ओऽऽ छाये हुए मेघोऽऽऽऽ....
2. जब वो भोजन में ठाड़े, चुपके से तुम उनको लख लेना
जो भी लगता अनुकूल उनको, श्रद्धा से तुम उनको देना
आए यदि कोई बाल और जन्तु, दूर उन्हें कर देना
बाद में कहना गुरुवर से तुम जिनवाणी सुनाओ
कहना गुरु उनको बुलाओ....
छाये हुए मेघो बहती हवाओं, संदेश लेकर चले जाओ ओऽऽ।--२

33. मुझे अब किसी की जरूरत नही

मुझे अब किसी की जरूरत नहीं है
मुझे तेरे चरणों में जगह मिल गई है।
भटका था क्यों मैं जमाने में अब तक
मुझे इसकी सच्ची वजह मिल गई है।

१. तेरा नाम कुछ हो क्या इससे मतलब
मुझे ध्यान तेरा करने से मतलब
दुनियाँ से मुझको मतलब ही क्या है
मुझे तुझको पाने की तलब लग गई है।

मुझे अब किसी...

२. तू है पास मेरे तो सारी खुशी हैं
जमाने में हम ही बड़े खुशनसी हैं

कहे कुछ भी सोचे ये सारा जमाना
मुझे अब किसी से शिकायत नहीं है।

मुझे अब किसी....

३. मेरा हृदय हो चरणों में अर्पित
तेरे चरण मम हृदय में हो अंकित
तू मुझमें है या मैं तुझमें समाया
मुझे सोचने की जरूरत नहीं है।

मुझे अब किसी....

SCAN TO WATCH

34. विद्यासागर इस धरती पर

विद्यासागर इस धरती पर,कोई फरिश्ता का है नूर।
जिसने देखा तुमको गुरुवर, उसको चैन मिला भरपूर।

विद्यासागर...

१. शिक्षित बाल युवा दीक्षा दे, चेतन का उद्धार किया।
कुण्डलपुर के बड़े बाबा को, तुमने उच्चस्थान दिया।
नारी शक्ति संस्कारित हो, प्रतिभा स्थली बना दिया।
जन-जन की करुणा से पूरित, भाग्योदय निर्माण किया।
करके जग का हित मेरे गुरुवर, जग में रहते जग से दूर।

विद्यासागर.

२. दीप अनेकों जलते -बुझते, उनसे क्या रोशन हो जहाँ ?
कदम आपके जहाँ भी पड़ते, ज्ञान दीप जलते है वहाँ।
तुमने दीप से दीप जलाकर, ज्ञान प्रकाश बढ़ाया है।
अपने गुरुवर से ज्योति ले, जग जन को नहलाया है।
आप कृपा से दूर रहा जो, उसमें उसका ही है कसूर।

विद्यासागर...

३. शरदपूर्णिमा की उजली-सी , रात में कोई आया था।
होके युवा तप को धारण कर, चाँद निशा में छाया था।
आज उसी की शीतलता में, आनन्दित है जग सारा।

जिससे ही बस फैल रहा है, जिनशासन का उजयारा।
तुमसे चाँद सितारों को भी, और फिजाओं को है गुरूर।

विद्यासागर...

35. सब मिल आओ खुशियाँ मनाओ

सब मिल आओ खुशियाँ मनाओ, संयम स्वर्णिम वर्ष की।
संतशिरोमणि के भक्तों की, बेला आई हर्ष की।

१. हम सब मिल गाएँ - जय गुरुदेव
हम झूमें नाचें - जय गुरुदेव
सब मंगल गायें -जय गुरुदेव
घर गुरुवर आयें - जय गुरुदेव
ज्ञान गुरु के शिष्य सूरि श्री विद्यासागर की।
संत शिरोमणि के ....

२. जीवन जाता है - जाने दो
संयम आता है - आने दो
भक्ति मन भाती - भाने दो
स्वर्णिम नव वर्ष - मनाने दो
हम सबके भगवान गुरुवर विद्यासागर की।
संत शिरोमणि के ....

३. मेरी मन बगिया - महक रही
सबकी चित्त चिढ़िया - चहक रही
भक्ति की गंगा - बहक रही
चेतन अनुभूति - चमक रही
संत शिरोमणि महाश्रमण श्री विद्यासागर की
संत शिरोमणि के ....

36. संत शिरोमणि का स्वर्णिम संयम उत्सव

संत शिरोमणि का स्वर्णिम संयम उत्सव।
भव्य जनों के लिए भक्ति का है अवसर।

SCAN TO WATCH

१. श्रमण संस्कृति के जो नेता आज बने।
जिनके नाम से श्रद्धा मन में सहज बने।
चारित की खुशबू से जग को महकाया।
उनकी भक्ति करने विश्व सिमट आया।
नरम बना है स्वयं नर्मदा का कंकर।
भव्यजनों के लिए....

२. जिनके चारित ज्ञान ध्यान की शानी ना।
जिनके कंठ विराजित है जिनवाणी माँ।
मूकमाटी भी जिनके हाथों बोल पड़ी।
श्रमण श्रमणियों की टोली भी घेर खड़ी।
धन्य हुए हैं सर्प सिंह भी दर्शन कर।
भव्यजनों के लिए....

३. जिनशासन को आज नाज बस तुम पे है
विद्यासागर एक नाम सब मुँह पै है।
प्रतिभास्थली भाग्योदय की रचनाएँ।
पाठ दया का गोशालाएँ सिखलाएँ।
उपकृत आप कृपा से जन-जन हर घर-घर।
भव्यजनों के लिए..

37. जो हो सो हो, जो है सो है

SCAN TO WATCH

जो हो सो हो, जो है सो है ,
हमको क्या, हमको क्या, हमको क्या?
जनम सुनिश्चित, मरण सुनिश्चित
कर्मों का फल मिलना निश्चित
फिर संयोग-वियोगों के क्षण घबराने से क्या?

जो हो सो..............
पर तुलना से हँसना रोना, सुखी दुःखी यूं पल पल होना
चेतन को इन क्षणिकाओं में, आखिर मिलता क्या?
जो हो सो..............
पत्नी, बेटी,दौलत भाई, कर्म फलों की है परछाई।
परछाई पकड़न को दौड़े, तू पाएगा क्या?
जो हो सो..............
भाव मुक्त कर कर्म फलों से, बन साक्षी लख ज्ञान बलों से
चेतन का परिणाम नहीं जो उन भावों से क्या।
जो हो सो....................

SCAN TO WATCH

38. क्षमा प्रार्थना (दोहा)

नहीं रखो नाराजगी होगी तेरी जीत।
क्षमा करो आगे बढ़ो भूलो बुरा अतीत॥१॥
नहीं रखो अपराध का बोध हीनता भाव।
क्षमा करो आगे बढ़ो भाओ सत्य स्वभाव॥२॥
निंदा की आदत तजो निज पर रख विश्वास।
क्षमा करो आगे बढ़ो आकर्षण की श्वास॥३॥

निज मन को तन से लगा निज चेतन से नेह
क्षमा करो आगे बढ़ो मुक्ति मुक्त करेह॥४॥
खुद से ही तू प्रेम कर निज में नित तू झाँक।
क्षमा करो आगे बढ़ो मत निज को कम आँक॥५॥
जिसने जो कुछ कर दिया बुरा तुम्हारे साथ।
क्षमा करो आगे बढ़ो रखो भलाई साथ॥६॥

39. वीरशासनजयन्ती

आज के दिन पाये गौतम ने वर्धमान भगवान।
इसलिए यह गुरू पूर्णिमा बन गया पर्व महान॥
बोलो -बोलो वर्धमान की जय
बोलो बोलो गौतम ऋषि की जय !
आषाढ़ की पूनम को गौतम जी पाये प्रभु को,
दर्शन से मद नाश हुआ सम्यग्ज्ञान प्रकाश हुआ।
जीव तत्व का विश्वास करके धारा संयम ज्ञान,
इसलिए यह गुरू पूर्णिमा बन गया पर्व महान॥
छियासठ दिन से बोले ना, भगवन कुछ मुख खोले ना,
चिन्ता में जब इन्द्र हुआ इन्द्रभूति को याद किया।
दर्शन से ही श्रद्धा जागी शिष्य बना गुणखान,
इसलिए यह गुरू पूर्णिमा बन गया पर्व महान॥
गणधर पद धारी गौतम शिष्य बने प्रभु के अनुपम,
सप्त ऋद्धि सम्पन्न हुए चार ज्ञान से पूर्ण हुए।
गुरू जैसा ही रूप दिगम्बर शिष्य गुरू की खान,
इसलिए यह गुरू पूर्णिमा बन गया पर्व महान॥

40. ॐ अर्हं बोल

ॐ अर्हं, ॐ अर्हं, ॐ अर्हं बोल।
सभी कार्य की सिद्धि से तू, पहले इसको बोल॥
ॐ अर्हं...

जिसने भी यह मंत्र पढ़ा, दुःख सारा ही दूर किया,
जिसने भी इसको ध्याया, सुख का पारावार लिया।
इसकी महिमा इसकी शक्ति, नहीं सका कोई तौल,

ॐ अर्हं, ॐ अर्हं, ॐ अर्हं बोल।१।

भोजन से पहले तू ध्याले, चलते फिरते भी तू गाले,
सोने से पहले, जग कर के, इसका मन को नाद सुनाले।
सिद्ध शुद्ध अविरुद्ध मंत्र से तू अपना मुख खोल,
ॐ अर्हं, ॐ अर्हं, ॐ अर्हं बोल।२।

दुराचरण को दूर भगाए, सोता तेरा भाग्य जगाए,
ध्यान साधना इसकी करके, मानव अपना भाग्य बनाए।
तन मन आतम शुद्धि करे ये महिमा है अनमोल,
ॐ अर्हं, ॐ अर्हं, ॐ अर्हं बोल।३।

SCAN TO WATCH

41. अर्हं योग करना है

तू ऊपर से सब भरता रहा, पर भीतर से तो खाली है।
ऐसा कुछ निश्चित करना है, मन को भीतर से भरना है॥
तो, अर्हं योग को करना है .....

पानी में डूबे कलशे का, जब तक मुख उलटा रहता है,
पानी है चारों ओर मगर, भीतर से खाली रहता है।
पानी से भरा आए बाहर, मुख को बस सीधा करना है,
तो, अर्हं योग करना है .... ॥१॥

मछली पानी में प्यासी है, मन में क्यों भरी उदासी है,
जो दास बने धन के तन के, उनकी मति जग में दासी है।
जो दास बना वो मालिक था, मालिक चेतन को बनना है,
तो, अर्हं योग करना है .... ॥२॥

खिलते हुए कोमल पौधे को, पानी ऊपर से देता रहा,
मुरझाता गया धीरे-धीरे, खुशबू उसकी तू खोता रहा।
फिर से यह पौधा खिल जाए, जड़ में जल सिंचन करना है,
तो, अर्हं योग करना है..... ॥३॥

तन की तृष्णा मन की इच्छा, पूरी करते-करते आया,
धन वैभव पद सम्मान सभी, पाया पर मन खाली पाया।
भीतर से तृप्त ये आतम हो, आतम में तृप्ति करना है,
तो, अर्हं योग करना है..... ॥४॥

SCAN TO WATCH

42. मेरे मन में तेरे मन में (अर्हं प्रार्थना)

मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो।
वैर न होवे पाप न होवे भाव क्षमा का हो॥१॥
मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो।
मेरा मंगल तेरा मंगल सबका मंगल हो॥२॥
मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो।
मेरा जीवन तेरा जीवन सबका उत्तम हो॥३॥
मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो।
प्रभु के चरणा गुरु के चरणा सबको शरणा हो॥४॥
मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो।
तन नीरोगी मन हो निर्भय बोधि समाधि हो॥५॥
मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो।
दुखियारा ना कोई होवे मन ज्योतिर्मय हो॥६॥

43. णमोकार मय सारा जीवन बना लो
(अर्हम् प्रार्थना)

SCAN TO WATCH

णमोकार मय सारा जीवन बना लो।
महामंत्र से चेतन को सजा लो॥

णमोकार के पंच परमेष्ठी प्यारे,
भरे शुद्ध भावों से जग में हैं न्यारे।
महामंत्र की शक्ति निज में मिला लो,
महामंत्र से चेतना को सजा लो॥१॥
णमोकार........

रहे ज्ञान ही ज्ञान में मेरा ध्यान,
महामंत्र सब दुःख हर ले महान।
सभी हो सुखी और सबका भला हो,
महामंत्र से चेतना को सजा लो॥२॥
णमोकार........

न तन में हो रोग, न मन में अशान्ति,
हो सारे जहाँ में परम शान्ति शान्ति।
परम शान्ति अर्हं सभी को मिला लो,
महामंत्र से चेतना को सजा लो॥३॥
णमोकार........

हाइकू

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

प्रभु का दास, उदास नहीं क्योंकि, प्रभु हैं पास ।१।

**

गुरु की कृपा, पर्याप्त बनी गुरु, सा बनने में ।२।

**

कुण्डग्राम में, या कुण्डलपुर में, जन्मा अजन्मा।३।

**

प्यार अपार, किन्तु हाथ छोटे हैं, अतः अतृप्त ।४।

**

चांदनी छटा, हजारों तारे भी पै, मेरा कोई ना ।५।

**

सदा सदा से, आत्मा शान्त रहा औ, मन अशान्त।६।

**

विद्या सागर, गागर में सागर, भटकन क्यों?।७।

**

क्या प्रकाश को, भी आवश्यकता है, प्रकाशन की।८।

**

तूफानी बातें, औ बाढ़ सी भीड़ ही, प्रभावना क्या?।९।

**

तूफान गया, बाढ़ भी बढ़ गयी, बचा कचड़ा ।१०।

**

प्रौद्योगिक से, भारत का विकास, निर्गन्ध कास ।११।

**

आज की नारी, उन्नति की होड़ में, निर्लज्ज खड़ी।१२।

**

समेटना तो, असम्भव राह है, आ सिमट जा।।१३।

**

बासन्ती छायी, औ कोकिल न कूके, असम्भव है ।१४।

**

गुणों की स्तुति, मुनि मन न डोले, असम्भव है।१५।

**

आकाश में हैं, पतंगें बहुत सी, पै कटी हुई।१६।

**

दिल में छाले, आंसू एक भी नहीं, संयमी जो हूँ।१७।

**

राग तरंग, गहराई से उठी, तल पे दिखी।१८।

**

समोसरण, उनका जिनकी कि, नासग्र दृष्टि।१९।

**

मनः पर्यय, उनको जिनका कि, मन मरा है।२०।

**

मिट्टी के ढेर, चींटी सा परिश्रम, क्या कर रहा? ।२१।

**

श्रद्धा की कली, छोटी भी बड़ी बांकी, कागजी ढेर ।२२।

**

लहूलुहान, माँ का आँचल कैसे, पुत्र हो तुम ।२३।

**

आराधना ही, रत्नत्रय की सच्ची, प्रभावना है।२४।

**

माँ! ऐसा हो कि, मैं आत्मा हूँ यह भी, भान न रहे।२५।

**

उन्नति वही, जिससे प्रसन्न हो, गुरू अन्तस।२६।

**

दिखता नहीं, उजाले में धूम त्यों, राग में द्वेष।२७।

**

आपसी रिश्ते, यदि स्पष्ट न हों तो, राग से द्वेष।२८।

**

हेय का ज्ञान, उपादेय रहा है, हेय वस्तु ना।२९।

**

सफल आयी, जिव्हा फिसलने से, फसल आयी।३०।

**

आगे पीछे ही, देखे ज्ञान,श्रद्धा तो, आगे ही करे।३१।

**

वशीभूत हो, भूत भी जब योगी, एवंभूत हो।३२।

**

जीव-तन का, स्वर-व्यंजन जैसा, सदा से साथ।३३।

**

तलाक हुआ, नर का प्रकृति से, निर्बन्ध सिद्ध।३४।

**

वरवधू हैं, संसृति के मण्डप में, जीवाजीव ज्यों।३५।

**

कर्तृत्व छूटा, उतना कि जितना, कर्त्तव्य किया।३६।

**

कर्म का फल, स्व वश हो भोगना, सच्ची साधना ।३७।

**

जवाब नहीं, जवान है फिर भी, लाजवाब हो।३८।

**

उजाड़ा गया, मैं वन धन से, सो, रोता मैदान।३९।

**

अहिंसा जहाँ, परं परं हो वही, परम्परा है।४०।

**

मत मारो ये, बेजुबान हैं, किन्तु, बेजान नहीं।४१।

**

पनघट पे, घट प्यासा रहा क्यों?, समर्पण ना।४२।

**

दीप जलता, बाती भी जलती, तेल तो मिले।४३।

**

ममता मिटे, समता से सहन, जब कष्ट हो।४४।

**

अन्याय हुआ, जग में न्याय कहा, बड़ा जो रहा।४५।

**

चंचलपन, बड़ों का बडप्पन, छोटों को ओछा।४६।

**

सीधापन भी, बड़ी चतुराई है, चतुर-बनो ।४७।

**

गठरी बांधी, ठठरी बंधी, सभी, मठरी खाएं।४८।

**

अनुशासन, का भी अतिशासन, दुःशासन है।४९।

**

नरक जाती, सीधी ही एक कार, अहंकार की।५०।

**

किसे मिले हैं, सत्ता सत्य सौन्दर्य, निरपवाद।५१।

**

क्षण भंगुर, जीवन जी रहा मैं, अपने लिए।५२।

**

कोई भी बुरा, दिखे जब तलक, खुद बुरे हो ।५३।

**

दवा-दवा खा, फिर दवाइयाँ खा, दबे पाँव जा ।५४।

**

संस्कृति का ही, गौरव नहीं रहा, स्वाभिमान क्या।५५।

**

तत्काल दिखे, विज्ञान वही देखे, धर्म आगे का।५५।

**

दूर न बैठा, संत रागियों से तो, काहे का त्यागी?।५६।

**

राग-द्वेष को, जीतना ही जिनत्व, जैनत्व जानो।५७।

**

है पंथवाद, साधु-संत विवाद, भक्त तो भोला।५८।

**

पर समझे, खुद की ये बैचेनी, स्वयं समझो।५९।

**

दिशा, जीवन, ऋतु, समय, धन, एक से कहाँ।६०।

**

स्वीकार करो, परिवर्तन को तो, सदा बहार ।६१।

**

संतुलित ही, तन, मन, प्रतिष्ठा, सफलता है।६२।

**

मशाल जले, जीवन में दो छोरों, से मिशाल है।६३।

**

जिन शासन, है निजशासन, ना, परशासन।६४।

**

अर्पित करो, मास के चार पर्व, तप ध्यान में।६५।

**

बाह्य उन्नति, मोह है, मोक्ष हेतु, अन्तः उन्नति।६६।

**
खुद को तौलो, जगत दृष्टि में नहीं, हित दृष्टि से।६७।
**
रोशनी तो हो, फुलझड़ी से, बम, संस्कृति नहीं।६८।
**
ब्रह्मोपासक, का बम-पटाखों से, कैसा त्योहार?।६९।
**
जलें दीप से, ज्ञान प्रेम सद्भाव, सच्ची दीवाली ।७०।
**
पाप जलाओ, पापी नहीं, तो सही, दशहरा है।७१।
**
नारी गरिमा, आचार विचार से, स्वच्छंदता न।७२।
**
महिला से ही, घर धर्म, समाज, का संपोषण।७३।
**
अदृश्य विधि, ही जीवन चलाती, दृश्य संभाले।७४।
**
क्षमा, मैत्री में, हो धोखा, हानि खा के, भी जो दया हो।७५।
**
ज्ञान हुआ वो, प्रिय ना,अप्रिय भी, तुरन्त नहीं।७६।
**
मन की मानें, तो कर्म-हित, जीव, जीव की मानें।७७।
**
अनादि भूल, सबको समझाए, स्वयं तो करे।७८।
**
एक से नहीं, मन की विशुद्धि क्लेश, वार्धिज्वार से।७९।
**
पर की चिन्ता, हेतु कर्म बंध का, आर्त ध्यानता।८०।
**
एक प्रार्थना, मतिश्रुतोपयोग, निष्कलुष हो।८१।
**
ममता नहीं, उसका फल दुःख, अतः समता।८२।
**
शुद्ध तैरता, घृत-सा उड़े खग, सा ऊपर ही।८३।

**
बंधन बुने, मकड़ी लार से ज्यों, क्यों शिर धुने।८४।
**
स्वभाव जाना, आत्मा नियत, मन, तन अथिर।८५।
**
विश्वास ना हो, मन-तन-श्वास का, तो स्वस्थ रहो।८६।
**
पर को ही ना, खुद को भी करना, क्षमा सीखना।८७।
**
पहले सीखों, दूजों का सिखाना क्या? इस जिद में।८८।
**
कहते जिसे, तुम अधर्मी, तो किया? तुम हो धर्मी।८९।
**
अहं का नाश, यदि न किया तूने, तप का नाश।९०।
**
नये मंच हैं, नये लोग फिर क्यों, पुरानी बात?।९१।
**
सुधारना है, जिसको तुम्हें उसे, पहले भूलो।९२।
**
कर्म हत हों, जब दूसरा कभी, न आहत हो।९३।
**
आदत पड़ी, कषाय करने की, सो हो ही जाती।९४।
**
भडक जाती, क्रोध, आग, साधना, बढ़ न पाती।९५।
**
शत्रु न देखा, शत्रुता कर ली, क्यों? शत्रु भीतर।९६।
**
प्रवचन में, कषाय बंध रही, धर्म कहां हैं? ।९७।
**
गलती बड़े की, छोटा मांगे क्षमा तो, बड़ा कौन है? ।९८।
**
दूजो से हँसी, अपनों पर गुस्सा, जीना न आया।९९।
**
काम-बिल्ली, ताके, क्रोध-कुक्कर, भौंके, जीता क्या?।१००।

**
बाह्य लिंग से, परमेष्ठी नहीं हो, भाव लिंग से।१०१।
**
निंदा कटाक्ष, ना ऐसे प्रवचन, कौन सुनाये?।१०२।
**
समयसार, सर्वस्व सार, बाकी सार में बंधे।१०३।
**
नयन मूंदे, निर्विकल्प आनंद, भीतर जो है।१०४।
**
व्यर्थ सी भासें, कामना वासनाएँ, समझो मिटी।१०५।
**
त्रययोग से, स्वभाव प्रकट हो, सहज योग।१०६ ।
**
अच्छी लगे, काम वासनायें, समझो बढ़ीं।१०७।
**
कठोर लड्डू, थोडा-थोडा तोड़ा सो, पूरा खा लिया।१०८।
**
बरबादी की, दुनिया में आबाद, सच्चा स्यादवाद।१०९।
**
दो कौडी भी थी, पर्याप्त तब, अब, ना कोड़ा-कोडी।११०।
**
नीरस काज, मन पे लगाम तो, सरस जान।१११।
**
पर खंडन, दुःख देता, सुख दे, निजमण्डन।११२।
**
पुराना न्याय, अनजानी गलियाँ, आओं घूमें तो।११३।
**
तीक्ष्ण बुद्धि की, कटार पर घिसो, मोथरी बुद्धि ।११४।
**
युक्त्यनुशास्ता, सिर पे लगा टीका, अलंकार सा।११५।
**
न्याय से करनी, वस्तु व्यवस्था जानो, दृढ़ हो आस्था।११६।
**
टीका बड़ा है, सिर कितना बड़ा, अर्थ से जानो।११७।

**

प्रभु,गुरू के, रंग में रंगा मन, मनाएँ होली।११८।

**

आस्था की रोली, भीतर आत्मा बोली, मैं खेलूँ होली।११९।

**

विचार पर्दा, जब जैसा भी हटा, तो ध्यान घटा।१२०।

**

मन के परे, मोक्ष हेतु है अरे!, पार तो कर।१२१।

**

कर्म इंधन, जले ध्यान अग्नि में, आनन्द होली।१२२।

**

ध्यान विज्ञान-,नहीं पद्धति नहीं, कलाकारी है।१२३।

**

सुख दुख से, परे बालक जैसा, ध्यान ही होता।१२४।

**

उदाहरण, संभलने को, न कि, निराश होने।१२५।

**

वन में गए, तो राम बन गए, सो बस गए।१२६।

**

राम चरित, जो कहे सुने बने, मन पवित्र।१२७।

**

मुझसे सभी, ख़ुश रहें ,पर मैं, किसी से नहीं।१२८।

**

अपेक्षा की, भी, अपेक्षा देखो, दिखे, उपेक्षा ज्ञान।१२९।

**

योग्यता से ही, बनती पुरुषार्थ, की दशा, दिशा।१३०।

**

मैं और जियूँ, नहीं नहीं विचारों, सार्थक जियूँ।१३१।

**

स्थान को छोड़ो, ना मन मरोड़ो क्यों, होड़ में दौड़ो?।१३२।

**

गुरू कृपा के, भार से, रोम-रोम, नम्रीभूत है।१३३।

**

तुमसे मेरी, कर्म ऋण मुक्ति, मैं उपग्राहक।१३४।

**

नाम लोभ की, कामना बिना,बने, उपग्राहक।१३५।

**

इच्छा न बची, ज्यों की त्यों चीजें पडी, तो त्याग हुआ।१३६।

**

शिक्षक मात्र, शिक्षा देता गुरू तो, जीवन देता।१३७।

**

अर्हं का अर्थ, क्या क्यों कैसे कितना? सुनो तो जाने।१३८।

**

स्वर्ग नरक, मिलेंगे मर के ही, मानो ना मानो।१३९।

**

मुस्कुराइए, मेरे लिए ना सही, अपने लिए।१४०।

**

मेरी श्रद्धा तो, मात्र आपको माने, आप जो माने।१४१।

**

लहराती ही, धवजायें मन भायें, भाग्य जगायें।१४२।

**

लहराती ही, पताका पता देती, जिनालय का।१४३।

**

अनुभूत है, भूत ,वर्तमान तो, मात्र पूत है।१४४।

**

अनुभव से, ज्ञान मिला जिन को, वही तो कहा।१४५।

**

खोजने वाला, खुद में खोए तो ही, खोज पूरी है।१४६।

**

अन्तर देखो, अन्तर का अभ्यास, हो तो ही मुक्ति।१४७।

**

आत्मा निकट, संकट था, विकट, ना दिखा झट।१४८।

**

पूछते हो क्यों?, दिल का हाल दिखे, मुख को देखो।१४९।

**

चेतना छूटी, देह तो हुई मिट्टी, क्या देखे बिट्टी।१५०।

**

सुलझ रहा, आत्मा आत्मा में रहा, ना तो उलझा।१५१।

**

हाथ बढ़ाओ, दूसरे के लिए तो, तुम बढ़ोगे।१५२।

**

बनने में तो, जिन्दगी लगे, मिटे क्षण भर में।१५३।

**

भावना

१. समाधि भावना

दिनरात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ।
शत्रु अगर कोई हो, संतुष्ट उनको कर दूं।
समता का भाव धर कर सबसे क्षमा कराऊँ।
त्यागूं आहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ।
जागें नहीं कषायें, नहिं वेदना सतावें।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ।
आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूं।
अरहंत सिद्ध साधु, रटना यही लगाऊं।
धर्मात्मा निकट हों, चरचा धर्म सुनावें।
वह सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ।
जीने की हो न वाञ्छा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से, मैं राग को हटाऊँ।
भोगे जो भोग पहिले, उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ।
रत्नत्रयों का पालन, हो अंत में समाधि।
'शिवराज' प्रार्थना है, जीवन सफल बनाऊँ।

२. बारह भावना

(अनित्य भावना)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।

(अशरण भावना)

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोऊ न राखन हार।

(संसार भावना)

दाम-बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।

(एकत्व भावना)

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यो कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।

(अन्यत्व भावना)

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय।

(अशुचि भावना)

दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन गेह।

(आस्त्रव भावना)

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटें सुध नहीं।

(संवर भावना)

सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमें।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकै।

(निर्जरा भावना)

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या-विधि बिन निकसे नहीं, बैठे पूरब चोर।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।

(लोक भावना)

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन-ज्ञान।

(बोधि दुर्लभ भावना)

धन-कन-कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।

(धर्म भावना)

जाँच सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन।

३. मेरी – भावना

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध-वीर-जिन-हरि-हर-ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो।१।
विषयों की आशा नहिं, जिनके साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं।२।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ।३।
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।

बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।४।
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर-कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नही मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।५।
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊं नहीं कतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।६।
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे ।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे।७।
होकर सुख में मग्न न फूलै , दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहीं भय खावे।
रहे अडोल-अकंप निरंतर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे।८।
सुखी रहें सब जीव जगत् के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे ।
ज्ञानचरित उन्नत कर अपना, मनुजजन्म फल सब पावे।९।
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत् में, फैल सर्वहित किया करे।१०।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।

बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तुस्वरूपविचारखुशीसे,सबदुख-संकटसहाकरें।११।

४. आलोचना पाठ

वंदौ पाँचों परम - गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरण के काज।

सुनिये जिन! अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति-काजा, तुम सरन लही जिनराजा।।
इक-बे-ते-चउ इन्द्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदई हो घात विचारी।।
समरंभ-समारंभ-आरंभ, मन-वच-तन कीने प्रारंभ।
कृत-कारित-मोदन करिकै, क्रोधादि-चतुष्टय धरिकै।।
शत-आठ जु इमि भेदन तैं, अघ कीने परिछेदन तैं।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।।
विपरीत एकांत-विनय के , संशय अज्ञान कुनयके।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ।।
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया करि भीनी।
या-विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुंगति मधिदोष उपायो।।
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सों दृगजोरी।
आरंभ-परिग्रह भीनो, पन-पाप जु या-विधि कीनो।।
सपरस-रसना-घ्रानन को, चखु-कान-विषय-सेवन को।
बहु-करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने।।
फल पंच-उदम्बर खाये, मधु-मांस-मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुव्यसन दुखकारे ।।
दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निश-दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-त्यों करि उदर भरायो।।
अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।

संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये।।
परिहास-अरति-रति- शोक, भय-ग्लानि-तिवेद-संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।
निद्रा वश शयन कराई, सुपने-मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो।।
आहार-विहार-निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखे धरी-उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि-बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है।।
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोश जु कीनी।
भिनभिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये।।
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी।।
पृथिवी बहु-खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई।
पुनि बिन-गाल्यो जलढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो।।
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा , हम खाये धरि आनंदा।।
हा हा! परमाद-बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामध्य जे जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये।।
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन-सोधि जलायो।
झाडू ले जागां बुहारी, चिंटीआदिक जीव बिदारी।।
जल-छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि-डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया-बिन पाप उपाई।।
जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहुघात करायो।
नदियन-बिच चीर धुवाये , कोसन के जीव मराये ।।
अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारें-धूप डराया।।

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरंभ हिंसा साजै।
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वाणी तैं कहिय न जाई।।
ताको जु उदय अब आयो , नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुःख पावे, वचतैं कैसें करि गावे।।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है।।
इक गांवपती जो होवे, सो भी दुःखिया दुःख खोवै ।
तुम तीन-भुवन के स्वामी, दुःख मेटहु अन्तरजामी।।
द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुःख मेटहु अन्तरजामी।।
इंद्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊं।
रागादिक- दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे ।।

दोष-रहित जिनदेव जी, निज-पद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ैं, आनन्द-मंगल होय।।
अनुभव-माणिक-पारखी, 'जौहरि', आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण-शरण-आनन्द।।

५. वैराग्य भावना

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जग-माँहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करैं, धर्म बिसारै नाहिं।१।

जोगीरासा वा नरेन्द्र छन्द

इह विधि राज करै नरनायक, भोगैं पुण्य विशालो।
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो।

एक दिवस शुभ कर्म-संजोगे, क्षेमंकर मुनि वंदे।
देखि शिरीगुरु के पदपंकज, लोचन अलि आनन्दे ।२।
तीन प्रदिक्षण दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु-समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन दृष्टि दीनी।
गुरु उपदेश्यो धरम-शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राज-रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे।३।
मुनि-सूरज-कथनी-किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी।
भव-तन-भोग-स्वरूप विचार्यो, परम-धरम-अनुरागी।
इह संसार-महावन भीर, भरमत ओर न आवै।
जामन-मरन-जरा दव दाहै, जीव महादुःख पावै।४।
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन-भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहाँ, वधबन्धन भयकारी।
सुरगति में पर-संपति देखे, राग-उदय दुःख होई।
मानुष-योनि अनेक-विपत्तिमय, सर्वसुखी नहिं कोई।५।
कोई इष्ट-वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन-दरिद्री विलखे, कोई तन के रोगी।
किस ही घर कलिहारी नारी, कै बैरी-सम भाई।
किस ही के दुःख बाहर दीखें, किस ही उर दुचिताई।६।
कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै ।
खोटी-संतति दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै ।
पुण्य-उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ देखत, सब दीखै दुखदाता।७।
जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागें।
काहे को शिवसाधन करते, संजम-सों अनुरागैं।
देह अपावन-अथिर-घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई।८।
सात-कुधातु भरी मल-मूरत, चर्म लपेटी सो है।

अंतर देखत या-सम जग में, अवर अपावन को है।
नव-मल द्वार सवै निशि वासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ,कौन सुखी सुखपावै।९।
पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै।
राचन-योग्य स्वरूप न याको, विरचन-जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे , यामें सार यही है।१०।
भोग बुरे भव रोग बढ़ावे, बैरी हैं जग जी के।
बेरस हों य विपाक-समय अति, सेवत लागैं नीके।
वज्र-अगिनि विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पंथ सहाई।११।
मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने ।
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन-वाँछित जन पावैं।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे।१२।
मैं चक्री-पद पाय निरन्तर, भोगे भोग-घनेरे ।
तौ भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग-मनोरथ मेरे ।
राजसमाज महा-अघ-कारण, बैर बढ़ावन-हारा।
वेश्या-सम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा।१३।
मोह महा रिपु बैरी विचारो, जग-जिय संकट डारे ।
घर-कारागृह वनिता-बेड़ी, परिजन-जन रखवारे ।
सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरण-तप, ये जिय के हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी।१४।
छोड़े चौदह-रतन नवों निधि, अरू छोड़े संग-साथी।
कोटि-अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी-लख हाथी।
इत्यादिक संपति बहुतेरी, जीरण-तृण-सम त्यागी।
नीति-विचार नियोगी सुत कों, राज दियो बड़भागी।१५।

होय निःशल्य अनेक नृपति-संग, भूषण-वसन उतारे।
श्री गुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच-महाव्रत धारे।
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज-धारी।
ऐसी संपति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी।१६।

परिग्रह-पोट उतार सब, लीनों चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ।

६. बारह भावना

(दोहा छंद)

वंदूँ श्री अरहंत - पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग-जीवन-हित जान।१।

(विष्णुपद छंद)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा।
कहाँ कृष्ण-रुक्मिणी-सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी।२।
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जुझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अगनि लगी तन में।
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं गुरू, बारह-भावन को।३।

1. अनित्य भावना

सूरज-चाँद छिपै-निकलै, ऋतु, फिर-फिर कर आवै।
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै ।
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल, बहकर नहिं डटता।
स्वांस चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे-सों कटता।४।
ओस-बूंद ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि-पानी।

छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझै प्रानी।
इंद्रजाल आकाश-नगर-सम, जग-संपत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी।५।

2. अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को, घेरा भव वन में।
नहीं बचावन-हारा कोई, यों समझो मन में।
मंत्र-यंत्र-सेना-धन-संपति, राज-पाट छूटै।
वश नहिं चलता काल-लुटेरा, काय नगरि लूटै।६।
चक्ररत्न हलधर-सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया।
देव-धर्म-गुरु शरण जगत् में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँही उमर खोई।७।

3. संसार भावना

जनम-मरण अरु जरा-रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता।
छेदन-भेदन नरक पशुगति, वध-बंधन सहना।
राग-उदय से दुःख सुर गति में, कहाँ सुखी रहना।८।
भोगि पुण्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचम गति सुख मिलै, शुभाशुभ को मेटो लेखा।९।

4. एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी।
कमला चलत न पैंड-जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता-पुत्र-दारा।१०।

ज्यों मेले में पंथी जन मिल, नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा, पंछी आ करते ।
कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारै।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै ।११।

5. अन्यत्व भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दौड़े थक-थक के।
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।
वस्तु-पराई माने अपनी, भेद नहीं करता।१२।
तू चेतन अरु देह-अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले-अनादि यतन तैं बिछुडे, ज्यों पय अरु पानी।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौ लों पौरुष थके न तौ लों उद्यम सों चरना।१३।

6. अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निश-दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली।
मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस-हाड-नश-लहू-राध की, प्रगट-व्याधि घेरी।१४।
काना-पौंडा पड़ा हाथ यह, चूसै तो रोवै ।
फलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषै बोवै।
केसर-चंदन-पुष्प सुगन्धितवस्तु देख सारी।
देह-परसते" होय अपावन, निशदिन मल-जारी।१५।

7. आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों , आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहे जब पुद्गल-भरमन को।
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ,निशदिन चेतन को।

पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण-बन्धन को।१६।
पन-मिथ्यात योग-पन्द्रह, द्वादश-अविरत जानो।
पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।
मोह-भाव की ममता टारै, पर-परणति खोते।
करै मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते।१७।

8. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर, क्यों नहिं मन लाता।
पंच-महाव्रत-समिति गुप्ति कर, वचन काय मन को।
दशविध-धर्म परीषह-बाईस, बारह भावन को।१८।
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते ।
भाव शुभाशुभ रहित-शुद्ध-भावन-संवर पावै।
डाट लगत यह नाव पड़ी, मँझधार पार जावै।१९।

9. निर्जरा भावना

ज्यों सरवर-जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी।
संवर रोकै कर्म निर्जरा, ह्वै सोखन हारी।
उदय भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली।२०।
पहली सबके होय, नहीं कुछ सरे काज तेरा।
दूजी करै जू उद्यम करके, मिटे जगत फेरा।
संवर-सहित करो तप प्रानी, मिले मुकति रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जाने सब ज्ञानी ।२१।

10. लोक भावना

लोक-अलोक-आकाश-माँहिं, थिर-निराधार जानो।
पुरुष-रूप कर-कटी भये, षट् द्रव्यन सौं मानो।

इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादि है।
जीव रू पुद्गल नाचै यामैं, कर्म-उपाधि है।२२।
पाप पुण्य सौं जीव जगत् में, नित सुख-दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरे, सिर औरन के धरता।
मोह कर्म को नाश मेटकर, सब जग की आशा।
निज पद में थिर होय लोक के,शीश करो वासा।२३।

11. बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नर-काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्रानी।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक-कुल पाना।
दुर्लभ-सम्यक दुर्लभ-संयम, पंचम गुणठाना।२४।
दुर्लभ रत्नत्रय-आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत-पालन, शुद्ध भाव करना।
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै।२५।

12. धर्म भावना

धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः, ही सच्चा जानो।
जो पर को दुःख दे सुख माने, उसे पतित मानो।
राग-द्वेष-मद-मोह घटा, आतम-रुचि प्रकटावे।
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे।२६।
वीतराग-सर्वज्ञ दोष-बिन, श्रीजिन की वानी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जा में, सबको सुखदानी।
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर-धरना।
'मंगत' इसी जतनतै इकदिन, भव-सागर-तरना।२७।

श्री १००८ अजितनाथ चालीसा

(दोहा)

वन्दन कर अरिहन्त को सिद्धन करूँ प्रणाम।
सूरि पाठक साधु के चरण कमल सुख धाम॥
चौथे काल के आदि में प्रथम हुए तीर्थेश।
अद्वितीय हैं दूसरे अजितनाथ देवेश ॥

(चौपाई)

अजितनाथ प्रभु मंगलकारी, भव्यजनों को नित हितकारी।
विजयानुत्तर स्वर्ग से आए, माँ विजया मन अति हरषाए।
साढ़े तीन कोड़ नित बरसे, रतन आपके घर सब हरसे।
जेठ मास की थी वो अमावस, गर्भ आए प्रभु जी दिन पावन।
माघ मास दशमी तिथि जानो, जन्मे शुक्लपक्ष सुख ठानो।
नगर अयोध्या देव सजाये, जितशत्रु पितु राज कहाए।
लाख बहत्तर पूरव आयू, चिह्न इन्द्र गजराज कहायूँ।
स्वर्ण वर्ण सम पीली काया, साढ़े चार शतक धनु गाया।
बन युवराज विवाह किए जब, प्रजा जनों के पालक थे तब।
एक दिवस स्वामी छत बैठे, उल्कापात तभी तुम देखे।
विषय भोग से मन उचटाया, कर विचार आतम तब भाया।
मानुष जनम यह रतन समाना, भस्म बना तस मन सुख माना।
भोगों से मन तृप्त न होवे, ज्यों पावक घृत आयू खोवे।
ब्रह्म स्वर्ग लौकान्तिक देवा, हो प्रशंस हर्षे कर सेवा।
धन्य धन्य प्रभु आप विचार, सोचा निज आतम श्रृंगार।
देह धरे का लाभ यही है, आतम निधि यदि चाह बनी है।
तीन ज्ञान धारक हो देव, जग की मेटो आप कुटेव।
घर में नहिं आतम कल्याण, ममता मोह महा अज्ञान।
तुम हो स्वयं बुद्ध भगवान, आप ही सों जग को कल्याण।
आतम सुख चारित्र बिना ना, यह श्रद्धा समकित मन ठाना।
जो नहिं निज का निज जो माने, सुख पर में मूरख जन माने।

आज विराग भाव मन आयो, धन्य-धन्य यह दिवस कहायो।
अजितसेन सुत राज्य दिया तब, चले सहेतुक वन को प्रभु तब।
नाम सुप्रभा बनी पालकी, बैठ चले परिजन विनती की।
तीर्थंकर का यह नियोग है, मात पिता समझाये सब हैं।
प्रथम मनुज विद्याधर लीनी, फिर शिविका देवों ने लीनी।
सप्तवर्ण तरुवर की छाँव, दो उपवास नियम का भाव।
एक हजार राज राजा भी, तुम संग संयम धारे प्रभु जी।
माघ मास सित नवमी जान, दीक्षा कल्याणक भगवान।
चौथा ज्ञान तभी प्रकटाया, संयम का फल तुरत ही पाया।
राजा ब्रह्मा के घर कीनी, प्रभु पारणा अचरज दीनी।
पौष शुक्ल एकादशी आयी, केवलज्ञान ज्योति प्रकटायी।
सिंहसेन से नब्बे गणधर, समवसरण शोभे तुम जिनवर।
एक शतक सत्तर भूमि पर, आप समय ही थे सब जिनवर।
चैत्र शुक्ल पंचम तिथि आयी, मुक्तिवधू तुमने परिणायी।
सम्मेदाचल तीर्थ महान, जहाँ आप पाए निर्वाण।

दोहा

अजितनाथ जिनराज का, चालीसा सुख खान।
पढ़े नित्य चालीस दिन, मनवांछित सुख जान।
अजितनाथ जिनदेव के, महा जिनालय बैठ।
मुनि प्रणम्य सागर लिखे, मिटे कर्म की पैठ।

श्री १००८ मुनिसुव्रतनाथ चालीसा

(दोहा)

वन्दन कर अरिहन्त को सिद्धन करूं प्रणाम ।
सूरि पाठक साधु के चरण कमल सुखधाम ।१।
तीर्थंकर जिनदेव की जिनवाणी अनुसार ।
मुनिसुव्रत तीर्थेश के, गुणगाऊँ चित धार ।२।

चौपाई

मुनिसुव्रत भगवान हमारे, वीतराग जिन जग से न्यारे।
दोष अठारह नाशन हारे, गुण अनन्त के धारण हारे।३
आप अनन्त ज्ञान के स्वामी, सर्वजगत के अन्तर्यामी।
आप अनन्त बलों को धारे, सुख अनन्त को नित्य संभारे।४।
नील वर्ण की देह तुम्हारी, जग जनमन को लगती प्यारी।
सुरभित देह निरन्तर सोहे, भक्तों के मन को अति मोहे।५।
शुक्ल रक्तमय देह धरे हो, सबके प्रति करुणा धारे हो।
आप चरण का ध्यान करे जो, काम क्रोध सब आप हरे हो।६।
जहाँ आप का समवसरण हो, वहाँ रोग चिन्ता भय ना हो।
आप बीसवें हो तीर्थंकर, नित प्रति वंदन करते गणधर।७।
सुरगण चक्री महिमा गावें, तुम गुण-गण का पार न पावें।
मां सोमा के गर्भ में आए, नृप सुमित्र का मन हर्षाये।८।
गर्भ समय कल्याणक कीने, देवों ने जनमन हर लीने।
जन्म समय मेरु पर्वत पे, सुर विधाधर हर्षे मन में।९।
पुर कुशाग्र में जन्म लिये हो, हरिवंश के तिलक हुए हो।
चैत्रकृष्ण दशमी तिथि जन्मे, बीस धनुष का तन यह चमके।१०।
तीस हजार वर्ष की आयु, राज गृही में दीक्षा पायी।
पूर्व भवों का सुमरण आया, बेला कर तप में चित लाया।११।
एक हजार नृपति संग दीक्षा, राजगृही में पारण इच्छा।
नौवीं कृष्ण मास बैसाख, उपज्यो केवलज्ञान प्रकाश।१२।
ढ़ाई योजन का विस्तारा, समवशरण शोभे अति प्यारा।
मल्ली गणधर नाम प्रमुख है, अठारह गणधर संमुख हैं।१३।
फागुण कृष्णा बारस के दिन, मोक्ष लिया तब हुए करम बिन।
शिखर सम्मेद जगत विख्यात, निर्जर कूट सदा मन लात।१४।
अष्टकर्म दल चूर किया है, सुख अनन्त का भोग किया है।
विश्व चराचर के ज्ञाता हो, दृष्टा तथा महा साता हो।१५।
आप नाम का सुमरण भगवन, बाधाएँ हर लेता हर क्षण।
जो जन करे आपकी पूजा, नहीं मिले उसको भव दूजा।१६।
आप प्रभाव कहे को ज्ञानी, कह ना सकी सुर गुरु की वाणी।

जो सामर्थ्य आप में देखी, नहीं कुदेवों में वह देखी।१७।
राम लखन हनुमान महान, सभी तीर्थ तव सेवे जान।
लाख वर्ष छह काल विशाल, धर्म तीर्थ से हुए निहाल।१८।
जो भी करें आपकी भक्ति, उसको मिलती आतम शक्ति।
आप चरण रज को जो लेवे, कौन भला उसकों दुख देवे।१९।
आप चरण कमलों की अर्चा, दुख हरती देती सुख चर्चा।
सभी अमंगल निष्ट टले हैं, चालीसा जो नित्य पढ़े हैं।२०।

(दोहा)

मुनि सुवत भगवान का, चालीसा सुखकार।
पढ़े नित्य चालीस दिन, हो 'प्रणम्य' अविकार।२१।

बिजौलिया तपोदय तीर्थक्षेत्र चालीसा

- मुनि श्री प्रणम्य सागर जी

(दोहा)

वन्दन कर अरिहन्त को, सिद्धन करूँ प्रणाम।
सूरि पाठक साधु के, चरण कमल अभिराम॥
तीर्थंकर श्रीपार्श्व की, ज्ञान भूमि तप धाम।
विन्ध्यावलि शुभक्षेत्र को, नमूं बनूँ गतकाम॥

(चौपाई)

पार्श्वनाथ प्रभु मंगलकारी, जिनका नाम हरे अघ भारी।
मुनि बन तप धर विहिरत आए, विन्ध्यावलि वह थान कहाए॥
जहाँ आपने ध्यान लगाया, वहाँ कमठ संवर बन आया॥
अट्ठावन दिन यहाँ विराजे, उपसर्गों से भूमि छाजे॥
तब धरणेन्द्र देव भी आए, चहुँ दिश प्रभु के छत्र लगाए।
शुक्लध्यान प्रभु तभी लगाया, केवलज्ञान सूर्य उपजाया॥
समवसरण सुर तत्क्षण कीना, मिली कमठ को दिशा नवीना।
दैत्य कमठ ने बड़ी शिलायें, बरसायीं वो अभी यहाँ हैं॥
भीमावन यह नाम पुराना, रेवा नदी बीच से जाना।

इक लोलार्क नाम का सेठ, रात स्वप्न को लख उठ बैठ॥
कहा तभी नागेन्द्र देव ने, खोदा पाई मूर्ति सेठ ने।
मंदिर ऊँचा भव्य बनाया, सप्त जिनालय तीर्थ कहाया॥
शिलालेख पर पार्श्वप्रभु की, दस भव गाथा लिखवाई थी।
कुंड पास इक शिलालेख पै, वंशावली लिखवाई उस पै॥
पुण्य धर्म की कमी हुई जब, रक्षा तीर्थ न हो पाई तब।
आताताई राजाओं ने, मंदिर ध्वस्त किये दुष्टों ने॥
पाँच देवली बची तभी से, शिखराकृति वेदी है तब से।
सन्अट्ठारह सौ अट्ठावन, अंग्रेजों का हुआ आगमन॥
देख शिला ऊँचे परकोटे, सोचा खूब खजाना लूटे।
लगा तभी बारूद सुरंग, निकला मधुमक्खी का झुंड॥
मक्खी लिपटी प्राण बचाये, फूटी दुग्धधार चकिताये।
इसी तरह 'सोपान' भूमि को, लगे खोदने नहीं खुदी तो॥
श्वेतनाग फुंकार लगाया, अतिशय लख सब जय-जय गाया॥
है अहेचपुर नाम इसी का, अहिच्छेत्र भी नाम तभी था॥
चैत चौथ के कृष्ण पक्ष में, वार्षिक मेला निश्चित तिथि में।
जन मन का आनन्द बढ़ाता, जो भी आता है सुख पाता॥
चौबीसी मंदिर के अन्दर, दर्शन करके चित्त हो सुंदर।
बाहर समोसरण है गोल, मानस्तम्भ बड़ा अनमोल॥
पाँच देवली मंदिर पांच, निजमंदिर के दर्शन साँच।
बहुत समय से वेदी खाली, बिन भगवान रही देवाली॥
सुधासिंधु आए मुनिराजा, वेदी पारसनाथ विराजा।
पीछे फिर गणधर मन्दिर में, ग्यारह प्रतिमा खड्गासन में॥
दो स्तम्भ निषिधिकायें हैं, तीर्थंकर की प्रतिमायें हैं।
निजमन्दिर के उत्तर दिश में, कुण्ड रेवती सोहे सब में॥
पश्चिम मानस्तम्भ बना है, उत्तर में शिलालेख लिखा है।
सुख शांति छायी चहुँ ओर, प्रभु प्रभाव का ओर ना छोर॥

बिजौलियाँ शुभ क्षेत्र का, चालीसा सुख खान।
पढ़े नित्य चालीस दिन, मन वांछित सुख जान॥
वीर प्रभु निर्वाण की, पच्चीस सौ ब्यालीस।
चौमासा करके नमूँ, मुनि 'प्रणम्य' धर सीस॥

श्री 1008 अजितनाथ भगवान आरती

अजितनाथ जिनराज की उतारूँ आरतिया
ऊतारूँ आरतियाँ निहारूँ मूरतिया,

मैं अजितनाथ जिनराज की उतारूँ आरतियाँ।

जिनने सकल करम सब मेटे,
जो अनादि आतम में बैठे।
केवलज्ञान से सकल चराचर,
देख रहे जग भइया।।

अजितनाथ जिनराज की उतारूँ आरतियाँ...

जिनकी आरति से मिट जाये,
पाप कर्म सब ही घट जाये।
दीपक ज्योति जलाकर करता,
श्री जिनवर से बतियाँ।।

अजितनाथ जिनराज की उतारूँ आरतियाँ...

सम्यक् ज्योति लहे निज आतम,
नाश करो अज्ञान महा तम।
स्वर्ण थाल रतनों की ज्योति,
दिव्य-दिव्य ले बतियाँ।।

अजितनाथ जिनराज की उतारूँ आरतियाँ...

जो जन करत नित्य सुख आरति,
सुत लक्ष्मी पावे जिन भारति।
रोज स्वप्न में प्रभु की देखें,
मंगल मय सूरतिया।।

अजितनाथ जिनराज की उतारूँ आरतियाँ...

दार्शनिक प्रतिक्रमण

(अव्रती श्रावकों के लिए)

(मुनि प्रणम्य सागर कृत)

श्रीमज्जिनपदाभ्यासं प्रतिपद्यागसां जये।
मनोवाक्काययोगेन करिष्यामि प्रतिक्रमम्॥१॥

श्रीमान् जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की समीपता को प्राप्त करके पापों पर विजय प्राप्त करने के लिए मन-वचन-काय के योग से प्रतिक्रमण करूंगा॥

अहं पापी महादुष्टो महामूढो महालसः।
छली धूर्तो महालोभी सर्वदुर्गुणसम्भृतः॥२॥

हे भगवन्! मैं पापी हूँ, मैं बहुत दुष्ट हूँ, मैं महामूर्ख हूँ, मैं महान आलसी हूँ, मैं कपटी हूँ, मैं धूर्त हूँ, मैं बड़ा लोभी हूँ, मैं सभी दुर्गुणों से भरा हुआ हूँ॥

अहो कालुष्यचित्तेन दुष्टमुक्तञ्च चिन्तितम्।
कृतञ्चानर्थबाहुल्यं पापिना कामिना मया॥३॥

हे भगवन्! अहो! मुझ पापी ने, मुझ कामी ने चित्त की कलुषता से बहुत बुरा कहा है, बुरा चिन्तन किया है और अनेक अनर्थ किये हैं।

गृहे विद्यालये चापि चापणे मित्रमेलने ।
कृतैनःशुद्धये कुर्वे प्रतिक्रमणभावनाम् ॥४॥

घर में, विद्यालय (कॉलेज) में, दुकान में, मित्रों से मिलने से जो पाप किये हैं उनकी शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण की भावना करता हूँ।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि॥५॥

मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें। मेरा सभी जीवों में मैत्री-भाव है, मेरा किसी भी प्राणी से वैर भाव नहीं है।

एइंदिया - पुढविकाइया - आउकाइया - तेउकाइया - वाउकाइया - वणप्फदिकाइया - वे इंदिया - ते इंदिया - चउरिंदिया – पंचेंदिया - सण्णि पंचेंदिया-असण्णि पंचेंदिया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो

कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं॥

एकेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रिय, पंच इन्द्रिय, संज्ञी पंचन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन जीवों को मारा हो, उन्हें संताप पहुँचाया हो, उनको विराधित किया हो, उनके अंग-उपांगों का घात किया हो अथवा कराया हो अथवा करने वाले की अनुमोदना की हो तो मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

अट्ठमूलगुणेसु सत्तवसणविवज्जेसु पमादेण अण्णाणेण वा कयाइचार-सोहणट्ठं तिव्वकसायेण कयाणाचार-दूरकरणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं॥

आठ मूलगुणों में और सप्तव्यसन के त्याग में प्रमाद से, अज्ञान से जो मेरे द्वारा अतिचार (दोष) लगे उनकी शुद्धि के लिए तथा तीव्र कषाय के कारण अनाचार (महादोष) किया हो तो उसको दूर करने के लिए मैं उपस्थापना करता हूँ।

अरिहंतसिद्धआइरिय उवज्झायसव्वसाहुसक्खियं सम्मत्त-
पुव्वगं मूलगुणं दिढव्वदं मे भवदु मे भवदु मे भवदु॥

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु इन पाँच परमेष्ठी की साक्षी से सम्यक्त्व पूर्वक मूल गुणों की दृढ़ता मुझे हो, मुझे हो, मुझे हो।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार- विसोहिणिमित्तं
पुव्वाइरियकमेण आलोयणसिद्धभत्ति- काउसग्गं करेमि॥

अब दैवसिक (रात्रिक)प्रतिक्रमण में समस्त अतिचारों की विशुद्धि के लिये पूर्व आचार्यों के चले आये क्रमानुसार आलोचना पूर्वक सिद्ध भक्ति का मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥६॥

लोक के समस्त अरहंत परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो, लोक के सभी सिद्धों को मेरा नमस्कार हो, लोक में विद्यमान समस्त आचार्यों को मेरा नमस्कार हो, लोक में विद्यमान सभी उपाध्यायों को मेरा नमस्कार हो, लोक में विद्यमान सभी साधु परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

चत्तारि मंगलं अरहंत मंगलं सिद्ध मंगलं

साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा अरहंत लोगुत्तमा सिद्ध लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंत सरणं पव्वज्जामि
सिद्ध सरणं पव्वज्जामि साहूसरणं पव्वज्जामि
केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

इस संसार में चार मंगल हैं- अरहंत देव मंगल हैं, सिद्ध भगवान मंगल हैं, साधू गण अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और साधू परमेष्ठी मंगल हैं, केवली भगवान के द्वारा कहा हुआ धर्म मंगल है। लोक में चार ही उत्तम हैं। अरहन्त देव, सिद्ध प्रभु, साधु गण और केवली भगवान के द्वारा कहा हुआ धर्म। लोक में चार ही शरण भूत हैं उनकी शरण को मैं प्राप्त होता हूँ। मैं अरहंतों की शरण को प्राप्त होता हूँ, मैं सिद्धों की शरण को प्राप्त होता हूँ, मैं साधू गण की शरण को प्राप्त होता हूँ, मैं केवली भगवान के द्वारा कहे हुए धर्म की शरण को प्राप्त होता हूँ।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो समुद्देसु पण्णारसकम्म-भूमिसु जाव-अरहंताणं, तित्थयराणं, अणुबद्धाणं, अंतयडाणं, मूकाणं, समुग्घादाणं, उवसग्गाणं इदि सत्तविहकेवलियाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा किरियम्मं करेमि। मणसा, वचसा, काएण, सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि।

भंते ! अइचारं अणाचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं जाव
कालं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि॥

नववारं णमोकारमन्त्रम् (नौ बार णमोकार मंत्र पढ़े)

जम्बुद्वीप, धातकी खंड और अर्ध पुष्कर द्वीप इन ढाई द्वीपों में तथा लवण और कालोदधि इन दो समुद्रों में, पाँच भरत, पाँच ऐरावत व पाँच विदेह इन १५ कर्मभूमियों में होने वाले जितने भी अरहंत केवली, तीर्थकर केवली, अनुबद्ध केवली, अंतकृत केवली, मूक केवली, समुद्घात गत केवली और उपसर्ग केवली इस प्रकार सात प्रकार के केवली भगवान व ज्ञान, दर्शन, चारित्र सम्बन्धी कृतिकर्म मैं सदा करता हूँ। मैं मन से, वचन से, काय से सभी सावध (हिंसा) योगों को त्याग करता हूँ। हे भगवन्! मेरे मूल गुणों में लगे अतिचारों का व अनाचारों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। आत्म साक्षी पूर्वक निन्दा करता हूँ। गुरू साक्षी

पूर्वक गर्हा करता हूँ। जितने काल मैं उपासना करता हूँ उतने काल पर्यन्त पाप कर्मों व दुश्चेष्टाओं का त्याग करता हूँ।

(इस प्रकार दण्डक पढ़कर 9 वार णमोकार मंत्र पढ़ें)

आदीसं वंदे जिणमजियं संभवमभिणंदणसुमइं ।
पउमसुपासं चंदं सुविहिं सीयलसेयवासुपुज्जं ॥७॥
विमलमणंतं धम्मपवत्तय - धम्मं संतिं तिपयहरं ।
कुंथमरं सिवकंतारमणं मल्लिं कम्मियचुण्णकरं ॥८॥
मुणिसुव्वयणमिणाहजिणेसं जदुकुलतिलयं णेमिजिणं ।
पासपहुं भयवं वरवीरं वंदे सव्वं तित्थयरं ॥९॥
माणुसखेत्ते विहरणभूदा सीमंदरजिणभयवंता।
दिंतु समाहिं बोहिसुलाहं रविससिसहसपयासंता॥१०॥

मैं प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ जिन की वन्दना करता हूँ।मैं अजितनाथ भगवन् की, संभवनाथ भगवान की, अभिनंदन भगवान की, सुमति नाथ भगवान की, पद्मप्रभ भगवान की, सुपार्श्वनाथ भगवान की, चंद्रप्रभ भगवान की, सुविधिनाथ भगवान की, शीतलनाथ भगवान की, श्रेयांस नाथ भगवान की, वासुपूज्य भगवान की, विमलनाथ भगवान की, अनंतनाथ भगवान की, धर्मप्रवर्तक धर्मनाथ जिनेन्द्र की, तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदों के धारी शांतिनाथ भगवान की, मोक्ष वधू में रमण करने वाले कुंथुनाथ भगवान की और अरनाथ भगवान की, कर्मों को चूर्ण करने वाले मल्लिनाथ भगवान की, मुनिसुव्रत नाथ भगवान की, नमिनाथ जिनेश की, यादव कुल के तिलक नेमिनाथ जिनेन्द्र की, पार्श्वप्रभु की और श्रेष्ठ वीर भगवान की मैं वंदना करता हूँ। ये सभी तीर्थंकर हैं। मनुष्य क्षेत्र अर्थात् ढाई द्वीप में विहार करने वाले श्रीमंदर आदि जिन-भगवंत हैं जो कि हजारों सूर्य और चन्द्रमाओं से अधिक प्रकाशमान हैं।ये सभी भगवान मुझे समाधि देवें और बोधि (अर्थात् रत्नत्रय) का श्रेष्ठ लाभ देवें। ॥७-८-९-१०॥

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमित-विद्-विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते॥११॥

जिनके ज्ञान में तीन लोक के समस्त पदार्थ गोखुर के समान झलकते हैं, जिनके चरणों में शत्रु भी झुक जाते हैं ऐसे बाह्य और अन्तरंग लक्ष्मी से

सहित वर्धमान जिन के लिए नमस्कार हो॥११॥

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि॥१२॥

तप सिद्ध, नय सिद्ध, संयम सिद्ध, चरित्र सिद्ध, ज्ञान और दर्शन से सिद्ध पद को प्राप्त हुए सभी सिद्धों को मैं शिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ॥१२॥

(आलोचना)

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति-काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म- विप्प-मुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद- वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं॥

हे भगवन्! मैंने सिद्ध भक्ति का कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र से युक्त, आठ प्रकार के कर्मों से रहित, आठ गुणों से सम्पन्न,ऊर्ध्व लोक के मस्तक पर विराजमान, तप सिद्ध, नय सिद्ध, संयम सिद्ध, चारित्र सिद्ध, भूत-भविष्यत-वर्तमान काल त्रय सिद्ध, सभी सिद्धों की मैं सदा अर्चना, पूजा, वंदना और नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो और जिनेन्द्र भगवान के गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

इच्छामि भंते ! देवसियं (राइयं) आलोचेउं तत्थ-

हे भगवन्! मैं देवसिक (रात्रिक) दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। उसमें

पंच य अणुव्वयाइं जलगालणं रायभत्तविरदी य।
जिणदंसणं विजाण पक्खियभव्वस्स अट्ठगुणं ॥१३॥

पाँच अणुव्रत, जल छानना, रात्रि भोजन त्याग और जिन दर्शन ये पाक्षिक श्रावक के आठ मूल गुण जानो॥१३॥

महुमंसमज्जजूआ-परइत्थी वेस्सारमणगमणंपि।

आखेडं सत्तवसणं जावज्जीवं विवज्जेमि ॥१४॥

मधु, मांस, मदिरा, जुआ, परस्त्रीगमण, वेश्यागमन, और शिकार ये सात व्यसन जीवन पर्यन्त के लिए छोड़ देता हूँ॥१४॥

(प्रतिक्रमण पीठिका)

अथसर्वातिचार-विशुध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण- क्रियायां कृतदोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म- क्षयार्थं, भाव-पूजा-वंदना-स्तव-समेतं श्रीप्रतिक्रमण-भक्ति- कायोत्सर्गं करोम्यहम्॥

अब सभी दोषों की विशुद्धि के लिए दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण की क्रिया में किये हुए दोषों को दूर करने के लिए पूर्व आचार्यों के क्रम से समस्त कर्मों के क्षय के लिए भावपूजा, वन्दना, स्तुति सहित मैं प्रतिक्रमण भक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ।

(अत्र नववारं णमोकारमन्त्रं पठेत्)

(यहाँ पर नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

णमो जिणाणं ! णमो जिणाणं! णमो जिणाणं! परमेस! वीदराय! जिण! देवाहिदेव! सव्वण्हू! णीराय! णिद्दोस! तित्थयर! पंचकल्लाणपुज्जापत्त! गुणरयण! सीलसायर! वड्ढमाण! णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे!

जिनेन्द्र देव को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो! हे परम ईश्वर! हे वीतराग! हे जिन! हे देवाधिदेव! हे सर्वज्ञ! हे नीराग! हे निर्दोष! हे तीर्थंकर! हे पंच कल्याण की पूजा को प्राप्त! हे गुण रत्न! हे शील सागर! हे वर्धमान! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो॥

मम मंगलं-अरहंता य, सिद्धा य, आइरिया य, उवज्झाया य, साहवो य, उसहादिगणहरा य, गोयमसुहम्मजम्बूतिण्णि- अणुबद्ध-केवलिणो य, विण्णु-णंदि-अवराजिय-गोवद्धण- भद्दबाहु-पंच सुदकेवलिणो य, अंगपुव्वहरा य, परंपरा आइरिया य, जिणिंदतित्थं, जिणिंद पव्वयणं सव्वइड्ढिसंपण्णमहरिसी य।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुगण, वृषभ आदि गणधर परमेष्ठी, गौतम, सुधर्म, जम्बू स्वामी ये तीनों अनुबद्ध केवली, विष्णु,

नंदि, अपराजित, गोवर्धन, भद्रबाहु ये पाँच श्रुत केवली, अंग पूर्वो के धारक, परम्परा आचार्य, जिनेन्द्र भगवान का तीर्थ, जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन, सभी ऋद्धियों से सम्पन्न महर्षि ये सब मेरे लिये मंगल दायक हों।

उड्ढ-मह-तिरिय-लोए सिद्धायदणाणि णमस्सामि, अट्ठावयपव्वये सम्मेदे, उज्जंते, चंपाए, पावाए, सिद्धवरकूडे, बडवाणीए, ऊणे, मुत्तागिरीए कुंडलपुरे, तारंगाए, मदुराए, सत्तुंजए, कुंथगिरिसिहरे, दोणगिरिसिहरे, कोडिसिलाए सिद्धणिसीहियाओ इसिपब्भारतलगदाणं सिद्धाणं सिद्धभूमीओ किट्टिमा-किट्टिमाणि जिणायदणाणि चेइयरुक्खचेइयाणि मम पवित्त-मंगलभूदाणि एदाणि अहिवंदिऊण अंजलि मत्थयम्मि काऊण तिविहं णमस्सामि।

ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक के सिद्धायतनों को नमस्कार हो। अष्टापद पर्वत, सम्मेद-शिखर, ऊर्जयन्त पर्वत, चंपापुरी, पावापुरी, सिद्धवरकूट, बड़वानी, ऊन, मुक्तागिरि, स्वर्णगिरि, कुंडलपुर, तारंगा, मथुरा, शत्रुजय, कुंथगिरि शिखर, द्रोणगिरि पर्वत, कोटि शिला इत्यादि स्थानों में जो कोई सिद्धों की निषिद्धिका स्थान हैं, ईषत् प्राग्भार मोक्षशिला पर स्थित सिद्धों की जो सिद्धभूमि हैं, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनायतन हैं, चैत्यवृक्ष और चैत्य हैं ये सब मेरे लिये पवित्र और मंगल स्वरूप हैं। इनको मैं नमस्कार करके मस्तक पर अंजुली रखकर मन वचन काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ।

पडिक्कमामि भंते! पढमे मूलगुणे थूलयडे हिंसाविरदिवदे- गिहसोहणे, मुत्तवच्चो-गिहसोहणे, विपणि-सोहणे, वाहणेण गमणे, हिंसवत्थुभेषज-वावारणिमित्ते, तिक्खखारेण वत्थपक्खालणे, कुप्पभंड-धोवणे, ण्हाणे वत्थुपक्खेवे, कवाडस्स उग्घाडे पिधाणे य, भुविभारघस्सणे, इंधणपज्जालणे, विरोही हिंसाए, आरंभी हिंसाए, उद्योगी हिंसाए, गब्भघादे, अप्पघाद-परिणामे, परघाद-परिणामे णाणेण अण्णाणेण वा जं मए देवसिए (रत्तीए) मणसा वचसा काएण कदकारिदाणुमोणेण पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! मैं प्रथम स्थूलअहिंसा मूल गुण व्रत में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। घर की साफ-सफाई में, मूत्रालय और शौचालय की सफाई में, दुकान की सफाई में, वाहन से गमन करने में, हिंसक

वस्तु और दवा के व्यापार के निमित्तों में, तीक्ष्ण क्षार अर्थात् सोड़ा, डिटरजेन्ट आदि से वस्त्र धोने में, धातु, पात्र आदि धोने में, स्नान करने में, वस्तु को फेंकने में, दरवाजों को खोलने बन्द करने में, पृथ्वी पर भारी वस्तु घसीटने में, ईंधन जलाने में, विरोधी हिंसा में, आरंभी हिंसा में, उद्योगी हिंसा में, गर्भस्थ का घात होने में, आत्महत्या के परिणाम में, पर-घात के परिणाम में ज्ञान से, अज्ञान से दिवस में (रात्रि में) मेरे द्वारा मन वचन काय से कृत, कारित, अनुमोदन से जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! विदिए थूलयडे असच्चविरदिमूलगुणे- मिच्छोवदेसे अणादरवयणे, वंचणावयणे, रहो अब्भक्खाणे, णिंदावयणे, पेसुण्णवयणे, अणत्थभासणे, वेरकरणवयणे, भेदकरणवयणे, विकहाए, अप्पपसंसण-दाए, पर-परिवादणाए जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! स्थूल असत्य विरति नामक दूसरे मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मिथ्या उपदेश देने में, अनादर के वचन बोलने में, दूसरों को ठगने वाले वचनों में, एकान्त का रहस्य प्रकट करने में, निंदा करने में, चुगली करने में, अनर्थ बोलने में, वैर बढ़ाने वाले वचनों में, फूट डालने वाले वचन बोलने में, विकथा करने में, आत्म प्रशंसा करने में, दूसरों को परिताप पहुँचाने वाले वचनों में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप-कर्म अर्जित किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे।

पडिक्कमामि भंते ! तिदिए थूलयडे थेण विरदिमूलगुणे- पडिदग्गहणे, थेणहरियादाणे, विज्जुथेडे, भूजलथेडे, करादाणे, राजणियमोल्लंघणे, सदरिसवत्थुमिस्सणे, हीणाधियमाणोम्माणे जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! स्थूल अचौर्य अणुव्रत नामक तीसरे मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ-किसी की पड़ी हुई वस्तु को ग्रहण करने में चोरी करके लायी गयी वस्तु के ग्रहण में, बिजली की चोरी में, जमीन और जल की चोरी में, टैक्स नहीं देने में, राजकीय (शासकीय) नियमों का उल्लंघन करने में, सदृश वस्तु को मिलाकर देने में, ज्यादा खरीदने और

कम करके बेचने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया है, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

पडिक्कमामि भंते! चउत्थे थूलयडे अबंभविरदिमूलगुणे कामवड्ढणरससेवणे, कामवड्ढणतेलमद्दणे, कामवड्ढण- गीदसवणे, कामवड्ढणगंधाणुलेवणे, कामवड्ढणचित्तरूवाणु- पेक्खणे जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकमं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! अब्रह्म से विरति नामक चौथे स्थूल मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। काम वर्धक रसों के सेवन में, काम वर्द्धक तेल मर्दन में, काम वर्धक गीत सुनने में, काम वर्धक सुगन्धित इत्र आदि लगाने में, काम वर्धक चित्रों और रूप को देखने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मिथ्या हो॥४॥

पडिक्कमामि भंते ! पंचमे थूलयडे परिग्गहविरदिमूलगुणे-असीम परिग्गहस्स असीमाए, सीमा-अइक्कमणाए, अइवाहण- लालसाए, अहिय-वत्थु-वात्थु-वत्थ-संगहणे, परपरिग्गह-विम्मये, अंतो-अंतो अइ-लोलुवदाए, णिक्खिविदस्स अपरिमज्जणे, दुप्पओगे य जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! अपरिग्रह नामक पाँचवे स्थूल मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। अपार परिग्रह की सीमा न बनाने में, जो सीमा बनायी उसका अतिक्रमण करने में, अति वाहन संग्रह की लालसा में, अत्यधिक वस्तुएं, मकान-जायदाद आदि, वस्त्र के संग्रह में, दूसरे के परिग्रह को देखकर विस्मय करने में, भीतर ही भीतर मन में परिग्रह के प्रति अति लोलुपता में, जो परिग्रह कहीं रखा है उसका परिमार्जन (देख-भाल) न करने में, जो परिग्रह है उसका दुरुपयोग करने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कर्म मेरा मिथ्या होवे॥५॥

पडिक्कमामि भंते ! जलगालणमूलगुणे- खीणपुराणवत्थेण जलगालणे, जीवाणं अण्णत्थक्खेवणे, उवरिमेण जलपादणे, बहुजलोच्छालणे, सीदपेयपाणे, अणच्छाणजलपाणे जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! जलगालन मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। फटे-पुराने वस्त्र से जल छानने में, जीवानी को अन्यत्र डालने में, ऊपर से जल गिराने में, बहुत जल को उछालने में, शीतल जल (पेप्सी आदि कोल्ड ड्रिंक)पीने में, अनछने जल को पीने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे॥६॥

पडिक्कमामि भंते। रायभत्तविरदि-मूलगुणे-अत्थंगदे दिवसे भुंजिदे, अणुदये दिणयरे भुंजिदे, रत्तिणिम्मिदस्स दिवा-भोयणे, सुमणिंदियाए भोयणे भोगकरणे वा, सयं रत्तीए भुत्ते अण्णं रत्तिं भुंजाविदे, जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! रात्रि भोजन त्याग मूल गुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। दिन अस्त होने पर भोजन करने में, दिन उदय होने से पहले भोजन करने में, रात्रि में बनाया भोजन दिन में करने में, स्वप्न में भोजन करने में अथवा भोग करने में, स्वयं रात्रि में भोजन करने में, अन्य किसी को रात्रि में भोजन कराने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे॥७॥

पडिक्कमामि भंते! जिणदंसणमूलगुणे-मंदिरे कलहकरणे, मंदिरस्स आसादणे, चेइय-अवमाणे, दत्तदव्वग्गहणे, रायदोसजुद- देवदा आराहणे, जिणदेसणावसरे परोप्परं आलावे, पुत्तगेहवावार – विवाहा-इलोहेण आराहणे, णिग्गंथ- लिंगाणादरे जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! जिन दर्शन मूल गुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मंदिर में कलह करने में, मंदिर की आसादना में, चैत्यबिम्ब की अवमानना में, दान दिये द्रव्य का ग्रहण करने में, राग, द्वेष से युक्त देवताओं की आराधना में, जिन देशना के समय आपस में बातचीत करने में, पुत्र, घर, व्यापार, विवाह आदि के लोभ से आराधना करने में, निर्ग्रन्थ लिंग का अनादर करने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे॥८॥

पडिक्कमामि भंते! महुवसणपरिच्चागे - महुमयभेसजसेवणे, महुछत्तविराहणे, अइगिद्धीए भुंजणे, अइमत्तभोजणे, जीवसंसिदभोयणे जं

मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! मधु व्यसन के परित्याग में जो दोष लगा हो मैं उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। शहद वाली औषधि के सेवन में, मधुमक्खी के छत्ते की विराधना में, अति गृद्धता से भोजन करने में, अति मात्रा में भोजन करने में, जीवों से मिले हुए भोजन करने में जो मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में पाप कर्म किया गया, वह मेरा दुष्कर्म मिथ्या होवे॥९॥

पडिक्कमामि भंते ! मंसवसणपरिच्चागे-पंचुंबर-सेवणे, अभक्खसेवणे, अजाणफलभुंजणे, पणकीदमिट्ठाणखादणे, अमज्जिदाण्ण-उवक्कार सेवणे, चार-राग-खाण्डक - भुंजणे, चीणदेसीय-विंजण-सेवणे, बेरोटिका-सेविका-कुरकुरा- पहुडि-पणवत्थुसेवणे, बिदल-खादणे जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! मांस व्यसन परित्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। पाँच उदुम्बर फल (बड़, पीपल, पाकर, ऊमर, कठूमर) के सेवन में, अभक्ष्य भक्षण में, अज्ञात फल को खाने में, दुकान से खरीदी मिठाई खाने में, अमर्यादित अन्न और मसालों के सेवन में, अचार-मुरब्बा खाने में, चीन देश के व्यंजन(चाइनीज फूड, फास्ट फूड) खाने में, डबल रोटी, सेव, कुरकुरा आदि बाजार की पैकेट बन्द पदार्थों के खाने में, द्विदल खाने में, मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कर्म मेरा मिथ्या हो॥१०॥

पडिक्कमामि भंते ! मज्जवसण-परिच्चागे- अमज्जिदजल-सेवणे, णिद्दाभेसज-सेवणे, चाय-कहवापाणे, देसीय- विदेसीयमज्ज-सेवणे, मज्जावावाराणु-मोदणकरणे, महुआवावारे, धूमपाणे, गुटखाचव्वणे जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! मदिरा व्यसन त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। अमर्यादित जल (बिसलरी) का सेवन करने में, नींद की गोली खाने में, चाय, कॉफी पीने में, देशी-विदेशी मदिरा सेवन में, मदिरा व्यापार अनुमोदन और स्वयं करने में, महुआ व्यापार में, धूम्रपान में, गुटखा (पान पराग आदि पाउच) चबाने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे॥११॥

पडिक्कमामि भंते ! जुआवसणपरिच्चागे-जुआकीडाए, सपथेण धणज्जणे, सट्टावावारे, विभागीयवावारे, उवदाग्गहणे, संगरेण कंदुगदंडपसुकीडा-वलोयणे जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! जुआ व्यसन त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। जुआ खेलने में, शर्त लगाकर धन कमाने में, सट्टा (लॉटरी) व्यापार में, शेयर बाजार में, घूस (रिश्वत) ग्रहण करने में, शर्त लगा के क्रिकेट खेल और पशु-क्रीड़ा देखने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कर्म मेरा मिथ्या होवे॥१२॥

पडिक्कमामि भंते ! परइत्थीरमणवसण-परिच्चागे-परइत्थीए (पुरुसेण) सम्बंधेच्छाए, रूवचिंतणे, सहसंवासे, गमणा- गमणे, अणंगकीडाए, कुक्कुच्चियाए, परइत्थी-पलोहणे, काम- भोग-चिंताए जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! परस्त्री रमण व्यसन के त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। परस्त्री (पुरुष) के साथ सम्बन्ध की इच्छा में, पर स्त्री (पुरुष) का रूप चिंतन में, पर स्त्री (पुरुष) के साथ रहने में, उसके साथ गमनागमन में, उससे अनंग क्रीड़ा में, कौत्कुच्य में, उसको प्रलोभन देने में, काम-भोग की चिंता में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, मेरा वह दुष्कृत्यस मिथ्या होवे॥१३॥

पडिक्कमामि भंते ! वेस्सागमण वसण परिच्चागे- तद्दारपेक्खणे, तक्कहो-वण्णासस्स पढणे पाढणे सवणे य, चलचित्तपडे तक्कीडादंसणे, सामिगाए अस्सामिगाए वा सह परिचयेच्छाए जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! वेश्यागमन व्यसन के त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। वेश्या का घर देखने में, उसकी कथा-उपन्यास पढ़ने, पढ़ाने या सुनने में, सिनेमा गृह में उसकी चेष्टाएं देखने में, जिसका कोई स्वामी हो या न हो उसके साथ परिचय की इच्छा में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप-कर्म किया गया, वह मेरा दुष्कर्म मिथ्या होवे॥१४॥

पडिक्कमामि भंते! आखेडवसणपरिच्चागे-दण्डेण, भालाए, वाणेण, गुलेलेण वा भूदघादिदे, घादं काऊण तच्चम्मेण गिहसोहाए, रोमजवत्थोवओगे,

कोसेयवत्थे, चम्मकटिबंध- हत्थसूदादिप्पओगे जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! शिकार व्यसन के त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। डंडे से, भाला से, बाण से, गुलेल से जीव घात करने में घात करके उसकी खाल से गृह शोभा बढ़ाने में, ऊन के वस्त्रों के उपयोग में, रेशमी वस्त्रों के उपयोग में, चमड़े की बेल्ट, पर्स आदि के उपयोग में दिवस (रात्रि) में मेरे द्वारा जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कर्म मेरा मिथ्या हो॥१५॥

इच्छामि भंते! इमं णिग्गंथं णिव्वाणमग्गं, सव्वदुक्खाणमंतकरं, समदायरं, तिलोगजेट्ठं दाणव-देवदा-णरपवर-महियं, तित्थयर-चक्कवट्टिबलदेवादि-महापुरिसाण-सेविदं, अणुत्तरं, णिस्सल्लं, अज्झप्पमूलं, वेरग्गभरं, अप्पसोक्खकरं एदम्हादो उवरि अण्णं णत्थि तं रोचेमि, तं सद्दहामि, तं वंछामि, एदेण मज्झ जीवयं अवि सफलं होदु।

हे भगवन्! मैं इस निर्ग्रन्थ रूप की इच्छा करता हूँ। यह रूप निर्वाण का मार्ग है, सभी दुःखों का अन्त करने वाला है, समता का निधान है, तीन लोक में ज्येष्ठ है, दानव, देवता और श्रेष्ठ मनुष्यों से पूजित है, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि महापुरुषों से सेवित है, अनुत्तर है, निःशल्य है, अध्यात्म का मूल कारण है, वैराग्य का भार लिये है, आत्मा को सुख देने वाला है, इससे बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है, मैं इसी की रुचि करता हूँ, इसी का श्रद्धान करता हूँ, इसी की वांछा करता हूँ। इस रूप के धारण से मेरा जीवन भी सफल होवे॥

पंच य अणुव्वयाइं, जलगालणं रायभत्तविरदी य।
जिणदंसणं विजाण, पक्खियभव्वस्स अट्ठगुणं ॥

पाँच अणुव्रत, जल गालण, रात्रि भुक्ति त्याग और जिन दर्शन पाक्षिक श्रावक के आठ मूल गुण जानो।

महुमंसमज्जजूआ, परइत्थीवेस्सारमणगमणं पि।
आखेडं सत्तवसणं जावज्जीवं विवज्जेमि॥

मधु, माँस, मदिरा, जुआ, परस्त्री रमण, वेश्या गमन और शिकार इन सात व्यसनों को जीवन पर्यन्त के लिये छोड़ता हूँ।

अथ सर्वदोष-विशुध्यर्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण
सकलकर्म-क्षयार्थं वीरभक्तिं करोम्यहम्-

(अष्टादशवारं णमोकारमंत्रं पठेत्)

अब सभी दोषों की विशुद्धि के लिये पूर्वाचार्य के अनुक्रम से सकल कर्मों के क्षय के लिये मैं वीर भक्ति करता हूँ।

(यहाँ अठारह बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

वीर : प्रसिद्धो जगतीह कीर्त्या , वीरं मनन्तु स्वहिताय भव्या।
वीरेण सूक्तं शिववर्त्म शुद्धं, वीराय तस्मै प्रणमोऽस्तु नित्यम्॥१॥
वीरात्प्रवृत्तं हितकारि तीर्थं, वीरस्य पादे समतैकसौख्यम् ।
वीरे हितं भव्यजनात्मनां वै, हे वीर! धन्योऽस्मि नुतौ प्रवृत्तः॥२॥

इस लोक में वीर भगवान अपनी कीर्ति से प्रसिद्ध हैं। अपने हित के लिये भव्य जीवो! वीर भगवान की पूजा करो। वीर भगवान ने जो मोक्ष का मार्ग बताया है वह शुद्ध है ऐसे वीर भगवान के लिए नित्य मेरा नमस्कार हो। वीर भगवान से ही सभी के लिए हितकारी तीर्थ की प्रवृत्ति हुई है। वीर भगवान के चरणों में ही समता का एक मात्र सुख है। भव्य जनों की आत्मा का हित वीर भगवान में ही है। हे वीर भगवन्! आपके नमस्कार में प्रवृत्त हुआ मैं धन्य हो गया हूँ।

भक्त्या तु ये वीरपदौ नमन्ति चित्तेऽपि पूतस्मृतिमावहन्ति ।
ते सर्वकार्ये सफला भवन्ति संसारसिन्धुञ्च समुत्तरन्ति ॥३॥

जो जीव भक्ति पूर्वक वीर भगवान के चरणों में नमन करते हैं, और अपने चित्त में भी उनकी पवित्र स्मृति को धारण करते हैं, वे सभी कार्यों में सफल होते हैं और संसार समुद्र को तैर जाते हैं॥

धम्मो मंगल-मुदिट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥४॥

धर्म मंगल कहा गया है। वह धर्म अहिंसा, संयम और तप है। जिसका मन सदा धर्म में रहता है, देवता भी उसको नमस्कार करते हैं॥

इच्छामि भंते ! पडिक्कमादिचारमालोचेउं णिस्संकियणिक्कंखिय-णिव्विदिगिंछ-अमूढदिट्ठी-उवगूहण- ट्ठिदकरण-वच्छलत्त-धम्मपहावणासु अट्गुणेसु छसु अणायदणेसु तिसु मूढतासु अट्ठसु मदेसु सव्वदोसं

पडिक्कमामि। सम्मदंसण-सम्मणाण-सव्वाइयारं पडिविरदोमि आहार-सण्णाए, भए-सण्णाए, मेहुण-सण्णाए, परिग्गहसण्णाए, अट्टज्झाणे, रुद्दज्झाणे, मिच्छादंसण-सल्लाए, माया-सल्लाए, णिदाण-सल्लाए, कोहकसाए, माण-कसाए, माया-कसाए, लोह-कसाए, किण्हलेस्स-परिणामे, णीललेस्स-परिणामे, काउलेस्स परिणामे, इत्थि कहाए, भत्तकहाए, राजकहाए, चोरकहाए, दुच्चिंतियाए, इत्थं दुप्परिणाम-पउत्तीए जं मए देवसिए (रत्तीए) पावकम्मं कदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण के अतिचारों की आलोचना करता हूँ। निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और धर्म प्रभावना इन आठ गुणों में, छह अनायतनों में, तीन मूढ़ताओं में, आठ मदों के करने में लगे सभी दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के सभी अतिचारों से मैं दूर होता हूँ। आहार संज्ञा में, भय संज्ञा में, मैथुन संज्ञा में, परिग्रह संज्ञा में, आर्त्त ध्यान में, रौद्र ध्यान में, मिथ्यादर्शन शल्य में, माया शल्य में, निदान शल्य में, क्रोध कषाय में, मान कषाय में, माया कषाय में, लोभ कषाय में, कृष्ण-लेश्या के परिणाम में, नील लेश्या के परिणाम में, कापोत लेश्या के परिणाम में, स्त्री कथा में, भोजन कथा में, राज कथा में, दुश्चिंतन में इस प्रकार दुष्परिणाम की प्रवृति से मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे।

अथ सर्वदोषविशुध्यर्थं चतुर्विंशतितीर्थंकर-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्

(नववारं णमोकारमंत्र पठेत्)

अब सभी दोषों की विशुद्धि के लिये मैं चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति करता हूँ। (यहाँ नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

वृषभं वृषभाराढ्यं-मजितं जितबन्धनम् ।
सम्भवं भवहर्तारं नंदनं गुणनंदनम् ॥ १ ॥
सुमतिं मतिदातारं पद्मं पद्मप्रभालयम् ।
सुपार्श्वं पार्श्वशोभांकं चन्द्रं चन्द्रप्रभाधिकम् ॥२॥
पुष्पदन्तं तु दान्ताक्षं शीतलं सौख्यभूतलम् ।
श्रेयसं सौख्यकर्तारं वासुपूज्यं सुपूजितम् ॥३॥
विमलं निर्मलात्मान-मनन्तज्ञान्तकान्तकम् ।

धर्मं धर्मध्वजे वायुं शान्तिं शान्तिनिकेतनम् ॥४॥
कुंथुं कुन्थ्वादिभर्त्तार-मरं मारमुरारिरम् ।
मल्लिं कर्माष्टके मल्लं सुव्रतं मुनिसुव्रतम् ॥ ५ ॥
नमिं नौमि मुनीशेष्ट-मरिष्टनेमि-मीष्टदम् ।
पार्श्वनाथं प्रजानाथं वर्धमानं स्ववर्धनम् ॥६॥

धर्म के भार से भरे हुए वृषभनाथ भगवान हैं, जिन्होंने सभी बन्धनों को जीत लिया है वह अजितनाथ भगवान हैं, संसार का विनाश करने वाले सम्भव नाथ भगवान हैं, गुणों को बढ़ाने वाले अभिनंदननाथ हैं, बुद्धि को देने वाले सुमतिनाथ हैं, कमल की आभा के निलय पद्मप्रभु देव हैं, जिनके दोनों पार्श्व भाग शोभा के स्थान हैं वे सुपार्श्वनाथ हैं, चन्द्रमा की कान्ति से भी अधिक आभा वाले चन्द्रप्रभु भगवान हैं, इन्द्रियों का दमन करने वाले पुष्पदन्त भगवान हैं, समस्त पृथ्वी को सुखभूत शीतलनाथ हैं, सुख के कर्ता श्रेयांसनाथ हैं, सभी से पूजित वासुपूज्य भगवान हैं, समस्त कर्ममल से रहित निर्मल आत्मा वाले विमलनाथ हैं, मृत्यु का अन्त करने वाले अनन्तनाथ हैं, धर्म रूपी ध्वजा को फहराने के लिये वायु के समान धर्मनाथ हैं, शान्ति के आलय शान्तिनाथ हैं, कुन्थु आदि जीवों के पालनहारे कुन्थुनाथ भगवान हैं, काम रूपी राक्षस के लिये शत्रु को देने वाले अरनाथ हैं, अष्टकर्म के लिये मल्ल स्वरूप मल्लिनाथ हैं, श्रेष्ठ व्रतों के धारक मुनिसुव्रतनाथ हैं, मुनीश्वरों के इष्ट नमिनाथ हैं, इष्ट वस्तु को देने वाले नेमिनाथ हैं, प्रजा के नाथ पार्श्वनाथ हैं और अपने आत्मीय जनों को बढ़ाने वाले वर्धमान स्वामी हैं इन सभी को मैं नमस्कार करता हूँ।

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाणपत्ताणं, अट्ठमहा-पाडिहेर- सहियाणं, चउतीसातिसय-विसेस संजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहियाणं बलदेववासुदेव - चक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं थुइसयसहस्स-णिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइ-गमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

हे भगवन्! मैंने चौबीस तीर्थंकरों की भक्ति का कायोत्सर्ग किया,

उसकी आलोचना करता हूँ। पञ्च महा कल्याणकों को प्राप्त, अष्ट महा प्रातिहार्य से सुशोभित, चउतीस विशेष अतिशयों से युक्त बत्तीस देवेन्द्रों के मस्तक पर लगे मुकुटों की मणियों से पूजित, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि, यति और अनगारों से घिरे हुए, लाखों स्तुतियों के आलय, ऋषभ आदि महावीर पर्यन्त मंगलमय महापुरुषों की हमेशा मैं अर्चना करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, मेरे कर्मों का क्षय हो, मुझे बोधि का लाभ हो, मेरा सुगति में गमन हो, मेरा समाधि मरण हो, जिनेन्द्र भगवान के गुणों की प्राप्ति मुझे प्राप्त हो॥

अथ सर्वपापकर्म विशुध्यर्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं श्री सिद्धभक्ति-श्री प्रतिक्रमण भक्ति - श्री वीरभक्ति -श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्तिः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुध्यर्थं समाधिभक्ति- कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अब सभी पाप कर्मों की विशुद्धि के लिये पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सभी कर्मों के क्षय के लिये श्री सिद्धभक्ति, श्री प्रतिक्रमणभक्ति, श्री वीरभक्ति, श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति करके उसमें लगे हीनअधिक दोषों के निवारण के लिए मैं समाधि भक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ।

(नववारं णमोकार मन्त्रम्)

अथेष्ट प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।
शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः॥

(यहाँ नव बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

इष्ट प्रार्थना

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को मेरा नमस्कार हो। हे भगवन्! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न होवे तब तक भव-भव में शास्त्रों का पठन-मनन-चिंतन, जिन भगवान के चरणों में

नमन, सज्जनों की संगति, सच्चरित्रवानों के गुणों की कथा, पर दोष कहने में मौन, सब जीवों के साथ प्रिय व हितकर वचन और अपने आत्म स्वरूप की भावना इन सबकी मुझे प्राप्ति होवे।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः॥

मुझे जब तक मुक्ति प्राप्त न हो तब तक हे जिनेन्द्र! आपके दोनों चरणकमल मेरे हृदय में विराजमान रहें, मेरा हृदय आपके चरण कमलों में लीन रहे।

एवंविहपडिकमणं भावेण कुणदि जो हु सुद्धमई
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अजरामरट्ठाणं ॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमहु णाणदेव! य मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ॥

इस प्रकार प्रतिक्रमण को जो शुद्धि बुद्धि का धारक नियम से करता है वह सभी दुःखों से मुक्त हो अजर-अमर स्थान को प्राप्त करता है। हे कैवल्य ज्ञान मय देव! मेरे द्वारा जो भी अक्षर मात्रा पद-अर्थ में हीनाधिक कहा गया हो उसे क्षमा करें और मेरे दु:खों का क्षय करें।

इच्छामि भंते ! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय सरूव-परमप्पज्झाणलक्खण-समाहिभत्तीए णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं॥

हे भगवन्! मैंने समाधि भक्ति का कायोत्सर्ग किया, तत्संबंधी दोष की मैं आलोचना करता हूँ। मैं रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा का ध्यान लक्षण वाली समाधि भक्ति की मैं सदा अर्चना, पूजा, वन्दना और नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मेरा सुगति में गमन हो, समाधि मरण हो, मुझे जिनदेव के गुणों की प्राप्ति होवे।

(*) इति श्रीपाक्षिकश्रावकप्रतिक्रमणं शश्वत्सिद्धक्षेत्रे श्री सम्मेद-शिखरे पौष शुक्लैकस्यां बुध वासरे ९ जनवरी २००८ तमे दिनाङ्के वीरनिर्वाणस्य २५३४ तमे संवत्सरे समुल्लिखितम्॥

॥ इति दार्शनिक प्रतिक्रमण॥

श्री सिद्ध भक्ति

अथ (पौर्वाह्निक/अपराहिणक) आचार्य वन्दना क्रियायां पुर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म स्तव समेत श्री सिद्ध भक्ति कायोत्सर्ग कुर्वेहं

प्रतिष्ठापन-सिद्ध भक्ति करोम्यहम जाप्य।

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहु-मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तव-सिद्धे, णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे, चरित्त-सिद्धे य,
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि॥२॥

क्षायिक सम्यक्त्व, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाध सुख- ये आठ गुण सिद्धों के होते हैं॥१॥

तप-सिद्ध, नय-सिद्ध, संयम-सिद्ध, चरित्र-सिद्ध, ज्ञान-सिद्ध, दर्शन-सिद्ध, ऐसे सभी सिद्धों को नमस्कार करता हूँ॥२॥

इच्छामि भंते! सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्पदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठ-विहकम्म-विप्प-मुक्काणं,अट्ठ-गुण-संपण्णाणं, उड्ढ-लोए- मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम- सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं अतीताणागद-वट्टमाण कालत्तय सिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहि-लाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

अंचलिका

हे भगवन्! मैंने सिद्ध भक्ति करने के पश्चात् जो मैंने कायोत्सर्ग किया है उसमें लगे हुए दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो सिद्ध भगवान सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र सहित है, आठों कर्मों से रहित है, सम्यक्त्वादि आठ गुणों से शोभित है, जो ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर विराजमान हैं, जो तपश्चरण से सिद्ध हुए हैं, नयों से सिद्ध हैं, संयम से सिद्ध हुए है, चारित्र से सिद्ध हुए हैं, जो भूतकाल भविष्यकाल और वर्तमान काल तीनों कालों से सिद्ध हुए हैं, ऐसे सिद्धों की मैं पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, अर्चा करता हूँ और उन्हें नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का नाश हो, कर्मों का नाश हो, और मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, श्रेष्ठगति मिले, समाधिमरण प्राप्त हो और

भगवान जिनेन्द्र के गुणों की प्राप्ति हो।

श्री श्रुतभक्ति

अथ (पौर्वाह्णिक/अपराहिणक) आचार्य वन्दना क्रियायां पुर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म स्तव समेत श्री श्रुत भक्ति कायोत्सर्ग कुर्वेहं

कोटिशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाश-दष्टौ च सहस्र-संख्या, मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि॥१॥
अरहंत-भासि-यत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्ति-जुत्तो सुद-णाण-महोवहिं सिरसा॥२॥

एक सौ बारह करोड़, तैरासी लाख अट्ठावन हजार और पाँच पद प्रमाण इस श्रुतज्ञान को मैं नमस्कार करता हूँ।

-अरहंत भगवान द्वारा अर्थरूप से कहे गये और गणधरदेव द्वारा ग्रंथरूप से ग्रंथित किये गये श्रुतज्ञान रूप महासागर को भक्ति पूर्वक मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

इच्छामि भंते! सुदभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउंअंगो वंगपइण्णए पाहुढय परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग पुव्व-गय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्च- कालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खो बोहिलाहो सुगइ-गमणं समाहि-मरणं जिणगुण-सम्पत्ति होदु मज्झं।

अंचलिका

हे भगवन्! श्रुतभक्ति करने के पश्चात् जो मैंने कायोत्सर्ग किया है उसमें लगे हुए दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। श्रुतज्ञान के जो अंग, उपांग, प्रकीर्णक, प्राभृतक, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका, सूत्रार्थ, स्तुति और धर्मकथा आदि भेद हैं उन सबकी मैं सदा काल अर्चा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे समस्त दुःखों का नाश हो, समस्त कर्मों का नाश हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मिले, समाधि मरण हो, और जिनेन्द्र भगवान के अनंत गुणों की प्राप्ति हो।

श्री आचार्य भक्ति

अथ (पौर्वाह्निक/अपराहिणक) आचार्य वन्दना क्रियायां पुर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म स्तव समेत श्री आचार्य भक्ति कायोत्सर्ग कुर्वेहं

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो , नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः॥1॥
छत्तीस-गुण समग्गे, पंच-विहाचार-करण संदरिसे।
सिस्साणुग्गह-कुसले, धम्माइरिये सदा वंदे ॥2 ॥
गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरन्ति संसार-सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति॥3 ॥
ये नित्यं व्रत-मंत्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट्-कर्माभिरता-स्तपोधन-धनाः, साधु-क्रिया-साधवः॥4॥
शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणा श्चन्द्रार्क तेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वार-कपाट-पाटन भटाः प्रीणंतु मां साधवः॥5 ॥
गुरवः पातु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव - गम्भीरा , मोक्ष - मार्गोपदेशकाः॥6 ॥

जो श्रुतज्ञान के पारगामी हैं, स्वमत और परमत के विचार करने में कुशल हैं, सुचरित और तप के खजाने हैं और गुणों में महान् हैं- ऐसे गुरुओं को नमस्कार हो।

जो छत्तीस गुणों से पूर्ण हैं, पांच प्रकार के आचार के स्वयं पालने वाले हैं, तथा शिष्यों के द्वारा भी उसी आचरण का पालन कराने वाले हैं, शिष्यों के ऊपर अनुग्रह करने वाले हैं, ऐसे धर्माचार्य की मैं सदा वंदना करता हूँ।

गुरुभक्ति करने से शिष्य, घोर संसार सागर से पार हो जाते हैं। आठ कर्मों का नाश कर देते हैं और जन्म-मरण के दुःख को फिर कभी नहीं पाते।

जो प्रतिदिन व्रत, मंत्र रूपी होम में लगे रहते हैं, जो ध्यान रूपी अग्नि में हवन करने वाले हैं, आवश्यकादि षटक्रियाओं में लीन हैं, तपरूपी धन ही जिनका धन है, जो साधुओं की क्रियाओं को कराने में कारणभूत हैं, अठारह हजार शील रूपी वस्त्र ओढ़ते हैं, चौरासी लाख गुण ही जिनके पास

शस्त्र हैं, चन्द्र और सूर्य से भी जिनका तेज अधिक है, जो मोक्षद्वार के दरवाजे खोलने में सुभट हैं, (योद्धा की तरह हैं) ऐसे साधु मेरी रक्षा करें। जो ज्ञान और दर्शन के नायक हैं, चारित्ररूपी सागर के समान गंभीर हैं, और मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले हैं- ऐसे श्री गुरु/ आचार्य हमारी नित्य रक्षा करें।

इच्छामि भंते! आइरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुण-पालण-रयाणं सव्व साहूणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

अंचलिका

हे भगवन्! मैंने आचार्य भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग किया, उसमें लगे दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त पंचाचार का पालन करने वाले आचार्यों की, आचारांग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्यायों की, रत्नत्रय गुण को पालन करने वाले समस्त साधुओं की सदा अर्चना करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, उन्हें नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का नाश हो, कर्मों का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मिले, समाधिमरण हो, और भगवान जिनेन्द्र के गुणों की प्राप्ति हो।

दुर्लभ गुरु मुख से वचन, दुर्लभ गुरु मुस्कान।
दुर्लभ गुरु आशीष है, दुर्लभ गुरु से ज्ञान॥
दुर्लभ से दुर्लभ रहा, गुरु गरिमा गुण गान।
गुरु आज्ञा पूरण पले, दुर्लभतम यह जान॥

व्रती श्रावक प्रतिक्रमण (हिंन्दी)

जीव में प्रमाद जनित अनेक दोष पाये जाते हैं। वे दोष प्रतिक्रमण करने से क्षय को प्राप्त होते हैं। इसलिये अनेक भवों में संचित हुए विचित्र कर्मरूप दोषों की विशुद्धि के लिए गृहस्थों को समझने के लिये मैं प्रतिक्रमण को कहूँगा।

हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्रदेव अत्यंत पापी, दुरात्मा, मुर्खबुद्धि, मायावी, लोभी, रागद्वेष से मलिन मेरे मन ने जो दुष्कर्म उपार्जन किया है उसका सतत् में निरंतर समीचीन मार्ग से / चलने का इच्छुक मैं आप दुष्कृत्यों की निंदा करता हुआ त्याग करता हूँ।

सब जीवों को मैं क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें, सब जीवों में मेरा मैत्री भाव है, मेरा किसी के भी साथ बैरभाव नहीं है।

राग - इष्ट प्राप्ति में होने वाले परिणाम। द्वेष-अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग जनित परिणाम, दीनता- विषय प्राप्ति के परिणाम, हर्ष-मदोन्मत्तत्ता अर्थात् अभिमान से उत्पन्न परिणाम, भयइहलोक-परलोक सम्बन्धी भय, शोक- इष्ट वियोग जनित परिणाम, रति- पर वस्तु की आकांक्षा रूप मनोविकार, अरति- परवस्तु की अनाकांक्षा रूप परिणाम, इनका परित्याग करता हूँ।

हाय! हाय! मैंने दुष्टकर्म किये, हाय! हाय! मैंने दुष्ट कर्मों का चिंतन किया और हाय! हाय! मैंने दुष्ट मर्मभेदी वचन कहे, अब मुझे अपने द्वारा किये कुत्सित कर्मों से बहुत पश्चाताप होता है, मेरा अन्तःकरण अत्यन्त क्लेशित हो रहा है।

अर्थात् मैं मन-वचन-काय से किये कुकृत कर्मों का पश्चाताप करता हूँ, भीतर ही भीतर खेद का अनुभव करता हूँ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से की गई किसी जीव की विराधना या प्राणपीड़ा का आत्मनिन्दा या गर्हापूर्वक (दोषों के चिन्तनपूर्वक ग्लानि का होना) मन, वचन, काय की शुद्धता से परित्याग करना पडिक्कमण अर्थात् प्रतिक्रमण है।

एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय,

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, और त्रसकायिक इन जीवों को स्वयं वियोग रूप मारण किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो। इन्हीं जीवों को परितापन अर्थात् संताप किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो। इन्हीं जीवों का विराधन अर्थात् पीड़ा दी हो, दुखी किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो तथा उपघात अर्थात् जीवों को एकदेश या सर्वदेश प्राणरहित किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो, निरर्थक हो।

१. दर्शन प्रतिमा २. व्रत प्रतिमा ३. सामायिक प्रतिमा ४. प्रोषध प्रतिमा ५. सचित्तत्याग प्रतिमा ६. रात्रिभक्तित्याग प्रतिमा ७. ब्रह्मचर्य प्रतिमा ८. आरंभत्याग प्रतिमा ९. परिग्रहत्याग प्रतिमा १०. अनुमतित्याग प्रतिमा और ११. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा ये नैष्टिक श्रावक की ११. प्रतिमा होती हैं।

इन यथाकथित प्रतिमाओं में प्रमाद से अतिचार, अनाचार रूप दोष लगे हों उसकी शुद्धि के लिये मैं उपस्थापना करता हूँ।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु इन पाँच परमेष्ठी की साक्षी से सम्यक्त्व, उत्तम व्रतों की दृढ़ता मुझे हो, मुझे हो, मुझे हो। अथ (रात्रिक) दैवसिक प्रतिक्रम में व्रतों में मन-वचन-काय से लगे सर्व अतिचारों की शुद्धि के लिये पूर्व आचार्यों के क्रम से आलोचना सिद्धभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ।

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोकवर्ती सर्व वीतरागी निरारंभी साधु परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

लोक में चार मंगल हैं-अरहंत जी, सिद्ध जी, "आचार्य, उपाध्याय साधु" अर्थात् साधुगण और केवली भगवान के द्वारा कहा गया अहिंसामयी धर्म मंगल है। लोक में अरहंत, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ही उत्तम है, तथा ये ही चारों शरण हैं।

जम्बूद्वीप, धातकीखंड और अर्द्धपुष्कर द्वीप इन ढाई द्वीपों में तथा

लवण और कालोदधि समुद्रों में, पाँच भरत, पाँच ऐरावत व पाँच विदेह १५ कर्मभूमियों में होने वाले जितने अरहंत आदि तीर्थप्रवर्तक तीर्थंकर, जिनदेव, जिनों में श्रेष्ठ तीर्थंकर केवली, सिद्ध, बुद्ध, मुक्तिप्राप्त सिद्ध, अन्तः कृतकेवली, धर्माचार्य, उपाध्याय, साधु, धर्मानुष्ठान करने धर्मनायक, उत्कृष्ट धर्मरूपी चतुरंग सेना के अधिपति देवाधिदेव अरहंत देव व ज्ञान दर्शन-चारित्र संबंधी मैं सदा कृतिकर्म करता हूँ।

हे भगवन्! मैं सामायिक काल पर्यन्त सब सावद्य योग का त्याग करता हूँ। जीवन पर्यन्त मन-वचन-काय से सावद्य योग का कृत-कारित अनुमोदना से त्याग करता हूँ। हे भगवन्! अपने व्रत में लगे अतिचारों की प्रतिक्रमण द्वारा निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जितने काल में अरहंत भगवन्तों की उपासना करता हूँ, उतने कालपर्यन्त पापकर्मों व दुष्चेष्टाओं का त्याग करता हूँ।

(इस प्रकार दण्डक पढ़ कर तीन आवर्त और एक शिरोन्नाति करके 9 बार णमोकर मंत्र, 27 श्वासोच्छ्वास में जपें, कायोत्सर्ग करें पश्चात् तीन आवर्त और एक शिरोनति करके चतुर्विंशति स्तव पढ़ें।)

चतुर्विंशति स्तव

मैं जिनेन्द्र, तीर्थंकर, केवली, अनन्तजिन, मनुष्यों में श्रेष्ठ लोक-पूज्य कर्ममल से रहित महान् आत्माओं की स्तुति करता हूँ।

लोक को प्रकाशित करने वाले, धर्मतीर्थ को करने वाले जिनदेव की मैं वन्दना करता हूँ। अरहंत परमेष्ठी, चौबीस भगवान् और केवली जिनों का कीर्तन करता हूँ।

मैं आदिनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ जिनों की वन्दना करता हूँ।

सुविधिनाथ (पुष्पदन्त), शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ और शान्तिनाथ भगवान की मैं वन्दना करता हूँ।

कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत जी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर (वर्धमान) जिनों की मैं वन्दना करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति किये गये चौबीस जिनेन्द्र, चौबीस तीर्थंकर जो

कर्ममल से रहित हैं तथा जन्म-जरा-मरण से रहित हैं, मुझ पर प्रसन्न हों।

कीर्तन, वंदन, पूजन किये गये ये लोक में उत्तम अरहंत, सिद्ध परमेष्ठी मुझे निर्मल केवलज्ञान का लाभ, बोधि/रत्नत्रय की प्राप्ति और समाधि अर्थात् ध्यान की सिद्धि प्रदान करें।

चन्द्रमा के समान निर्मल, सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान, सागर के समान गंभीर ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मेरे लिये सिद्धि को प्रदान करें।

(चतुर्विंशति स्तव समाप्त)

जिनके ज्ञान में तीन लोक के समस्त पदार्थ गोखुर (गाय के खुर) समान झलकते हैं, जिनके चरणों में उपसर्ग करने वाले शत्रु का सिर झुक गया है। ऐसे बाह्य समवशरण लक्ष्मी और अन्तरंग अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी के धारक श्री वर्धमान जिनके लिये नमस्कार हो।

तप सिद्ध, नय सिद्ध, संयम सिद्ध, चरित्र सिद्ध, ज्ञान और दर्शन से सिद्ध पद को प्राप्त हुए सभी सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार हो।

हे भगवन्! मैंने सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र से युक्त आठ प्रकार के कर्मों से रहित, सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से सम्पन्न ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर प्रतिष्ठित तपसिद्ध, नयसिद्ध, संयमसिद्ध, चारित्रसिद्ध भूत-भविष्यत्- वर्तमान काल त्रयकालसिद्ध सब सिद्धों की मैं सदा नित्यकाल/प्रतिसमय अर्चना करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिपूर्वक मरण हो और जिनेन्द्र गुण रूप सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

हे भगवन्! मैं (रात्रिक) दैवसिक सम्बन्धी दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ जैसे-

जो पाँच उदुम्बर फल- बड़फल, पीपलफल, कठूमर, पाकर और ऊमर सहित, सात व्यसन - १. जुआँ खेलना, २. मांस खाना, ३. सुरा यानि शराब पीना, ४.शिकार करना, ५. वेश्यागमन, ६. चोरी करना और ७. परस्त्री सेवन करना, इनका त्यागी है और सम्यक्त्व से विशुद्ध मति है जिसकी, वह प्रथम दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।(1)

सम्यक्त्व अर्थात् सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पर दृढ़ श्रद्धान करना

सम्यग्दर्शन है।

पाँच अणुव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), तीन गुणव्रत (दिशा परिणाम, अर्न्थदण्ड और भोगोपभोग परिणाम) और चार शिक्षाव्रत (सामायिक, देशव्रत, पौषद उपवास, अतिथि समविभाग)को पालन करना द्वितीय स्थान, व्रत प्रतिमा है।(2)

जिनवचन, जिनधर्म, जिन चैत्य, पाँच परमेष्ठी-अरहंत सिद्ध-आचार्य - उपाध्याय और साधु तथा जिन चैत्यालय इन नव देवताओं की प्रतिदिन तीनों कालों में वन्दना करना वह निश्चय से सामायिक प्रतिमा है। बाह्य अभ्यंतर शुद्धि को धारण कर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ मुख कर, एकांत निर्भय स्थान में १२ आवर्त को करता हुआ चार प्रमाण चारों दिशा में करें और स्थिर मन-वचन-काय से समतापूर्वक सामायिक करें।(3)

उत्तम, मध्यम और जघन्य तीन प्रकार से प्रोषध विधान कहा गया है। अपनी शक्ति के अनुसार एक माह में चार पर्वो (दो अष्टमी, दो चतुर्दशी) में करना चाहिये। यह चतुर्थ प्रतिमा है।(4)

सचित्त वस्तु, हरित अंकुर पत्र, प्रवाल, कंद, फल-बीज और अप्रासुक जलादि का सेवन नहीं करना सो पञ्चम प्रतिमा है।(5)

मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से नवकोटिपूर्वक मैथुन का दिन में त्याग करना सो वही गुणी श्रावक की छठवीं प्रतिमा है।(6)

मन, वचन, काय कृत, कारित अनुमोदना रूप नव कोटि से हमेशा के लिये स्त्री मात्र का त्याग तथा स्त्री-कथा आदि का भी नवकोटि से त्याग करना सो सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।(7)

जो कुछ भी थोड़ा या बहुत सम्पूर्ण गृहारंभ/घर सम्बन्धी आरंभ का सदा के लिये त्याग करना सो आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमा है।(8)

वस्त्र मात्र को छोड़कर शेष सभी परिग्रह का जो त्यागी है तथा उन वस्त्रों में भी जो मूर्छा को नहीं करता है। वह नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा का धारी श्रावक है।(9)

जो अपने या दूसरों के गृहकार्य संबंधी आरम्भ में पूछने पर या नहीं भी पूछने पर जो अनुमति नहीं करता है वह दसवीं अनुमति त्याग प्रतिमा का धारी श्रावक है।(10)

नवकोटि से शुद्ध, भिक्षा के आचरणपूर्वक दीनतारहित जो भोजन करता है वह, ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक है।(11)

ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा स्थान में श्रावक दो प्रकार के हैं प्रथम खंड वस्त्रधारक (चद्दर, लंगोटधारी) दूसरे कोपीन (लंगोट) मात्र परिग्रह धारक।

उत्कृष्ट श्रावक तप, व्रत, नियम, आवश्यकों का पालन करते हुए बारह अनुप्रेक्षा और धर्म्यध्यान में समय व्यतीत करते हैं। केशलोंच करते हैं, पिच्छि ग्रहण करते हैं तथा करपात्र अर्थात् हाथ में एक बार भोजन करते हैं।

*(क्षुल्लक कटोरा आदि में आहार करते हैं तथा ऐलक कर-पात्र में ही आहार करते हैं, क्षुल्लक केशलोंच करें या कैंची से बालों को निकाल सकते हैं पर ऐलक के लिए केशलोंच का ही विधान है)

हे भगवन्! इस प्रकार एक से ग्यारह प्रतिमा पर्यन्त मेरे व्रतों में रात्रि या दिन में जो कोई अतिचार या अनाचार लगा हो उस दोष की शुद्धि के लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिक्रमण करने वाले मेरा सम्यक्त्वपूर्वक मरण हो, समाधिकरण हो, पंडितमरण हो, पंडितमरण हो, वीरमरण हो, दुःखों का क्षय हो, बोधि/रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दंसण, वय सामाइय, पोसह, सचित्त- राइभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह अणुमणुमुद्दिट्ठ - देसविरदेय॥

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त त्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग, ये नैष्ठिक श्रावक की ग्यारह प्रतिमा होती हैं।

इन यथाकथित प्रतिमाओं में प्रमाद से, अतिचार, अनाचार रूप दोष लगे हों, उसकी शुद्धि के लिये में उपस्थापना करता हूँ। अरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु इन पाँच परमेष्ठी की साक्षी से सम्यक्त्व उत्तम व्रतों की दृढ़ता मुझे हो, मुझे हो, मुझे हो।अब (रात्रिक) दैवसिक प्रतिक्रमण में सर्व अतिचारों की विशुद्धि के निमित्त पूर्व आचार्यों के क्रम से मैं प्रतिक्रमण का कायोत्सर्ग करता हूँ।

(चत्तारि दण्डक पढ़कर नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करके जीविय मरणे स्तव पढ़ें)

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥१॥
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ २॥
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

जिनेन्द्रदेव को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, १७ प्रकार के निषिद्धिका स्थानों को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। चार घाति कर्म के क्षयकारक अरहंत, निःशेष कर्मक्षय कारक सिद्ध, केवलज्ञानी, ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म की रज से रहित, समताधारक, शुभमन, शुभध्यानधारी परीषह उपसर्गों के सहन में समर्थ, उपशम योग वाले, समभाव वाले अरहंतादि को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। माया-मिथ्या-निदान शल्य के नाशक, संसारी जीवों के शल्य नाशक, निर्भय, रागरहित, निर्दोष, निर्मोह, निर्मम, निष्परिग्रह, माया, मिथ्या-निदान शल्य रहित, मान, माया और झूठ का मर्दन करने वाले, हे तप प्रभावक! हे गुणों के स्वामी गुणरत्न! हे शीलसागर! हे अनन्त चतुष्टय धारक! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अरहंत, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवलज्ञानी, अवधि ज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी, चौदह पूर्व के ज्ञाता,श्रुत समूह से युक्त, बारह प्रकार का तप और तपस्वी, ८४ लाख गुण और गुणवान, ऋषिधारी मुनि, तीर्थ और तीर्थंकर, प्रवचन व प्रवचन के धारी, ज्ञान और ज्ञानी, सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि जीव, संयम और संयमी, विनय और विनयवान, ब्रह्मचर्यवास और ब्रह्मचारी, गुप्ति और गुप्ति के धारक, बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह त्याग और त्यागी, समिति और समिति के धारक, स्वसमय-परसमय के ज्ञाता, क्षमा और क्षमागुण के धारक, क्षपक-श्रेणी और श्रेणी पर चढ़ने वाले, बोधित बुद्ध व कोष्ठबुद्धि के धारक तथा चैत्यवृक्ष और चैत्यालय (कृत्रिम-अकृत्रिम) आदि ये सब मेरे लिये मंगलदायक हों।

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक, सिद्धायतनों को नमस्कार है, निर्वाण-स्थलों को, अष्टापद कैलाश पर्वत, सम्मेद-शिखर, गिरनार, चम्पापुरी, पावापुरी, मध्यमा नगरी हस्तिपालक राजा की सभा में और जो भी कोई निषिद्धिका स्थान हैं, अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में ईषत्प्रागभार मोक्षशिला पर स्थित सिद्धों को, बुद्धों को, अष्टकर्मों से रहित, पापरहित, भाव कर्म मल से रहित निर्मल गुरु, श्रमण संघ, ऋषि, यति, मुनि व अनगार, भरत ऐरावत दस क्षेत्रों में, पाँच विदेह क्षेत्रों में और मनुष्य लोक में जो साधु संयमी तपस्वी हैं ये सब मेरा पवित्र मंगल करें, इनको मैं विशुद्ध भाव से मस्तक झुकाकर सिद्धों को नमस्कार करके मस्तक पर अंजुली रखकर त्रिविध मन-वचन-काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ इस प्रकार मैं मंगल करता हूँ।

हे भगवन्! मैं व्रतों में लगे दोषों का पश्चातापपूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ। दर्शन प्रतिमा में शंका-जिनेन्द्रकथित मार्ग में शंका, कांक्षा-शुभाचरण पालन कर संसार शरीर भोगों की इच्छा रूप निदान, जुगुप्सा-धर्मात्माओं के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करना, परपांखडियों की प्रशंसा-मिथ्या मार्ग व उनके सेवन करने वालों की प्रशंसा की हो, स्तुति की हो इस प्रकार मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि सम्बंधी अतिचार, अनाचार, मन से, वचन से, काय से स्वयं किये हों, कराये हों, करते हुए की अनुमोदना की हो तो तत्संबंधी मेरे समस्त दुष्कृत्य निरर्थक हों, मिथ्या हों। मैं समस्त दोषों की आलोचना करता हूँ, पश्चाताप करता हूँ।(1)

हे भगवन्! मैं अपने कृत दोषों की आलोचना करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूँ। दूसरी व्रत प्रतिमा में स्थूल हिंसा त्याग व्रत में वध से, या बंध से, छेदने या अतिभारारोपण या अन्नपाननिरोध करने से अर्थात् जीवों को मैंने बाँधा हो, मारा हो, अंगोपांग का छेदन किया हो, शक्ति से अधिक बोझा लादा हो और अन्न-पान निरोध किया हो। मेरे द्वारा रात्रि या दिन मे व्रतों में अतिचार, अनाचार, मन-वचन-काय से किये गये हों, कराये गये हों अथवा करते हुए कि अनुमोदना की गई हो तो वे सब दुष्कृत्य मेरे निरर्थक हों, मिथ्या हों।(2(i))

हे भगवन्! दूसरी प्रतिमा मे स्थूल असत्य विरति त्याग व्रत में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मिथ्या उपदेश देने से, एकान्त में कही गई

बात को प्रकट कर देने से, झूठे दस्तावेज आदि लिखने से, दूसरों की धरोहर हरण करने से, किसी के द्वारा इंगित चेष्टा से उसके अभिप्राय को प्रकट कर देने से इत्यादि प्रकार से स्थूल सत्याणुव्रत में दिन या रात में अतिचार-अनाचार मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से हुए हों वे सभी व्रत संबंधी मेरे दुष्कृत निरर्थक हों।(2(ii))

हे भगवन्! मैं कृतकर्मों का प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् पश्चाताप पूर्वक अपने व्रतों में लगे दोषों की आलोचना करता हूँ। दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत अचौर्याणुव्रत में दिन या रात्रि मे मन - वचन - काय - कृत - कारित -अनुमोदना से चोरी करने के प्रयोग को बतलाया हो (अर्थात् स्वयं तो चोरी नहीं की परन्तु दूसरों को ऐसा व्यापार बताना जिससे वह चोरी करे) चोर से अपहरण किये द्रव्य को ग्रहण किया हो, राज्य के विरुद्ध कार्य किया हो अर्थात् राज्य के विरुद्ध वस्तु, टिकिट आदि दिया हो, टैक्स चुराना आदि किया हो, राजा की आज्ञा को भंग किया हो, तोलने के बाँट आदि कम या ज्यादा रखे हों और अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर दी हो, इस प्रकार व्रतसंबंधी मेरे सब अतिचार-अनाचार रूप दोष निरर्थक हों, मेरे व्रत संबंधी पाप मिथ्या हों।(2(iii))

हे भगवन्! द्वितीय प्रतिमा के अब्रह्मविरति व्रत में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय प्रतिमा के अन्तर्गत स्थूल ब्रह्मचर्य व्रत में मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित अनुमोदना से दिन या रात में दूसरों का विवाह किया हो, इत्वरिका (व्यभिचारिणी स्त्री) के घर आना-जाना रूप व्यवहार रखा हो, अपरिग्रहीत कुमारिका और परिग्रहीत वेश्या, सधवा-स्त्रियों के साथ व्यवहार रखा हो, इनके साथ कामवासना से व्यवहार किया हो, काम-सेवन के अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से काम चेष्टा की हो, काम के तीव्र विकार से लोलुपता की हो अथवा घृणित परिणाम किये हों, कराये हों, अनुमोदना की हो इत्यादि व्रत संबंधी दोषों की मैं आलोचना करता हूँ मेरे व्रत संबंधी पाप मिथ्या हों, निरर्थक हों।(2(iv))

हे भगवन्! मैं दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत परिग्रहपरिमाण अणुव्रत में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय व्रत प्रतिमा में स्थूल परिग्रह परिणाम व्रत में क्षेत्र, मकान आदि के परिमाण का अतिक्रमण करने से चाँदी-सोना के परिमाण का अतिक्रमण करने से या दासी-दास के परिमाण

का अतिक्रमण करने से, या कूप्य-वस्त्र, बर्तन आदि समस्त परिग्रह का अतिक्रमण करने से, जो भी मेरे द्वारा दिन या रात्रि में मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से व्रत सम्बन्धी अतिचार-अनाचार हुआ, वह सब मेरा पाप मिथ्या हो।(2(v))

हे भगवन्! मैं द्वितीय प्रतिमा के मध्य प्रथम गुणव्रत-दिग्व्रत में लगे अतिचार-अनाचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। दूसरा व्रत प्रतिमा में प्रथम गुणव्रत में ऊर्ध्वदिशा में गमन की सीमा का उल्लंघन किया हो, अधोदिशा में गमन की सीमा का उल्लंघन किया हो, तिर्यक् दिशा में गमन की सीमा का उल्लंघन किया हो, सीमित क्षेत्र में वृद्धि की हो या दशोंदिशा संबंधी की गई मर्यादा को भूल गया हो, इस प्रकार दिन या रात्रि में व्रत संबंधी दोष अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से, किया हो, कराया हो, या करने वालों की अनुमोदना की हो तो मेरा व्रत संबंधी दोष/पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।(2(vi))

हे भगवन्! द्वितीय व्रत प्रतिमा में दूसरे गुणव्रत-देशव्रत में लगे दोषों की विशुद्धि के लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय व्रतप्रतिमा गुणव्रत के भेद देशव्रत में मर्यादा के बाहर से वस्तु मँगाई हो, बाँधी गई सीमा से बाहर वस्तु भेजी हो, शब्दों के इशारे से मर्यादा के बाहर से अपना कार्य किया हो, रूप दिखाकर मर्यादा के बाहर से अपना कार्य सिद्ध किया हो, कंकर, पत्थर आदि फेंककर मर्यादा के बाहर से अपना कार्य किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि में मन से, वचन से, काय से कृत, कारित, अनुमोदना से व्रतसंबंध अतिचार, अनाचार हुआ हो तो वह मेरा व्रत संबंधी पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।(2(vii))

हे भगवन्! मैं द्वितीय प्रतिमा के तीसरे गुणव्रत अनर्थदण्ड में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। अनर्थदण्डविरति व्रत में कंदर्प से अर्थात् राग के उदय स्मित से हँसी से, ठट्ठा से, कौतुकुच्य अर्थात् कुत्सित भाषण किया हो, शरीर की खोटी चेष्टा की हो, मौखर्य याने बिना प्रयोजन बकवाद किया हो, व्यर्थ संभाषण किया हो, असमीक्ष्याधिकरण याने बिना सोच-विचार के कार्य किया हो, भोगोपभोग की सामग्री का अनर्थ बिना प्रयोजन अधिक संग्रह किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा दिन में या रात्रि में व्रत संबंधी जो भी अतिचार मन-वचन-काय-कृत-कारित, अनुमोदना से हुए हों तत्संबंधी मेरे

दुष्कृत/पाप मिथ्या हों।(2(viii))

हे भगवन्! (द्वितीय व्रतप्रतिमा में प्रथम शिक्षाव्रत में लगे अतिचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रथम शिक्षाव्रत में स्पेर्शेन्द्रिय संबंधी भोगपरिमाण के अतिक्रमण से, रसना इन्द्रिय संबंधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, घ्राण इन्द्रिय संबंधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, चक्षु इन्द्रिय संबंधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, श्रोत्रेन्द्रिय संबंधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से मेरे द्वारा दिन या रात्रि में जो भी व्रत संबंधी अतिचार मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से हुआ तत्संबंधी मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।(2(ix))

हे भगवन्! द्वितीय व्रतप्रतिमा में द्वितीय शिक्षाव्रत परिभोगपरिमाण व्रत में लगे अतिचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ।स्पर्शन इन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से, रसना इन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से, घ्राण इन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से, चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से, श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से मेरे द्वारा दिन (रात्रि) में जो भी व्रत सम्बन्धी अतिचार मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से हुआ तत्संबधी मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।(2(x))

हे भगवन्! व्रत प्रतिमा के तृतीय शिक्षा व्रत में अतिथि संविभाग व्रत में सचित्त निक्षेप से, सचित्त विधान से, परउपदेश से, काल के अतिक्रमण से अथवा मात्सर्य से जो मैने दैवसिक (रात्रिक) अतिचार, मन से, वचन से, काय से किया, कराया है या करते हुए की अनुमोदना की वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या हो।(2(xi))

हे भगवन्! व्रत प्रतिमा के चतुर्थ शिक्षाव्रत सल्लेखना में - जीने की आंशसा से, मरने की आशंसा से, मित्रानुराग से, सुख के अनुबंध से और निदान से जो मैने दैवसिक (रात्रिक) अतिचार मन से, वचन से, काय से किया है, कराया है या करते हुए की अनुमोदना की वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या हो।(2(xii))

तीसरी-सामायिक प्रतिमा के पालने में मन के दुष्प्रणिधान अर्थात् मन की अस्थिरता, वचन दुष्प्रणिधान अर्थात् वचनों के उच्चारण में शीघ्रता

या मंदता या अशुद्धि की हो,काय दुष्प्रणिधान अर्थात् काय की चंचलता की हो - एक आसन में निश्चलतापूर्वक बैठकर निर्विकार सामायिक न कर काय की दुष्प्रवृत्ति की हो, शरीर के अंग-उपांगों को चलायमान किया हो, सामायिक अनादर से की हो, सामायिक पाठ का विस्मरण किया इत्यादि मेरे द्वारा जो भी कोई दिन या रात्रि में अतिचार मन से, वचन से काय से स्वयं किया गया हो, कराया गया हो या करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो सामायिक व्रत प्रतिमा संबंधी मेरा दुष्कृत/पाप मिथ्या हो।

हे भगवन्! चतुर्थ प्रोषध प्रतिमा के पालन करने में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रोषध प्रतिमा को पालते हुए जीव-जन्तुओं को बिना देखे ही, भूमि प्रदेश जीव-जन्तु रहित है या नहीं शोधन किये बिना ही मल-मूत्र का क्षेपण किया हो अथवा पूजा के उपकरण आदि बिना शोधे उपयोग किये हों, बिना देखे बिना शोधी भूमि में ही वस्तु धरी हो और बिना शोधे उपकरण, पुस्तक, पीछी (कोमल वस्त्र की पीछी), कमंडलु आदि उपयोगी वस्तुएँ ग्रहण की हों, बिना देखे, बिना शोधे संस्तर, चटाई पाटा आदि बिछाये हों, देव-पूजा गुरुपास्ति आदि षट् आवश्यक कर्तव्यों में हानि या अनादर किया हो, सामायिक, पूजन, स्तव आदि का विस्मरण किया हो इत्यादि, जो भी दोष मेरे द्वारा दिन या रात्रि में स्वयं किये गये हों, कराये गये हों या अनुमोदना की गई हो, सामयिक प्रतिमा व्रत संबंधी मेरे पाप मिथ्या हों।

हे भगवन्! सचित्तत्याग नामक पंचम प्रतिमा में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। सचित्तविरति त्याग प्रतिमा को पालने में मेरे द्वारा असंख्यातासंख्यात पृथ्वीकायिक जीवों का, असंख्यातासंख्यात जलकायिक जीवों का, असंख्यातासंख्यात तेजस्कायिक (अग्निकायिक) जीवों का, असंख्यातासंख्यात् वायुकायिक जीवों का और अनन्तानंत वनस्पतिकायिक जीवों में हरित, बीज, अंकुर का छेदन-भेदन किया हो, इन जीवों को उत्तापन/त्रास दिया हो, पीड़ित किया हो, विराधन किया हो या उपघात किया हो, कराया हो या करते हुए की अनुमोदना की हो, तो हे भगवन्! व्रत संबंधी मेरे दोष/ पाप मिथ्या हों।

हे भगवन्! मैं रात्रिभुक्ति नामक षष्ठ/छठी प्रतिमा में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा व्रत में दिन में नव प्रकार के ब्रह्मचर्य में मेरे द्वारा अतिचार मन से, वचन से, काय से किया गया हो,

कराया गया हो अथवा करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो रात्रि-भुक्ति त्याग या दिवामैथुन त्याग प्रतिमा संबंधी मेरे पाप मिथ्या हों।

हे भगवन! ब्रह्मचर्य प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। ब्रह्मचर्य प्रतिमा व्रत में स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं को कहा हो, स्त्रियों के मनोहर अंगों का निरीक्षण किया हो, पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण किया हो, या कामोप्पादक गरिष्ठ रसों का सेवन किया हो, या शरीर का श्रृंगार किया हो, इस प्रकार मेरे द्वारा दिन या रात्रि में जो भी अतिचार मन से, वचन से, काय से किया हो करवाया या करते हुए कि अनुमोदना की हो तो ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रतसंबंधी मेरे दोष/ पाप मिथ्या हों।

हे भगवन्/ आरंभत्याग नामक आठवीं प्रतिमा के व्रत पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। परिग्रहत्याग प्रतिमा व्रत में वस्त्रमात्र परिग्रह से भिन्न दूसरे परिग्रह में मूर्छापरिणाम होने से मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि में अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से, कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो व्रत संबंधी मेरा दोष मिथ्या हो।

हे भगवन्! परिग्रह त्याग नाम की नवमी प्रतिमा में वस्त्र मात्र परिग्रह से अन्य परिग्रह के मूर्छा परिणाम में जो मैने दैवसिक (रात्रिक) अतिचार, मन से, वचन से, काया से, किया हो, कराया हो, करते हुए की अनुमोदना की हो, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।

हे भगवन! अनुमति विरत नाम की दसवीं प्रतिमा में जो कुछ भी अनुमोदना पूछने पर अथवा नहीं पूछने पर की हो, करायी हो या करते हुए की अनुमोदना की हो, वहमेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

हे भगवन्! उद्दिष्टत्याग ग्यारहवीं प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। उद्दिष्टत्याग प्रतिमा व्रत में उद्दिष्ट दोष से युक्त आहार को मैंने किया हो, उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार दूसरों को कराया हो या उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार को करने की अनुमति दी हो तो उस व्रत संबंधी मेरा पाप मिथ्या हो।

निर्ग्रंथ लिंग की वांछा

हे भगवन्! इस निग्रंथ लिंग की मैं इच्छा करता हूँ। यह निग्रंथ लिंग मोक्षप्राप्ति का उपाय साक्षात् कारण है। यह अनुत्तर है अर्थात् इस निग्रंथ

लिंग से भिन्न दूसरा कोई उत्कृष्ट मोक्षमार्ग नहीं है। केवली संबंधी अर्थात् केवली कथित है। सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने में समर्थ है नैकायिक अर्थात् रत्नत्रय के निकाय से संबंध रखने वाला है, सामयिक रूप है, परम उदासीनता रूप तथा सर्वसावध योग का अभाव होने से यह ही सामायिक है। शुद्ध है। माया-मिथ्या-निदान शल्यों से दुखी जीवों के शल्य का नाश करने वाला है। सिद्धि का मार्ग है, श्रेणी का मार्ग है, शान्ति और क्षमा का मार्ग है, उत्कृष्ट मार्ग है, मोक्ष का मार्ग, अरहंत, सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है, चतुर्गति भ्रमण के अभाव का मार्ग है, निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग है, सर्व दुखों के नाश का मार्ग है, सुचारित्र के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग है, निर्विवाद रूप से निग्रथ लिंग से मुक्ति होती है, मोक्षार्थी इसी लिंग का आश्रय लेते हैं यह लिंग सर्वज्ञप्रणीत है उस उत्तम लिंग की मैं श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता हूँ, उसी को प्राप्त होता हूँ। इससे भिन्न अन्य कोई मोक्ष का हेतु नहीं है, न भूत में था और न भविष्य में होगा। ज्ञान-दर्शन-चरित्र व श्रुत का ज्ञापक होने से इस निग्रंथ लिंग से जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं, केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो, कर्मों से रहित होते हैं। कृतकृत्य हो जाते हैं, सब दुखों का अन्त करते हैं। निग्रंथ लिंग के द्वारा ही समस्त पदार्थों को जानते हैं। परिग्रह, निकृति (वंचना) मान, माया, कुटिलता, असत्य भाषण, सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र में श्रद्धा करता हूँ। जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये जो तत्व हैं उन्हीं की मैं श्रद्धा करता हूँ इस प्रकार मेरे द्वारा दिन-रात्रि की क्रियाओं में जो कोई अतिचार-अनाचार हुए हों तत्संबंधी मेरे समस्त पाप मिथ्या हों।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण में लगे अतिचारों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। मेरे द्वारा दिन या रात्रि की क्रियाओं में अतिचार-अनाचार आभोग-अनाभोग कायिक, वाचिक, मानसिक दुश्चिंतन हुआ हो, दुश्चरित्र हुआ हो। दुर्वचनों का उच्चारण हुआ हो, खोटे परिणाम हुए हों, ज्ञान में, दर्शन में, चरित्र मे, सूत्र में, सामायिक में, ग्यारह प्रतिमाओं की विराधना की हो, आठ कर्मों का नाश करने वाली क्रियाओं में प्रयत्न करने में, श्वासोच्छ्वास में नेत्रों की टिमकार से, खाँसने से, छींकने से, जंभाई लेने से, सूक्ष्म अंगों के हलन-चलन करने से, दृष्टि को चलायमान करने से इत्यादि अशुभ क्रियाओं से सूत्रपाठ आदि क्रियाओं का विस्मरण किया हो, अन्यथा प्ररूपणा की हो असमाधि को प्राप्त कराने वाली क्रियाओं के आचरण से जो दोष लगा हो,

तो मैं इस प्रतिक्रमण सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ और जब तक अरहंत भगवन्तों की पर्युपासना मैं करता हूँ तब तक पाप कर्म रूप दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ।

अब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण सर्व अतिचार की विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यों के क्रम से निष्ठितकरण वीरभक्ति के कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ।

(इस प्रकार विज्ञापन करके णमो अरहंताणं इत्यादि दंडक को पढ़कर कायोत्सर्ग करें। पश्चात् जीविय मरणेइत्यादि स्तव को पढ़ें।)

श्री वीर भक्ति

जो सम्पूर्ण चेतन-अचेतन विधिवत् द्रव्यों को और उनके गुणों को भूत-भावी-वर्तमान सम्पूर्ण पर्यायों में सदा सर्वकाल प्रतिसमय में एक साथ जानता है अतः वह सर्वज्ञ कहे जाते हैं, उन सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवान् महावीर के लिये नमस्कार हो॥१॥

वीर भगवान् सभी सुर-असुरों तथा इन्द्रों से पूजित हैं, ज्ञानीजन वीर प्रभु का आश्रय लेते हैं, वीर भगवान् ने कर्मसमूह को नष्ट कर दिया है, वीर प्रभु को भक्ति से नमस्कार हो, वीरप्रभु से ही यह अनुपम तीर्थ प्रवृत्त हुआ है, वीर भगवान् का तप उत्कृष्ट है, वीर भगवान् मे अन्तरंग-अनंत चतुष्टय और बाह्य में समवशरण आदि लक्ष्मी, तेज, कान्ति, यश और धैर्यता गुण विद्यमान है। हे वीर भगवान्! आप ही कल्याणकारी हैं॥२॥

जो भव्य पुरुष ध्यान में स्थित होकर संयम व योग से सहित होते हुए प्रतिदिन वीर भगवान् के दोनों चरण-कमलों को नमस्कार करते हैं वे संसार में निश्चित रूप से शोक-मुक्त होते हैं तथा विषम संसार अटवी से तिरकर मुक्त हो जाते हैं॥३॥

व्रतों का समूह जिसकी जड़ है, संयम जिसका स्कन्ध बंध है, यम-नियम रूपी जल के द्वारा जो वृद्धि को प्राप्त है, १८ हजार शील जिसकी शाखा हैं, पाँच समिति रूपी कलिकाएँ भार हैं, तीन गुप्तियाँ जिसमें गुप्त प्रवाल हैं, मूल और उत्तरगुण श्रावक अपेक्षा ८ मूलगुण, १२ उत्तरगुण जिसके पुष्पों की सुगंधी हैं, समीचीन तप चित्र-विचित्र पत्ते हैं जो मोक्षरूपी फल को देने वाला है, दयारूपी छाया समूह से युक्त है, शुभोपयोग में

दत्तचित्त पथिकों के खेद को देर करने में समर्थ है, पापरूपी सूर्य से उत्पन्न ताप को नाश करने वाला है वह चारित्ररूपी वृक्ष हमारे संसार रूप वैभव के नाश के लिये हो॥४-५॥

सब तीर्थंकरों के द्वारा जिस चारित्र का आचरण किया गया तथा समस्त शिष्यों के लिये जिस चारित्र का उपदेश दिया गया उस सामायिक छेदोपस्थापना आदि पाँच भेद युक्त चारित्र का मैं पंचम यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ॥६॥

सब सुखों की खान, हित को करने वाला धर्म है। बुद्धिमान लोग धर्म का संचय करते हैं। धर्म के द्वारा ही मोक्ष-सुख प्राप्त होता है। इसलिये उस धर्म को नमस्कार हो। संसारी प्राणियों का धर्म से भिन्न अन्य कोई दूसरा धर्म नहीं है। धर्म की जड़ दया है। मैं प्रतिदिन धर्म में मन को लगाता हूँ। हे धर्म, मेरी रक्षा करो॥७॥

अहिंसा संयम तप रूप धर्म मंगल कहा गया है। जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं॥८॥

हे भगवन्! मैं वीरभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ। उसमें देश के आश्रय से, आसन के आश्रय से, स्थान के आश्रय से, काल के आश्रय से, मुद्रा के आश्रय से, कायोत्सर्ग के आश्रय से, नमस्कारादि विधि के आश्रय से, आवर्त्त आदि से, प्रतिक्रमण में, उनमें आवश्यक कर्मों के करने में मेरे द्वारा हीनता, अत्यासादना मन से, वचन से, काय से, की गई हो, कराई गई हो अथवा करने वाले की अनुमोदना की गई हो तो वीर भक्ति सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या हों।

अब मैं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण में लगे सब अतिचार रूप दोषों की विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यों के क्रम से चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को करता हूँ।

(णमो अरहंताणं इत्यादि दंडक पढ़कर 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ें। पश्चात जीविय मरणे स्तव पढ़कर चौबीस तीर्थंकर भगवान् की भक्ति पढ़ें।

चौबीस तीर्थंकर भक्ति

वृषभदेव को आदि लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीरपर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त मुनिराज, गणधर और सिद्ध परमात्माओं को सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

जो लोक में १००८ लक्षणों के धारक हैं, जो समीचीन कारण हैं, संसाररूपी जाल स्वरूप मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाशक हैं, चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी हैं, गणधर मुनिवर, इन्द्र, देव तथा सैकड़ों अप्सराओं के समूह से जिनकी स्तुति की गई है, पूजा की गई है| उन वृषभनाथ जी आदि ले अन्तिम महावीरपर्यन्त २४ तीर्थंकर देवों को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

जिनों में श्रेष्ठ, देवों से पूज्य, नाभिराज के पुत्र आदिनाथजी की, उत्कृष्ट दीप सम, त्रैलोक्यप्रकाशक अजितनाथ जिनेन्द्र की, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों, उनके गुण व पर्यायों को युगपत् जानने वाले संभव जिनेन्द्र की, मुनियों के समूह में श्रेष्ठ देवाधिदेव अभिनन्दन की, कर्मशत्रुनाशक सुमति जिनेन्द्र की, कमलसम आभा व सुगंधित शरीर के धारक पद्मप्रभ जिनेन्द्र क्षमायुक्त, सहिष्णु, जितेन्द्रिय सुपार्श्व जिनेन्द्र की और पूर्णचन्द्रमा के समान कांति के धारक चन्द्रप्रभु भगवान् की स्तुति करता हूँ। प्रसिद्धिप्राप्त पुष्पदंत जी की संसार के भय के नाशक शीतल जिनेन्द्र की, शील के समुद्र श्रेयांसनाथ जी की, सौ इन्द्रों से पूज्य श्रेष्ठ जनों के गुरु वासुपूज्य भगवान की, घातिया कर्मों से रहित, इन्द्रियविजेता विमलनाथ भगवान् की ऋषिधारी मुनियों के स्वामी अनन्तनाथ भगवान् की, रत्नत्रय की ध्वजा-स्वरूप मुनियों के स्वामी धर्मनाथ भगवान् की और साम्यभाव के खजाने, संसार-दुःखों से पीड़ित जीवों के शरणाभूत शान्तिनाथ भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।

सिद्धालय में स्थित कुन्थुनाथ भगवान् की, हस्तगत चक्ररत्न के त्यागी, "अर" जिनेन्द्र की, प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न मल्लिजिनेन्द्र की, विद्याधरों के समूह से नमस्कृत सुख की राशि मुनिसुव्रतनाथ जी की, देवों से पूज्य नमि जिनेन्द्र की, भव का अन्त करने वाले हरिवंश के तिलकस्वरूप नेमिनाथ जी की, धरणेन्द्रवंदित पार्श्वनाथजी और वर्धमान जिनेन्द्र की मैं भक्ति से शरण को प्राप्त होता हूँ।

हे भगवन्! चौबीस तीर्थंकर भक्ति का कायोत्सर्ग मैंने किया। मैं तत्सबंधी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। पञ्चकल्याणक से सम्पन्न, आठ प्रातिहार्यों से युक्त, बत्तीस देवेन्द्रों के मणिमय मुकुटों से सुशोभित, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, यति, मुनि व अनगार से पूजित लाखों स्तुतियों के खजाने श्री वृषभदेव से लेकर महावीरपर्यन्त मंगलमय महापुरुषों की मैं हमेशा अर्चना, पूजा, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, मुझे बोधि की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधि-मरण हो, जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

मैं अब दिन या रात्रि में प्रतिक्रमण में लगे सर्व अतिचारों की विशुद्धि के निमित्त पूर्व आचार्यों के क्रम से आलोचना सिद्ध भक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति, निष्ठितकरण वीर भक्ति, चतुर्विंशति भक्ति, करके उनमें हीनाधिकि दोषों के परिहार के लिये, सकल दोषों का निराकरण करने के लिये सर्व मल व अतिचारों की शुद्धि के लिये, आत्मा को पवित्र करने के लिये समाधि भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ।

(9 बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

श्री समाधि भक्ति

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

हे भगवन्! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न होवे तब तक भव- भव में शास्त्रों का पठन-मनन-चिंतन, जिन-चरणों को नमन, सज्जनों की संगति, सचरित्रवानों के गुणों की कथा, परदोष- कथन में मौन, आत्मस्वरूप की भावना इन सबकी मुझे प्राप्ति हो।

हे जिनेन्द्र, मुझे जब तक मुक्ति प्राप्त न हो तब तक आपके दोनों चरण-कमल मेरे हृदय में विराजमान रहें, मेरा हृदय आपके चरण कमलों में लीन रहे।

हे कैवल्यज्योतिमयी ज्ञानदेव! मेरे द्वारा जो भी अक्षर मात्रा-पद अर्थ में हीनाधिक कहा गया हो उसे क्षमा कीजिये और मेरे दुःखों का क्षय कीजिये।

हे भगवन्! मैंने समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग किया, तत्संबंधी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। मैं रत्नत्रयस्वरूप परमात्मा का ध्यान है लक्षण जिसका, ऐसी समाधिभक्ति की सदा अर्चना, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, सम्यक् प्रकार आधिव्याधि - उपाधिरहित समाधिपूर्वक मरण हो, मुझे जिनेन्द्र देव के गुणरूप सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

(व्रती श्रावक प्रतिक्रमण समाप्त)

व्रती श्रावक प्रतिक्रमण

जीवे प्रमाद जनिता: प्रचुरा: प्रदोषाः,
यस्मात्-प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति ।
तस्मात्तदर्थ - ममलं गृहि - बोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्र भव कर्म विशोधनार्थम् ॥१॥

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेष - मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितं ।
त्रैलोक्याधिपते! जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे।।२।।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि ॥३॥

राग - बंध- पदोसं च हरिसं दीण - भावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदि-मरदिं च वोस्सरे ॥४॥

हा दुटठ्कयं हा दुटठ् चिंतियं भासियं च हा दुटठं।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेयंतो ॥५॥

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराह सोहणयं ।
णिंदण गरहण-जुत्तो मणवय-कायेण पडिक्कमणं॥६॥

एइंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचेंदिया, पुढवि-

काइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणप्फदिकाइया, तसकाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणंविराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-रायभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमण-मुद्दिट्ठ देस-विरदे दे॥

एयासु जधाकहिद - पडिमासु पमादाइ-कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अरहंत-सिद्ध आइरिय उवज्झायसव्वसाहूसक्खियंसम्मत्त-
पुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहि णिमित्तं पुव्वाइरियकमेण आलोयणसिद्धभत्ति-काउस्सग्गं करेमि।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व-साहूणं ।।

चत्तारि मंगलं - अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंत सरणं पव्वज्जामि सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि, केवली पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्म भूमीसु जाव अरहंताणं भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं,परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं, पारयाडं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं धम्मवर-चाउरंग-चक्क-वट्टीणं देवाहि-देवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते ! सामाइयं सव्वं सावज्ज जोगं पच्चक्खामि जावजीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण ण करेमि ण कारेमि अण्णं

करंतं पि ण समणुमणामि तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि (पच्चक्खामि) णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

। नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें ।

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवर लोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे ॥१।।
लोयस्सुज्जोय - यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे ।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो ।।२।।
उसहमजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥
सुविहं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमल - मणंतं भयवं, धम्म संतिं च वंदामि ॥४||
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥५।।
एवं मए अभित्थुआ, विहुयरय मला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया, एए लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ।।७।।
चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय पयासंता।
सायर-मिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमित विद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ।
तवसिद्धे, णयसिद्धे, संजमसिद्धे, चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं,

सम्म-णाण, सम्म-दंसण, सम्मचरित्त जुत्ताणं, अट्ठविह- कम्म-मुक्काणं, अट्ठ- गुण- संपण्णाणं,उड्ढ- लोय- मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं,णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं अदीदाणागद - वट्ट-माण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं णिच्चकालं,अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ,कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

इच्छामि भंते ! देवसिओ (राइओ) आलोचेउं तत्थ-

पंचुंबर-सहियाइं, सत्त वि वसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्तविशुद्ध-मइ, सो दंसणसावओ भणिओ॥१॥

पंच य अणुव्वयाइं, गुणव्वयाइं, हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि, जाण विदियम्मि ठाणम्मि ॥२॥

जिणवयण धम्मचेइय, परमेट्ठि जिणयालयाण णिच्चं पि।
जं वंदणं तिआलं, कीरइ सामाइयं तं खु ॥३॥

उत्तममज्झ जहण्णं, तिविहं पोसह-विहाणमुद्दिट्ठं।
सगसत्तीए मासम्मि, चउसु पव्वेसु कायव्वं ॥४।।

जं वज्जिजदि हरिदं तयपत्त - पवाल कंदफलवीयं।
अप्पासुगं च सलिलं, सच्चित्तणिव्वत्तिमं ठाणं ।।५।।

मण-वयण-कायकद-कारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा ।
दिवसम्मि जो विवज्जदि, गुणम्मि सो सावओ छट्ठो ।।६।।

पुव्वुत्तणव विहाणं पि मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो।
इत्थिकहादि णिवित्ती, सत्तमगुण बंभचारी सो।।७।।

जं किंपि गिहारंभं, बहुथोवं वा सया विवज्जेदि।
आरंभणिवित्तमदी सो अट्ठम सावओ भणिओ।।८।।

मोत्तूण वत्थमित्तं परिग्गहं जो विवज्जदे- सेसं।
तत्थ वि मुच्छं ण करेदि वियाण सो सावओ णवमो।९।

पुट्ठो वा पुट्ठो वा णियगेहिं परेहिं सग्गिह कज्जे।

अणुमणणं जो ण कुणदि, वियाण सो सावओ दसमो ॥१०॥

णवकोडीसु विसुद्धं भिक्खायरणेण भंजदे भुंजं ।
जायणरहियं जोग्गं, एयारस सावओ सो दु ॥११॥

एयारसम्मि ठाणे उक्किट्ठो सावओ हवेई दुविहो ।
वत्थेयधरो पढमो, कोवीण परिग्गहो विदिओ॥१२॥

तव वय णियमावासय लोचं कारेदि पिच्छ गिण्हेदि।
अणुवेहा धम्मझाणं, करपत्ते एयठाणम्मि ॥१३॥

इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणा-चारो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमं तस्स मे सम्मत्त-मरणं समाहिमरणं, पंडियमरणं, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सच्चित्तरायभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ देस-विरदे दे ॥

एयासु यधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोह-णट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अरहंतसिद्धआइरिय-उवज्झाय-सव्वसाहुसक्खियं सम्मत्त-पुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वाइरियकमेण पडिक्कमण भत्ति काउस्सग्गं (कायोत्सर्ग) करेमि।

॥ नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व-साहूणं ।।

।। तीन बार णमोकार मंत्र को पढ़ें ॥

णमो जिणाणं, णमो जिणाणं, णमो जिणाणं, णमो णिस्सहीए, णमो णिस्सहीए, णमो णिस्सहीए, णमोत्थुदे, णमोत्थुदे, णमोत्थुदे,

अरहंत सिद्ध! बुद्ध! णीरय!णिम्मल! सममण! सुभमण! सुसमत्थ! समजोग!समभाव! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं! णिब्भय! णिराय!णिद्दोस! णिम्मोह! णिम्मम! णिस्संग! णिस्सल्ल! माणमाय-मोसमूरण, तवप्पहावण! गुणरयण, सील-सायर - अणंत, अप्पमेय, महदि-महावीर-वड्ढमाण!, बुद्धि- रिसिणो चेदि णमोत्थुदे णमोत्थुदे णमोत्थुदे ।

मम मंगलं अरहंता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो ओहिणाणिणो, मणपज्जयणाणिणो, चउदस पुव्वंगामिणो, सुदसमिदि समिद्धा य, तवो य, बारसविहो तवसी, गुणा य गुणवंतो य, महारिसी, तित्थं तित्थकरा य, पवयणं पवणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणीदा य, बंभचेरवासो, बंभचारी य, गुत्तीओ, चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव, समिदिमंतो य, सुसमय-परसमय विदू, खंतिखवगा य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहि य बुद्धा य, बुद्धिमंतो य चेइयरुक्खा य चेइयाणि। उड्ढमहतिरिय लोए सिद्धाय दणाणि णमंसामि सिद्धि-णिसी-हियाओ अट्ठावय पव्वेय सम्मेदे उज्जते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालिय सहाए जाओ अण्णाओ का वि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि, ईसिपब्भारतल-गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्क मुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पव्वतित्थेर कुलयराणं चउवण्णो य समणसंघा य, दससु भरहेरा-वएसु, पंचसु महाविदेहेसु जो लोए संति साहवो संजदातवसी एदे मम मंगलं पवित्तं एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, पडिलेहिय अट्ठकत्तरियो तिविहं तिरयण सुद्धो।

पडिक्कमामि भंते ! दंसण पडिमाए संकाए कंखाए विदिगिंछाए परपासंडाण पसंसाए पसंथुए जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पढमे थूलयडे हिंसाविरदिवदे

वहेण वा, बंधेण वा, छेएण वा, अइभारा-रोहणेण वा, अण्णपाणणिरोहणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं॥२-१।।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए विदिए थूलयडे असच्चविरदिवदे मिच्छोवदेसेण वा रहोअब्भक्खाणेण वा कूडलेहकरणेण वा णासापहारेण वा सायारमंत्रभेएण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-२।।

पडिक्कमामिभंते! वदपडिमाए तिदिये थूलयडे थेणविरदि-वदे थेणपओगेण वा थेणहरियादाणेण वा विरुद्ध रज्जाइक्कमणेण वा हीणाहियमाणुम्माणेण वा पडिरूवय ववहारेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-३॥

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए चउत्थे थूलयडे अबंभ-विरदिवदे परविवाह- करणेण वा इत्तरिया गमणेण वा परिग्गहिदा परिग्गहिदा गमणेण वा अणंग-कीडणेण वा काम-तिव्वाभिणिवेसेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-४।।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पंचमे थूलयडे परिग्गह परिमाणवदे खेत्तवत्थूणं परिमाणाइक्कमणेण वा, धण-धण्णाणं परिमाणा-इक्कमणेण वा दासी-दासाणं परिमाणा इक्कमणेण वा, हरिण्ण सुवण्णाणं परिमाणा-इक्कमणेण वा, कुप्प-भांड-परिमाणा-इक्कमणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-५।।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पढमे गुणव्वदे उड्ढ-

वइक्कमणेण वा अहोवइक्कमणेण वा तिरियवइक्-कमणेण वा खेत्तउद्धीएण वा सदि अंतराधाणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं॥२-६-१॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए विदिये गुणव्वदे आणयणेण वा विणिजोगेण वा सद्दाणु- वाएण वा रूवाणु-वाएण वा पुग्गलखेवेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-७-२॥

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए तिदिए, गुणव्वदे कंदप्पेण वा कुकुवेएण वा मोक्खरिएण वा असमक्-खिया-हिकरणेण वा भोगोप भोगाणत्थकेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-८-३॥

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए पढमे सिक्खावदे फासिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा घाणिंदिय भोगपरिमाणा-इक्कमणेण वा चक्खिंदियभोग-परिमाणा-इक्कमणेण वा सवणिंदिय भोग-परिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-९-१ ।।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए विदिय सिक्खावदे फासिंदिय परिभोग परिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदिय परिभोग परिमाणाइक्कमणेण वा घाणिंदिय परिभोग परिमाणा-इक्कमणेण वा चक्खिंदिय परिभोग परिमाणा इक्कमणेण वा सवणिंदिय परिभोग-परि-माणाइक्कमणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-१०-२॥

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए तिदिए सिक्खावदे सचित्तणिक्खेवेण वा, सचित्तपिहाणेण वा, परउवएसेण वा, कालाइक्कमणेण वा, मच्छरिएण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-११-३॥

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए चउत्थे सिक्खावदे जीविदासंसणेण वा मरणासंसणेण वा मित्ताणुराएण वा सुहाणु - बंधेण वा णिदाणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-१२-४॥

पडिक्कमामि भंते! सामाइयपडिमाए मणदुप्पणि-धाणेण वा वायदुप्पणि-धाणेण वा, कायदुप्पणिधाणेण वा अणादरेण वा सदि अणुवट्ठावणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥3॥

पडिक्कमामि भंते! पोसह - पडिमाए, अप्पडि-वेक्खिया-पमज्जियोस्सग्गेण वा, अप्पडिवेक्खियाप - मज्जियादाणेण वा, अप्पडिवेक्खियापमज्जिया - संथारोवक्कमणेण वा आवस्सयाणादरेण सदि-अणु-वट्ठावणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

पडिक्कमामि भंते! सचित्त-विरदिपडिमाए -पुढवि-काइआ जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइआ जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउकाइआ जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, वाउ-काइआ जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदि-काइआ जीवा अणंताणंता, हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णाभिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे

दुक्कडं॥५।।

पडिक्कमामि भंते! राइभत्त पडिमाए णवविह बंभचरि-यस्स दिवा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥६॥

पडिक्कमामि भंते! बंभपडिमाए इत्थिकहायत्तणेण वा, इत्थिमणो हरांगणिरक्खणेण वा, पुव्वरयाणुस्-सरणेण वा, कामकोवण-रसासेवणेण वा, सरीरमंडणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।७।।

पडिक्कमामि भंते ! आरंभविरदिपडिमाए कसाय-वसंगएण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) आरम्भो, मणसा, वचसा काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥८॥

पडिक्कमामि भंते ! परिग्गहविरदि पडिमाए वत्थमेत्त परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।९॥

पडिक्कमामि भंते ! अणुमणविरदिपडिमाए जं किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदं वा, कारिदं वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१०।।

पडिक्कमामि भंते ! उद्दिट्ठविरदि पडिमाए उद्दिट्ठ-दोसबहुलं अहोरदियं आहारयं वा आहारावियं वा आहारिज्जतं वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।११।।

निर्ग्रंथ पद की वांछा

इच्छामि भंते ! इमं णिग्गंथं पवयणं, अणुत्तरं, केवलियं, पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं, सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं,

सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंतिमग्गं, मोत्तिमग्गं, पमोत्तिमग्गं, मोक्खमग्गं, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्वदुक्ख-परिहाणिमग्गं, सुचरियपरि-णिव्वाणमग्गं, अवितह-मवि-संति-पव्वयणं, उत्तमं, तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि तं फासेमि, इदोउत्तरं अण्णं णत्थि भूदं, ण भयं ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परि-णिव्वाणयंति, सव्व-दुक्खाणमंतं करंति, परिवियाणंति, समणोमि, संज-दोमि, उवरदोमि उवसंतोमि उवधि-णियडि माणमाया मोसमूरण मिच्छणाण मिच्छ-दंसण, मिच्छचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण, सम्म-दंसण, सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

इच्छामि भंते! वीरभत्ति काउस्सग्गं करेमि जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चरिओ, दुच्चारिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते, सामाइए, एयारसण्हं पडिमाणं विराहणाए, अट्ठविहस्स कम्मस्स णिग्घादणाए अण्णहा उस्सासिदेण वा णिस्सासिदेण वा, उम्मिस्सिदेण वा, णिम्मिस्सिदेण वा, खासिदेण वा, छिंकिदेण वा, जंभाइदेण वा, सुहुमहिं अंग चलाचलेहिं, दिट्ठिचलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं, असमाहि-पत्तेहिं, आयारेहिं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-रायभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ देस-विरदे दे ।।

एयासु जधाकहिद पडिमासु पमादाइकयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

अरिहंतसिद्ध-आइरियउवज्झायसव्व-साहूसक्खियं सम्मत्त पुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वाइरियकमेण निष्ठितकरण वीरभक्तिं कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

।। दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण हो तो छत्तीस बार णमोकार मंत्र का तथा रात्रि सम्बन्धी हो तो अठारह बार जाप करें।।

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद, द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि भवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः ।१।

वीरः सर्व- सुरासुरेन्द्र - महितो, वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय भक्त्या नमः ।
वीरात्तीर्थ - मिदं प्रवृत्त - मतुलं, वीरस्य वीरं तपो,
वीरे श्रीद्युति-कान्तिकीर्तिधृतयो, हे वीर! भद्रं त्वयि।२।

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ।३।

व्रत - समुदय - मूलः - संयमस्कन्धबन्धो,
यम-नियम-पयोभि-वर्धितः शील-शाखः।
समिति-कलिक भारो, गुप्तिगुप्तप्रवालो ,
गुणकुसुम-सुगंधिः सत् तपश्चित्रपत्रः ।४।

शिवसुख- फलदायी, यो दया छाय-यौघः,
शुभजन - पथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरित - रविज-तापं, प्रापयन्नन्त - भावं,
स भव विभव हान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः।५।

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पञ्चभेदं, पञ्चमचारित्र-लाभाय।६।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,

धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृदभवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।७।

धम्मो मंगल - मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सयामणो।८।

इच्छामि भंते! पडिकमणाइ - चारमालोचेउं तत्थ देसासिआ, आसणासिआ, ठाणासिआ, कालासिआ, मुद्दासिआ, काओसग्गा-सिआ, पणामासिआ, आवत्तासिआ, पडिक्कमासिए छसु आवासएसु परिहीणदा जो मए अच्चासणा मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।९।

दंसण-वय- सामाइय-पोसह- सचित्त- रायभत्ते य।
बंभारंभ- परिग्गह- अणुमणमुद्दिट्ठ देस- विरदे दे।।

एयासु जधाकहिद पडिमासु पमादाइ-कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अरिहंतसिद्ध - आइरिय - उवज्झाय - सव्व - साहू-सक्खियं सम्मत्त पुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहि णिमित्तं पुव्वाइरिय कमेण चउवीस तित्थयर भत्ति कायोस्सग्गं करेमि॥

॥ नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।।

चउवीसं तित्थयरे उसहाइवीर पच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं गुणगणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

ये लोकेऽष्ट - सहस्र- लक्षण-धरा, ज्ञेयार्ण-वान्तर्गता,
ये सम्यग्भवजाल-हेतु-मथनाश्,-चन्द्रार्क-तेजोधिकाः ।
ये साध्विन्द्र - सुराप्सरोगण-शतै-, र्गीत-प्रणुत्यार्चितास्,
तान् देवान् वृषभादि वीरचरमान्, भक्त्या नमस्याम्यहम्॥२॥

नाभेयं देवपूज्यं, जिनवर- मजितं, सर्वलोक - प्रदीपम्,

सर्वज्ञं शंभवाख्यं, मुनिगण- वृषभं, नंदनं देवदेवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं, वरकमलनिभं, पद्मपुष्पाभिगन्धम्,
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं, सकलशशिनिभं, चन्द्रना मानमीडो॥३॥

विख्यातं पुष्पदन्तं, भवभयमथनं, शीतलं लोकनाथम्,
श्रेयांसं शीलकोशं, प्रवरनरगुरुं, वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं, विमलमृषिपतिं, सैंहसेन्यं मुनीन्द्रम्,
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम्॥४॥

कुन्थु सिद्धालयस्थं, श्रमणपतिमरं, त्यक्त-भोगेषु चक्रम्,
मल्लिं विख्यात-गोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं, हरि-कुलतिलकं, नेमिचन्द्रं भवान्तम्,
पार्श्वं नागेंद्र वन्द्यं शरणमहमितो वर्द्धमानं च भक्त्या ॥५॥

इच्छामि भंते! चउवीसतित्थयरभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण संपण्णाणं अट्ठ-महा-पाडिहेर सहियाणं चउतीसाऽतिसय विसेस संजुताणं बत्तीसदेविंदमणि मय-मउड-मत्थय-महियाणं बलदेव - वासुदेव - चक्कहररिसि - मुणिजइ अणगारोव - गूढाणं थुइ-सहस्स-णिलयाणं उसहाइवीर-पच्छिममंगलमहा-पुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहि-मरणं जिण गुण संपत्ति होउ मज्झं।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-रायभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ देस-विरदे दे।।

एयासु जधाकहिद पडिमासु पमादाइकयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

अरिहंतसिद्ध - आइरिय - उवज्झाय - सव्व-साहू-सक्खियं सम्मत्त पुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वाइरियकमेण सकलकर्म - क्षयार्थं भावपूजा वंदना

स्तव आलोचना सिद्धभक्ति पडिक्कमणभक्ति णिट्ठिदकरण वीरभक्ति चउवीस तीत्थयरभक्ति कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादि दोषनिराकरणार्थं आत्मपवित्री करणार्थं समाहिभत्तिं काउसग्गं करेमि।

। नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।

अथेष्ट प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।
शास्त्राभ्यासो, जिनपतिनुतिः, संगति सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां, गुणगण-कथा, दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि, प्रियहित-वचो, भावना चात्मतत्त्वे,
सम्पद्यन्तां, मम भवभवे, यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद् यावन्निर्माण सम्प्राप्तिः ॥२॥

अक्खर - पयत्थ हीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य! मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ।।३।।

इच्छामि भंते! समाहि भत्ति काउसग्गो कओ तस्सा-लोचेउं रयणत्तय सरूव परमप्पज्झाण-लक्खणं समाहि भत्तीये सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहि-मरणं जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं।

शिखर पर 10 ध्वजाओं के मन्त्र

(मुनि श्री प्रणम्य सागर जी)

1- ॐ ह्रीं अर्हं माला चिन्ह शोभित सुमेरु पर्वत सम्बन्धि अशीति अकृत्रिम जिनमंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नमः स्थापयामीति ।

2- ॐ ह्रीं अर्हं सिंह चिन्ह शोभित गजदंत पर्वत सम्बन्धि विंशति अकृत्रिम जिनमंदिर स्थित ध्वजेभयो नम: स्थापयामीति ।

3- ॐ ह्रीं अर्हं कमल चिन्ह शोभित कुलाचल पर्वत सम्बन्धि त्रिंशत् अकृत्रिम जिनमंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नम: स्थापयामीति ।

4- ॐ ह्रीं अर्हं वस्त्र चिन्ह शोभित चैत्य वृक्ष सम्बन्धि दश अकृत्रिम जिनमंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नमः स्थापयामीति ।

5- ॐ ह्रीं अर्हं गरुड चिन्ह शोभित वक्षार पर्वत सम्बन्धि अशीति अकृत्रिम जिन मंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नम: स्थापयामीति ।

6- ॐ ह्रीं अर्हं गज चिन्ह शोभितेष्वाकार मानुषोतर पर्वत सम्बन्धि-चतुर कृत्रिम जिन मंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नमः स्थापयामीति ।

7- ॐ ह्रीं अर्हं वृषभ चिन्ह शोभित विजयार्ध पर्वत सम्बन्धि शत सप्तति अकृत्रिम जिन मंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नम: स्थापयामिति।

8- ॐ ह्री अर्हं चक्र चिन्ह शोभित नंदीश्वर जिनालय सम्बन्धि द्वि पंचाशत् अकृत्रिम जिन मंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नम: स्थापयामीति।

9- ॐ ह्रीं अर्हं मयूर चिन्ह शोभित चतु: कुंडलगिरि पर्वत सम्बन्धि चतुर कृत्रिम जिन मंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नम: स्थापयामीति ।

10- ॐ ह्रीं अर्हं हंस चिन्ह शोभित रुचकगिरि पर्वत सम्बन्धि चतुर कृत्रिम जिन मंदिर स्थित ध्वजेभ्यो नम: स्थापयामीति ।